हिन्दी साहित्य में कृष्ण

राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा

हिन्दी साहित्य में कृष्ण

[आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०
उपाधि के लिये स्वीकृत
शोध प्रवन्ध]

डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रिन्सिपल
किशोरी रमण गर्ल्स डिग्री कालेज, मथुरा

राजयश्री प्रकाशन
मथुरा

मूल्य
पन्द्रह रुपया
१५—००

प्रकाशक : प्रमोद बिहारी बी० कॉम०,
राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा

मुद्रक : ओंकार नाथ अग्रवाल एम० ए०,
हिन्द प्रिन्टर्स, अस्पताल रोड, आगरा

स्नेहमयी

मां

सौ० माया देवी कुलश्रेष्ठ को

प्राक्कथन

१५०० से १८०० ई० के हिन्दी साहित्य में कृष्ण का अंकन प्राय: ब्रजभाषा काव्य में हुआ। मुगल बादशाह इस भाषा में कृष्ण-काव्य रचते थे तथा उनके दरबार के गवैये 'भाषामणि' कहकर इसका सम्मान सहित गान करते थे। कृष्ण-भक्त इसे पुरुषोत्तम भाषा कहकर पुकारते थे। ब्रजभाषा से प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली की रचना ब्रजभाषा में की थी। इससे ब्रजभाषा के साथ कृष्ण के अभिन्न सम्बन्ध की पुष्टि होती है।

कुछ गद्य ग्रन्थों को छोड़कर मध्ययुग का अधिकांश साहित्य पद्य में रचा गया। गद्य-ग्रन्थों में वल्लभ सम्प्रदाय के गद्य-ग्रन्थों की अधिकता है। गोकुलनाथ जी की 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के अतिरिक्त अन्य वार्ताएं भी लिखी गईं। हरिराय जी की 'भाव-भावना' ब्रजभाषा गद्य का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कुछ अनुवाद तथा टीकाएं भी ब्रजभाषा गद्य में प्राप्त होती हैं। इनमें से कुछ केवल गद्य में हैं तथा कुछ गद्य तथा पद्य दोनों में। १७०० ई० के आसपास भगवानदास ने 'भाषामृत' नाम से भगवद्गीता का अनुवाद किया। एक गीतानुवाद 'भगवद्गीता-भाषा' नाम से पाया जाता है। ये दोनों ग्रन्थ केवल गद्य में हैं। गीता का एक अन्य अनुवाद आनन्दराम द्वारा गद्य-पद्य मिश्रित ब्रजभाषा में प्राप्त होता है। मौलिक कृष्ण-साहित्य मूलतः ब्रजभाषा काव्य में ही प्राप्त होता है।

मध्ययुगीन कृष्ण-साहित्य परिमाण और गुण दोनों में श्रेष्ठ है। अनेक कवियों ने प्रचुर काव्य लिखकर कृष्ण-काव्य की श्री वृद्धि की है। मध्ययुगीन सम्प्रदायों के अधिकांश भक्त वाणीकार हैं। पत्र-पुष्प के साथ इन भक्त कवियों ने अपनी भावना-बद्ध वाणी का नैवेद्य भी भगवान कृष्ण को समर्पित किया है। मैंने मध्ययुग के इन वाणीकारों को सम्प्रदायों में वर्गीकृत करके उनमें कृष्ण का स्वरूप निश्चित करने की चेष्टा की है। मध्ययुग के समस्त सम्प्रदायों का इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन इस शोधप्रबन्ध का नवीन प्रयास है।

मैंने अपने प्रबन्ध की पूर्व पीठिका प्रारम्भ के तीन अध्यायों में प्रस्तुत की है। प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य में कृष्ण के ऐतिहासिक स्वरूप का दिग्दर्शन कराते

हुए कृष्ण का मूल जीवन-वृत्त दिया है। अन्त में कृष्ण के ऐतिहासिक समय का निर्धारण भी किया है।

धर्म के साथ कृष्ण का शाश्वत सम्बन्ध है अतः द्वितीय अध्याय में 'धर्म के आलम्बन कृष्ण' शीर्षक के अन्तर्गत भागवत सम्प्रदाय का विकास दिखाना आवश्यक समझा गया। उक्त धर्म के बदलते हुए विभिन्न रूपों में कृष्ण के नाम तथा स्वरूपों का निर्धारण किया गया है। आलवारों में भक्ति का स्वरूप बताते हुए इसी अध्याय में चार आचार्यों द्वारा नये वैष्णव-धर्म के स्थापन की चर्चा करके तत्कालीन भारत के अन्य अनेक धार्मिक-सम्प्रदायों में कृष्ण का स्वरूप बताने की चेष्टा की गई है।

१५०० ई० से पूर्व धर्म में ही नहीं, कृष्ण ललित कलाओं में भी अंकित किये गये थे। वस्तु कला, मूर्ति कला, चित्र कला, संगीत कला तथा काव्य कला में कृष्ण का अंकन यत्रतत्र प्राप्त हुआ है। इस समय के काव्य में कृष्ण-प्रसंग को अधिक विस्तार देकर विकास की कड़ियाँ जोड़ने की चेष्टा की गई है। इस समय तक कृष्ण के गोपाल रूप, गोपीवल्लभ रूप तथा राधावल्लभ रूप की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। सोलहवीं शती के हिन्दी-साहित्य को कृष्ण के उपरोक्त रूप परम्परा में प्राप्त हुये। यह परम्परा संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश तथा अपभ्रंश से हिन्दी को प्राप्त हुई है। इनभाषाओं के साहित्य में कालक्रम से कृष्ण के स्वरूप का विकास दिखाने की चेष्टा की गई है।

चतुर्थ अध्याय में मध्ययुगीन सम्प्रदायों में कृष्ण का स्वरूप निर्धारित किया गया है। मध्ययुगीन हिन्दी-कविता का यह साम्प्रदायिक सिद्धान्त पक्ष है। जिस क्रम से इस अध्याय में साम्प्रदायिक सिद्धान्त पक्ष का कथन किया गया है उसी क्रम से पंचम अध्याय में साम्प्रदायिक हिन्दी काव्य में कृष्ण का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म रूप से लेकर उनके सहज मानव रूप तक प्रायः समस्त रूपों का दिग्दर्शन कराया गया है। प्रत्येक साम्प्रदायिक काव्य में कृष्ण का स्वरूप अभिन्न होते हुये भी भिन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ है। भिन्नत्व के तत्वों की ओर प्रत्येक स्थल पर विशेष संकेत किया गया है तथा विभिन्न कवियों के काव्य से यथास्थान उद्धरण भी दिये गये हैं। मीरा संप्रदाय-मुक्त होते भी एक विशिष्ट उपासना पद्धति में विश्वास करती थी अतः उन्हें भी एक पृथक सम्प्रदाय मान कर इसी अध्याय के अन्तर्गत रखा गया है।

षष्ठ अध्याय में मध्ययुगीन सांप्रदायिक कवियों द्वारा वर्णित कृष्ण-चरित्र का विस्तार दिखाया गया है। इसमें कृष्ण के जीवन की समस्त घटनाओं तथा स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया गया है। कवियों के काव्य से उद्धरण भी दिये गये हैं। ब्रजलीला, मथुरालीला, द्वारिकालीला तथा कुरुक्षेत्र लीलाओं का वर्णन करके सम्यक् रूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

सप्तम अध्याय 'रीतिकालीन कवियों के कृष्ण' का स्वरूप निर्धारित करता

है। साम्प्रदायिक कवियों का 'उज्ज्वल-रस' ही कालान्तर में स्थूल शृंगार में परिणत हो गया। अतः मैंने रीतिकाल को शृंगार-संवलित भक्तिकाल माना है। रीतिकाल में कृष्ण के ब्रह्म, विष्णु आदि रूपों की ओर भी संकेत किया गया है। अन्त में नायक के विभिन्न भेदों में कृष्ण का स्वरूप निर्धारित किया गया है।

अष्टम अध्याय रीति मुक्त कवियों में कृष्ण का स्वरूप निर्धारित करता है।

नवम् अध्याय में 'अभिव्यंजना और रस' शीर्षक से कृष्ण काव्य की शैलीगत विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत करना भी आवश्यक समझा गया। कृष्ण-काव्य के विभिन्न रूप तथा वर्णन-शैलियाँ, भाषा, छन्द, अलंकार, चित्र योजना, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, गुण, वृत्ति, रीति आदि पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। अन्त में 'नवरस और कृष्ण' शीर्षक के अन्तर्गत नौ रसों में कृष्ण-काव्य से उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। कृष्ण-काव्य की हिन्दी काव्य शास्त्र को विशेष देन है। कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य पात्र का हिन्दी-साहित्य पर इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा।

ललित कलाओं पर कृष्ण का प्रभाव अद्वितीय है। प्राचीन ललित कलाओं में तो कृष्ण ओत-प्रोत थे ही, मध्ययुग की ललित कलाओं में भी वे सर्वाधिक रूप में अंकित किये गये। वास्तु कला मूर्तिकला में उनका प्रभाव इतना नहीं पड़ा जितना कि चित्रकला तथा संगीत कला में। मध्ययुग में चित्र की प्रत्येक शैली में कृष्ण अंकित हुये। कुछ शैलियों का आविर्भाव ही कृष्ण की प्रेरणा से हुआ। किशनगढ़ शैली उसका एक उदाहरण है। संगीत-कला से साथ कृष्ण काव्य का अभिन्न सम्बन्ध रहा। प्रत्येक कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। अष्ट छाप की स्थापना आठ समय की राग रागनियों के साथ आठ समय की सेवा का मेल मिलाने के उद्देश्य से की गई थी। आज भी मन्दिरों में संगीत एक अनिवार्य तत्व माना जाता है। समाज के रूप में शास्त्रीय संगीत तथा रास के रूप में नाट्य और नृत्य भी कृष्ण भक्ति के अनिवार्य तत्व माने जाते हैं। लोक-नायक कृष्ण लोक-साहित्य में भी चित्रित किये गये। मध्ययुग के कुछ गीतों में यदि लोक तत्व समा गया तो मध्ययुगीन समृद्ध साहित्य ने लोक-जीवन को भी प्रभावित किया है। लोक गीतों में यह प्रभाव दिखाने की चेष्टा की गई है। कृष्ण के विशाल साहित्य ने तुलसी जैसे राम भक्त कवियों को तथा निर्गुण सम्प्रदाय के कवियों को भी अपने मोहक परिवेश में ले लिया था। मुसलमान कवियों को भी कृष्ण प्रिय थे। काव्य और संगीत में उन्होंने कृष्ण का गुण-गान किया था। दशम अध्याय में इन विषयों पर भी कुछ लिखना मैंने आवश्यक समझा।

एकादश अध्याय में आधुनिक काल के कृष्ण पर प्रकाश डाला गया है तथा अन्त में सम्पूर्ण प्रबन्ध का संक्षेप निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट—१ में सम्पूर्ण कृष्ण काव्यकारों की क्रमिक सूची दी जा रही है।

इसके बनाने में तथा वर्गीकरण करने में पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कारण यह है कि कृष्ण काव्य के श्रेष्ठ वाणीकारों को प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी साम्प्रदायिक सूची में गिना दिया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय की 'साहित्य रत्नावली', निम्बार्क सम्प्रदाय की निम्बार्क माधुरी', तथा वल्लभ सम्प्रदाय की 'कीर्तन-सागर' ऐसी ही रचनायें हैं। सम्प्रदाय के अधिकारी विद्वानों से भी प्रामाणिक सूची प्राप्त न होने के अभाव में विशेष प्रसिद्ध कवियों को ही सूची में लिया गया है। यदि किसी सम्प्रदाय के कवि का नाम किसी दूसरे साम्प्रदायिक वर्ग में चला गया हो तो सम्प्रदाय के अधिकारी गण क्षमा करें। यदि वे सम्प्रदाय सम्बन्धी मेरी किसी भी भूल के प्रति संकेत करेंगे तो मैं उनका अत्यधिक आभार मानूंगी। पुस्तक के द्वितीय संस्करण में उन भूलों को निकाल देने की चेष्टा की जायगी।

अन्त में अपने निर्देशक डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र के प्रति मैं आभारी हूं। उनकी प्रेरणा से यह कार्य सम्भव हो सका। डॉ० सत्येन्द्र तथा डॉ० हरिवंश लाल शर्मा तथा गोवर्धन नाथ शुक्ल की इस शोध प्रबन्ध पर विशेष कृपा रही है। उन्होंने समय-समय पर मेरी भूलों की ओर संकेत करके इसकी सफलता में योग दिया है। अपने भाई डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त के प्रति पुरातत्व सामग्री के लिए विशेष आभार प्रकट करती हूं। भाई डॉ० ब्रजयेन्द्र स्नातक की कृपा के लिये क्या कहूं। पुस्तक की भूमिका लिखकर शोध प्रबन्ध में जो योगदान उन्होंने किया, अपूर्व है।

आगरा विश्वविद्यालय ने शोध प्रबन्ध के इस रूप में आने के निमित्त जो योगदान दिया है, वह भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि उसके अभाव में यह महान् कार्य सहज ही सम्पन्न न होता।

भूमिका

मध्ययुगीन भक्ति साहित्य के आराध्य देवताओं में भगवान् कृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। श्रीकृष्ण का भारतीय इतिहास में भी प्रमुख स्थान है, और पुराण साहित्य में भी उनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त है। अनेक विद्वान उन्हें भारतीय इतिहास का सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति स्वीकार करते हैं। महाभारत युद्ध के सूत्रधार के रूप में उनका बुद्धि-कौशल, पराक्रम और पुरुषार्थ सर्वत्र व्याप्त है। कुछ दूसरे विद्वान् उन्हें ब्रह्म, ईश्वर, नारायण अथवा परमपिता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार कृष्ण वैदिककालीन देवता हैं, जिनका महाभारत काल तक क्रमिक रूप से विकास हुआ है। ऋग्वेद के अष्टम तथा दशम मण्डल के कुछ सूत्रों के रचयिता ऋषि कृष्ण हैं। इसी वेद के प्रथम मण्डल में भी कृष्ण ऋषि का उल्लेख है। कौषीत की ब्राह्मण में आंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण का उल्लेख मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी आंगिरस के शिष्य कृष्ण का वर्णन है, जिसे देवकी का पुत्र माना गया है। इन वर्णनों के आधार पर वैदिक साहित्य में कृष्ण का अस्तित्व स्वीकार करने वाले विद्वान हैं। भारतीय—विद्या के विख्यात विद्वान डा० भाण्डारकर ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषि कृष्ण महाभारत के वासुदेव कृष्ण से भिन्न हैं; किन्तु कालान्तार में वैदिक ऋषि कृष्ण को गुण माहात्म्य के कारण महाभारत के कृष्ण से जोड़ दिया गया। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि क्षत्रियों का कोई गोत्र कार्ष्णायन रहा होगा जिसका उल्लेख बौद्ध सातकों में भी उपलब्ध है उसी को स्वीकार कर वासुदेव का नाम कृष्ण कर दिया है। लोकमान्य तिलक ने भी छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित देवकी पुत्र कृष्ण तथा गीता के कृष्ण को भिन्न व्यक्ति माना है। कुछ दूसरे विद्वान उपर्युक्त मत को स्वीकार नहीं करते, उनका कथन है कि वैदिक ऋषि कृष्ण के नाम पर प्रवर्तित कार्ष्णायन गोत्र के आधार पर वसुदेव ने अपने पुत्र का नाम कृष्ण रखा था। उनके अनुसार छान्दोग्य में वर्णित सात्वत धर्म के उपदेष्टा कृष्ण तथा गीता के प्रणेता वासुदेव भिन्न नहीं हैं। किन्तु यह धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती। कृष्ण के जिन विविधरूपों का वर्णन हमें भारतीय साहित्य मे उपलब्ध होता है, उसे देखते हुए अनेक प्रकार की शंका और सम्भावनाएँ हमारे सामने प्रस्तुत होती हैं। कृष्ण को वेद वेदांग का ज्ञाता, गम्भीर दार्शनिक, योगेश्वर, पुरुषोत्तम जगत गुरु आदि बताया गया है। दूसरी ओर

जहाँ कृष्ण यदुवंशीय क्षत्रिय हैं वहाँ उन्हें गोप, वृष्णवीर यदुवीर आदि नामों से भी व्यवहृत किया गया है ; तीसरी ओर उनके नाम केशव, माधव, हरि, जनार्दन, दामोदर आदि भी हैं जिनकी आध्यात्मिक व्याख्या उद्योग पर्व में संजय ने की है।

श्री कृष्ण के गुणों का वर्णन हमें महाभारत में सविस्तार प्राप्त होता है। सभापर्व में कृष्ण की सर्व प्रथम पूजा उनके पुरुषोत्तम रूप का प्रमाण है। भीष्मपितामह ने इसी पर्व में उनकी प्रशंसा करते हुए कहा है—"वेदों का प्रमाण, बलाधिक्य, दान-दाक्षिण, शौर्य, पराक्रम, शील, संकोच, कीर्ति बुद्धि, विवेक, विनय, धैर्य, श्री, तुष्टि आदि अनेक गुण उनमें निश्चित रूप से विद्यमान हैं।" आदिपर्व में जहाँ युधिष्ठिर को धर्मरक्षक कहा गया है, वहाँ कृष्ण को उसका मूल निश्चित किया गया है। इसीलिये उन्होंने महाभारत के युद्ध में धर्म पक्ष पर आरुढ़ पाण्डवों का साथ देना स्वीकार किया था। द्रोण पर्व में श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'मेरा निवास सत्य, वेद, दम, शौच, ह्री, श्री, धृति क्षमा में ही।' गीता में इन्ही धर्मों का समर्थन करते हुए—"धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' की बात कही गई है।

श्री कृष्ण के सर्वांगीण अध्ययन के लिये भारतीय भक्ति साहित्य का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। कृष्णोपासक प्राचीन सम्प्रदायों में सात्वत वासुदेव, नारायण, पंचरात्र आदि सम्प्रदायों का प्रमुख स्थान है। इन सम्प्रदायों में कहीं कृष्ण गोत्र वाचक हैं तो कहीं अपत्यवाचक वासुदेव शब्द का प्रयोग है। कृष्ण को नारायण शब्द से भी व्यवहृत किया गया है। अवतारवाद की कल्पना के साथ यदि किसी देवता का सबसे व्यापक सम्बन्ध हो तो विष्णु के अवतार कृष्ण का ही है। सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में कृष्ण को भक्ति पद्धति में स्थान प्राप्त हुआ है। यह बड़े आश्चर्य की बात है और कदाचित यह कृष्ण के परम महत्व का प्रभाव है कि कृष्ण की भक्ति, पूजा, सेवा, अर्चना, उपासना, विविध रूपों में इस देश में होती चली जा रही है।

मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में कृष्ण का पौराणिक रूप अधिक गृहीत हुआ है। भागवत पुराण में ही सर्वप्रथम यह घोषणा की गई थी कि विष्णु के अवतारों में भगवान श्री कृष्ण ही पूर्णावतार हैं—"एवं चाशंकला पुंसा कृष्णस्तु भगवानरजयम्" भागवत में आगे कहा गया है कि ज्ञाता, ज्ञेय के भेद से रहित अखण्ड, अद्वितीय, सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञान को ही तत्व कहते हैं। उसे ही ज्ञानी, ब्रह्म, योगी, परमात्मा तथा भक्त भगवान के नाम से पुकारता है। यह भगवान का स्वरूप कृष्ण का ही स्वरूप है। प्रायः सभी पुराणों में कृष्ण का स्मरण भगवान के रूप में ही किया गया है, अन्त में यह स्थापित कर दिया गया है कि सारे वेद भगवान श्री कृष्ण की आराधना करते हैं; योग साधना के द्वारा कृष्ण को ही प्राप्त करते हैं; तपस्यायें भी उन्हीं के प्राप्ति के निमित्त हैं; धर्म भी उन्हीं के लिये और सम्पूर्ण गतियों के लक्ष्य भी वे ही

भगवान श्री कृष्ण है। वे एक साथ ब्रह्म, योगेश्वर तथा भक्तों के आराध्य हैं। उनके वर्णन प्रसंग में जिन सम्बोधनों का प्रयोग पुराणों में किया गया है वे इतने अधिक व्यापक हैं कि उनसे बाहर परात्पर तत्व ब्रह्म अथवा ईश्वर का कोई विशेषण शेष नहीं रहता। वह अनादि अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वनियन्ता, सृष्टिकर्त्ता, निर्गुणातीत, सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान, अविनाशी, परब्रह्म रूप स्वयं प्रकाश, अपरिणामी, अच्युत, अनिर्वचनीय, अद्वितीय, सजातीय विजातीय भेद शून्य एक रस नित्य एवं पूर्ण है। इसी प्रकार और भी बहुत से रूपों में कृष्ण का वर्णन पुराण ग्रन्थों में किया गया है।

पुराणों के कृष्ण का दूसरा रूप है लीलावपुधारी भक्त रक्षक एवं भक्त रञ्जक श्री कृष्ण। जिन लीलाओं का वर्णन, पुराणों में किया गया है, उनमें कृष्ण की अलौकिक शक्ति का परिचय तो मिलता ही है साथ में उनके चपल-चञ्चल स्वभाव की मनोहारी झाँकी भी उपलब्ध होती है। अपनी प्रत्येक मनमोहक लीला-क्रीड़ा द्वारा वे ब्रजवासियों को आनन्द सागर में निमज्जित करने की असीम शक्ति रखते हैं। ये लीलाएँ उनके ईश्वरीय रूप की महिमा का परिचय देने के साथ उनके मधुर रूप की मनुरञ्जनकारी छटा भी प्रस्तुत करती है। ज्ञान, शक्ति, बल ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन षड्गुणों से समन्वित कृष्ण को भगवान के नाम से इसी प्रसंग में सम्बोधित किया है, और साथ ही उनमें नरत्व का भी समावेश कर दिया गया है। नरत्व के समावेश से उनकी लीलाएँ मनोहारी एवं आल्हादक बन जाती है। नन्दनन्दन गोपाल कृष्ण की बाललीलाएँ जहाँ मन को आनन्द की उमंग से भर देती हैं वहाँ गोपी बल्लभ एवं राधाबल्लभ कृष्ण की रासलीलाएँ राग के स्निग्ध सागर में निमज्जित करने की अपार शक्ति रखती हैं। पुराणों में श्री कृष्ण के पारिवारिक जीवन का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। यदि पुराणकारों ने श्री कृष्ण के वंश, गोत्र, परिवार आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन न किया होता तो उनके चारित्रिक गुणों का आकलन करना कठिन होता। मध्ययुगीन भक्त कवियों ने कृष्ण के इसी रूप को प्रचुर मात्रा में ग्रहण कर अपनी भक्ति भावना को पल्लवित किया है।

वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदायों में वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण ही रसिक किशोर रूप में वर्णित हुए हैं। उनकी पराकृति श्री राधा है जो चित् अचित् विशिष्ट आल्हादकारी निज शक्ति रूप है। सम्पूर्ण चराचर जगत् इन्हीं रसिक युगल किशोर का प्रतिबिम्ब है। भगवान श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म के भी आदिकारण और ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। श्रीकृष्ण के स्वरूप प्रतिपादन के लिये उनके तीन रूपों का वर्णन प्रायः सभी वैष्णव सम्प्रदायों में मिलता है। वृन्दावन बिहारी कृष्ण, मथुरावासी कृष्ण, और द्वारिकावासी कृष्ण। मथुरा और द्वारका में श्रीकृष्ण का स्वरूप ऐश्वर्य, श्री, ज्ञान, वैराग्य शक्ति आदि भावों से परिपूर्ण है। वे ब्रह्मनिष्ठ योगी और कर्तव्यनिष्ठ क्षत्रिय

रूप में रहते हैं। किन्तु वृन्दावन में उनका रूप सर्वथा भिन्न माना जाता है। ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति, पराक्रम और वैराग्य को अन्तर्लीन कर यहाँ वे प्रेम-माधुर्य की साक्षात् मूर्ति बन गोप-गोपी के साथ लीलारत रहते हैं। राधापति होकर रसराज शृंगार के सौन्दर्य का विस्तार करते हैं। इसीलिये वृन्दावन के कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में यह माना गया है कि कृष्ण का जो रूप वृन्दावन में दृष्टिगोचर होता है वह अन्यत्र कहीं नहीं। "यद वृन्दावनमात्रगोचरमहोयना-श्रुतीकं शिरोप्यारूढं क्षमते—न तच्छिव शुकादीनां तुयदध्यानगम्। अर्चावतार के रूप में श्रीकृष्ण को नित्य बिहारी के रूप में ग्रहण किया जाता है। कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे हैं जिनमें राधा माधव की असंख्य केलि क्रीड़ाओं का वर्णन है और उनकी क्रीड़ाओं से ऋषि मुनि भी आनन्द विभोर होते रहते हैं। इन सम्प्रदायों में प्रेम सर्वस्व तथा प्रेम के एकमात्र अधिकारी श्री कृष्ण ही हैं, और कोई न तो प्रेम का रहस्य ही जानता है और न प्रेम का सच्चा अधिकारी ही है।

> "एकै प्रेमी एक रस राधावल्लभ आहि।
> भूलि कहे जो और ठों जूठो जानो ताहि॥

कहने का तात्पर्य यह है कि इन सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण को प्रेम, काम और शृंगार का पुंजीभूत रूप स्वीकार कर लिया गया है। श्रीकृष्ण की लीलाओं में ही उनके दिव्यवपु के अनेक रूप स्वीकार किये जाते हैं। यदि भक्ति का चरमसाध्य कोई तत्व है तो वह लीलावपुधारी राधाकृष्ण का दर्शन ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग में कृष्ण को धर्म काव्य और कला में इतना अधिक स्थान प्राप्त हुआ कि अन्य देवी-देवताओं का महत्व उनके सामने नगण्य सा रह गया।

अभी तक हिन्दी के शोध प्रबन्धों में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में आनुषंगिक रूप से ही लिखा गया है। श्रीकृष्ण के ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक रूप को उद्घाटित करने के लिए स्वतन्त्र रूप से कोई अनुसंधान पर अनुशीलन नहीं हुआ। डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ का यह प्रथम प्रयास है कि उन्होंने श्री कृष्ण की विशद-व्यापक जीवन लीला का वैज्ञानिक दृष्टि से गवेषणात्मक परिचय प्रस्तुत किया है। प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में उनकी दृष्टि ऐतिहासिक मान्यताओं की ओर रही है। ऐतिहासिक मान्यताओं के आधार पर उन्होंने अपने निष्कर्ष स्थिर किये हैं। इन निष्कर्षों से मतभेद तो हो सकता है किन्तु उनकी ऊहापोह की तटस्थवृत्ति पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता। कृष्ण का आविर्भाव काल उन्होंने ईसा से १००० वर्ष पूर्व स्थिर किया है, जबकि अधिकांश विद्वान महाभारत को ईसा से ३००० वर्ष पूर्व स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में उपलब्ध कृष्ण शब्द और महाभारत के कृष्ण शब्द का विवेचन करते हुए उन्होंने दोनों के पार्थक्य पर समुचित बल नहीं दिया, जो कि मेरी दृष्टि से नितान्त अपेक्षित है। उनके शोध प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता है मध्ययुगीन साम्प्रदायिक

हिन्दी काव्य में कृष्ण के स्वरूप का उद्‌घाटन जितनी स्वच्छता और स्पष्टता के साथ इन्होंने साम्प्रदायिक साहित्य में वर्णित कृष्ण के मर्म को खोला है इतना उनसे पहले लिखे गये अन्य किसी ग्रन्थ में लक्षित नहीं हुआ। प्रत्येक सम्प्रदाय के आराध्यदेव का नाम, स्वरूप, लीलारूप तथा धाम का स्थिरीकरण भी इस प्रबन्ध की विशेषता है।

मध्ययुगीन भक्तिकाव्य में कृष्ण चरित्र का लीलाओं के माध्यम से जिस प्रकार वर्णन हुआ है उस पर भी लेखिका की दृष्टि गई है और उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर कुरुक्षेत्र लीला तक सब रूपों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है रीतिकालीन काव्य में भी श्रीकृष्ण के स्वरूप की छानबीन लेखिका ने की है। और उस काल के सभी प्रमुख कवियों की रचनाओं में कृष्ण के रूप वैविध्य के उद्‌घाटन का स्तुत्य प्रयास किया। यह ठीक है कि रीतिकालीन कवियों का आग्रह भक्ति की ओर नहीं था, किन्तु कृष्ण का स्मरण तो सभी कवियों ने मुक्त कंठ से अनेक रूपों में किया है। जो कवि काव्य गुण में अपनी कविता को हेय समझते रहे होंगे उन्होंने भी 'राधा कृष्ण के सुमिरन के बहाव' कृष्ण को अपनी कविता में स्थान दिया। वस्तुतः यह युग कृष्ण काव्य का युग था अतः शास्त्र निरूपण के संदर्भ में कृष्ण स्मरण और कृष्ण स्तवन अनिवार्य था। रीतिकाल के बाद भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में भी श्रीकृष्ण परक काव्य लिखा जाता रहा। रत्नाकर जैसे ब्रजभाषा के समर्थ कवि ने भ्रमरगीत के प्रसंग का चयन कर कृष्ण-वर्णन द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' भी कृष्ण कथा पर ही आवृत है और अवधी का कृष्णायन काव्य आधुनिक युग में कृष्ण प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है।

डा० (श्रीमती) सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने गहन अध्ययन और अध्यावसायपूर्वक कृष्ण कथा के विविध रूपों का सर्वाङ्गीण विवरण प्रस्तुत कर एक अभाव की पूर्ति की है।"अपने इस स्युत्य प्रयास के लिए वे बधाई की पात्र हैं। श्रीमती कुलश्रेष्ठ कारयित्री प्रतिभा सम्पन्न लेखिका हैं, इससे पूर्व उनका काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुका है। अपने इस शोध प्रबन्ध में भी उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी भावुकता और रससिक्त शैली का परिचय दिया है। हिन्दी जगत उनसे और भी श्रेष्ठ ग्रंथों की आशा रखता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली – ७
१-११-१९६५

—विजयेन्द्र स्नातक

विषयानुक्रम

परिशिष्ट—२

सहायक ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

कृष्ण–ऐतिहासिक स्वरूप

कृष्ण संज्ञक व्यक्ति का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। वे ऋषि कहे गये हैं और उन्हें अनुक्रमणि में कृष्ण आंगिरस कहा गया है। वे सोमपान के लिये अश्विनी कुमार का आह्वान करते हैं तथा अहिंसनीय गृह प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।[1] एक अन्य ऋचा में अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुये काक्षिवान ऋषि ने कहा है कि—'आपने स्तुति करने पर ऋजुता तत्पर विश्वकाष्र्णी (कृष्णपुत्र विश्व) को उनका मृत्पुत्र दिला दिया था।'[2] ऋग्वेद की दो अन्य ऋचाओं में आत्यवाचक रूप में कृष्णिय शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] उसके अनुसार कृष्ण विष्णापु के पिता थे। कृष्ण आंगिरस का उल्लेख कौषीतकि ब्राह्मण में भी है।[4] ऐतरेय-आरण्यक में कृष्ण हारीत नामक उपाध्याय की चर्चा है।[5] 'वैदिक इण्डेक्स' के अनुसार कृष्ण का कोई और उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं है। किन्तु कुछ विद्वानों की धारणा है कि ऋग्वेद में एक अन्य स्थल पर भी कृष्ण की चर्चा है।[6] उनके मतानुसार कहा गया है कि कृष्ण नामक एक असुरराज अपने दस सदस्य सैनिकों के साथ अंशुमती (यमुना) तटवर्ती प्रदेश में रहता था। इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से उसे हराया था।[7] अन्यत्र इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध करने वाला कहा गया है।[8]

---

१ ८।८५।१—७

२ १।११६।७

३ १।११६।२३; ११७।७

४ ३०।६

५ ३।२।३

६ सीतानाथ तत्वभूषण, कृष्ण एण्ड द गीता पृ० ३७;

७ ऋग्वेद ८।९६।१३-१५

८ ऋग्वेद १।१०१।१

छान्दोग्य उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण की चर्चा है जो घोर आंगिरसके शिष्य थे।[९] पौराणिक कृष्ण की माता के साथ इनकी माता के नाम का सादृश्य छान्दोग्य उपनिषद् में प्रतिपादित मत का भगवद्गीता में प्रतिपादित सिद्धान्तों के साथ साम्य देखकर गार्वे, ग्रियर्सन, मजूमदार, रायचौधरी, वान श्रायडर आदि विद्वानों की धारणा है कि दोनों एक ही व्यक्ति हैं[१०] किन्तु मैक्समूलर, तिलक, दे, मेकडानेल और कीथ इस बात से सहमत नहीं है।[११] इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य यह है कि जिन सिद्धान्तों के साम्य की बात कही जाती है वे भगवद्गीता के मूल सिद्धान्त नहीं है। गीता में उपनिषदों की ही प्रतिध्वनि है और उसके अनेक श्लोक उपनिषद् से ही लिये हुए हैं; इसलिए उपनिषद् और भगवद्गीता का साम्य कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। यही नहीं, भगवद्गीता में द्रव्य-यज्ञ से ज्ञानयज्ञ को महत्व दिया गया है, और उसमें घोर के आंगिरस कृष्ण का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिये छन्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण और पौराणिक कृष्ण को एक नहीं कहा जा सकता।

पुराणों के अनुसार कृष्ण यदुवंश के सात्वतकुल के थे। उन्हें चन्द्रवंशी और मनु की ६४ वीं पीढ़ी में बताया गया है।[१२]

कुछ पुराण उन्हें सूर्यवंशी भी कहते हैं।[१३] उनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था।

वैदिक साहित्य में उल्लिखित कृष्ण और पौराणिक कृष्ण एक ही व्यक्ति है, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं जान पड़ता। पुराणों में कहीं भी कृष्ण को वैदिक मंत्र द्रष्टा नहीं कहा गया है। पौराणिक कृष्ण का सम्बन्ध भी किसी प्रकार आंगिरस से नहीं जान पड़ता। असुर कृष्ण में कुछ लोग पौराणिक कृष्ण का विकास और उनके सम्बन्ध की बात अवश्य देखते हैं पर सायणकृत भाष्य से जिन ऋचाओं में असुर कृष्ण के अस्तित्व की बात प्रतिध्वनित होती है उन मूल ऋचाओं को देखने से

---

९ छान्दोग्योपनिषद्—३।१७।६

१० क्रमशः एनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स खण्ड २ पृष्ठ० ५३५; वही पृ० ५३८; कलचरल हेरिटेज आफ इण्डिया, खण्ड ३, पृ० ११-१२; अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट्स पृ० ७८; वैदिक इण्डेक्स खण्ड १ पृ० १८४

११ सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट, भाग १, पृ० ५२, टिप्पणी १; गीता रहस्य पृ० ५३८ इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, भाग १८, पृ० २९७, वैदिक इन्डेक्स खण्ड १ पृ० १८४

१२ पार्जिटर-एनशेन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन पृ० १०२-१७,१४४ वैदिक एज, परिशिष्ट, वंशानुक्रम-तालिका।

१३ हरिवंश, २,३८, ३५। एवमेक्ष्वानु वंशात्तु यदुवंशो विनिःसृतः।

किसी भी अनार्य कृष्ण की बात प्रकट नहीं होती। स्वयं सायण ने उसके एक भिन्न भाष्य की बात स्वीकार की है। यदि सायण का भाष्य ठीक भी हो तो भी असुर कृष्ण और पौराणिक कृष्ण का एकात्म सिद्ध नहीं किया जा सकता।

श्री कृष्ण की चर्चा विस्तृत रूप में महाभारत और हरिवंश में जो एक प्रकार से महाभारत का ही खिल (परिशिष्ट) है, की गई है। हरिवंश में कृष्ण जीवन का पूर्वांश और महाभारत में उत्तरांश प्राप्त होता है। भागवत पुराण में कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र है। इनके अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु, भागवत, पद्म अग्नि और ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी कृष्ण का जीवन-वृत्त है किन्तु विभिन्न पुराणों में दिये हुये वृत्त अनेक स्थलों पर न केवल असंगत हैं वरन् परस्पर विरोधी भी हैं। रूबेन ने कृष्ण के जीवन संबंधी कतिपय घटनाओं का सूक्ष्म परीक्षण किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि महाभारत का मूल खिल (परिशिष्ट), आजकल प्रचलित खिल हरिवंश से बहुत छोटा था। 'हरिवंश' पुराणों में सबसे प्राचीन है और उसका प्राचीन रूप ब्रह्मपुराण में अधिक सुरक्षित है।[१४]

पुराणों के तिथिक्रम के सम्बन्ध में विद्वानों में थोड़ा मतभेद है। कुछ लोग उनका क्रम विष्णु, हरिवंश, भागवत, ब्रह्मवैवर्त,[१५] कुछ लोग हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त,[१६] कुछ अन्य ब्रह्म, विष्णु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त[१७] रखते हैं। जो भी हो पुराणों में वर्णित कृष्ण सम्बन्धी वृत्तों के सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण का वृत्त लगभग एक सा है और ब्रह्मपुराण में उल्लिखित वृतान्त विष्णु पुराण से प्राचीन है।[१८] ब्रह्मवैवर्त सबसे पीछे का पुराण है।

यदि पुराण वर्णित कृष्ण सम्बन्धी वृत्तों से कल्पनात्मक (Mythological) प्रतीकात्मक (Symbolical) उपमात्मक (Metaphorical) और धार्मिक आवरण को अलग कर दिया जाय तो कृष्ण पूर्णतः मानव और ऐतिहासिक महापुरुष दृष्टिगोचर होते हैं और उनका इतिवृत्त कुछ इस रूप में सामने आता है :—

---

१४ जर्नल आव ओरिएण्टल अमेरिकन सोसाइटी, ६१, पृ० ११५-१२७, जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९४१, पृ० २४६-२५६।

१५ तत्वभूषण, कृष्ण एण्ड दि गीता, पृ० ५६।

१६ दुर्गाशंकर शास्त्री, पुराण विवेचन, पृ० १३३-५।

१७ रूबेन, फेस्ट्सक्रिफ्ट थामस, पृ० १८८-२०३।

१८ ताड़पत्रिकर, कृष्ण प्राब्लम्स, पृ० २७६-७७।

कृष्ण विष्णि यादव कुल के और वसुदेव के पुत्र थे। उनकी माता का नाम देवकी था, और वे मथुरानरेश उग्रसेन के पुत्र देवकी की पुत्री थीं। कृष्ण के जन्म से पूर्व उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने पिता और मंत्री वसुदेव को वन्दी कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। ज्योतिषी की इस भविष्यवाणी से आतंकित होकर कि देवकी की आठवीं सन्तान का जन्म उसका विनाश करेगी, कंस देवकी के जो भी सन्तान होती मार डालता था। जब आठवीं सन्तान का जन्म हुआ तो वह यत्नपूर्वक बंदीग्रह से बाहर निकालकर यमुना के पार गोकुल भेज दिया गया।[१९] और उसके स्थान पर गोप नन्द-यसोदा की सद्योजात पुत्री लाकर कंस को दे दी गई जिसे कंस ने मार डाला।[२०]

कुछ पुराणों के अनुसार नन्द-यशोदा ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाया और विष्णि कुल के पुरोहित गर्ग ने चुपके से आकर कृष्ण और उनके बड़े भाई बलराम (जो वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी की कोख से जन्मे थे,[२१] के प्राथमिक संस्कार कराये। कृष्ण

१९ भागवत और वैवर्त के अतिरिक्त अन्य सभी पुराणों में कृष्ण के मानवीय रूप में जन्म ग्रहण करने की बात कही गयी है। उनमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें उनके ईश्वरीय स्वरूप का किंचित भी आभास हो। कृष्ण किस प्रकार गोकुल भेजे गये; इस सम्बन्ध में हरिवंश में कुछ भी नहीं है। अन्य पुराणों में कारागार के कपाटों के अपने आप खुल जाने, प्रहरियों के निद्रा-मग्न हो जाने आदि की अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं का उल्लेख है।

२० बौद्ध घट-जातक वासुदेव (कृष्ण) को अपर मथुरा के राजवंश का कहा गया है। उसके अनुसार वे और उनके भाई देवगब्भा और उपसागर के पुत्र थे। उन्हें देवगब्भा के सेवक अन्धक वेणु और उनकी पत्नी नन्दगोपा को दे दिया गया था। (जातक, कावेलकृत अनुवाद, भाग ४, पृ० ५०)। यद्यपि यह वृत्त बहुत कुछ विकृत है किन्तु इसमें अन्धक-विष्णि, कृष्ण की माँ और पोष्य पिता के नाम मिलते हैं और यह व्यक्त करते हैं कि कृष्ण कथा से बौद्ध पूर्णतः परिचित थे। जैन ग्रन्थ 'उतराध्ययन सूत्र' में वासुदेव के बाइसवें तीर्थ कर अरिष्टनेमि का समकालिक बताया गया है, दोनों सोरियपुर के निवासी कहे गये हैं। उसके अनुसार केशव (कृष्ण) देवकी और वसुदेव के और अरिष्टनेमि समुद्र विजय और शिवा के पुत्र कहे गये हैं (जार्ल कार्पेंटियर द्वारा सम्पादित पृ० १६४-६)इस ग्रन्थ में जो कथा दी गई है वह बहुत ही विकृत है तथापि उसमें अरिष्टनेमि और कृष्ण का वंश सम्बन्ध ठीक बताया गया है।

२१ पुराणों का कहना है कि बलराम देवकी के सातवें गर्भ में आये थे, किन्तु दैवी शक्ति द्वारा वे वासुदेव की दूसरी पत्नी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिए गये। इस घटना के कारण ही बलदेव संकर्षण कहलाये।

असाधारण बालक सिद्ध हुये। उन्हें अपने शैशवकाल में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा।[२२] एक बार वे पूतना-रोग से पीड़ित हुए पर देव कृपा से बच गये।[२३]

एक दिन माता यशोदा गृह कार्यों में व्यस्त थीं। अतः उन्होंने कृष्ण को एक शकट के निकट लिटा दिया। वे शिशुओं की तरह लेटे-लेटे हाथ पैर फेंकते रहे। उनके पैर के धक्के मे शकट उलट गया। बर्तन-भांडे सब फूट गये पर उन्हें तनिक भी चोट न आई। एक बार कोई विकराल पक्षी उन्हें अपने पंजे में दबोचकर ले भागा। थोड़ी देर बाद वह पक्षी अपने आप गिर कर मर गया और शिशु कृष्ण बाल-बाल बच गये।

कृष्ण जब कुछ बड़े हुए तो बड़े उपद्रवी सिद्ध हुए। एक दिन उनके किसी उपद्रव[२४] पर यशोदा माता ने उन्हें रस्सी में बांधकर ऊखल से बांध दिया। कृष्ण ऊखल को घसीटते फिरने लगे और जब वे उसे लेकर यमल और अर्जुन नामक दो वृक्षों के बीच से जाने लगे तो ऊखल उन वृक्षों के बीच अटक गया। जब कृष्ण ने जोर लगाया तो दोनों पेड़ उखड़कर गिर पड़े।[२५] पर कृष्ण को चोट भी न आई।

---

२२ पुराणों में शैशवकाल में आयी आपत्तियों का कोई निश्चित क्रम नहीं है और न उनमें सबकी चर्चा है। इस ग्रन्थ में केवल प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है।

२३ हरिवंश पुराण में पूतना को कंश की धात्री कहा गया है और कहा गया है कि वह शकुनि पक्षी का रूप धारण कर गोकुल गयी। ब्रह्मवैवर्त के अनुसार वह कंस की बहिन थी और ब्राह्मणी बन कर कृष्ण के पास गयी थी। यह भी कहा गया है कि पूतना राक्षसी कंस के भेजने से कृष्ण को मारने आयी थी और उसने अपने स्तनों पर विष का लेप कर कृष्ण को दूध पिलाना चाहा पर उसका षड्यंत्र सफल न हो सका और उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार की घटना सम्भव है; पर कृष्ण के बाल जीवन की किसी अन्य घटना का सम्बन्ध कंस के साथ नहीं पाया जाता। सभी दैवयोग से ही घटित कही गयी हैं। अतः मूलतः यह भी कोई दैवी घटना ही होगी। इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है कि सुश्रुत में पूतना नामक भयंकर बालरोग का उल्लेख है (उत्तरतन्त्र, अध्याय २७ ३७)।

२४ हरिवंश और पद्मपुराण के अनुसार कृष्ण ने पड़ोसी के घर माखन चुराया था। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार उन्होंने घर में ही माखन चुराया था। भागवत पुराण में कहा गया है कि यशोदा ने कृष्ण को थोड़ा ही मक्खन दिया इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने बर्तन तोड़ फोड़ डाले थे।

२५ ब्रह्मवैवर्त में केवल एक वृक्ष का उल्लेख है।

आये दिन इस प्रकार की विपत्तियों को नन्द आदि लोगों ने अशुभ का लक्षण समझकर गोकुल छोड़ देने का निश्चय किया। हरिवंश पुराण के अनुसार उस समय कृष्ण सात वर्ष के हो गये थे। स्थान परिवर्तन का कारण पुराणों में जनसंख्या की वृद्धि और भेड़ियों का उपद्रव भी बताया गया है। कारण जो भी हो नन्द गोपों के दल के साथ गोकुल छोड़कर वृन्दावन आकर बस गये। वृन्दावन में कालिय नामक नाग जाति का राजा अपने जाति बन्धुओं के साथ रहता था। उसे कृष्ण ने वृन्दावन से निकाल बाहर किया।[२६] इसी प्रकार वृन्दावन में ताड़ों का एक घना वन था, जिसमें गधे अधिक थे। उनके कारण ग्वाल वालों को बड़ा कष्ट होता था। उनमें धेनुक प्रमुख था। कृष्ण ने उसे मार डाला।

कृष्ण अपने बालमित्रों को एकत्र कर वन में खेलते रहते थे। एक दिन जब वे लोग खेल रहे थे तो ग्वालबाल के वेश में प्रलंब नामक राक्षस भी घुस आया और उनके साथ खेलने लगा। उस खेल में एक क्रिया भाण्डीर के पेड़ों तक दो गोपों के एक साथ दौड़ कर जाने की थी। एक बार बलराम और छद्मवेशी प्रलंब एक साथ दौड़े। एकान्त पाकर प्रलंब ने बलराम को मारना चाहा। वे चिल्लाये। कृष्ण ने बलराम को प्रलम्ब के मार डालने के लिये ललकारा और बलराम ने उसे मार डाला।

गोकुल के गोप, वर्षा की समाप्ति पर शरदागमन के समय इन्द्र-यज्ञ किया करते थे। कृष्ण और बलदेव ने गोपों से इस पूजा को बन्द कर ईश्वर के प्रत्यक्ष प्रतीक—प्रकृति अर्थात् गोवर्धन पर्वत की पूजा करने की सलाह दी। जिस समय गोप यह नव प्रचलित पूजा कर रहे थे उसी समय घोर वृष्टि हुई और यह वृष्टि निरंतर सात दिनों तक होती रही। कृष्ण ने अपने बुद्धिकौशल से उससे गाय और गोपों की रक्षा की।

इसके बाद पुराणों में कहा गया है कि शरद पूर्णिमा की सुहावनी रात को कृष्ण के साथ गोपियों ने रास-नृत्य किया। जान पड़ता है कि यादवों में युवक और युवतियों के परस्पर मिलकर नाचने गाने और उत्सव मानने की प्रथा थी। ऐसे ही

---

२६ इस घटना का विस्तार भागवत पुराण में अधिक है। उसके अनुसार कालिय नामक नाग (सर्प) एक कुण्ड में रहता था। उसके विष के कारण उस कुण्ड का जल पीने वाले मनुष्य और पशु मर जाते थे। कृष्ण ने उसको वहां से मार भगाया। हो सकता है इस घटना का सम्बन्ध नाग नामक मानव जाति से न होकर किसी भयंकर सर्प से ही हो। इस घटना से पूर्व वृन्दावन आने के पश्चात् कुछ अन्य घटनाओं यथा—वत्सासुर वध, बकासुर वध, अघासुर वध, बृह्मा मोह का उल्लेख भागवत पुराण में पाया जाता है, जो अन्य पुराणों में नहीं है।

किसी उत्सव का उल्लेख पुराणों ने किया है। हरिवंश के वर्णन से युवकों के प्रति युवतियों के उद्दाम प्रेम की अभिव्यक्ति रास के स्वरूप में परिलक्षित होती है। भागवत पुराण में युवतियों और युवकों के प्रेमाकर्षण के रूप में रास का वर्णन है; किन्तु पद्म और वैवर्त-पुराण में तो रास के रूप में काम क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन है। एक सामान्य सी घटना का यह अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण देखकर स्पष्ट होता है कि वृन्दावन में रहते समय कृष्ण की अवस्था कठिनता से ग्यारह वर्ष की रही होगी। हाँ यह बात कही जा सकती है कि रास के प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण रहा होगा और वे उसमें अधिक रस लेते रहे होंगे।[२७] यदि कृष्ण के चरित्र का वह रूप होता जो पुराणों में पाया जाता है तो शिशुपाल कृष्ण की निन्दा करते समय इस कलुष का उल्लेख किये बिना न रहता।

जिस समय कृष्ण रास में निमग्न थे उसी समय गौशाला में अरिष्ट नामक बैल ने उपद्रव किया। गोपों में भगदड़ मच गई। वे भाग कर कृष्ण के पास आये। कृष्ण ने उसका वध कर लोगों को भय मुक्त किया। इसके कुछ काल बाद कृष्ण ने केशी का वध किया। केशी के मारने के कारण ही कृष्ण का नाम केशव पड़ा।[२८]

इन आकस्मिक घटनाओं एवं विभिन्न अवसरों पर वीरता प्रदर्शन करने के कारण कृष्ण बहुत लोकप्रिय हो गये और उनकी ख्याति कंस के कानों में पहुंची। वह उनको इस लोकप्रियता और वीरता से घबरा उठा और कृष्ण तथा बलराम को अपने मल्लों की सहायता से मार डालने का षड्यंत्र रचा। उसने धनुर्मह के बहाने कृष्ण और बलराम को मथुरा लाने के निमित्त कंस ने अक्रूर को गोकुल भेजा। अक्रूर अन्धक-वृष्णि संघ के एक वर्ग के नेता थे। वे नन्द को समझा बुझा कर कृष्ण और बलराम को मथुरा ले आये।

दूसरे दिन दोनों भाई धनुर्मह में गये। मार्ग में कंस की पूर्व योजना के अनुसार कुवलय नामक एक मस्त एवं विकराल हाथी ने उन पर आक्रमण किया। उसे उन्होंने मार डाला। धनुर्मह में पहुँच कर कृष्ण, चाणूर और बलराम मुष्टिक नामक मल्ल से

---

२७ भागवत पुराण में रासक्रीड़ा के पश्चात् दो अन्य घटनाओं—(१) सरस्वती नदी के किनारे अम्बिका वन में अजगर से सोते हुए नन्द की रक्षा और (२) उसी रात शंख चूर्ण नामक यक्ष द्वारा गोपियों को हरण की चेष्टा और कृष्ण द्वारा उसके वध का भी उल्लेख है।

२८ हरिवंश के वर्णन से ऐसा जान पड़ता है कि केशी, कंस का मित्र अथवा भाई था। पुराणों में उसके घोड़े का रूप धारण कृष्ण को मारने जाने का उल्लेख है। सम्भव यह कोई दुष्ट प्रकृति का अश्व रहा होगा।

भिड़ गये और उसे मार डाला।[२१] वहाँ उन्होंने तोशलक नामक एक अन्य योद्धा का भी काम तमाम किया। कंश के अन्य योद्धाओं में आतंक उत्पन्न करने के लिए यह यथेष्ट था। उनमें भगदड़ मच गयी। उपयुक्त अवसर पाकर कृष्ण कंस पर झपटे और उसे यमलोक भेज दिया। इस प्रकार कृष्ण ने कंस को मार कर उग्रसेन को सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित किया और स्वयं वृन्दावन लौट आये।

कंस-वध के पूर्व कृष्ण एक प्रकार से गुप्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। कंस का आतंक समाप्त हो जाने पर वे विद्याध्ययन के निमित्त काशी के निकट अवन्तिपुर में सान्दीपनि ऋषि के आश्रम में भेजे गये। वहीं उनका सुदामा से परिचय हुआ। कृष्ण गुरु आश्रम में अधिक दिन न रह सके, उन्हें मथुरा वापस आना पड़ा।

कंस की मृत्यु का समाचार पाकर मगध नरेश जरासंघ, जो उसका स्वसुर था, बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने विशाल सेना लेकर मथुरा नगर को घेर लिया पर मथुरा के अमेय दुर्ग को जीत न सका। सम्भवतः खाद्य सामग्री समाप्त हो जाने के कारण उसे मगध वापस लौटना पड़ा। दूसरी बार जरासंघ ने पुनः मथुरा पर आक्रमण किया। इस बार भी जरासंघ को वापस लौटना पड़ा। पुराणों के अनुसार जरासंघ ने इस प्रकार मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया। जब वह सत्रह बार सफल न हो सका तो उसने अठारहवीं बार कालयवन नामक किसी शक्तिशाली विदेशी शासक को मथुरा पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। किन्तु वह मुचकुन्द द्वारा मारा गया।

जरासंघ के बार-बार आक्रमण और रक्तपात से ऊब कर कृष्ण ने यादवों सहित मथुरा छोड़ देने का निश्चय किया और वे लोग सौराष्ट्र में द्वारावती (द्वारिका) चले आये। द्वारिका पहुंचने के पश्चात् कृष्ण के वैयक्तिक जीवन की पहली उल्लेखनीय घटना है रुक्मिणी के साथ विवाह की है। इस विवाह की कथा हरिवंश पुराण में विस्तार से दी गयी है। रुक्मिणी कुण्डिनपुर (विदर्भ) की राजकुमारी थीं। उनका भाई रुक्मी उसका विवाह चैदिराज शिशुपाल से करना चाहता था। मगधराज जरासंघ को भी यही इष्ट था, पर रुक्मिणी के पिता शिशुपाल से विवाह नहीं करना चाहते थे। अतः जब स्वयंवर रचा गया तब कृष्ण उसे अपहृत कर ले भागे और स्वयं विवाह

---

२१ बौद्ध घट जातक में वासुदेव कृष्ण के कुवल या पीड़, मुष्टिक, चाणूर और कंस आदि बैरियों को नाश कर द्वारिका में राज्य स्थापित करने की बात कही गयी है।

कर लिया।[30] जिन लोगों ने उनका विरोध किया वे पराजित हुए। इसी घटना के कारण शिशुपाल के साथ कृष्ण का वैमनस्य हो गया।

जब पंचालकुमारी द्रौपदी के स्वयंवर और मत्स्यभेद की सूचना कृष्ण को मिली तो वे भी उसमें सम्मिलित होने के लिए गये। वहीं पाण्डवों से उनकी प्रथम बार भेंट हुई जो रिश्ते में उनकी बुआ के लड़के होते थे। अर्जुन के मत्स्य-भेध कर द्रौपदी के प्राप्त करने पर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। यहीं से कृष्ण और अर्जुन के बीच प्रगाढ़ मैत्री का श्रीगणेश हुआ। द्रौपदी के विवाह के अवसर पर कृष्ण ने बहुत से उपहार भेजे।

जब कुरुराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को खाण्डव वन का क्षेत्र प्रदान किया तो कृष्ण उनकी सहायता के लिये आये और अपने द्वारिका सम्बन्धी अनुभव का लाभ उठाकर उन्होंने जगल को साफ कराया और इन्द्रप्रस्थ नगर बसाने में पाण्डवों की सहायता की। नगर तैयार हो जाने पर कृष्ण द्वारिका लौट गये।

कुछ समय पश्चात् जब अर्जुन तीर्थ यात्रा के लिए निकले और प्रभास पहुँचे तो कृष्ण वहां उनसे मिलने आये और उन्हें अपने साथ द्वारिका ले गये। उन दिनों रैवतक पर्वत पर यादवों का एक मेला लगता था। इस मेले में अर्जुन भी कृष्ण के साथ गये। वहां उन्होंने कृष्ण की बहन सुभद्रा को देखा और उस पर आसक्त हो गये। और कृष्ण की सलाह से उसका अपहरण कर ले भागे। इस बात से यादव लोग बहुत क्रुद्ध हुये। कृष्ण ने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया। तदनन्तर कृष्ण अन्य लोगों के साथ दहेज की सामग्री लेकर पाण्डवों के पास इन्द्रप्रस्थ गये। और लोग तो तत्काल लौट आये पर कृष्ण वहीं रुक गये।

उन्हीं दिनों खाण्डव वन में आग लग गयी, जिसे अर्जुन और कृष्ण ने प्रयत्न करके बुझाया और उसमें रहने वाले मय दानव एवं अन्य लोगों की रक्षा की। कृष्ण के सुझाव के अनुसार मय ने पाण्डवों के लिए एक अद्भुत सभा भवन तैयार कर अपनी

---

३० रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण के सात अन्य पत्नियां होने का उल्लेख प्रायः सभी पुराणों में मिलता है। उनके नाम थे – सत्यभामा, जांबवन्ती, कालिन्दी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा। इनमें से कुछ के साथ तो उनके माता-पिताओं ने विवाह किया था और कुछ को कृष्ण विजय करके लाये थे, ऐसा कहा गया है। बौद्ध महा उम्मगजातक में कहा गया है कि कृष्ण ने कामासक्त होकर चांडाल कन्या जांबवन्ती को महिषी बनाया था। जिन पुराणों में कृष्ण के द्वारा नरकासुर के वध करने की कथा है उनमें उसके बंदीगृह से सोलह हजार स्त्रियों के मुक्त करने और उनके साथ विवाह करने की बात भी कही गई है।

कृतज्ञता ज्ञापन की। पश्चात् कृष्ण ने युधिष्ठिर को राजसूयं यज्ञ करने की सलाह दी। निश्चय हुआ कि राजसूयं यज्ञ करने मे पूव, अत्याचारो राजाओं को परास्त कर लिया जाय। तदनुसार कृष्ण, भीम और अर्जुन को लेकर मगध की राजधानी गिरिव्रज पहुँचे। वहाँ मल्ल युद्ध में कौशल से भीम ने जरासंघ को मार डाला। पश्चात् देश के अन्य राजा पराजित हुए और धूमधाम से राजसूय आरम्भ हुआ।

कृष्ण ने यज्ञ में आये हुए ब्राह्मणों के पैर धोये। भीष्म ने कृष्ण की प्रशंसा करते हुए उनकी अग्रपूजा का प्रस्ताव किया और सहदेव ने कृष्ण को अर्घ्यदान दिया। इसे वैदिक नरेश शिशुपाल सहन न कर सका। वह रुक्मिणी को न पा सकने और जरासंघ वध के कारण कृष्ण से वैमनस्य रखता था। उसने आपत्ति की। बोला—कृष्ण न तो ऋत्विक् है, न राजा और न आचार्य। उनकी चापलूसी के निमित्त ही पूजा की जा रही है।" कृष्ण के साथ-साथ वह भीष्म और पाण्डवों को भी बुरा भला कहने लगा। कृष्ण को उसकी ये बातें असह्य हो उठीं। उन्होंने वहीं यज्ञ मण्डप में ही चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। पश्चात् यज्ञ धूम-धाम से समाप्त हुआ और कृष्ण द्वारिका लौट गये।

राजसूय यज्ञ एवं पाण्डवों के वैभव को देख कर कौरवों में द्वेष जागा और वे उनके पराभव की चेष्टा करने लगे। कृष्ण के द्वारिका वापस जाते ही दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से जुये का आयोजन कर पाण्डवों को आमंत्रित किया। पाण्डव जुये में पराजित हुये और शर्त के अनुसार उन्हें तेरह वर्ष बनवास करना पड़ा। अन्तिम वर्ष उन्हें अज्ञातवास में रहना था। उन्होंने अज्ञातवास का यह काल विराट नरेश की सेवा में बिताया।

जिन दिनों पाण्डव अज्ञात वास कर रहे थे, उन्ही दिनों कौरवों ने विराट नरेश पर आक्रमण किया और उनके सब पशु छीन ले गये। अर्जुन ने, जो वहाँ बृहन्नला के वेश में रहते थे, कौरवों को मार भगाया और पशुओं को लौटा लाये।

विराट नरेश को जब पाण्डवों के अपने यहाँ होने की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु से कर दिया। इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए कृष्ण-बलराम आये। विवाह के पश्चात् वहाँ एकत्र जनों ने पाण्डवों और कौरवों के बीच समझौता कराने के प्रश्न पर विचार विमर्श किया और निश्चय हुआ कि द्रुपद के राजपुरोहित को दुर्योधन के पास भेजा जाय। कृष्ण द्वारिका लौट गये।

राजपुरोहित के दूतकर्म का कोई परिणाम न निकला। सन्धि न हो सकी। दुर्योधन किसी प्रकार पाण्डवों को कुछ भी देने पर राजी न हुआ और युद्ध अनिवार्य हो गया। दोनों पक्ष उसकी तैयारी करने लगे। दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही कृष्ण से सहायता प्राप्त करने द्वारिका पहुँचे। दुर्योधन ने कृष्ण की सेवा माँगी, अर्जुन अकेले कृष्ण को

लेकर आये। कृष्ण के आने पर पुनः एक बार सन्धि का प्रयत्न करने का निश्चय हुआ। सन्धि प्रस्ताव लेकर कृष्ण हस्तिनापुर गये। दुर्योधन ने कृष्ण की एक बात भी न सुनी। पांच गांव क्या सुई की नोंक बराबर भी भूमि देने को तैयार न हुआ।

फलतः कौरवों और पाण्डवों के बीच अठारह दिनों तक महाभीषण संग्राम हुआ जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन के सारथी का काम अपने ऊपर लिया। युद्ध के प्रथम दिन युद्धस्थल में अपने स्वजनों को ही अपने विरुद्ध खड़ा देख कर जब अर्जुन के मन में घोर विषाद उत्पन्न हुआ तब कृष्ण ने निष्काम कर्म का उपदेश देकर उनका मोह दूर किया। कृष्ण का यह उपदेश 'श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से प्रसिद्ध है।[31]

कृष्ण पाण्डवों की विजय के लिये हर प्रकार की चेष्टा करते रहे। सारथी के रूप में अर्जुन के परम सहायक तो थे ही, वे दो बार स्वयं भीष्म पर आक्रमण करने भी बढ़े; अर्जुन के विरुद्ध प्रागज्योतिष के राजा भगदत्त के शस्त्र को रोका और अनेक बार रणक्षेत्र में भी उतरने को तैयार हुये। युद्ध में कृष्ण मूर्छित तथा कई बार घायल भी हुए। भूरिश्रवा, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि के वध में कृष्ण ने पाण्डवों को छल से कार्य करने के लिये प्रेरित किया। कृष्ण पाण्डवों को कौशलपूर्वक कार्य के करने की सलाह देते, प्रोत्साहित करते और आवश्यक होने पर उसे करने पर बाध्य भी करते। यही नहीं समय समय पर वे पाण्डवों को सान्त्वना और ज्ञानबोध भी देते रहे। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि पाण्डवों की विजय के मूल में कृष्ण का ही हाथ था।[32]

अठारह दिनों के पश्चात् जब युद्ध समाप्त हुआ तो युधिष्ठिर को हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठाकर कृष्ण द्वारिका लौट गये। कुछ समय पश्चात् पाण्डवों ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ में भी कृष्ण सम्मिलित हुए और अभिमन्यु पत्नी उत्तरा के मृतजात पुत्र को जीवित किया जो परीक्षित के नाम से विख्यात हुए। कृष्ण की पाण्डवों के साथ यह अन्तिम भेंट थी।

---

३१ भगवद्गीता महाभारत का मूल अंश है या प्रक्षिप्त, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। महाभारत की जो दो प्राचीनतम प्रतियां उपलब्ध हैं, उनमें यह अंश नहीं है। देवबोध की टीका में भी भगवद्गीता वाला अंश नहीं है।

३२ न तद्ध्यायति कौन्तेयः
पांडुपुत्रो युधिष्ठिरः
यथैषां पुरुषव्याघ्रः
श्रेयो ध्यायति केशवः
—आदि पर्व २०९।६

पांडवों के हित की चिन्ता इतनी पांडुपुत्र युधिष्ठिर को भी नहीं है, जितनी इन पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण को है।

द्वारिका में अब शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के कारण यादवों में विलास-प्रियता बढ़ने लगी और वे मदिरा पान करने लगे। एक दिन द्वारिकावासी यादव तीर्थ-यात्रा के निमित्त प्रभास गये। वहां उन्होंने आमोद-प्रमोद के बाद खूब मदिरा पी और उन्मत होकर परस्पर गाली गलौज करने लगे। फलतः मारपीट की नौबत आ गई और बात यहां तक बढ़ी कि आपस में लड़कर कट मरे। इस घटना से दुखी होकर कृष्ण द्वारिका मे बचे स्त्रियों और बच्चों को अर्जुन के सुपुर्द कर स्वंय वन चले गये। वहीं एक दिन जब वे लेटे अथवा समाधिस्थ से थे, जरा नामक बहेलिए ने हरिण के भ्रम से तीर चलाया जो कृष्ण के पैर में आकर लगा और उन्होंने अपनी इहलौकिक लीला समाप्त की।[३३]

कृष्ण का समय

इस प्रसंग में यह युक्ति संगत जान पड़ता है कि कृष्ण के काल पर भी थोड़ा विचार कर लिया जाय। ऊपर के वृत से इतना तो स्पष्ट है कि कृष्ण का सम्बन्ध पाण्डवों से था और भारत युद्ध के समय उपस्थित थे महाभारत की कथा में धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य एक प्रमुख व्यक्ति है। उनका उल्लेख यजुर्वेद की काठक संहिता में भी पाया जाता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कृष्ण काठक संहिता की रचना से पूर्व हुए।[३४]

कुरुक्षेत्र का युद्ध एक एतिहासिक घटना है। पर यह कब घटित हुई इस सम्बन्ध में परस्पर विरोधी अनेक अनुश्रुतियां हैं। पुलकेशिन (द्वितीय) के आय होले वाले अभिलेख में दी हुई गणना के अनुसार भारत युद्ध का समय ३१०२ ई० पू० ठहरता है।[३५] जो आर्यभट्ट की ज्योतिष परम्परा के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ है।[३६] सी० वी० वैद्य, त्रिवेद आदि विद्वान इस मत के समर्थक हैं।[३७] किन्तु फ्लीट ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि वैदिक-काल में यह गणना प्रचलित नहीं थी और आर्य भट्ट से पूर्व के ज्योतिषी इस गणना से सर्वथा अनभिज्ञ थे।[३८]

---

३३ बहेलिये के 'जरा' नाम से यह भी प्रतिध्वनित होता है कि कृष्ण वृद्धावस्था को पहुंचकर स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हुये।

३४ वेबर, हिस्ट्री आव इन्डियन लिटरेचर, पृ० ९०, टिप्पणी।

३५ एपीग्रेफिया इन्डिका, भाग ६, पृ० ११, १२

३६ कालक्रिया पाद, श्लोक १०

३७ सी० वी० वैद्य, महाभारत, ए क्रिटिसिज्म, पृ० ६५-९२; त्रिवेद फंस्टक्रिफूड काले, पृ० ५१५-२५

३८ जर्नल आव रायल ऐशियाटिक सोसाइटी १९११, पृ० ४७९, ६७५

वृद्धगर्ग, वराहमिहिर आदि ज्योतिषी[३९] और कल्हण[४०] आदि इतिहासकार कलियुग से ६५३ वर्ष पश्चात् अर्थात् २४४६ ई० पू० भारत युद्ध का होना बताते हैं। इस प्रकार प्राचीन लेखकों के मतों में स्पष्ट घोर वैषम्य है।

महाभारत में अनेक स्थानों पर नक्षत्रों आदि का उल्लेख मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने इन नक्षत्रों का सहारा महाभारत युद्ध के काल निर्णय के लिए लिया है। पर इसके सहारे भी वे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। महाभारत उल्लिखित नक्षत्रों के आधार पर भारत युद्ध की तिथि राय ने ३१४० ई० पू०[४१] त्रिवेद ने ३१३७ ई० पू०[४२] वैद[४३] और अभयंकर[४४] ने ३१०२ ई० पू०, सेनगुप्त ने २४४६ ई० पू०[४५], करन्दीकर ने १९३१ ई० पू०[४६], देव ने १४०० ई० पू०[४७], संकर ने ११९८ ई० पू०[४८], दफ्तरी ने ११९७ ई० पू०[४९], वी० जी, ऐयर ने ११९४ ई० पू०[५०], प्रधान ने ११५१ ई० पू०[५१] निर्धारित किया है। वस्तुतः महाभारत के कथन में ही विरोध है और कहीं-कहीं तो वे एक दूसरे का खण्डन करते हुए भी जान पड़ते हैं। इस कारण उनके आधार पर किसी निष्कर्ष तक पहुंचने के लिये आवश्यक हो जाता है कि उनके कथनों अथवा परिणामों को प्रक्षिप्त माना जाय। महामहोपाध्याय डाक्टर पी० वी० काणे इस प्रकार के सभी तथ्यों के विवेचन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वे इतने असंगत हैं कि उनसे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता।[५२]

---

३९ बृहस्पति संहिता, १३, ३

४० राजतरंगिणी १, ४८-५६

४१ प्रोसीडिंग्स चौथी इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, पृ० ११५।

४२ जर्नल आव इण्डियन हिस्ट्री १६, पृ० ३।

४३ महाभारत, ए क्रिटिसिज्म, पृ० ६५-९२।

४४ एनाल्स आव भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट, २५ पृ० ११६-१३६।

४५ जर्नल आव रायल ऐशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, (लैटर्स) ३, पृ० ११०-११९, ४, ३९३-४१०।

४६ प्रोसीडिंग्स दूसरी ओरियण्टल कान्फ्रेंस, पृ० ४७४-८०।

४७ जर्नल आव एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, २१, पृ० २११-२०।

४८ एनाल्स आव भण्डार कर रिसर्च इन्सटीट्यूट, १२, पृ० ३००।

४९ प्रोसीडिंग्स, १२वीं ओरियण्टल कान्फ्रेंस खण्ड २ पृ० ४८१-८९।

५० क्रानालाजी आव एन्शिएन्ट इण्डिया, पृ० ६८-७७।

५१ वही पृ० २६२-६९।

५२ हिन्दू धर्मशास्त्र, खण्ड ३, पृ० ९२३।

पुराणों में जनमेजय के प्रपौत्र और महापद्मनन्द के बीच २६ राजाओं के अन्तर की जो अनुश्रुति है, उसका आधार लेकर पार्जीटर ने महाभारत का समय ६५० ई० पू० निर्धारित किया है। उन्होंने महापद्म का अभिषेक ३८२ ई० पू० माना है और प्रत्येक राजा के शासन का अनुमान १८ वर्ष किया है। इस प्रकार अधिसीम कृष्ण का समय ८५० ई० पू० (२८×१८=३८२) ठहरता है। युधिष्ठिर और अधिसीम कृष्ण के बीच १०० वर्ष वे और जोड़ लेते हैं।

पुसालकर ने[५३] इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि पुराणों और महाभारत में स्पष्ट रूप से परीक्षित और महापद्म के अभिषेक के बीच १०५० अथवा १०१५ वर्ष बीतने का उल्लेख है।[५४] उनका कहना है कि दो घटनाओं के बीच बताये गये इस समय को अन्य कल्पनाओं की अपेक्षा अधिक विश्वासनीय माना जाना चाहिए। किन्तु पुराण भी इस समय के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। कोई उसे १०१५, कोई १०५० और कोई १५०० वर्ष बताता है। प्राचीनतम पुराणों में (मत्स्य और वायु) यह १०५० और अन्य पुराणों में १०१५ या १५०० है। १५०० के सम्बन्ध में पुसालकर का कहना है कि वह अवन्ति के प्रद्योतों को मगध के राजवंशों में गणना किए जाने और बृहद्रथों का समय ७२२ वर्ष के बजाय १००० मानने से ठहरता है। वे १०५० या १०१५ को ही ठीक मानते हैं। इनमें भी वे १०१५ को महत्व देते हुए महाभारत का समय १४३२ ई० पू० निर्धारित करते हैं। अल्तेकर भी इसे विश्वसनीय अनुश्रुति मानते हुए शतपथ ब्राह्मण, वंश-ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषदों में दी हुई गुरु शिष्यों की वंश परम्परा के आधार पर इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे।[५५] किन्तु अभी हाल में उन्होंने अपने इस मत में परिवर्तन किया है। भारतीय इतिहास परिषद् के अध्यक्ष पद से दिए अपने भाषण में उन्होंने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि यद्यपि पुराण नन्द के राज्यारोहण और परीक्षित के जन्म के बीच १०१५ वर्ष का अन्तर बताते हैं पर उन्होंने कहीं भी शिशुनाग से पूर्व कलियुगीन राजाओं के राज्य का उल्लेख नहीं किया है। इक्ष्वाकु, पांचाल, काशी, हैहय, मैथिल, शूरसेन और वीतिहव्य राजवंश के राजाओं की संख्या मात्र दी है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि पौराणिक अनुश्रुतियों के रक्षकों के पास परीक्षित के जन्म और नन्द के राज्यारोहण के बीच के काल को ठीक-ठीक निर्धारित करने का कोई साधन नहीं था। अतः १०१५

---

५३ स्टडीज इन एपिक एण्ड पुराणज, पृ० ७७।

५४ डाइनेस्टीज आव कलि एज, पृ० ५८, ७४।

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः।
तावद्वर्षं सहस्रं यं दशपंचाशदुत्तरम्॥

५५ प्रोसीडिंग्स आव इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, ३, पृ० ६६-६८।

वर्ष वाली अनुश्रुति के ऐतिहासिक न होने की सम्भावना अधिक है। जिस श्लोक में इसकी चर्चा है उसके उत्तरार्ध में महापद्म और अंतिम आंध्र राजा के बीच ८६३ वर्ष का अन्तर बताया गया है जबकि यह अन्तर ६०० वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। इसी प्रकार जनमेजय के समकालीन तुरुकावषेय और बृहद्दारण्यक उपनिषद के काल के बीच गुरू-शिष्यों की ४५वीं पीढ़ी का समय व्यतीत हो चुका था किन्तु गुरू-शिष्य की पीढ़ी का काल निर्धारित करने की कोई स्थिर माप नहीं है। कहीं वह ५० वर्ष तथा कहीं ५ वर्ष भी हो सकता है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर अलतेकर ने पार्जिटर के ९५० ई० पू० वाली बात को स्वीकार किया है।[५६] इसी दृष्टि से राय चौधरी भी महाभारत का समय ईसा पूर्व नवीं शताब्दी ठहराते हैं।[५७]

अभी हाल में हस्तिनापुर (मेरठ) और रूपड़ (पंजाब) में जो पुरातात्विक उत्खनन हुए हैं, उनसे भी यही संकेत मिलता है कि महाभारत का समय ईसा पूर्व ९०० अथवा १००० के लगभग रहा होगा। इस प्रकार महाभारत के समय का निर्धारण होने के साथ ही कृष्ण के समय का निर्धारण स्वतः हो जाता है।

---

५६ भारतीय इतिहास परिषद् गोहाटी, अधिवेशन, अध्यक्षीय भाषण पृ० १२ फुटनोट ४।

५७ पोलिटिकल, हिस्ट्री आव एन्शियण्ट इण्डिया, चौथा संस्करण पृ० २७-२९; पाँचवां संस्करण, पृ० ३३-३६।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

धर्म के आलंबन—कृष्ण

वासुदेवोपासना और भागवत सम्प्रदाय

कृष्ण के उदात्त चरित्र से प्रभावित लोक भावना ने शीघ्र ही उनकी आराधना देवता के रूप में कदाचित उसी प्रकार आरम्भ करदी जिस प्रकार महावीर और बुद्ध अपने अनुयायियों द्वारा पूजित हुए। कृष्ण[1] की पूजा सम्भवतः सबसे पहले उनके अपने ही समाज यादव-विष्णि-सात्वतों के बीच आरम्भ हुई।

---

१ अनेक विद्वान वैष्णव धर्म के कृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते। बार्थ का कहना है कि वे सूर्य देवता हैं (रेलिजन्स आव इण्डिया, पृ० १६६)। ग्रियर्सन की दृष्टि में कृष्ण के धार्मिक विचारों और सूर्योपासना में पारस्परिक सम्बन्ध है (इण्डियन एन्टीक्वेरी, १६०८, पृ० २५३)। बार्थ के विचारों का खन्डन करते हुए कीथ ने सिद्ध किया है कि कृष्ण के मूल में सूर्य का कोई स्वरूप नहीं है। कृष्ण नाम ही इस धारणा के विरुद्ध है (जर्नल आव द रायल एशियाटिक सोसाइटी, १६०८ पृ० १७१)। उनकी अपनी धारणा है कि कृष्ण उर्वरता के देवता (वेजिटेशन डीटी) हैं; किन्तु उनके तर्कों में बल नहीं जान पड़ता। कृष्ण का गौओं के साथ सम्बन्ध होने मात्र से वे उर्वरता के देवता नहीं माने जा सकते। हॉपकिंस ने उन्हें गंगा की घाटी में बसने वाली पान्डव नाम्नी बनवासी जाति का देवता कहा है (रेलिजन्स आव इन्डिया, पृ० ३८८, ४६६-७); किन्तु न तो पान्डवों को जंगली जाति कहने का आधार है और न तो इसी बात का कोई प्रमाण है कि वे कुरु के किसी वर्ग के देवता थे। अधिकांश विद्वान, जिनमें भन्डारकर (इन्डियन एन्टीक्वेरी, १८८६, पृ० १८६) बूहलर (इन्डियन एन्टीक्वेरी, १८६४, पृ० २४८) गार्बे (फिलासफी आव एन्शियन्ट इन्डिया, पृ० ८३-८५), रायचौधुरी, (अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव सेक्टस्, अध्याय १) और सील (कम्पेरेटिव स्टडीज इन वैष्णविज्म एन्ड क्रिश्चियन्टी पृ० १०) मुख्य हैं, कृष्ण के मानवीय और ऐतिहासिक रूप को स्वीकार करते हैं। यही मत समीचीन भी है और उसे ही यहां ग्रहण किया गया है।

उनके वासुदेव के रूप में पूजित होने का प्राचीनतम उल्लेख पाणिनि (छठी शताब्दी ई० पू० का मध्य) की अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है। उसके सूत्र 'वासुदेवार्जुनाभ्यावुन' में वासुदेव और अर्जुन की पूजा करने वालों के लिए शब्द गढ़ने का नियम बताया गया है।[2] पाणिनि के उल्लेख—'वासुदेवार्जुन' से ज्ञात होता है कि अर्जुन की अपेक्षा वासुदेव की प्रतिष्ठा अधिक थी। इस सम्बन्ध में उनके दो अन्य सूत्र द्रष्टव्य हैं।[3] इन सूत्रों में द्वन्द समास बनाने के नियम हैं। इनमें से एक में कहा गया है कि जो शब्द स्वर से प्रारम्भ हो और जिसके अन्त में ह्रस्व 'अ' हो उसे पहले रखा जाना चाहिए। दूसरे सूत्र में कहा गया है कि जिस शब्द में स्वर की संख्या कम हो उसे पहले रखना चाहिए। इन दोनों ही सूत्रों की दृष्टि से द्वन्द समास के रूप में उपयुक्त सूत्र में 'अर्जुन-वासुदेव' होना चाहिए था न कि 'वासुदेवार्जुन', किन्तु अपने ही इन सूत्रों के विपरीत पाणिनि का यह आचरण इस बात का द्योतक है कि पाणिनि के समय में कोई ऐसा भी सूत्र था जिसके अनुसार द्वन्द समास में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त वस्तु या व्यक्ति का उल्लेख पहले किया जाता था।

वासुदेव की पूजा सम्भवतः अकेले नहीं होती थी। ऐसा ज्ञात होता है कि उनके साथ उनके परिवार के कुछ अन्य लोग भी पूजित थे, पूजित वीरों के रूप में हमें संकर्षण अर्थात् बलदेव, वासुदेव (कृष्ण), प्रद्युम्न, शाम्ब और अनिरुद्ध नाम के मिलते हैं। संकर्षण और वासुदेव, क्रमशः रोहणी और देवकी से जात वसुदेव के पुत्र थे। प्रद्युम्न और शाम्ब क्रमशः रुक्मिणी और जाम्बन्ती से जात वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे। अनिरुद्ध प्रद्युम्न के पुत्र थे। महाभारत और पौराणिक अनुश्रुतियों से स्पष्ट है कि ये सभी मूलतः मानव थे; जिन्हें पीछे से देवत्व प्राप्त हुआ। वायुपुराण में, जो पुराणों में सबसे प्राचीन है, कहा गया है कि वृष्णि वंश के ये पाँचों वीर पूजित होते थे।[4] और वस्तुतः मथुरा से लगभग ७ मील पश्चिम स्थित मोरा नामक स्थान से ईसापूर्व पहली शताब्दी का महाक्षत्रप शोडास के राजत्व का एक अभिलेख प्राप्त है जिसमें तोषा नाम की स्त्री द्वारा पंचवीरों की प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[5] इसी काल के निर्मित या (पद्मावती) बेसनगर और पवाया से गरुड़ध्वज, तालध्वज और मकरध्वज प्राप्त हुये हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि वहाँ क्रमशः वासुदेव, संकर्षण और प्रद्युम्न के मन्दिर स्थापित रहे होंगे।[6]

---

२ अष्टाध्यायी ४। ३। ९८।

३ २। २। ३३-३४।

४ पंचैते वंशवीराः प्रकीर्तितः।

५ भगवतां वृष्णिनां पंचवीराणां प्रतिमा (एपिग्राफिका इण्डिका भाग २४ पृ० १९४)।

६ द एज आव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४४८।

इन वीरों के साथ-साथ कदाचित वासुदेव कृष्ण की बहिन सुभद्रा की भी पूजा होती थी। ऐसा अनुमान गुप्त कालीन वराहमिहिर के बृहत्संहिता से होता है उसमें बलदेव, कृष्ण और एकांशा की मूर्तियों के निर्माण का विधान है। एकांशा से कुछ लोग तात्पर्य सुभद्रा से लेते हैं, और कुछ उसे नन्द गोपकी पुत्री देवी मानते हैं। भुवनेश्वर के सातवीं आठवीं शताब्दी के एक अभिलेख में बलदेव, कृष्ण और सुभद्रा तीनों की एक साथ अर्चना की गयी है।[७]

जो भी हो, वासुदेव और संकर्षण की पूजा अधिक प्रचलित और प्रधान थी। यवन राजदूत मेगस्थने के अनुसार ईसा० पूर्व चौथी शताब्दी में मथुरा प्रदेश में वासुदेव की उपासना प्रचलित थी। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय के अनुसार वासुदेव की यह उपासना आरम्भ में मथुरा प्रदेश तक ही सीमित थी। उसमें तत्कालीन धार्मिक-सम्प्रदायों की एक सूची दी हुई है। उसमें न तो वासुदेव का उल्लेख है और न भागवत का। वासुदेवोपासक धर्म का उल्लेख परवर्ती साहित्य और अभिलेखों में भागवत नाम से हुआ है। अशोक के लेखों में ब्राह्मण, श्रमण, आजीवक, निग्रंन्थ आदि सम्प्रदायों के नाम तो हैं पर इस सम्प्रदा का नाम नहीं है। सम्भवतः मौर्य काल के पश्चात् ही इस भागवत धर्म का यादवों के प्रवास के साथ साथ पश्चिमी और दक्षिणी भारत में प्रचार और प्रसार हुआ।

मथुरा से बाहर ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में इस धर्म का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। इसका प्रमाण बेसनगर से प्राप्त दो अभिलेखों में मिलता है। एक के अनुसार तक्षशिला के यवनराज अन्तियालकिद के राजदूत दिउ के पुत्र हेलियोदोर ने, वासुदेव के गरूड़ध्वज की स्थापना की थी।[८] दूसरे में महाराज भागवत के शासन काल में भगवत्प्रसादोत्तम में गरूड़ध्वज स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[९]

चित्तौड़ (राजस्थान) जिले के घोसुण्डी नामक स्थान से प्रथम शताब्दी ई० पू० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जिसमें सर्वतात नामक भागवत राजा के, सकर्षण-वासुदेव के सम्मान में, जो भगवत्, अनिहत, सर्वेश्वर कहे गये हैं, नारायण-वाटक में पूजा-शिला-प्राकार निर्माण कराने का उल्लेख है।[१०]

महानिद्देस और चुल्लनिद्देस नामक बौद्ध टीका ग्रन्थों में, जिनका समय प्रथम शताब्दी ई० पू० है, वासुदेव और संकर्षण के उपासकों की चर्चा है। पश्चिमी घाट

---

७ द क्लासिकल एज, पृ० ४१८।
८ आर्क्यालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९१२-१३, पृ० ८२।
९ वही, १९१३-१४, पृ० १९०।
१० एपिग्राफिका इण्डिका, भाग १६, पृ० २७।

स्थित नाणघाट में इसी काल का सातवाहन नरेश शातकर्णि की रानी नागनिका का एक अभिलेख है जिसमे धर्म, इन्द्र, संकर्षण, वासुदेव, चन्द्र, सूर्य तथा चतुर्लोकपालों की वंदना है।[११] इससे वासुदेव की उपासना के पश्चिमी प्रदेश में प्रसारित होने के साथ-साथ इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि इस समय तक वासुदेव को सर्वेश्वर की मान्यता सर्वत्र प्राप्त न थी। वे अन्य देवों के समान ही समझे जाते थे। महाभारत के आरम्भिक अंशों में भी वासुदेव को परमेश्वर नहीं माना गया है। सभा पर्व से ऐसा जान पड़ता है कि उनकी महत्ता सब लोग स्वीकार नहीं करते थे। उसके परवर्ती कालीन अंशों में ही वे 'ब्राह्मणों के मित्र', 'वेदों के मूल' और 'विष्णु' कहे गये हैं। उत्तर मे इस काल में पंजाब में कांगड़ा, गुरुदासपुर और होशियारपुर के क्षेत्र मे औदुम्बर नामक जाति का राज्य था। उस राज्य के शासक महादेव ने अपनी चाँदी की मुद्राओं पर 'भागवत महादेवस' अर्थात् 'भगवनोपासक महादेव का सिक्का' अंकित कराया था।[१२]

इस प्रकार वासुदेव सम्प्रदाय का प्रसार मथुरा क्षेत्र के बाहर पंजाब, राजस्थान, मध्यभारत और दक्षिण के कुछ भागों में होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

वासुदेव-कृष्ण

ऊपर जिन वासुदेव की चर्चा की गयी है वे कृष्ण ही थे, इस सम्बन्ध में विद्वानों में घोर मतभेद है। भण्डारकर,[१३] गार्बे,[१४] ग्रियर्सन,[१५] जेकोबी,[१६] विन्टरनित्स,[१७] आदि विद्वान कृष्ण और वासुदेव को एक मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। भण्डारकर का कहना है कि पुराणों के गोपाल कृष्ण और महाभारत के विष्णि-वासुदेव दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी धारणा है कि वासुदेव शब्द मूलतः अपत्यवाचक संज्ञा न होकर व्यक्ति का नाम था जिसकी पूजा देवता रूप में होती थी। वे कृष्ण को ऋग्वेद और छान्दोग्य में उल्लिखित ऋषि मानते हैं और कहते हैं कि जब उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ तो वे वासुदेव मान लिये गये और उनका सम्बन्ध वासुदेव से जोड़कर वासुदेव को अपत्य-वाचक मान लिया गया। जेकोबी का कहना था कि पितृ-नाम-विहीन देवकी-पुत्र-कृष्ण का उल्लेख इस बात का द्योतक है कि वासुदेव की कल्पना वसुदेव से नहीं हुई है।

---

११ आर्क्यालाजिकल सर्वे आव वेस्टर्न इण्डिया भाग ५ पृ० ६०।

१२ ब्रिटिश संग्राहालय के प्राचीन भारत सिक्कों की सूची, पृ० १३३।

१३ वैष्णविज्म शैविज्म, पृ० १३, ४६।

१४ एनसाइक्लोपीडिया आव रेलिजन एण्ड एथिक्स खण्ड २, पृ० ५३५।

१५ वही, खण्ड २ पृ० ५३८।

१६ वही, खण्ड ७, पृ० १९३।

१७ हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, १ पृ० ४५६।

किन्तु कीथ का निश्चित मत है कि वासुदेव और कृष्ण एक ही हैं।[१८] हापकिन्स,[१९] रायचौधुरी,[२०] और चौधुरी[२१] इस बात का समर्थन करते हैं। महाभारत के उल्लेखों से वासुदेव और कृष्ण के एक होने में सन्देह नहीं रहता। पतंजलि (पहली शताब्दी ई० पू०) के कथन से भी यह बात व्यक्त होती है। उन्होंने अपने भाष्य में उदाहरण के रूप में निम्नलिखित वाक्य दिये हैं—

(१) प्रहराहश्यन्ते कंसस्य कृष्णस्यच : (३ । १ । २६)
(२) असाधुर्मातुले कृष्ण : (२ । ३ । ३६)
(३) जघान कंस किलवासुदेव : (३ । २ । २३)

इनमें कृष्ण और वासुदेव दोनों को कंस का वध करने वाला कहा गया है। हरिवंश के प्रथम पर्व में इस प्रकार के अनेक संकेत हैं जिनमें कृष्ण को भागवत धर्म के वासुदेव से अभिन्न बताया है। यह भी कहा गया है कि वासुदेव पद प्राप्त करने के लिए कृष्ण के समसामयिक व्यक्तियों ने भी प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने उन्हें पराजित करके वासुदेवत्व प्राप्त किया। इनमें करवीरपुर का शृगाल वासुदेव तथा पौंड्र वासुदेव का नाम उल्लेखनीय है।[२२] बौद्ध घटजातक के अनुसार भी वासुदेव का नाम कृष्ण था।[२३] रायचौधुरी का मत है कि व्यक्तिवाचक नाम होने के कारण ही वासुदेव नाम का अधिक प्रचार हुआ। कृष्ण उनका गोत्रवाचक नाम था।[२४]

व्यूहवाद

भागवत सम्प्रदाय में प्रचलित पंच विष्णि वीरों की उपासना के सीधे-सादे भक्ति के रूप ने आगे चलकर एक नया रूप धारण किया जिसमें वासुदेव प्रधान और अन्य वीर गौण हो गये। इस प्रकार व्यूहवाद का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ। उसके अनुसार भक्ति के चरमरूप में भगवत् वासुदेव पररूप हैं। उनमें छः गुण (षाड्गुण्य विग्रहं देवं) ज्ञान, बल, वीर्य, ऐश्वर्य शक्ति और तेज विद्यमान हैं। उन्होंने अपने से व्यूह संकर्षण और प्रकृति को उत्पन्न किया। संकर्षण और प्रकृति के संयोग से व्यूह प्रद्युम्न और मन (बुद्धि) उत्पन्न हुए। प्रद्युम्न और मन के संयोग से व्यूह

---

१८ जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९१५, ८४०।
१९ वही ,, ,, ,, १९०५, ३८४।
२० अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव सेक्ट, पृ० ३५।
२१ जर्नल आव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, १९४२, पृ० ३८४-४०५।
२२ विष्णु पर्व, अ०, १२८, श्लोक २६।
२३ कावेल, जातक, ४, पृ० ५० ५४।
२४ अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव सेक्ट, पृ० ३६-३७।

अनिरुद्ध और अहंकार उत्पन्न हुए। अनिरुद्ध और अहंकार के संयोग से महाभूत और ब्रह्मा हुए। ब्रह्मा ने महाभूत से सृष्टि की रचना की। प्रत्येक व्यूह में दो-दो गुण मुख्य रूप से और शेष चार गुण गौण रूप में बताये गये हैं।

व्यूहवाद की इस दार्शनिक व्याख्या में शाम्ब की उपेक्षा की गई है; वासुदेव को प्रधान और उनके भाई संकर्षण को गौण स्थान दिया गया है। व्यूहवाद के इस रूप का प्राचीनतम उल्लेख ब्रह्मसूत्र (२, २, ४२) में मिलता है और उसका विकसित रूप शंकराचार्य और रामानुजकृत भाष्यों में।

ज्ञात होता है कि पतंजलि के समय भागवत धर्म ने अपना यह नया रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। कदाचित पाणिनि के सूत्र ६।३।५ में 'आत्मचातुर्य' की व्याख्या करते हुए उन्होंने जो उदाहरण—'जनार्दनस्त्वात्म-चतुर्थ इव' दिया है और उसे बहुव्रीहि समास माना है (आत्मा चतुर्थोस्य), उसमें इसी की ओर संकेत है। किन्तु पाणिनि ने सूत्र २।२।३४ के भाष्य में 'राम-केशव' का उल्लेख है और अन्यत्र भी कृष्ण को संकर्षण के बाद ही रखा है। इससे ज्ञात होता है कि पतंजलि व्यूहवाद की अपेक्षा वीरवाद से ही अधिक परिचित थे जिसमें संकर्षण का स्थान कृष्ण से पहले था।

ऊपर हम देख चुके हैं कि ईसा पूर्व की दूसरी-पहली शताब्दी के अभिलेखों में वीरवाद ही मुख्य है। सर्वतात के नागरी वाले अभिलेख में 'भगवद्‌भ्यां संकर्षण वासुदेव' का उल्लेख है। यदि व्यूहवाद का प्रसार उस समय तक हो गया होता तो उसमें उल्लेख होता "भगवद्‌भ्यां वासुदेव संकर्षणाभ्यां।" यही बात श्री शातकर्णि की रानी नागनिका के नाणेघाट वाले अभिलेख से भी प्रकट होती है। उसमें भी वासुदेव के पहले संकर्षण का उल्लेख है। भगवद्गीता में भी व्यूहवाद की कोई चर्चा नहीं है।

अतः व्यूहवाद ने ईसा पू० की पहली शताब्दी के बाद ही किसी समय अपना रूप धारण किया होगा। महाभारत के भीष्म, पर्व और शांति पर्व के नारायणीय उप-पर्व में उसका उल्लेख भी इसी बात का द्योतक है। परवर्ती कालीन विष्णु-संहिता (६७।२) में चतुर्व्यूह का उल्लेख है। उसमें पहले वासुदेव का और पीछे संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का उल्लेख किया गया है—(वासुदेवाय, संकर्षणाय, प्रद्युम्नाया-निरुद्धाय)। इससे यह भी स्पष्ट है कि व्यूहवाद में शाम्ब को स्थान नहीं दिया गया। शाम्ब की पूजा वराहमिहिर के समय तक होती थी क्योंकि उन्होंने उनकी मूर्ति का उल्लेख किया है। भागवत् सम्प्रदाय से शाम्ब का उन्मूलन उनका ईरानी देवता सूर्य के साथ सम्बन्ध होने अथवा अनार्य (ऋक्ष) पुत्री जाम्बन्ती की सन्तान (महाउमग्ग जातक के अनुसार जाम्बन्ती चाण्डाल पुत्री थी) होने के कारण ही हुआ होगा।

व्यूहवाद का विशेष प्रचार बहुत पीछे उस समय हुआ जब श्री वैष्णव संप्रदाय ने उसे महत्ता प्रदान की।

नारायणीय अथवा पाँचरात्र संप्रदाय

भागवत संप्रदाय के साथ-साथ नारायणीय अथवा पंचरात्र नामक एक स्वतंत्र सम्प्रदाय भी ईसा पूर्व की शताब्दियों में देश के किन्हीं भागों में प्रचलित था।[२५] इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध नारायण नामक ऋषि से था जिन्हें कृष्ण के समान ही देवत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। नारायण की कल्पना के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। शतपथ ब्राह्मण[२६] में नारायण नामक एक पुरुष का उल्लेख है जिन्होंने प्रजापति के कहने से तीन बार यज्ञ किया। उसी ब्राह्मण में अन्यत्र पुरुष नारायण द्वारा पंचरात्र सत्र करने का उल्लेख है जिसके फलस्वरूप उन्होंने सब जीवों पर प्रधानता प्राप्त की। इसी सत्र के कारण ही इस सम्प्रदाय को पंचरात्र और अनुयायियों को पंचरात्रिक कहते हैं।

महाभारत में अनेक स्थलों पर धर्म-पुत्र नारायण नामक ऋषि का भी उल्लेख है। उनके साथ ही नर नामक एक अन्य ऋषि का भी उल्लेख पाया जाता है। वे मानवलोक से ब्रह्मलोक गये; वहां देवताओं और गन्धर्वों ने उनकी पूजा की और उन्होंने असुरों का विनाश किया। इन्द्र ने नर-नारायण की सहायता से असुरों के साथ संग्राम किया। अन्यत्र महाभारत में ही यह भी कहा गया है कि धर्म पुत्र नारायण ने हिमालय जाकर तपस्या की और ब्रह्म में लीन हो गये। नारायण के तप के फलस्वरूप नर उत्पन्न हुए जो नारायण के समान ही थे।

महाभारत में अनेक स्थलों पर अर्जुन को नर और कृष्ण को नारायण कहा गया है। सम्भव है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में हम अर्जुन और वासुदेव के उपासकों का जो उल्लेख पाते हैं, उसी ने आगे चल कर एकाकार होकर नर-नारायण का रूप धारण कर लिया हो। अर्जुन को हरि और कृष्ण के साथ धर्म अहिंसा की सन्तान कहा गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि वासुदेव और अर्जुन, जो परम वीर हैं, पुराकाल के नर और नारायण नामक देवता हैं।[२७] पंचरात्रों की परम प्रामाणिक संहिता 'सात्व संहिता' में ३९ अवतारों की जो सूची है उनमें ये दोनों ही विष्णु के ३१वें और ३२वें अवतार कहे गये हैं। इस प्रकार महाभारत की अनुश्रुतियों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नर और नारायण जो परम वीर और ऋषि थे, भागवत धर्म में अर्जुन और कृष्ण के रूप में लीन होकर एकाकार हो गये और पंचरात्र भागवत सम्प्रदाय में विलीन हो गया। नर नारायण से सम्बन्ध रखने वाले पुरातात्विक प्रमाण नगण्य हैं। गुप्त कालीन देवगढ़ के मन्दिर में एक फलक पर नरनारायण का एक मात्र अंकन मिलता है।

---

२५ सात्वत विधि के अनुसार नारायण सम्प्रदाय की उत्पत्ति हिमालय के किसी भाग में हुई थी।

२६ १२।३।४१।

२७ उद्योग पर्व, ४९। १९।

विष्णु और अवतारवाद

वासुदेव—नारायण के साथ देवोपासना की एक तीसरी धारा भी तिरोहित हुई। यह धारा वैदिक देवता विष्णु की उपासना की थी। ऋग्वेद की रचनाओं से ऐसा लगता है कि विष्णु सूर्य का नाम था और ऋग्वेद कालीन देवताओं में उनका कोई महत्वपूर्ण स्थान न था। उत्तर वैदिक काल में उन्होंने महत्ता प्राप्त की और उस समय उनका महत्व शिव से किसी प्रकार कम न था।[२८] महाभारत में तो उनको परमेश्वर कहा गया है और साथ ही वासुदेव के साथ उनका तदात्मय स्थापित किया गया है। भीष्म पर्व के ६५ और ६६वें अध्याय में परमेश्वर को नारायण और विष्णु कहा गया है और वे वासुदेव बताये गये हैं। अन्यत्र उन्हें महाभारत में ही विष्णु का अवतार कहा गया है। कहा गया है कि देवताओं ने नारायण को कृष्ण के रूप में अवतार लेने के लिए राजी किया और विष्णु ने कृष्ण के रूप में देवकी की कोख से जन्म लिया।

वासुदेव सम्प्रदाय सम्भवतः आरम्भ से ही वैदिक देवता इन्द्र की उपासना का विरोधी रहा। हरिवंश में वर्णित कृष्ण सम्बन्धी उपाख्यानों से प्रकट होता है कि उसकी रचना के समय तक इन्द्र की हीनता का उल्लेख उतनी निर्भीकता एवं स्वच्छंदता से नहीं किया जाता था, जितना कालान्तर में होने लगा। गोवर्धन-धारण के प्रसंग से प्रकट है कि इन्द्र की उपासना का क्रमशः ह्रास होता गया। एक पौराणिक व्याख्यान के अनुसार नरक के भौम और अदिति का कुण्डल चुराले जाने पर जब इन्द्र एवं अन्य सभी देवता उस पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहे तो उन्होंने कृष्ण से सहायता की याचना की। विष्णु पुराण में कहा गया है कि एक बार जब विष्णु इन्द्र के उपवन में गये तब इन्द्र ने कृष्ण की अभ्यर्थना की।[२९] वहाँ उनकी पत्नी सत्यभामा समुद्र-मन्थन से प्राप्त पारिजात को देखकर मोहित हो गयी और उसे ले चलने का आग्रह करने लगी। फलस्वरूप इन्द्र और कृष्ण में संग्राम हुआ इन्द्र पराजित हुए। हरिवंश में भी पारिजात वृक्ष के लिए कृष्ण और इन्द्र का युद्ध वर्णित है। कृष्ण ने गोकुल वासियों को इन्द्र की उपासना का परित्याग कर गोवर्धन की पूजा करने को प्रेरित किया, यह कथा कृष्ण चरित्र की एक प्रधान कथा है।

इन सबसे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्राचीन वैदिक देवताओं, विशेषतः इन्द्र की, उपासना त्याग कर लोग वासुदेवोपासना की ओर उन्मुख हुए और यथासमय वासुदेव धर्म ने वैदिकोपासना के ऊपर प्रधानता प्राप्त की। ऐसी ही अवस्था में सम्भवतः

---

२८ ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण आदि। इनकी विस्तृत चर्चा भण्डारकर ने वैष्णविज्म शैविज्म (पृ० ३४) में की है।

२९ ५। ३०। २८ (विष्णु पुराण)

वैदिक मतावलम्बी वासुदेव कृष्ण को अपनाने की ओर अग्रसर हुए और कृष्ण वासुदेव को ही अपना देवता विष्णु मान लिया।

वासुदेव कृष्ण की विष्णु रूप में, क्यों कल्पना की गयी, इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार की धारणाएं हैं। कहा जाता है कि विष्णु की संज्ञा गोपा कृष्ण के सर्वथा उपयुक्त थी।[30] कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि विष्णु सूर्य-देवता थे और भागवत सम्प्रदाय भी सूर्योपासना से ही विकसित हुआ था, इसलिए भागवत सम्प्रदाय के देवता को विष्णु के रूप में ग्रहण किया गया।[31] किन्तु भागवत धर्म का किसी प्रकार सूर्योपासना से सम्बन्ध था, इसके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। विष्णु और कृष्ण के बीच तादात्म्य स्थापित करने के मूल में दोनों के स्वभावों की एकरूपता ही जान पड़ती है। विष्णु को वैदिक काल के आरम्भ से ही लोक हितकारी तथा धर्म-रक्षक कहा जाता रहा है और कृष्ण में भी ये ही गुण वर्तमान थे। हरिवंश में कहा गया है कि अपनी वार्षिक पूजा न पाकर जब इन्द्र घनघोर जल-वर्षण से भी ब्रज को बहा न सके, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रज के रक्षक स्वयं सुरत्राता विष्णु ही हैं और तब ब्रज आकर उन्होंने गोवर्धन शैल पर स्थित गोप वेश-धारी कृष्ण—(विष्णु) का अभिनन्दन किया। उपर्युक्त कथन के मूल में अवतारवाद ही प्रधान परिलक्षित होता है।

अवतारवाद की यह कल्पना कब आरम्भ हुई, कहना कठिन है। किन्तु इतना स्पष्ट है कि महाभारत के प्राचीन अंशों में अवतार जैसी कोई बात ही नहीं है। उत्तरकालीन अंशों में विष्णु को मानव और धर्म की रक्षा के लिए मानव और पशु रूप में जन्म लेने की बात कही गई है। महाभारत के नारायणीय उपपर्व में केवल चार अवतारों का उल्लेख है—वाराह, वामन, नृसिंह और वासुदेव कृष्ण। उसमें अन्यत्र अवतारों की एक दूसरी सूची भी है। इसमें उपर्युक्त चार नामों के अतिरिक्त राम भार्गव (परशुराम) और राम दाशरथि, दो नये नाम हैं। एक अन्य स्थल पर महाभारत में दस अवतारों की बात कही गई है और उसमें हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि के नये नाम हैं। पीछे दशावतारों की बात रूढ़ सी हो गई जान पड़ती है। किन्तु दस अवतारों की नामावली के सम्बन्ध में प्रायः मतैक्य नहीं है। मत्स्य पुराण में दशावतारों की सूची इस प्रकार है—नारायण, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, मान्धातृ, राम जामदग्नि, रामदाशरथि, वेदव्यास, बुद्ध और कल्कि। वायु पुराण में भी यही सूची है किन्तु उसमें बुद्ध के स्थान पर कृष्ण का नाम है। हरिवंश के दशावतारों की सूची में मत्स्य, कूर्म, राम और बुद्ध के नाम नहीं हैं। इनके स्थान पर पद्म, दत्त

---

३० १।२२।१८ (वही)

३१ राय चौधुरी—अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव सेक्ट्स पृ० ८९; ग्रियर्सन, इण्डियन एन्टीक्वेरी, १९०८, पृ० २५३.

(दत्तात्रेय), केशव और व्यास के नाम हैं। भागवत पुराण में तीन सूचियाँ हैं पर वे सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। एक स्थान पर अवतारों को अनन्त कहा गया है और २४ अवतारों की नामावली दी गई है। अहिर्बुधन्य संहिता में, जो पंचरात्रों का एक प्रमुख ग्रन्थ है (सम्भवतः उसकी रचना आठवीं शताब्दी से पूर्व हुई थी) परमात्मा के ३९ विभावों का उल्लेख है।

भागवत सम्प्रदाय की प्रधानता

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म की तीन धाराएं एक में आकर मिल गईं। जिनमें वीरवाद से विकसित देवता वासुदेव कृष्ण, ऋषि नारायण और वैदिक विष्णु एकाकार होकर पूजित हुए। इन तीनों सम्प्रदायों का एकीकरण किस क्रम से हुआ, अर्थात् वासुदेव नारायण सम्प्रदाय पहले एक हुए तब विष्णु उसमें सम्मिलित किए गए अथवा विष्णु नारायण पहले एक हुए और पीछे वासुदेव सम्प्रदाय के अंग बने अथवा विष्णु वासुदेव एक हुए और तब नारायण का प्रवेश हुआ, यह एक ऐसी गुत्थी है जिसे सुगमता से सुलझाया नहीं जा सकता। नारायण विष्णु का सामंजस्य सम्भवतः सबसे पहले बौधायन धर्म सूत्र में मिलता है। तैत्तरीय आरण्यक के दसवें प्रपाठक में "नारायण विद्महे, वासुदेवाय धीमहितन्मे विष्णु प्रचयोदयात्" विष्णु गायत्री में वासुदेव, नारायण, विष्णु तीनों का एक साथ उल्लेख है। पर यह अवतरण बौधायन धर्म सूत्र से पीछे का जान पड़ता है। महाभारत में यह रूप अनेक प्रसंगों से प्रकट होता है। सम्भवतः श्री मद्भगवद्गीता के काल तक अर्थात् पहली शताब्दी ईसा पूर्व तक यह कार्य सम्पन्न हो चुका था।[३२]

---

३२ कुछ विद्वानों की धारणा है कि इसमें पीछे चलकर (सम्भवतः ईस्वी शताब्दी) में एक चौथी धारा का प्रवेश हुआ। यह धारा गोपाल कृष्ण की उपासना की थी। उन लोगों का कहना है कि कृष्ण के इस रूप का पतंजलि ने उल्लेख नहीं किया है (वैष्णाविज्म, शैविज्म, पृ० ६४) गोपाल कृष्ण के धेनुक वध आदि कथा-कण लोक प्रचलित थे और उनके कारण इनकी पूजा होती रही होगी, जो पीछे इस धारा में तिरोहित हो गई। पर ऐसा मानने का कोई स्पष्ट कारण नहीं जान पड़ता। यमुना का प्रदेश गौओं के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। तैतरीय संहिता और जैमिनीय उपनिषद में एक ऋषि 'गोबल' का उल्लेख है। अतः सात्वत-विष्णि कृष्ण ही गोपाल कृष्ण हो सकते हैं। गोपाल शब्द का प्रचलन ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी में हो गया था, यह कुमड़हार (पटना) से मिली तत्कालीन ब्राह्मीलिपि में अंकित मुहर से स्पष्ट है जिस पर लिखा है 'गोपालस' अर्थात् गोपाल की मुहर। यह भी उपर्युक्त धारणा को निराधार सिद्ध करता जान पड़ता है।

भागवत धर्म में नारायणीय सम्प्रदाय और वैदिक-वाद के प्रवेश से उसके मूलस्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ा और किस रूप में पड़ा, यह एक गहन विषय है और उसकी चर्चा यहां अपेक्षित भी नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस नये रूप में भी वासुदेव-नारायण-विष्णु का उपासक संप्रदाय भागवत् नाम से ही आने वाली अनेक शताब्दियों तक प्रख्यात रहा। नारायण की चर्चा तो मिट सी गई। विष्णु का उल्लेख जब तक होता रहा। वासुदेव नाम ही इष्टदेव के लिए प्रयुक्त होता था। इसके प्रमाण ईसा की पहली शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक निरन्तर मिलते हैं। मथुरा से प्राप्त पहली शताब्दी ई० के एक अभिलेख में वसु नामक भक्त द्वारा भागवत वासुदेव के महास्थान में तोरण और वेदि का निर्माण कराने का उल्लेख है। उसमें भगवत् वासुदेव से स्वामी महाक्षत्रप शोडास के राज्य के दीर्घायु और शक्तिशाली होने की कामना की गयी है।[33] दक्षिण में कृष्णा जिले के चिन्न नामक स्थान से सातवाहन-नरेश गौतमीपुत्र यज्ञशातकर्णि के शासनकाल का एक अभिलेख प्राप्त है जिसमें अभ्यर्थना 'सिद्ध नमो भगवतो वासुदेवस' द्वारा की गयी है।[34]

गुप्त शासकों के काल में भागवत धर्म को राज आश्रय प्राप्त हुआ ऐसा जान पड़ता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और उसके प्रायः सभी उत्तराधिकारी अपने को परम भागवत कहते हैं।[35] अपने को 'परम भागवत' कहने का गौरव परवर्ती अनेक शासकों को भी रहा है। यथा-परिव्राजक महाराज संक्षोभ (छठी शताब्दी ई०)[36] पल्लव नरेश सिंह वर्मन (६-७ शताब्दी)[37] कलिंगाधिपति चन्द्रवर्मन,[38] आसाम के भूतिवर्मन (छठी शताब्दी)[39]। सामान्य जन भी अपने को 'परम भगवद् भक्त'[40] एवं 'भगवत्पानुध्यात'[41]

---

३३ वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थान……शैले तोरण वे (दिकाचप्रति) ष्ठापितो प्रीतो (भग) (वान्वासु) देवः स्वामिरस्य) (महाक्षत्रपस्य शोडा (स) (स्य) संवर्तयता।

एपी० इण्डि०, २४, पृ० २०८ नं० ७

३४ एपी० एण्डि० १, ९५ ९६। इस लेख का सम्पादन करते समय 'वासुदेव' शब्द नहीं पढ़ा गया था। उसे एन० जी० मजूमदार ने पढ़ा है।

३५ अल्तेकर—क्वाइन्स आफ द गुप्ता एम्पायर।

३६ फ्लीट, कार्पस इन्सक्रिप्शनस् इण्डिकोरम, पृ० ४३, ४६, ५३।

३७ एपी० इण्डि० १५, २५४।

३८ वही ,, २७, नं० ८

३९ वही ,, १८, १८

४० एपी० इण्डि० १५, ४१

४१ जर्नल एण्ड प्रो० एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, २०, ५८।

कहते नहीं पाते । 'जितं भगवता'[४२] और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'[४३] की चर्चा निरन्तर सुनाई पड़ती है । पांचवीं शताब्दी के गुजरात के त्रैकूटक नरेश दहसेन और व्याघ्रसेन को हम अपने को 'परम भागवत' कहते पाते है ।[४४] किन्तु साथ ही वह अपने को 'भगवत्-पाद-कर्मकर'[४५] भी कहते हैं । केवल इस अपवाद को छोड़कर इस नव-संस्कृत सम्प्रदाय के किसी अन्य नाम का उल्लेख नहीं सुनाई पड़ता । महाभारत में एक स्थान पर विष्णु के उपासकों के लिए वैष्णव शब्द अवश्य आया है जो परवर्ती कालीन अंश में है ।[४६]

यदि नाम की बात छोड़ दी जाय तो कहना होगा कि गुप्तकाल आते-आते (चौथी शताब्दी ई०) भागवत सम्प्रदाय पर विष्णु के अवतारवाद ने अपना पूरा प्रभाव जमा लिया था । इस नये रूप में कृष्ण-वासुदेव को कितनी महत्ता प्राप्त थी, इसका निश्चय करने के लिए आज उपलब्ध सामग्री अत्यल्प है । इस काल में वासुदेव से विष्णु और उनके अवतार अभिप्रेत थे यह निसन्दिग्ध है । कृष्ण की स्वतन्त्र चर्चा अथवा स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता, हां, गोविन्द मधुसूदन, माधव[४७] नामों का देवरूप में उल्लेख अवश्य मिलता है । एक स्थान पर विष्णु को 'जामवन्ती के मुखारविन्द का भ्रमर' कहा गया है ।[४८] जिससे 'कृष्ण' की प्रतिध्वनि मात्र प्राप्त होती है ।

देव रूप में कृष्ण का स्पष्ट तथा प्रामाणिक सर्वप्रथम उल्लेख बराबार (जिला गया) की गुफा में अंकित मौखरि अनन्तवर्मन (६ठी, ७वीं शताब्दी) के एक अभिलेख में मिलता है । इसमें कृष्ण की दिव्य मूर्ति की चर्चा है ।[४९] इसके अतिरिक्त कृष्ण की

---

४२ कार्पस इन्सक्रिपशनस इण्डिकोरम, ३,७५; एपी० इण्डि० १५, २५४ ।

४३ कार्प्स इन्सक्रिपशनस इण्डिकोरम्, ३, ; आर्कालाजिकल सर्वे रिपोर्ट १९११-१२; ४५ वही, १९२७-२८, १११-१२ ।

४४ ब्रिटिश संग्रहालय की मुद्रा सूची, आन्ध्र क्षत्रप, पृ० १९६, २०२-०३; एपी० इण्डि०, १०, न० १३ ।

४५ एपी० इण्डि० १०, न० १३ ।

४६ २२. ६. ९७ ।

४७ कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकोरम, ३,७४

४८ जामवन्ती कृष्ण की पत्नी थी ।

४९ श्री शार्दूलस्य यो भूज्जन हृदय हरोनन्त वर्म्मासु पुत्रः
कृष्णस्याकृष्ण कीर्त्तिः प्रवरिणी गुहासंश्रित बिंबमेतत्सूतं लोके यशः
स्वरचितमिव सुवाचिकरत्कां तिमत्सः ॥
कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स इन्डिकोरम् वाल्यूमन्द गुप्ता इन्स्क्रिप्शन्स प्लेट ३० बी० पृ० २२१-२२ ।

जो भी स्वतन्त्र मूर्तियां उपलब्ध है वे मुख्यतः उनके गोवर्धनधारी स्वरूप की है और वे सभी प्रथम शताब्दी ईस्वी से उत्तर काल की हैं। गोवर्धनधारी कृष्ण की प्राचीनतम मूर्तियां मथुरा से प्राप्त है। ऐसी एक मूर्ति जिसका काल प्रथम-द्वितीय शताब्दी माना जाता है, कलकत्ता के संग्रहालय में है।[५०] मथुरा के अपने संग्रहालय में भी ऐसी ही एक मूर्ति है जो तीसरी शताब्दी की आंकी जाती है।[५१] भारत कला भवन काशी में काशी से ही प्राप्त गोवर्धनधारी की एक विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति गुप्तकालीन है।[५२] एलोरा के दशावतार लयण में जो अवतारों की मूर्तियां है उनमें भी कृष्ण का अंकन गोवर्धनधारी के रूप में हुआ है। वेरावल (सौराष्ट्र) से प्राप्त एक लेख में जो वल्लभी सं ६२७ अर्थात् १२४६ ई० का है, गोवर्धननाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है।[५३]

भागवत धर्म पर अन्य धर्मों का प्रभाव

गुप्तकाल में भागवत अथवा वैष्णव धर्म ने पल्लवित होकर अपना जो नया स्वरूप धारण किया उस पर देश में प्रचलित तत्कालीन अन्य धर्मों का भी कुछ न कुछ प्रभाव यथा समय पड़ा और वे धर्म भी भागवत धर्म से प्रभावित हुए। अहिंसा का जो स्वरूप हम वैष्णव धर्म में पाते है वह जैन और बौद्ध के समान ही है। सम्भव है इसका कारण उपर्युक्त दोनों धर्मों का वैष्णव धर्म पर प्रभाव ही हो। इस धारणा को पुष्टि इस बात से भी होती है कि बुद्ध की गणना विष्णु के अवतारों में की गयी है। कुछ भागवत ऋषभ को भी विष्णु का अवतार मानते है। 'बुद्ध-पाद' की पूजा के साथ हम विष्णु-पाद-पूजा की समता कर सकते है।

दूसरी ओर गीता का स्पष्ट प्रभाव बौद्ध ग्रन्थ सद्धर्म-पुण्डरीक, महायान श्रद्धोत्पाद आदि पर पाया जाता है। कृष्ण की उपासना जैन-धर्म में भी दिखाई पड़ती है। कृष्ण और बलराम की गणना उनके यहाँ शलाका पुरुषों में की गई है। महावीर के जन्म सम्बन्धी अनुश्रुति का कृष्ण जन्म की कथा से बहुत कुछ साम्य है। जैनागमों में जैनों के बाईसवें तीर्थंकर 'नेमिनाथ' का जहां भी वर्णन आया है, वहाँ भी कृष्ण का उस समय के प्रमुख व्यक्ति के रूप में उल्लेख किया गया है।

बौद्ध और जैन धर्मों के अतिरिक्त अन्य धर्मों के साथ भी समन्वय की

---

५० आर्कालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९२१-२२, पृ० १०३।

५१ कुमारस्वामी, हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट फलक २९ चित्र १०२

५२ कलानिधि अंक २

५३ फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शन्स इण्डिकोरम, भाग ३, भूमिका पृ० ९१।

भावना वैष्णव धर्म में परिलक्षित होती है। पाँचवी शताब्दी के गंगधर अभिलेख में एक वैष्णव भक्त द्वारा डाकिनी के मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है जो स्पष्टतः वैष्णव धर्म पर तन्त्र के प्रभाव का द्योतक है।[५४] जावन्ति वर्मन ने बराबार पर्वत पर कृष्ण के साथ साथ अर्धनारीश्वर तथा नागार्जुनीय पर्वत पर भूपति देवी की भी मूर्तियाँ स्थापित की थीं।[५५]

गुप्तोत्तर काल में अवतार मानने वाली दृष्टि में कुछ परिवर्तन हुआ सा जान पड़ता है। अवतार के मूल में यह विश्वास था कि ईश्वर दुष्टों के दमन और साधुओं के परित्राण के लिए अवतार ग्रहण करते हैं। गीता में अवतार का हेतु यही कहा गया है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥[५६]

किन्तु धीरे धीरे इस दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और भागवत् पुराण में नया सिद्धान्त (दर्शन) उपस्थित किया गया। उसके अनुसार ईश्वर बैकुण्ठ आदि धामों में तीन रूप में रहते हैं—स्वयं रूप, तदेकात्मरूप और आवेश रूप। स्वयं-रूप तो स्वयं कृष्ण हैं। तदेकात्म रूप में उनके अवतार हैं जो तत्वतः भगवत रूप होकर भी रूप और आकार में भिन्न होते है। मत्स्य, वाराह, कूर्म आदि इसके उदाहरण हैं। ज्ञान आदि शक्तियों द्वारा भगवान् महत्तम जीवों में प्रविशिष्ठ होकर रहते हैं यथा नारद, शेष, सनक, सनन्दन आदि। इन्हें आवेश रूप कहा गया है। इस काल में यह विश्वास किया जाने लगा कि भगवान के अवतार का मुख्य प्रयोजन भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए लीला का विस्तार करना है। ईश्वर के चरित्र का अनुशीलन भक्तगण भक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। भागवत पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय एकान्तिक भक्ति है। भक्ति के सन्मुख भक्तों की दृष्टि में मोक्ष और अपुनर्भव भी तुच्छ है।

इस नयी भावना के उद्गम दक्षिण के अलंकार सन्त हैं। अनुश्रुतियों में आलवार सन्तों का समय ईसा से ३-४ हजार वर्ष पूर्व बताया गया है किन्तु जो ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं, उनके अनुसार वे ५०० से ८५० ई० के बीच हुये होंगे। ये अलवार दक्षिण देश के विभिन्न भागों के निवासी थे। प्रथम चार अलवार—पोयकइ आलवार,

---

५४ कार्पस इन्सक्रिप्शनस् इन्डीकोरम ३ पृ० ७२।

५५ वही ४९ प्लेट ३१ ए। तथा वही ५० प्लेट ३१ बी।

५६ श्रीमद्भगवद्गीता ४/७

भूतत्तार पेग्रलवार ग्रौर तिरुमलिशाइ ग्रलवार पल्लव देश के ग्रौर ग्रन्तिम तीन तोण्डर डिप्पोडि ग्रलवार, तिरुप्पान ग्रलवार ग्रौर तिरुमंगइ ग्रलवार चोल देश के थे। बीच के शेष पांच में सातवें ग्रलवार कुलशेखर ग्रलवार चेर देश के थे, ग्रन्य चार शठकोप (जो नम्मलवार भी कहे जाते हैं) मधुरकवि पेरियाल्वार ग्रौर ग्राण्डाल पाण्ड्य देश के थे। ग्रलवारों में सबसे ग्रधिक ख्याति नम्मलवार को ही हुई। ग्राण्डाल महिला ग्रलवार थी ग्रौर उनकी गणना संसार की रहस्यवादी कवियत्रियों में की जाती है।

इन ग्रलवारों के निवास स्थानों के ग्राधार पर यह समझा जाता है कि दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रसार पहले उत्तरी भाग पल्लव देश में हुग्रा, पश्चात् उसने चोल देश में प्रवेश किया ग्रौर उसकी चरम परिणति दक्षिण में नम्मलवार की जन्म-भूमि तिरुनेलवेलि (तिन्नवली) में हुई। ये ग्रलवार किसी एक जाति ग्रौर समाज के न होकर समाज के सभी स्तरों से ग्राये हुए थे। नम्मालवार वेल्लाल जाति के थे, तिरुमंगइ कल्ल (डाकू) परिवार के थे। कुलशेखर राजकुल के थे। पेरि ग्रलवार ब्राह्मण थे। ये ग्रलवार सन्त धर्म ग्रौर दर्शन के विद्वान होने की ग्रपेक्षा सरल हृदय भद्र थे। उनकी दृष्टि में विष्णु एक प्रेमी के समान थे जिन्हें प्रेम ग्रौर श्रद्धा द्वारा प्रसन्न किया जा सकता है।

इन ग्रलवारों के ४००० गीतों के नालायिर (दिव्य) प्रबन्धम् के चार लगभग समान भाग हैं। प्रथम एक हजार गीतों में पेरियालवार, ग्राण्डाल, कुलशेखर, तिरुमलशाइ, तोण्डरडिप्पोडि, तिरुप्पान ग्रौर मधुर कवि की रचनायें है। इस खण्ड को 'तिरुमोकि' कहते हैं। दूसरे खण्ड में ग्रकेले तिरुमंगइ की रचनायें हैं ग्रौर वह पेरियतिरुमोकि कहा जाता है। तीसरे खण्ड में प्रथम तीन ग्रलवारों की रचनायें हैं ग्रौर वह इयलपा कहलाता है। ग्रन्तिम भाग तिरुवायमोलि कहलाता है। इसमें ग्रकेले नम्मालवार की रचनाएं हैं। प्रबन्धम् के गीतों में ग्रलवारों ने ग्रपने को नायिका ग्रौर विष्णु-कृष्ण को नायक मानकर भावावेश से ग्रभिभूत होकर ग्रपने भावों की ग्रभिव्यक्ति की है। इन गीतों में कृष्ण की वृन्दावन-लीला का नाना प्रकार से उल्लेख हैं। इनमें उनकी बाल लीलाग्रों के साथ गोपियों के संग उनकी प्रेम लीला का भी वर्णन है। इन गीतों में कृष्ण की प्रियतमा 'नाप्पिन्नाइ' एक गोपी विशेष का उल्लेख मिलता है जो 'राधा' की कल्पना के ग्रत्यन्त निकट है। ग्राण्डाल के एक गीत में ऐसी कल्पना प्राप्त होती है।

ग्रलवारों के साथ कृष्ण भक्ति का साम्प्रदायिक रूप मुखर होता है। ग्रागे चलकर दशवीं शताब्दी के ग्रास-पास ग्राचार्यों ने उसे बौद्धिक ग्रर्थात् दार्शनिक रूप प्रदान किया। दार्शनिक धारणाग्रों के ग्रनुसार कृष्ण भक्ति ग्रनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गयी जिनमें श्री, सनक, ब्रह्म ग्रौर विष्णु स्वामी मुख्य हैं ग्रौर इन सम्प्रदायों ने उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र को ग्रत्यन्त प्रभावित किया।

चार आचार्य तथा अन्य सम्प्रदाय

श्री अथवा रामानुज सम्प्रदाय

रामानुज का समय ग्यारहवी शताब्दी का आरम्भ समझा जाता है। इनके प्रतिपादित सिद्धान्त मे तीन तत्व चित्, अचित् और ईश्वर माने गये हैं। चित् और अचित् ईश्वर के आयुध और उनके शरीर के अंग है। सृष्टि से पूर्व ईश्वर का जो सूक्ष्म रूप, जो प्रकृति कहलाता है, वही सृष्टि का रूप धारण करता है। ईश्वर सृष्टा, रक्षक और संहारक तीनों है। इस प्रकार वह संसार के मूल में है, और उसका स्वरूप द्वैत है। उसमें चित् और अचित् दोनों समन्वित हैं। वह दोषों से परे है और अपने भक्तों को वर प्रदान करता है।

इस संप्रदाय में विष्णु रूपी ईश्वर का प्राधान्य है। वासुदेव इसके इष्ट हैं जो वैकुण्ठ मे रहते हैं। उसके पांच रूप है अर्थात् (१) परब्रह्म नारायण, (२) चतुर्व्यूह—जिनमे वे वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप में प्रकट होते हैं, (३) विभव, जिनमे वे अवतारों के रूप मे प्रकट होते हैं, (४) अन्तर्यामिन, इसमें सबके हृदय में निवास करते हे और योगियों द्वारा देखे जा सकते हैं। (५) प्रतिभा (अर्चावतार) रामानुज के अनुसार भक्ति उपनिषद् में वर्णित उपासना का रूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण एक अवतार मात्र माने गये हैं और उनकी उपासना की प्रधानता इस सम्प्रदाय में नहीं है।

निम्बार्क अथवा सनक सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के संस्थापक निम्बार्क हैं। वे तेलुगु ब्राह्मण थे जो निम्ब नामक ग्राम के निवासी कहे जाते हैं। इस ग्राम के सम्बन्ध में लोगों का अनुमान है कि वह बेलारी जिले का निम्बपुर है। निम्बार्क का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं, किन्तु भण्डारकार की धारणा है कि वे रामानुज के कुछ पीछे हुए होंगे। उनकी मृत्यु बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी जाती है। निम्बार्क मुख्यतः वृन्दावन (मथुरा) में रहे और वहीं उनके सम्प्रदाय की प्रधानता रही। निम्बार्क संप्रदाय सनक सम्प्रदाय भी कहा जाता है। आदिकाल में इसकी स्थापना सनक ने की थी ऐसी धारणा सम्प्रदाय के महानुभावों की है।

निम्बार्क अथवा सनक सम्प्रदाय के सिद्धान्त यद्यपि कुछ बातों में रामानुज सम्प्रदाय से मिलते है, तथापि उनमें बहुत बड़ा अन्तर यह है कि इस सम्प्रदाय की धारणा है कि ईश्वर चित् और अचित् एक हैं साथ ही साथ भिन्न भी हैं। एक इस दृष्टि से हैं कि चित् और अचित् पूर्णतः ईश्वर पर आश्रित हैं और उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार निम्बार्क का सिद्धान्त द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद का है।

उन्होंने गोपियों से घिरे हुए, जिनमें राधा प्रधान है, कृष्ण को प्रधानता दी है। राधा कृष्ण की वामांगी कही गयी हैं।

ब्रह्म अथवा माध्व सम्प्रदाय

ब्रह्म सम्प्रदाय के संस्थापक माध्व अथवा आनन्दतीर्थ थे जिनका समय तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। माधव ईश्वर को जगत का भौतिक कारण नहीं मानते। उनका मत है कि ईश्वर चित् और अचित् से सर्वथा भिन्न है। मोह आदि के कारण मनुष्य की आत्माएं असंख्य योनियों में भ्रमित होती रहती हैं। ईश्वर और आत्मा का सम्बन्ध स्वामि और सेवक का है। ईश्वर की सेवा और उपासना से आत्मा अनेक बातों में ईश्वर के समकक्ष हो सकती है। माध्व शंकराचार्य के मायावाद के विरोधी थे। उनका सृष्टि का सिद्धान्त सांख्य पर आश्रित है। जीव के प्रत्येक रूप में परमात्मा परिपूर्ण रूप से वर्तमान है। इसलिये सभी अवतारों में भगवान पूर्ण रूप से वर्तमान रहते हैं। अवतारों के संबंध में बंधन और मुक्ति का प्रश्न ही नहीं हो सकता क्योंकि ये अजर, अमर और चिदानन्दमय है। इनमें परस्पर किसी प्रकार का भेद नहीं है। भगवान् का अपना रूप तथा आविर्मूत रूप कोई भी देश काल तथा गुण से परिच्छिन्न नहीं है। ब्रह्म मत में विष्णु रूप में ईश्वर की पूजा होती है किन्तु वहाँ न तो व्यूहवाद को मानता है और न कृष्ण और राधा को। इस प्रकार प्रस्तुत निबंध के निमित इस सम्प्रदाय का कोई महत्व नहीं है। उडीपी में महवाचार्य द्वारा स्थापित एक मूर्ति है। माध्व सम्प्रदायी इसकी उपासना करते हैं।

विष्णु स्वामी सम्प्रदाय

विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी के न तो उद्भवकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कहा जा सकता है और न उनके साम्प्रदायिक रूप के सम्बन्ध में। नाभाजी के भक्तमाल में उन्हें नवधा भक्ति का उपासक कहा गया है और उक्त ग्रन्थ के आधार पर उनका समय तेरहवीं शती से पूर्व अनुमान किया जाता है। फर्कुहर ने विष्णु-स्वामी के दो मठों की चर्चा की है जिनमें से एक कांकटोली में और दूसरा कामवन में है।[५७] अनुश्रुति है कि महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन हीरालाल और श्रीराम इस मत के मानने वाले थे। महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला भागवत धर्म जो पीछे वारकरी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी उपरोक्त भक्त थे, विष्णु स्वामी मत का ही रूपान्तर है।[५८] कहा जाता है कि इन्होंने

---

५७ फर्कुहर-एन आउटलाइन आव द रिलीजस लिटरेचर आव इण्डिया पृ० ३०४।
५८ डा० दीनदयाल गुप्त-अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४२।

कृष्ण की बाल रूप की मूर्ति की स्थापना की।[५९] विष्णु स्वामी के कृष्ण और वारकरी सम्प्रदाय के विट्ठल, विठोबा में काफी समानता प्रतीत होती है। सम्प्रदाय सम्बन्धी साहित्यिक सामग्री का अभाव होते हुए भी चतुःसम्प्रदाय में विष्णुस्वामी सम्प्रदाय को आचार्य कोटि का महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।[६०] कहा जाता है कि वल्लभाचार्य विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए।

महाराष्ट्र में वैष्णव धर्म का विकास उपर्युक्त सम्प्रदायों से भिन्न स्वतंत्र रूप में हुआ। यह दो रूपों में दृष्टिगोचर हुआ।

(१) **वारकरी सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय का आविर्भाव नवीं शताब्दी अथवा उससे पूर्व माना जाता है किन्तु उसको वास्तविक स्वरूप संत ज्ञानेश्वर ने दिया जिनका समय १३ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और चौदहवीं शताब्दी का पूर्व पाद है। उनके पीछे नामदेव ने इस सम्प्रदाय का विशेष रूप से प्रचार किया। सम्प्रदाय के अनुसार भक्ति द्वारा आत्मा-परमात्मा का मिलन हो सकता है। इन्होंने भक्ति के नौ रूप बताये हैं। इनके मुख्य आराध्य पण्डरपुर के विट्ठल हैं। पण्डरपुर की निरन्तर यात्रा को महत्व देने के कारण यह सम्प्रदाय वारकरी सम्प्रदाय कहलाता है। सम्प्रदाय के उपास्य, विट्ठल, कृष्ण ही हैं किन्तु उनके साथ राधा के स्थान पर रुक्मिणी का महत्व है।[६१]

(२) **मानभाव, महानुभाव अथवा जयकृष्णी सम्प्रदाय**—महानुभाव सम्प्रदाय की स्थापना १२६३ ई० में चक्र र ने की थी।[६२] सम्प्रदाय सम्बन्धी कोई ग्रन्थ इनका अपना लिखा प्राप्त नहीं होता। उनके विचार और उपदेश उनके शिष्यों के संस्मरणों से एकत्र किए गये हैं। ये शिष्य पण्डित थे और इन्होंने अपनी पुस्तकें चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखीं। चक्रधर के मुख्य शिष्य नागदेवाचार्य ने इस सम्प्रदाय का संगठन किया और उसे व्यवस्थित रूप दिया तथा सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया। सम्प्रदाय में वर्णाश्रम धर्म की कठोरता नहीं है। उसमें सबके लिए सन्यास का मार्ग खुला हुआ है। कृष्ण और दत्तात्रेय सम्प्रदाय के उपास्य देव हैं किन्तु मूर्ति पूजा के लिए इस सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं है। केवल इन देवों से सम्बन्धित

---

५९ डा० गुप्त ने केवल जन श्रुति के आधार पर यह निर्णय किया है।

६० विजयेन्द्र स्नातक-राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ० ४९।

६१ एस० बी० दाण्डेकर, वारकरी सम्प्रदाय का इतिहास।

६२ द स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० ३५३; किन्तु जी० के० चन्द्रोरकर का मत है कि इस सम्प्रदाय का विकास चौदहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ होगा (मानभाव की बुद्ध, ऐतिहासिक विविध विषय, २०३-२०४)।

स्थलों पर इनके चबूतरे हैं। इसका प्रचार गुजरात, पंजाब, एवं सुदूर काबुल तक है। मराठी साहित्य के विकास में इस सम्प्रदाय का बहुत बड़ा हाथ है।

दत्तात्रेय के मानने वालों का एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है, जो उन्हें कृष्ण का अवतार मानता है तथा भगवद्गीता को अपना धर्मग्रन्थ स्वीकार करता है।

वैष्णव सहजिया

बंगाल में ग्यारहवीं शताब्दी में बौद्ध तन्त्र के रूढ़िवादिता और कर्मकाण्ड के विरुद्ध एक नये सम्प्रदाय का उद्भव हुआ जो सहजिया बौद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। उसने दार्शनिक चिंतन, मूर्ति और देव-पूजा का सर्वथा निषेध किया। उनका मत था कि सत्य अन्तर की वस्तु है वह काल्पनिक और अस्वाभाविक साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता। सत्य की प्राप्ति मनुष्य की स्वाभाविक वासना के दमन से नहीं निरास से प्राप्त हो सकती है। काम के दमन में भी उनका विश्वास न था। उनका मार्ग योग का था और उनका मत था कि कामक्रियाओं द्वारा ही यौगिक-क्रियायें सम्भव हैं। अपने सहज स्वरूप के कारण यह सहजिया सम्प्रदाय के नाम से पुकारा जाता है।

इस बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय के अनुकरण पर वैष्णवों का भी एक सहजिया सम्प्रदाय विकसित हुआ। इनके मत में परम 'एक' की जो धाराएं राधाकृष्ण के भीतर से प्रवाहित हुई हैं, मर्त्य के नर-नारी के भीतर भी उसी धारा के दो प्रवाह चल रहे हैं। प्राकृत गुण के संस्पर्श में वह क्लिन्न हो गया है, साधना के द्वारा इस प्राकृत गुण संस्पर्श को दूर कर देने से ही नर-नारी का यह प्रेम फिर अप्राकृत ब्रज की वस्तु बन जाता है। नर नारी के भीतर सहज प्रेम की जो धारायें बह रही हैं, उन्हें निर्मल-सम करके फिर एक कर देने से ब्रज के युगल प्रेम का आस्वादन होता है। इन दोनों धाराओं के प्रतीक पुरुष-प्रकृति या राधाकृष्ण को सहजिया लोगों ने 'रस' और 'रति' कहा है। 'रस' शब्द का तात्पर्य है आस्वादक रूप रस स्वरूप और रति है रस का विषय। पारिभाषिक रूप में कृष्ण-राधा को काम और मदन कहा गया है। 'काम' शब्द का अर्थ है 'प्रेम-स्वरूप' जो प्रेम के आस्पद को अपनी ओर आकर्षित करता है और 'मदन' है प्रेमोद्रेक के कारण स्वरूप। साधना के क्षेत्र में नायक ही रस का काम है, नायिका रति है। यही एक 'रस रति' या 'काम मदन' ही अखिल नायिका-नायक का रूप धारण कर नित्य काल विलास कर रहे हैं।

सहजिया लोग नायिका-भजन की भी बात कहते हैं। नायिका-भजन से तात्पर्य है राधा-भजन। साधन बनने के लिए प्रत्येक नायक-नायिका को अपने प्राकृत नायक-नायिका के रूप में अन्दर कृष्ण राधा के स्वरूप की उपलब्धि करनी होगी। यह उपलब्धि एकाएक सम्भव नहीं है, इसके लिए आरोप साधना आवश्यक है। आरोप साधना का अर्थ है, जब तक रूप के अन्दर स्वरूप की पूर्ण उपलब्धि न हो तब तक स्वरूप को रूप के भीतर आरोप करना अर्थात् जब तक नायक-नायिका अपने को

सम्पूर्ण रूप से कृष्ण-राधा की उपलब्ध न कर सकें तब तक वे एक दूसरे के भीतर कृष्ण-राधा का आरोप कर साधना करते रहें। चण्डीदास इस सम्प्रदाय के एक प्रमुख भक्त हो गये हैं। उन्होंने पहले रामी धोबिन में राधिका का आरोप कर साधना की। इस आरोप साधन में सिद्धि प्राप्त होने पर वह रामी धोबिन उनकी दृष्टि में राधिका का विग्रह बन जाती है।[६३]

परकीया के माध्यम से राधाकृष्ण की प्रेमसाधना बंगाल के एक अन्य सम्प्रदाय में भी प्रस्फुटित हुई। यह सम्प्रदाय गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रवर्तक श्री चैतन्यदेव थे। १४८५ ई० में इनका जन्म नवद्वीप में हुआ था। ईश्वरपुरी तथा केशव भारती के प्रभाव से वे पूर्ण भक्त सिद्ध हुए। इन्होंने भारतवर्ष के विख्यात तीर्थों की यात्रा की तथा भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने लोकनाथ को वृन्दावन तीर्थ का उद्धार करने भेजा। उनके पश्चात् श्यामानन्द ने उक्त धर्म का प्रचार उड़ीसा में किया जबकि श्रीनिवास आचार्य तथा श्री नरोत्तमदास ने बंगाल में चैतन्य मत का प्रचार किया। भक्ति का शास्त्रीय रूप श्री रूप तथा सनातन गोस्वामियों द्वारा निर्धारित हुआ। शास्त्रीय परिभाषा में इस सम्प्रदाय को अचिन्त्य भेदाभेद कहा जाता है। सम्प्रदाय में कृष्ण साक्षात परब्रह्म हैं। वे अवतार नहीं अवतारी; अंश नहीं अंशी हैं। सम्प्रदाय की भक्ति भावना गोपी-भाव की है। राधा इस सम्प्रदाय में स्वकीया और परकीया दोनों रूपों में स्वीकार की गई है। इस पर जयदेव के गीत गोविन्द और विद्यापति के गीतों का प्रचुर प्रभाव है। इस सम्प्रदाय को कुछ विद्वान माध्व मत की शाखा कहते हैं किन्तु वस्तुतः यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है किसी से संलग्न नहीं है। कृष्ण भक्ति साहित्य पर इस धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्ध में पंचशिला संप्रदाय प्रादुर्भुत हुआ। बलरामदास, अनन्तदास, यशोवंतदास, जगन्नाथ तथा अच्युतानन्द दास नामक पंच भक्तों की विचार कल्पना से यह संप्रदाय पल्लवित हुआ है। ये पाँचों कवि एक ही समय में (१५०० ई० से पूर्व) पैदा हुये थे। इन पांचों के चिन्तन की धारा एक ही विचार के पांच प्रवाह अथवा एक ज्ञान दीपक की पांच शिखायें कही जाती हैं। अच्युतानन्द का कहना है, "कृष्ण की इच्छा से हम पैदा हुये हैं। राधा और लीला प्रचार करने के लिये हमने पंचसखा का जन्म लिया है।" उनकी दृष्टि में राधा जीव तथा श्री कृष्ण परमात्मा हैं।[६४]

---

६३ शशिभूषण दास गुप्त, श्री राधा क्रम विकास पृ० २६०-६१

६४ भागवत संप्रदाय के फुटनोट से—
(१) नगेन्द्रनाथ वसु-मार्डन बुद्धिज्म, कलकत्ता १९११.
(२) प्रो० चित्तरंजनदास-जनवाणी पत्रिका, अप्रेल १९५० काशी पृ० २६६-२७४

पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्ध में शंकर देव ने महाधर्म, महापुरुष धर्म अथवा महापुरुषिया धर्म की स्थापना की। शंकरदेव अपनी मदनीयता के कारण 'महापुरुष' के नाम से अभिहित किये जाते थे। अतः संप्रदाय का नाम भी 'महापुरुष' पड़ा। इस धर्म में आने को शरण कहते हैं तथा दीक्षित व्यक्ति को 'शरणिया'—इनका दीक्षामंत्र है 'शरणं मे जगन्नाथ श्री कृष्ण पुरुषोत्तमे'। ये कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म मानते थे तथा उनकी पूजा के अतिरिक्त पूजा का सदा निषेध करते थे। शंकरदेव का अध्यात्म पक्ष पूर्ण अद्वैतवाद है तथा व्यवहार पक्ष भक्ति की साधना है। यह मत श्रीमद्भागवत के ही भक्ति-सिद्धान्तों का विलास है। संप्रदाय में कृष्ण आराध्य देव हैं किन्तु भक्ति मार्ग में दास्य भक्ति पर ही अधिक आग्रह दिखाया गया है। राधा का स्थान संप्रदाय में नगण्य है।

वल्लभ संप्रदाय या पुष्टि मार्ग

वल्लभाचार्य का समय १४७८ से १५३० ई० माना जाता है। इन्होंने उपर्युक्त पूर्ववर्ती वैष्णव सम्प्रदायों से भिन्न एक नये संप्रदाय का प्रवर्तन किया जो पुष्टि मार्ग कहलाता है। इस संप्रदाय की धारणा है कि भगवान के अनुग्रह से ही प्रेम प्रधान भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति होती है। भगवान के इस अनुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसके मतानुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं—(१) प्रवाह जीव, वे जो सांसारिक प्रपंचों में पड़े हुए साधारण कोटि के जीव हैं; (२) मर्यादाजीव, मध्यम कोटि के वे जीव हैं जो सामाजिक विधि निषेध के अनुसार चलते और लोक मर्यादा का पालन करते हैं; (३) पुष्टजीव, वे जीव हैं जो भगवान पर एकान्त भाव से विश्वास करते हैं, उनके अनुग्रह का भरोसा करते हैं और इसी अनुग्रह से पोषण पाते हुए अन्त में नित्य लीला में लीन होते हैं। तात्पर्य यह कि भगवान के अनुग्रह पर पूर्ण रूप से निर्भर रहना ही पुष्टिमार्ग है। इसमें शास्त्रविदित विधि-निषेध का बन्धन नहीं है। यह संप्रदाय सिद्धान्ततः शुद्धाद्वैत वादी है। वह श्रीकृष्ण को परब्रह्म मानता है और कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरे धर्म को स्वीकार नहीं करता।

इस संप्रदाय के अनुसार कृष्ण ने चतुर्व्यूहात्मक एवं रसात्मक दोनों रूपों में अवतार लिया था। देवकीनन्दन रूप में उन्होंने लोक रक्षक और धर्म की स्थापना की। वासुदेव रूप मोक्षदाता है, संकर्षण रूप दुष्टों का संहारक, प्रद्युम्न रूप सृष्टि का रक्षक और अनिरुद्ध रूप धर्म का रक्षक है। सात्मक रूप में कृष्ण ने अनेक रसात्मक एवं लोक-रंजनकारी लीलाएं कीं।

इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण के दोनों रूप मान्य हैं। देवकी नन्दन वासुदेव धर्म रक्षक रूप है। इस रूप में वे लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम हैं तथा इसी रूप में उन्होंने मथुरा, द्वारिका, कुरुक्षेत्र की लीलाएं एवं व्रज में दुष्टों का संहार किया। यशोदा-नन्दन उनका रस रूप है। इस रूप में उन्होंने नन्द यशोदा को सम्मोहित किया, वृन्दावन में ग्वालवालों के साथ गायें चरायीं और वृन्दाविपिन में गोपियों के साथ विहार किया।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

प्राचीन भारतीय ललितकलाओं में कृष्ण का अंकन

१५०० ई० से पूर्व

वास्तुकला और मूर्तिकला में कृष्ण

भारतीय वास्तुकला और मूर्तिकला में कृष्ण का अंकन प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी से आरम्भ हो गया था। इस काल का एक मूर्तिफलक मथुरा संग्रहालय में है। इसमें बाल-कृष्ण को सूप में रखकर वसुदेव द्वारा यमुनापार ले जाने का दृश्य अंकित है।[1] इसी काल अथवा इससे कुछ ही पीछे तुमन (ग्वालियर) में विध्यवासिनी देवी के मन्दिर में कृष्ण के आरम्भिक जीवन के अनेक दृश्यों का अंकन है।[2]

जोधपुर के निकट मंडोर से कुछ गुप्तकालीन विशाल शिला-फलक प्राप्त हुए हैं उन पर कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित गोवर्धन धारण, दधिमंथन, शकटभंग, धेनुक-वध तथा कालियामर्दन के दृश्य अंकित हैं।[3] इसीकाल के एक मिट्टी के फलक पर भी कालियामर्दन का दृश्य अंकित है। यह मृणफलक मथुरा से प्राप्त हुआ था और बड़ौदा संग्रहालय में है।[4] मथुरा से प्राप्त एक शिलाफलक पर भी कालियामर्दन का दृश्य अंकित है।[5]

गुप्तोत्तर काल अर्थात् छठी शताब्दी के कृष्ण चरित्र के अंकन बादामी स्थित

---

१ मूर्ति संख्या १३४४

२ आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट १९२१-२२, पृ० १०३

३ वही ,, ,,१९०५—६ पृ० १३५; हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन—आर्ट फलक ४४/१६६

४ जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, खण्ड १ पृ० ५१ फलक १ चित्र १

५ कलानिधि—भाग १ संख्या २, पृ० १३३

दुर्ग[6] तथा लयण संख्या २ और 3 में[7] प्रचुर मात्रा मे मिलते है। इनमें तृणावर्तवध, चारूण-वध, कुवलयापीड़-वध, कालिय मर्दन, कंस के दरबार में मल्ल युद्ध, शकट-भंग, अरिष्टासुर वध, यमलार्जुन, पूतना-वध, वत्सासुर-वध के दृश्य अंकित हैं। इसीकाल के सिरपुर (मध्यभारत) स्थित लक्ष्मण मन्दिर के द्वार पर चारूण-वध, मल्ल-वध तथा यमलार्जुन के दृश्यों का अंकन है।[8]

देवगढ़ (झांसी) के मन्दिर में कृष्ण को गोद में उठाये हुये वसुदेव का अंकन है। एक और स्थान पर कृष्ण-बलराम को नन्द यशोदा द्वारा भोजन कराते हुये दृश्य अंकित है। इसके अतिरिक्त शकट-भंग, धेनुक-वध तथा कंस-वध के दृश्यों का भी अंकन प्राप्त होता है।[9] मथुरा संग्रहालय में इस काल के दो फलक सुसज्जित है। एक पर कालिय-मर्दन[10] तथा दूसरे पर गोवर्धनधारी का अंकन है। पूर्व अध्याय में वर्णित गोवर्धनधारी[11] की एक विशाल मूर्ति भारत कला भवन काशी के संग्रहालय में विराजित है।

सातवीं-आठवीं शताब्दी के एक मन्दिर के अवशेष पहाड़पुर (पूर्वी बंगाल) में मिले हैं। उसके बाह्य आवरण के मृण्फलकों में से अनेक फलकों पर कृष्ण चरित्र का अंकन प्राप्त हुआ है। केशी-वध, चारुण-वध, मुष्टिक-वध, कृष्ण बलराम युद्ध, गोवर्धन धारण, यमलार्जुन, वसुदेव का कृष्ण को यमुना पार ले जाना, देवकी का कृष्ण को गोद मे लेकर वसुदेव को देना आदि। कंस वध का अंकन भी इसमें प्राप्त होता है।[12]

खजुराहो स्थित लक्ष्मण मन्दिर में कृष्ण के जीवन-चरित्र का अंकन अत्यन्त सुन्दर रूप में हुआ है। इसका निर्माण काल दशवीं शताब्दी है। पूतना-वध, शकट-भग तृणावर्त-वध, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर-वध, कालिय-मर्दन, अरिष्टासुर-वध, कुवलयापीड़-वध, चारुण-वध[13] के अतिरिक्त कुब्जा-अनुग्रह का नया अंकन भी इस काल में प्राप्त होता है। ग्यारहवीं शती का पार्श्वनाथ का मन्दिर भी कृष्ण चरित्रांकन से शून्य

६ जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, खण्ड १ पृ० ५१ — बादामी पृ० २५—२८

७ बास रिलीफ्स आफ बादामी पृ० २५—२८; ४७—५५

८ आर्कालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९०९—१०, पृ० ११

९ माधवस्वरूप वत्स—द गुप्त टेम्पेल्स एट देवगढ़

१० मूर्ति संख्या २३७४

११ मूर्ति संख्या डी० ४७

१२ एक्सकव्वेशन्स एट पहाड़पुर, फलक २८,२९,३३,३६

१३ ललित कला, संख्या ७, पृ० ८२—९०

नहीं है वहाँ भी यमलार्जुन[१४] उद्धार का दृश्य भव्य रूप में अंकित है। यह मन्दिर भी खजुराहो में ही स्थित है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के दो शिलाफलक सोहागपुर (मध्य प्रदेश) से मिले हैं। इन पर भी कुब्जा अनुग्रह का दृश्य अंकित है।[१५] स्थापत्य और मूर्तिकला सम्बन्धी शेष विवरण प्रथम अध्याय में कृष्ण की प्रामाणिकता पर विचार करने के समय दिया गया है।

राधा का अवतरण

महाबलीपुरम् में आठवीं शताब्दी का एक मूर्तिफलक है जिसमें कृष्ण के निकट एक स्त्री का अंकन है, जिसके सम्बन्ध में कलाविदों की धारणा है कि वह राधा ही है।[१६] इसी प्रकार पहाड़पुर (बंगाल) से भी इस काल से कुछ पूर्व का एक फलक प्राप्त है जिसके सम्बन्ध में विद्वानों की धारणा है कि वह राधाकृष्ण का चित्रण है।[१७]

चित्रकला में कृष्ण—चित्रकला के उपकरण वास्तुकला तथा मूर्तिकला की अपेक्षा सूक्ष्म होते हैं किन्तु काल की कठोरता का प्रभाव उन पर सबसे अधिक पड़ता है। पुराणों के वर्णन के अतिरिक्त प्राचीन चित्रकला का कोई रूप आज हमारे सम्मुख नहीं है। १२वीं शती में (गुप्तोत्तर काल) कामवन के चौरासी खंभा वाले विष्णु मंदिर में एक अभिलेख पाया गया है जिस पर 'चित्रकर्मो ज्वलं महत्तं' लिखा हुआ है। इससे तत्कालीन चित्रकला पर हल्का सा प्रकाश पड़ता है तथा अनुमान किया जा सकता है कि ये चित्र विष्णु के विग्रह तथा उनके अवतार कृष्ण से सम्बन्धित होंगे। तत्कालीन कृष्ण-सम्बन्धी साहित्य की प्रचुरता देख कर यह अनुमान निराधार प्रतीत नहीं होता। फीरोजशाह तुगलक ने सं० १४१० में इस मन्दिर को नष्ट करा दिया। ब्रज के इतिहास[१८] में १५०० ई० से पूर्व चित्रकला के उदाहरणों के न मिलने पर आश्चर्य प्रकट किया गया है। मूर्तिकला चित्रकला का स्वतः प्रमाण है क्योंकि चित्राकृति के बिना शिल्पकला संभव ही नहीं होती।

संगीत कला में कृष्ण—गीत, वाद्य और नृत्य—संगीत के ये तीन अंग हैं। सामवेद संगीतमय है। भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र के लिये सामवेद से गान तत्व

---

१४ वही पृ० ८८

१५ हैहयाज आफ त्रिपुरी एण्ड देयर मोन्यूमेण्ट्स, पृ० १०३-१०६

१६ ए० गोस्वामी—इण्डियन टेम्पिल स्कल्पचर, प्लेट नं० २५—इसमें कृष्ण दूध दुह रहे हैं और बछड़े के पास एक नारी मूर्ति सिर पर गट्ठर लेकर तथा हाथ में मटकियों का छींका लेकर खड़ी है।

१७ एक्सकवेशन्स एट पहाड़पुर, फलक नं० २७

१८ श्री जगन्नाथ प्रविवासी—पृ० ६६

लिया था। उनके अनुसार गाया जाने वाला शास्त्रीय संगीत मार्गी, कहलाता था। भरतमुनि के अनुसार रुचि के अनुकूल गाये जाने वाले आचार्यों से प्रथक संगीत की संज्ञा 'देशी' है।

काव्य तथा संगीत का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जहाँ काव्य (श्रव्य तथा दृश्य) है वहा संगीत अवश्य रहता है। सङ्घकाल में – जो कि ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी का ग्रंथ है—संगीत सम्बन्धी उल्लेख मिलते है। उससे तत्कालीन विशिष्ट संगीत-पद्धति का पता चलता है तथा काव्य में संगीत के महत्व का भी प्रतिपादन होता है। 'चिलप्पधिकारम्' ग्रंथ में संगीत सम्बन्धी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। इसके बीच बीच में गीतों का समावेश किया गया है। इन गीतों को 'इशैपाट्टु' कहा गया है। इशैपाट्टु का अर्थ 'स्वर-लालित्य युक्त गीत' है। ये गीत प्राथरजाति के लोगों द्वारा अपने आराध्य की स्तुति में गाये गये बताये गये हैं। 'चिल्पधिकारम्' में—विविध वाद्य-यंत्रों और तमिल-गीत-पद्धति में प्रयुक्त विविध राग रागनियों का भी परिचय मिलता है। 'निरूप्पाण' आलवार तो पाण-जाति के थे। इस जाति का पेशा ही गायन था। कदाचित् आलवारों की गीत-पद्धति आज की पद्धति से भिन्न थी। नाथमुनि ने आलवार गीतों के लिए 'देव-गान-शैली' निर्धारित की थी। उसी शैली में उन्होंने वैष्णव-मन्दिरों में आलवारों के पदों के गाये जाने का प्रबन्ध किया था। 'प्रबन्धम्' में मिलने वाले प्रत्येक पद के ऊपर उसका राग और ताल निर्दिष्ट है। प्रमुख-राग-रागनियों के साथ प्रधान-अप्रधान ४० से अधिक राग-रागनियों का प्रयोग हुआ है। तालों से वाद्य-संगीत का प्रमाण मिल जाता है। नृत्य देवदासी परम्परा के रूप में प्रचलित था। आण्डाल देवदासी थी।

आलवारों में कृष्ण—सम्बन्धी संगीत का यह प्रथम प्रमाण मिलता है। अमीर खुसरो ने ईरानी और भारतीय पद्धतियों के मिश्रण से निर्मित विविध-गीतों—ख्याल, कव्वाली, तराना—का प्रचार किया था।[१९] चौरासी वैष्णवन की वार्ता में खुसरो के द्वारा निर्मित रागों की चर्चा हुई है। अतः अनुमान किया जाता है कि इनका प्रयोग कृष्ण सम्बन्धी संगीत में हुआ होगा।

साहित्य में कृष्ण

सम्प्रदायेतर साहित्य में कृष्ण का चरित्रांकन पाणिनि की अष्टाध्यायी के साथ आरम्भ होता है। पाणिनि ने वासुदेवार्जुनाभ्यां वन्[२०] सूत्र से वासुदेव की भक्ति करने वाले व्यक्ति के अर्थ में वुन प्रत्यय का विधान किया है। वासुदेव की भक्ति करने

१९ चौरासी वैष्णवन की वार्ता—कृष्णदास की वार्ता, प्रसंग ५

२० अष्टाध्यायी ४।२।९६

वाला व्यक्ति 'वासुदेवक' कहलाता है। पतंजलि द्वारा पाणिनि की व्याकरण पर भाष्य लिखा गया। उन्होंने स्पष्ट ही कहा कि 'अर्जुन और वासुदेव में वासुदेव अधिक महत्वशाली हैं तथा उनकी पूजा होती है इसीलिये पाणिनि ने वासुदेव का नाम अर्जुन से पहले रखा था। "जघान कंस किस वासुदेवः"[२१] कहकर पतंजलि ने वासुदेव का वीर्य, शौर्य तथा उत्कर्ष तो बढ़ाया ही; उनके चरित्र को अति प्राचीन भी सिद्ध कर दिया। इस प्रकार पाणिनि तथा पतंजलि के साहित्य में कृष्ण का उल्लेख हुआ। किन्तु इस समय तक उनके जीवन चरित्र पर किसी काव्य की रचना नहीं हुई थी। प्रथम शताब्दी के आस-पास कृष्ण सम्बन्धी काव्य की रचना भी होने लगी। गोपाल कृष्ण की लीला का प्रथम संदर्भ पहली शताब्दी में अश्वघोष के बुद्ध चरित्र[२२] में मिलता है तथा कृष्ण के जीवन का तनिक विस्तार के साथ अंकन भास कवि द्वारा रचित नाटक 'बालचरितम्'[२३] में ही प्रथम बार देखा जा सकता है। बालचरितम् के नायक बालक कृष्ण हैं। वे अनुपम पराक्रमी हैं। कंस अरिष्टर्षभ के द्वारा उनका बध कराने की चेष्टा करता है किन्तु वे बिना किसी आयुध के उसके जीवन का अन्त कर देते हैं। कंस कृष्ण को उत्सव का आमन्त्रण देता है। मथुरा पहुंचने पर वे क्रमशः उत्पलहस्ति, चारूण, मुष्टिक और कंस का वध करते हैं। बीच में कालियदमन की घटना भी वर्णित है।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (३४०-३८० ई०) के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने 'कृष्ण चरित्र' नामक काव्य लिखा था। किन्तु इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३८०-४१५ ई०) के काल में महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत[२४] और कुमार सम्भव[२५] में कृष्ण का नामोल्लेख किया है। स्कंदगुप्त के भितरी स्थित स्तम्भ लेख में कृष्ण-देवकी के मिलन का उल्लेख मिलता है। उसमें प्रशस्तिकार ने लिखा है कि स्कंदगुप्त अपनी दुःखिनी माता से उसी प्रकार मिले जैसे कृष्ण अपने शत्रुओं को नष्टकर देवकी से मिले थे।[२६] ५वीं शताब्दी से

---

२१ महाभाष्य ३।२।२३

२२ अध्याय १-५

२३ भास का समय दूसरी-तीसरी शताब्दी है।

२४ १।१५ 'गोप वेषस्य विष्णोः'।

२५ ३।१३ 'कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः।

२६ जितमित परितोषान्मातरं साश्रनेत्रां
हतरिपु रिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः ॥ का० इ० इ० पृ० ३।

साहित्य में कृष्ण की कथा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। किन्तु अधिकांश चर्चा माधुर्य-भाव से संबन्धित है।

जैन कवियों को कृष्ण की कथा से विशेष प्रेम रहा है। इसका कारण कदाचित जैनागमों में श्री कृष्ण का प्रधान पुरुष के रूप में उल्लेख है। पांडव तथा द्रोपदी की कथा के साथ उनका चरित्र वर्णन किया गया है। आगे के कवियों ने भी संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा के अनेक काव्य लिखे जिनमें कृष्ण का अत्यन्त आदर के साथ वर्णन किया गया है। उपलब्ध जैन ग्रंथों में 'हरिवंश पुराण' महत्वपूर्ण है। इसकी रचना ८ वीं शताब्दी (शक सं० ७०५) में हुई थी।[२७]

९वीं शताब्दी में हस्तिमल ने 'सुभद्राहरण' नामक काव्य की रचना की। इसी शताब्दी में कविराज ने 'पारिजात-करण', और वास्तुपाल ने 'नरनारायणानन्द' की रचना की। 'पारिजात हरण' में इन्द्र के उपवन से पारिजात लाने की कथा का हरिविलास में कृष्ण के बाल जीवन का और नर नारायणानन्द में कृष्ण और अर्जुन की मैत्री का १८ सर्गों में वर्णन है। अन्तिम सर्ग में सुभद्रा हरण की चर्चा भी है।

केरल नरेश कुलशेखर ने, (दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच) 'सुभद्रा धनंजय' की रचना की जिसमें सुभद्रा हरण की कथा और उसमें कृष्ण की प्रासंगिक रूप में चर्चा की गई है। कालिजर के परमर्दित देव के मंत्री वत्सराज ने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'रुक्मिणी परिणय' नामक एक ईहामृग नाटक की रचना की थी। इस नाटक में तीन अंक हैं। कथा परम्परागत है। इसका गीतियों का काव्यात्मक सौन्दर्य दर्शनीय है। इसी शताब्दी में वक वध के आधार पर हेमचन्द्र जैन के शिष्य रामचन्द्र ने 'निर्भय भीम' नामक एकांकी व्यायोग और उमापति धर ने 'पारिजात हरण' नामक नाटक की रचना की।

अपभ्रंश भाषा में कृष्ण का चरित्र दसवीं शताब्दी से मिलता है। पुष्पदन्त कवि का 'महापुराण' अपभ्रंश की प्राचीनतम रचना है। भागवत के आधार पर कृष्ण जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ इसमें संजोई गई हैं। पूतना वध, उखल बन्धन, गोवर्धन धारण, कालिय दमन, आदि घटनाएँ भागवत की कथा से पूर्ण साम्य रखती हैं। तथा गोपियों के साथ कृष्ण के विहार तथा रास के वर्णन में पुष्पदन्त ने गोपियों की उत्सुकता तथा प्रेम विह्वलता की चर्चा भागवत के समान ही की है। कोई सखी आधा बिलोया दही छोड़कर भागती है तो किसी की मथानी टूट जाती है। किसी गोपी की पान्डुर

२७ अगरचन्द नाहटा—पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ पृ० ७०६।

रंग की चोली कृष्ण की छाया से काली हो जाती है। इस प्रकार धूलि धूसर कृष्ण गोपियों को क्रीड़ा-रस से वशीभूत कर लेते हैं।[२८]

'प्रबन्ध चिन्तामणि' में एक दोहा १२वी शताब्दी के साहित्य में कृष्ण-चरित्र का प्रमाण देता दृष्टिगोचर होता है। यह राजा बलि की कथा के सम्बन्ध में एक अन्योक्ति के रूप में कहा गया है। 'मेरा सन्देशा उन तारक तारने वाले कृष्ण से कहना कि संसार दारिद्रय में डूब रहा है, अब तो बलि को मुक्त कीजिए।'[२९]

१४वीं शताब्दी के आस-पास 'प्राकृत पैंगलम्' नामक एक पिंगल ग्रंथ लिखा गया। उसमें पिंगल भाषा के काव्यों से जो छन्दों के उदाहरण दिये गये हैं उनमें कृष्ण सम्बन्धी अनेक हैं।

राधा का अवतरण—पुराणों से पहले धर्मग्रंथों में राधा का अस्तित्व दृष्टि-गोचर नहीं होता। गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला का वर्णन सबसे पहले खिल हरिवंश में मिलता है किन्तु वहाँ राधा का नाम भी नहीं है। विष्णु पुराण में रास के वर्णन के साथ एक ऐसी गोपी का वर्णन है जिसका कृष्ण के साथ अनुराग है। वहाँ कहा गया है—

> अत्रोपाविश्य सातेन कापि पुष्पैरलंकृता।
> अन्य जन्मनि सर्वात्या विष्णुरभ्यर्चितो यया॥[३०]

(यहाँ बैठकर वह रमणी कृष्ण द्वारा पुष्पों से अलंकृत की गयी है जिसके द्वारा दूसरे जन्म में सर्वात्य विष्णु अभ्यर्चित हुए थे।)

किन्तु यहाँ भी राधा का नाम नहीं है। भागवत पुराण के दसवें स्कंध में रास का जो वर्णन है उसमें हम पाते हैं कि रास नृत्य के समय कृष्ण अपनी एक प्रियतमा गोपी

---

२८ धूली धूसरेण वरमुक्क सरेण तिणा मुरारिणा
कीला रस वसेंन गोवालय गोवी हियय हारिणा
मंथीरउ लोडिवि आवट्टिउउं, अद्ध विरोलिउं दहिउं पलोडिउ
कावि गोवी गोविन्दहु लग्गी, एण महारी मंथानि भग्गी।
अयहि मोल्ले देहु आलिंगणु, णे तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु
काहि वि गेविहि पंडर चेल्लहु हरितणु छायहि जायउं कालउं॥
उत्तर पुराण पृ० ६४

२९ अम्हणिओ सन्देसड़ो तारय कन्ह कहिज्ज।
जगदालाइहि डुब्बिड बलि बंधण मुहिज्ज॥
—प्रबन्ध चिंतामणि

३० विष्णु पुराण ·······

को लेकर गायब हो गये और दूसरी गोपियों की ग्राड़ में उस प्रियतमा गोपी के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ा की। विरहातुरा गोपियाँ उन्हें ढूंढ़ते ढूंढ़ते एक जगह कृष्ण के ध्वज, वज्र, अंकुश ग्रादि से युक्त पद-चिन्ह के साथ एक ग्रन्य पद चिन्ह पाती हैं जो किसी ब्रज बाला के है। तब वे उस परम सौभाग्यवती प्रियतमा को लक्ष्य कर कहती हैं :—

ग्रनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः
यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतोयामनयद्रहः ॥[31] १०।३०।२८

(इस बालाक के द्वारा, निश्चय ही भगवान्, ईश्वर, हरि ग्राराधित हुए हैं, इसलिए इससे प्रसन्न होकर गोविन्द हमें छोड़कर उसे इस निराली जगह में ले ग्राये)

इस श्लोक में 'ग्रनयाराधितः' शब्द में परवर्ती कृष्ण भक्तों ने राधा को देखने की चेष्टा की है ग्रौर परवर्ती पुराणों में तो राधा की चर्चा तो प्रचुर है किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है ग्रौर उनका विवेचन हमें ग्रभीष्ट नहीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जो रूप सामने है उससे जान पड़ता है कि लोक जीवन में गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम लोला को कोई कथा गीतों के रूप में बिखरी रही है, उसी ने यथा समय साहित्य के माध्यम से पुराणों में प्रवेश किया ग्रौर तब उसका एक नये रूप में प्रसार हुग्रा। कुछ विद्वानों की राय में गोपाल कृष्ण के समान राधा भी ग्रभीरों की प्रेमदेवी रही होगी ग्रौर इसी की प्रेम-कथा ने लोकमानस के द्वारा साहित्य में स्थान पाया होगा।[32] यद्यपि इस कथन के बहुत स्पष्ट प्रमाण ग्राज उपलब्ध नहीं हैं, तथापि इसका ग्राभास हाल कृत प्राकृत भाषा काव्य गाहासत्तसई (गाथा सप्तशती) में प्राप्त होता है। हाल प्रतिष्ठानपुर (ग्राधुनिक पैठन) के सातवाहन (ग्रान्ध्र) नरेश थे। उनका समय निश्चित नहीं कहा जा सकता पर सम्भावना है कि वे दूसरी-तीसरी शताब्दी ईसवी में हुए होंगे। कुछ विद्वानों के ग्रनुसार वे प्रथम शताब्दी में हुए। 'गाहा सतसई' यद्यपि उनके नाम पर प्रचलित है तथापि उसके संकलन के सम्बन्ध में नाना प्रकार के मत व्यक्त किये गये हैं। इन प्राकृत गीतियों मर्मवेधी मुक्तक रचना का समय २०० से ४५० ई० के बीच माना जाता है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह इससे पहले की भी हो सकती है ग्रौर इसके बाद की भी। किन्तु निश्चित रूप में वह पाँचवीं शताब्दी में प्रसिद्ध हो चुकी थी। बाणभट्ट ने हर्षचरित में ग्रनेक कवियों की रचना की है ग्रौर उसी प्रसंग में हाल द्वारा सुभाषितों के 'ग्रगम्य कोष' के निर्माण किये जाने की बात कही है। इस गाहा सतसई में कई ऐसी गाथाएं

---

३१ भागवत १०।३०।२८

३२ राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त ग्रौर साहित्य; श्री राधा का क्रम-विकास, पृ० ११५ ।पृ० १७४-८१

हैं जिनमें कृष्ण की ब्रज लीला प्रतिध्वनित होती है। इसकी शृंगार और नीति सम्बन्धी सुन्दर गीत्यात्मक मुक्तक कविताओं में बड़ी सरसता और वचन विदग्धता है। यथा—

अज्जविबालो दमोदरोत्ति इह जम्पिए जसो आए।
कन्हन मुहपेसि अच्छं णिहुअं हसि अंघ अवहूहिं ॥[33]

....(यशोदा को यह कहते सुन कर कि दामोदर बालक है, कृष्ण के मुख को देखकर ब्रज वधूटियां ओट में हँसने लगीं।)

पाच्चण सलाहण णिहेण पासपरिसंठिआ णिइण गोवी।
सरिस गोविनाणं चुम्बइ कपोल पड़िभागअंकहनम् ॥[34]

....(नृत्य की प्रशंसा के बहाने बगल में आकर एक निपुण गोपी अपनी जैसी गोपियों के कपोल पर कृष्ण के पड़ते हुए प्रतिबिम्ब का चुम्बन करती है।)

जइ ममसि ममसु एमेअ कह सौहग्गगव्वि रोगे ठऐ।
महिल्लणं दोसगुणे विचारइउं जइ खमोसि ॥[35]

....(हे कृष्ण यदि महिलाओं के दोष गुण विचार करने में समर्थ हो तो, यदि भ्रमण करना चाहते हो तो, सौभाग्य गर्वित होकर भ्रमण करो।)

मुहमारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआए अवणेन्तो।
एताणं बलवोणं अण्णनं वि गोरअं हरसि ॥[36]

....(हे कृष्ण, तुम मुखमारुत के द्वारा राधिका के मुंह पर लगे गोरज का अपनयन करके इन अन्य वल्लभियों एवं अन्य स्त्रियों के गौरव का हरण कर रहे हो।)

यद्यपि राधा कृष्ण के हर प्रकार के शृंगार का स्वरूप आगे चलकर साहित्य में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है किन्तु 'गाथा' में राधा का वर्णन तथा महत्व ऊपर लिखे श्लोक में ही है। शेष में माधुर्य भाव का सम्बन्ध गोपियों से है।

सातवीं शताब्दी में माघ कवि ने अपने शिशुपाल वध में एक स्थल पर कहा है—....प्रलय के समय जिस कृष्ण के उदर में सारा संसार समा गया था, उसी कृष्ण को एक उत्कंठित युवती ने अपने अधखुले नेत्र के एक कोने से पी लिया।

कवि भट्टनारायण ने, जिनका समय आठवीं शताब्दी से पूर्व आंका जाता है, अपने 'वेणी संहार' नामक नाटक में निम्नलिखित नन्दी श्लोक दिये हैं जिनमें राम

---

३३ गाही सत्तसई २।१२।
३४ गाही सत्तसई २।१४
३५ गाहा सत्तसई ५।४७।
३६ गाहा सत्तसई १।२९।

के अन्तर्गत राधा के केलि कुपित होने और अनुनय करने का स्मरण करता हुआ कवि कहता है—

कालिन्द्याः पूलिनेषु केलि कुपिता मुत्सृज्य रासे रसं ।
गच्छन्ती मनुगच्छतोऽश्रु कलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।।
तत्पाद प्रतिमानवेशित—पदस्योद्भूतरोमोद्गते ।
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिता दृष्टस्य पुष्णातुवः ।।[३७]

....(यमुना के बालुकामय तट पर रास होते समय अप्रसन्न होकर श्री राधिकारानी उसे छोड़कर आँसू गिराती हुई चल दी, कंसारि श्री कृष्ण भगवान् ने भी उनका अनुसरण किया । राधिका जी के चरण चिन्ह पर भगवान् के चरण पड़ते ही भगवान् के रोम-रोम पुलकित हो उठे जिसे देखकर राधिका रानी का भ्रम दूर हो गया और वे मान करना भूलकर सतृष्ण नेत्रों से उन्हें देखने लगी । इस प्रकार का भगवान् का अनुनय सभा में समुपस्थित आप सज्जनों का पो .क बने ।

इसके पश्चात् आठवीं शताब्दी में कविराज वाक्पतिराज के प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'गउड़वहो' के प्रारम्भिक स्तुति व प्रार्थना भाग मे हमें राधा का उल्लेख मिलता है । कवि ने कृष्ण के साथ राधा का भी उनकी प्रिया के रूप में स्मरण किया है । कृष्ण की वन्दना इस प्रकार मिलती है—

सो जयइ जामइल्लायमाण-मुहलालि-वलय-परिप्रालं ।
लच्छि-निवेसन्तेउर-वइवं जो वहइ वण-मालं ।।
बालत्तणम्मि हरिणो जयइ जसो-आए चुम्बियं वयणं ।
पडिसिद्ध नाहि-मग्गुद्ध-णिगायं पुण्डरीयं व ।।
णह-रेहा राहा-कारणाओ करुणं हरन्तु वो सरसा ।
वच्छ-त्थलम्मि कोत्थुह-किरणअन्तीओ कण्हस्स ।।[३८]

"जो कृष्ण गुंजन करते हुए भ्रमरों से घिरी वक्षःस्थल के परिवेश के सदृश बनमाला धारण करते हैं, उनकी जय हो । बालकृष्ण के यशोदा द्वारा चुम्बित उस मुख की विजय हो जो नाभि-मार्ग से प्रतिषिद्ध उर्ध्वनिर्गत कमल के समान (खिला हुआ) है । राधा द्वारा कृष्ण के वक्षःस्थल पर बनी हुई कौस्तुभमणि की किरणों-सी चमकती आर्द्र नख-रेखाएं संसार के दुखों को दूर करें ।"

नवीं शताब्दी के मध्य में आनन्दवर्धन रचित 'ध्वन्यालोक' नामक अलंकार ग्रन्थ में उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित श्लोक है :—

---

३७ वेणी संहार, अंक १।२
३८ गउड़वहो—मंगलाचरण, देवता स्तुति २०-२२

तेषां गोपवधू विलास सुहृदां राधारहः साक्षिणां,
क्षेमं भद्रकलिन्दशैल-तनया-तीरे लतावेश्मनाम् ।
विच्छिन्ने स्मरतल्प कल्पन मृदुच्छेदोपयोगेऽधुना,
ते जाने जरठी भवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः ॥[39]

(प्रवासी कृष्ण वृन्दावन से आये सखा से पूछ रहे हैं—हे भद्र, उन गोप वधुओं के विलास सुहृत और राधा के गुप्त साक्षी कालिन्दी तटवर्ती लता वेश्य कुशल से तो हैं न। स्मरशय्या कल्पन विधि के लिए तोड़ने की आवश्यकता न रहने के कारण लगता है, अब वे पल्लव सूख कर विवर्ण होते जा रहे हैं।

११ वीं शताब्दी में जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में 'कार्य हेतुक' के उदाहरण में निम्नलिखित कविता उद्धृत की है।

याते द्वारावती तदा मधुरिपौतद्दत्त सम्पादनां ।
कालिन्दी तट रूढ़वञ्जुल लता मालिङ्ग्य सोत्कण्ठया ॥
उद्गीतं गुरु वाष्प गद्गद् गलत्तारस्वरं राधया ।
येनान्तर्जलचारि मिर्जल चरैर प्युत्कमुत्कूजितम् ॥[40]

मधुरिपु कृष्ण के द्वारका चले जाने पर राधा ने जमुना के तट पर उगी हुई वेतस् की उस लता को उत्कंठापूर्वक गले से लगा लिया जिसे यमुना में कूदते समय कृष्ण पकड़ कर झुका दिया करते थे, फिर रुधे गले से राधा ने उचस्वर में कण्ठ से जो कुछ गाया उससे यमुना के जलचर भी व्याकुल होकर रो पड़े।)

'कवीन्द्र वचनसमुच्चय' नामक कविता—संग्रह भी दसवीं शताब्दी ई० का माना जाता है। इसकी अनेक कविताओं में कृष्ण के साथ गोपी एवं राधा सम्बन्धी लीला का वर्णन है।[41]

त्रिविक्रम भट्ट ने (संभवतः राष्ट्रकूट नरेश तृतीय इन्द्र के ९१५ ई० वाले नवसारी ताम्रपट के रचयिता) अपने 'नलचम्पू' में नल दमयन्ती के वर्णन के प्रसंग में

---

३९ ध्वन्या०, उद्योत २।—यह विद्याकर कृत 'सुभाषित रत्नकोष' में भी, जो ११०० ई० का संग्रह है, ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं। उसके अनुसार यह विद्या-नाम्नी कवयित्री की रचना है जिसका समय ६५० और ८५० के बीच है।

४० काव्यानुशासन, अध्याय २। दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी के कुन्तक की 'वक्रोक्ति जीवित' अलंकार ग्रन्थ में भी यह उद्धृत है। डा० सुनीलकुमार के द्वारा संपादित ग्रंथावली में भी यह श्लोक है। वहाँ उसे अपराजित की रचना कहा गया है। अपराजित को राजशेखर ने अपने कर्पूर मंजरी में अपना समकालिक कहा है।

४१ कवीन्द्र वचन समुच्चय, २१, २२, ३४, ४१, ४२, ५१३,

कई द्वयर्थक श्लोक दिये हैं जिनमें कृष्ण और उनके जीवन का उल्लेख मिलता है। उसका एक श्लोक इस प्रकार है :—

शिक्षितविदग्ध्यकलाप राधात्यिका पर पुरुषं।
मायाविनि कृतके शिवधे रागं वधायति ॥

(कला कौशल में चतुर राधा परम पुरुष माया मय केशिहन्ता के प्रति अनुरक्त हैं।)

दसवीं शताब्दी के मालवाधीश वाक्पति मुंज परमार के एक अभिलेख में कृष्ण को राधाविरहातुर मुररिप कह कर स्तुति की गई है।[४२]

दशवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काश्मीर में वल्लभ देव नामक टीकाकार हुए हैं। उन्होंने माघकृत 'शिशुपाल वध' के एक श्लोक (४।३५) में आंच लोचक नामक शिरोवस्त्र की व्याख्या करते हुए एक पूर्ववर्ती श्लोक उद्धृत किया है जिसमें कृष्ण को न देखकर राधा दुःखी होकर कहती हैं— "निश्चय ही आज किसी अभागिनी ने मेरे कृष्ण को हर लिया।' इसे सुनकर सखी पूछ बैठती है—राधा, तुम मधुसूदन की बात तो नहीं कह रही हो ?" राधा ने बात बदलते हुए उत्तर दिया—नहीं, मैं तो अपनी प्राण प्रिय ओढ़नी की बात कह रही हूँ।[४३]

इसी शताब्दी के सोमदेव सूरि कृत सुप्रसिद्ध 'यशस्तिलक चम्पू' में अमृतपति नामक स्त्री को अपने आचरण के समर्थन में कहते पाते हैं—राधा क्या नारायण के प्रति अनुरागिनी नहीं थीं।[४४]

उज्जैन नरेश वाक्पति का ग्यारहवीं शती के पूर्वार्द्ध का एक ताम्र अभिलेख है जिसमें मंगलाचरण के रूप में निम्नलिखित श्लोक हैं :—

'यल्लक्ष्मी वदनेन्दुना न सुखितं यन्ना दितम्वादिधे।
वारायन्न निजेन नामि सरसी पदेन शान्ति गतम् ॥
यच्छेपाहि फण्य सहस्त्र मधुर श्वांसन्नचा श्वासितं।
तद्राधा विरहातुरं मुररिपोर्व्वेल्लद्वपुः पातुवः ॥[४५]

(जिसे लक्ष्मी के वदनेन्दु द्वारा सुख प्राप्त न हो सका, जिसे अपने नाभि सरसी पद से शान्ति प्राप्त हुई, जो शेष नाग के सहस्त्र फणों का श्वास आश्वासित न कर सका, वे राधा-विरहातुर मुररिपु तुम्हारी रक्षा करें।)

---

४२ इंडियन एंटिक्वेरी ५, पृ० ५१ तथा एपिग्राफिका इंडिका २३, १०८, ३
४३ नरेन्द्रनाथ लाहा, प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्य ओ राधार उल्लेख सुवर्ण वणिक समाचार, वर्ष ३४ अंक ३।
४४ वही।
४५ इण्डयन एण्टीक्वेरी, १८७७, पृ० ५१।

लगभग ११०० ई० में विद्याधर ने 'सुभाषित रत्नकोष' में अपने पूर्ववर्ती कवियों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह किया है।[४६] इस ग्रंथ में संकलित एक श्लोक की चर्चा पहले हो चुकी है। इसमें राधा कृष्ण सम्बन्धी अनेक श्लोक उद्धृत हैं :—

१—कोऽयं द्वारि,हरिः, प्रयाह्युपवनं शाखा मृगस्यामात्र किं,
कृष्णोऽहं दयितं, बिभेमि सुतरां कृष्णा दहं वानरात्।
कान्तेऽहं मधुसूदनो, व्रजलतां तामेव मध्वन्विता,
मित्यं निर्वचनी कृतोदवितया हीतो हरिः पातुवः ॥[४७]

इसमें राधा कृष्ण की उक्ति प्रत्युक्ति के बहाने प्रणय चपल हास्य है—
द्वार पर कौन है ?
हरि कृष्ण बन्दर
उपवन में जाओ शाखामृग की यहां क्या आवश्यकता ?
हे दयिते, मैं कृष्ण हूँ।
तब तो और भी भय लगता है, बन्दर कैसे काला हो सकता है ?
हे मुग्धे मैं मधुसूदन मधुकर हूँ।
तो पुष्पित लता के पास जाओ।
प्रिया के द्वारा इस प्रकार निर्वचनी कृत लज्जित हरि हमारी रक्षा करें।

१—मयान्विष्टो धूर्तः स सखि निखिलमिव रजनीम्
इह स्यादत्र स्यादिति निपुण मन्यामभिमृतः।
न दृष्टो भाण्डीरे तटयुविन गोवर्धन गिरेर्
न कालिन्द्याः कूलंन चनि चुल कुंजे मुररिपु ॥[४८]

राधा ने कृष्ण को ढूंढने के लिए दूती भेजी। वह वापस आकर कहती है—सखि, मैंने सारी रात उस धूर्त को ढूंढा। पर मिले नहीं। निश्चय ही उसने किसी

---

४६ इस संग्रह की एक खण्डित प्रात को एक डब्लू थामस ने 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' के नाम से प्रकाशित किया था और उन्हें उसके संग्रह कर्ता का पता न था। अभी हाल में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से सम्पूर्ण संग्रह प्रकाशित हुआ है।

४७ सुभाषित रत्नकोष, पृ० २१। यह श्रीधरदास कृत सदुक्तिकर्णामृत में भी है। उसमें यह शुभांक रचित कहा गया है। नन्दनकृत प्रसन्न साहित्य रत्नाकर में यह गोवर्धन की रचना कही गई है। दोनों ही कवियों का काल अज्ञात है। हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' के अध्याय ५ में वक्रोक्ति के उदाहरण स्वरूप यह छंद दिया गया है।

४८ सुभाषित रत्नकोष पृ० २४।

अन्य के साथ अभिसार किया है। मुररिपु को वटवृक्ष तले नहीं पाया, गोवर्धन गिरि के पास भी दिखाई नहीं पड़े, कालिन्दी कूल पर भी नहीं थे, वेतस कुंज में भी नहीं मिले।

२—अग्रे गच्छत धेनु दुग्ध कलशानादाय गोप्यो गृहं।
दुग्धे वस्कयणी कुले पुनरियं राधा शनैर्यास्यति।
इत्यन्य व्यपदेश गुप्त हृदयः कुर्वन् विविक्तं व्रजं।
देवः कारण नन्द सूनुर शिवः कृष्णः समुष्णातुवः॥ [४९]

(गाय के दूध का कलश लेकर गोपियाँ घर जाओ। जो गायें अभी दुही नहीं गयी हैं, उनके दुह जाने पर पीछे राधा भी जायेंगी। मन के दूसरे अभिप्राय को इस प्रकार गुप्त रखकर जो इस प्रकार व्रज को निर्जन कर रहे हैं वे ही नन्द सुत के रूप में अवतीर्ण देव तुम्हारे सारे विघ्न का हरण करें।

सत्रासार्ति यशोदया प्रिय गुणप्रीते क्षणं राधया
लग्नैवल्लव सूनुभिः सरयसं संभाविताम्भोजितैः।
भीतानन्दित विस्मितेन विषम नन्देन चालोकितः
पायाद्वः करमूर्ध सुस्थित महाशैलः सलीले हरिः॥ [५०]

(कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को हाथ से धारण किये देख कर यशोदा, नन्द और राधा के मनोभावों की अभिव्यक्ति इस श्लोक में है। राधा की दृष्टि प्रियगुण के कारण प्रीतिपूर्ण हो उठी।)

४—ध्वस्तं केन विलेपनं कुचयुगे के नांजनं नेत्रयो
रागः केन तवाधरे प्रमथितः केशेषुकेन स्त्रजः।
तेना शेष जनाघ कल्पषमुषा नीलाब्ज भासा सखि,
किं कृष्णेन, नयामुनेन पयसा कृष्णानुरागस्तव॥ [५१]

कुचों के विलेपन को किसने पोंछ दिया है? आँखों के अंजन को किसने पोंछ दिया है? तुम्हारे अधरों के राग को किसने प्रमथित किया? केश की मालाओं को किसने नष्ट किया?

सखि, अशेष जन स्रोत के कल्यणनाशी नील पद्म-मास के द्वारा हुआ।

---

४९ वही पृ० २७ सम्भवतः यह सोत्रोक अथवा सोल्लोक की रचना है।

५० वही पृ० २७। यह सोत्रोक रचना कही गई है। सदुक्तिकर्णामृत में यह सोल्लोक के नाम से उद्धृत है।

५१ वही पृ० १५०

तो कृष्ण ने किया ?

नहीं जमुना के जल से हुआ।

कृष्ण के प्रति ही तुम्हारा अनुराग है।

६—कनक निकष स्वच्छे राधा पयोधर मण्डले
नवजल धर श्याममात्मद्युति प्रतिबिम्बितां
असित सिजय प्रान्तभ्रान्त्या मुहुर्मुहुरुत्थिपत्त्र
जयति की जनित व्रीडानम्रप्रिया हसितो हरिः ॥[५२]

"स्वर्ण के समान राधा के निर्मल स्तन मंडल पर नवीन मेघ के समान श्याम की अपनी काँति प्रतिबिम्बित हुई। काले वस्त्र के छोर के भ्रम से बार-बार उठाये गये वक्षस्थल से उत्पन्न लज्जा के कारण झुकी हुई प्रिया के द्वारा हंसे गये हरि की जय हो।

७—मन्द क्वणित वेणु रह्नि शिथिले व्यावर्तमन् गोकुलं
वर्हामीडक मुत्तमाङ्ग रचितं गोधूलिधूमं दधत्
म्लायन्त्या वनमालया परिगतः श्रान्तोऽपि रम्भा कृतिः
गोपस्त्री नयनोत्सवो वितरतु श्रेयांसिवः केशवः ॥

"दिन ढलता जा रहा है। कृष्ण गायों को लौटा रहे हैं। उनके सिर पर गोधूलि धूम्र मोर के पूंछ की चूड़ा है, गले में दिवस म्लान वनमाला है, श्रान्त होने पर भी वह रम्य है—ये कृष्ण हैं गोपस्त्री नयनोत्सव।'

बारहवीं शताब्दी में लिखित शारदातनय के भाव प्रकाश में 'रामा राधा' नामक एक नाटक से एक श्लोक का अंश इस प्रकार उद्धृत किया गया है :—

किमेषा कौमुदी किंवा लावण्य सरसी सखे।
इत्यदि रामा राधायां संशयः कृष्ण भाषिते ॥[५३]

हेमचन्द्र (१२ वीं शताब्दी) द्वारा उद्धृत अपभ्रंश दोहों में एक इस प्रकार है—

हरि नच्चाविउ पंगणहि विम्हइ पाडिउ लोउ।
एम्वहि राह पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥

---

५२ वही पृ० २०। यह श्लोक रचित है। इसे भोजराज ११ वीं शती में अपने सरस्वती कण्ठाभरण में और हेमचन्द्र १२ वीं शती ने 'काव्यानुशासन' में उद्धृत किया है। इसी प्रकार के भाव राधा के संबंध में क्षेमेन्द्र के 'दशावतार' में भी हैं।

५३ नरेन्द्र नाथ लाहा, प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्य श्री राधार उल्लेख सवर्ण वणिक समाचार वर्ष ३४ अंक ६

(हरि को प्रागंण में नचाने वाले तथा लोगों को विस्मय में डाल देने वाले राधा के पयोधरों को जो भावे सो हो। संभवतः हास्य प्रगल्भा सखी के वचन राधा के प्रति हैं)

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (११००-११७५ ई०) ने गुणचन्द्र के सहयोग से नाट्य शास्त्र की एक पुस्तक 'नाट्य दर्पण' नाम से लिखी है। इसमें मेज्जल कवि कृत 'राधा विप्रलम्भ' नाटक का उल्लेख है। यह नाटक उपलब्ध नहीं है, किन्तु नाम से अनुमान किया जा सकता है कि इसकी रचना के समय तक विप्रलम्भ भाव का सम्बन्ध राधा के साथ जुड़ गया था। अभिनवगुप्त ने भरत के नाट्य शास्त्र की जो टीका की है उसमें भी मेज्जल कवि का उल्लेख है। यदि ये और 'राधा विप्रलम्भ' के रचियता एक ही हैं तो उस नाटक की रचना दसवीं शताब्दी की मानी जा सकती है। इसी शताब्दी की पुष्प दन्त कवि की रचना भेंट गोपियों के साथ कृष्ण का विहार वर्णित है। धोई के समय में कृष्ण मन्दिर में मूर्ति रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। यहां देव-दासियां अपने पति कृष्ण की सेवा में नृत्य करती थीं। धोई के 'पवन दूत' में माधुर्य भाव का आभास मिलता है।"[५४]

महाराष्ट्री प्राकृत में 'वज्जालग्ग' नाम का एक संकलित काव्य-ग्रंथ है। इसके संकलयिता श्वेतम्बर शाखा के जैन 'जयवल्लभ' थे। इनको क्षेमेन्द्र से पूर्व का इसमें कृष्ण माना गया है। शृंगार के नायक माने गये हैं। विशाखा और राधा की प्रमुखता है। राधा और गोरी से सम्बन्धित एक छन्द इस प्रकार है :—

राहाए कवोलतल-च्छलन्त जोण्हानिवायधवलंगो।
रइ रहसवावडाए धवलो आलिगिओ कण्हो ॥[५५]

"रति में वेग से संलग्न राधा के कपोलतल से विकीर्ण होती हुई चांदनी में कृष्ण इतने गोरे हो गये कि किसी गोपी ने भ्रम से उसी समय उन्हें गले से लगा लिया।"

संयोग वर्णन ही नहीं, विप्रलम्भ-वर्णन भी उच्च कोटि का उपलब्ध होता है—

कण्हो देवो देवा वि पत्थरा सुयणु निम्मविज्जन्ति।
अंसूहि न मउइज्ज-न्ति पत्थरा किं वं रूवेण ॥
महुरारज्जे वि हरी न मुयइ गोवालियाण तं पेम्मं।
खण्डन्ति न सप्पुरिसा पणयपरूढाइ पेम्माइं ॥[५६]

---

५४ पवन दूत-५।२८—कविराज धोई का स्पष्ट उल्लेख जयदेव ने गीत गोविन्द के आरम्भ में ही किया है। गी० गो० १।४

५५ वज्जालग्ग—५९६

५६ वही—६०२, ६०३

"हे सुन्दरी, देवता पत्थर के बने होते हैं और कृष्ण भी देवता ही है। आंसुओं से पत्थर मुलायम नहीं होते, फिर निष्फल रोने से क्या लाभ ? कृष्ण मथुरा राज्य में रहने पर भी गोपियों के प्रेम को नहीं छोड़ते, सचमुच जो सज्जन हैं वे हृदय में एक बार उगे हुए प्रेम को तोड़ते नहीं।"

इसके अनन्तर महाकवि क्षेमेन्द्र ऐसे प्रथम महाकवि मिलते हैं, जिन्होंने आदि से अन्त तक कृष्ण चरित्र के मार्मिक पक्षों को अपनाकर अत्यन्त मनोयोग से अनुपम काव्य रचना की है। 'दशावतार-चरित' में अपनी अपूर्व काव्य प्रतिमा का परिचय दिया है। कवि ने यद्यपि दसों अवतारों को अपने महाकाव्य का विषय बनाया है किन्तु उनकी चित्तवृत्ति पूर्णतया कृष्ण-चरित्र में ही रमी है। राधा का कृष्ण को प्रधान प्रेयसी के रूप में स्पष्ट उल्लेख उन्होंने किया है। राधा के साथ कृष्ण के चरित्र की यह एक सशक्त लड़ी है। महाकवि एक स्थान पर कहता है --

> प्रीत्यै बभूव कृष्णस्य श्यामानिचय-चुम्बिनः।
> जाती मधुकर स्येव राधैवाधिक वल्लभा ॥

"जैसे भौंरे को सभी फूलों में जाती फूल सबसे अधिक प्रिय होता है उसी प्रकार गोपाङ्गना-समूह में विचरने वाले कृष्ण को राधा ही सर्वाधिक प्रिया हुई।"

राधा का नायिका के रूप में ग्रहण और संयोग तथा वियोग की पृष्ठ-भूमियों पर उनके विविध रूपों का रमणीय चित्र इस महाकवि से पहले किसी दूसरे कवि ने नहीं किया है। एक स्थान पर कृष्ण की वियोगिनी राधा को नई वर्षा ऋतु की तरह कवि ने बताया है। कृष्ण के विरह में गोकुल की सभी गोपियाँ स्वप्न में भी अपने को कृष्ण की भुजाओं में पाती हैं और सोते में उच्च कण्ठ से चिल्ला पड़ती है "हे वञ्चक ! छोड़ दे, मुझे छोड़ दे"—

> गोविन्दे गुरुसन्निधौ परवशावेशादनुक्त्वा गते,
> सुप्तानां बकुलस्य शीतल तले स्वैरं कुरङ्गीदृशाम्।
> स्वप्नालिङ्गन-सङ्गतेऽङ्गलतिका-विक्षेप-लक्ष्या मुहु-
> र्मुग्धा वञ्चक मुञ्च-मुञ्च कितवेत्युच्चैरुच्चैर्गिरः ॥[५७]

क्षेमेन्द्र के ताल-बद्ध और कोमलकान्त पदावली से युक्त छोटी गीतियाँ लिखी हैं। कवि ने एक गीति की जिसको ग्रामीण गोपियाँ समवेत स्वर में गाती हैं। पृष्ठ भूमि इस प्रकार दी है—

> गोविन्दस्य गतस्य कंसनगरी व्याप्ता वियोगाग्निना,
> स्निग्ध-श्यामल-कूल-लीनहरिणे गोदावरी-गहरे।

---

५७ दशावतार चरित्र ८।१७५

रोमन्थस्थित-गोगणे परिचयादुत्कर्णमाकर्णित
गुप्त गोकुल पल्लवे गुण गणं गोप्यः सरागा जगुः ॥[५८]

"गोविन्द के मथुरा चले जाने पर उनकी विरहाग्नि से संतप्त होकर यमुना के तटवर्ती स्निग्ध-श्यामल हरे-भरे कुञ्ज में गोपियों ने 'राग के साथ' कृष्ण का इतना मधुर गान किया कि गायों ने जुगाली करना बन्द कर दिया और कान खड़े करके वे भी मुग्ध होकर सुनने लगीं।" गीति इस प्रकार है—

ललित-विलास-कला-सुख-खेलन-
ललना-लोभन-शोभन-यौवन
मानित-नवमदने ।
अलि-कुल-कोकिल-कुवलय-कज्जल-
काल-कलिन्द-सुता-विवलज्जल-
कालिय-कुल-दमने ।
केशि-किशोर-महासुर-मारण
दारुण-गोकुल-दुरित-विदारण-
गोवर्धन धरणे ।
कस्य न नयनयुग रति सज्जे
मज्जति मनसिज-तरल-तरङ्गे
वर-रमणी-रमणे ।[५९]

लगभग एक शताब्दी पश्चात् आने वाले कवि जयदेव महाकवि क्षेमेन्द्र के चिर ऋणी हुए। भाव, भाषा, पदावली, गीति सभी क्षेत्रों में क्षेमेन्द्र ने जयदेव को बहुत कुछ दिया।

महाकवि गोवर्धन का समय जयदेव से पूर्व का प्रतीत होता है। वे समकालीन भी हो सकते हैं। इनकी 'आर्या सप्तशती' में शृंगार-रस वर्णित है। राधा कृष्ण के शृंगार का वर्णन भी कतिपय आर्याओं में पाया जाता है:—

राज्याभिषेक सलिलक्षालितमौलेः कथासु कृष्णस्य ।
गर्वभरमन्थराक्षी पश्यति पद पङ्कजं राधा ॥[६०]

राधा ने जब सुना कि कृष्ण का राज्याभिषेक हुआ, तब उसकी आँखें गर्व के के भार से झुक गई और कृष्ण की चर्चा के बीच वह नीचे अपने चरण-कमलों को निहारने लगी।

---

५८ वही ८।१७२
५९ वही ८।१७३
६० आर्या सप्तशती—एकार० ४८८।

कवि जयदेव ने अपनी रचना के आरम्भ में लिखा है—इस प्रबन्ध में वासुदेव की कामकेलि का वर्णन है तथा इस रचना का उद्देश्य हरिस्मरण और विलास कला के द्वारा श्रोताओं को मासिक तृप्ति प्रदान करना है।[६१] जयदेव ने कृष्ण को साक्षात विष्णु माना है। हरि, माधव, जनार्दन तथा नारायण शब्दों का भी प्रयोग किया है। एक स्तुति में कालिया नाग का विनाश करने वाले गोपाल का कमलापति विष्णु से तादात्म्य स्थापित किया है।[६२]

जयदेव की कविता ने समस्त कृष्ण-भक्ति जगत में कीर्ति कमाई। उसकी कोमलकांत पदावली भक्तों को गद्‌गद कर देती है। राधा कृष्ण का संयोग वर्णन ही इसमें वर्णित है। राधा का मान तथा कृष्ण की उनके प्रति अनुनय विनय घोर शृंगारी शब्दों में वर्णित है।

> व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं,
> तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः।
> सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय,
> स्वयमति शर्यास्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥[६३]

"हे कृशांगि। आपका मौन भाव मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे तरुणि ! मीठी-मीठी बातों से पंचम स्वर में मुझसे बातें कर मेरे हार्दिक संताप को दूर करिये, हे चारुवक्ये ! मेरी ओर जरा प्रेम से एक नजर देखिये, अब मुझे मत ठगिए, हे मुग्धे ! मैं आपका अनन्य प्रेमी स्वयं आ गया हूं।'

कहीं कहीं स्वाभाविक तथा सरल उक्तियाँ भी कृष्ण के मुख से निस्तृत हुई है :—

> त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
> त्वमसि मम भवजलधि रत्नम्
> भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
> तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥[६४]

"हे प्रिये ! आप मेरे लिये अलंकार हैं, आप मेरा प्राण है, आप मेरे लिये संसार में रत्न के सदृश है, इसलिये सदा मेरे ऊपर आप कृपा करती रहें, आप मेरे ऊपर कृपालु हों, इसके लिए मेरा हृदय सदा प्रयत्न करता रहता है।"

गीत गोविन्द शृंगार काव्य है किन्तु आभीरों की प्रेमोपासना का विकसित

---

६१ गीत गोविन्द—द्वितीय सर्ग २।
६२ गीत गोविन्द—द्वितीय सर्ग ३।
६३ गीत गोविन्द—दशम सर्ग ४।
६४ गीत गोविन्द दशमसर्ग श्लोक ३

रूप होने तथा भक्ति पर के कृष्ण साहित्य से अनुप्राणित होने के कारण इसके श्लोकों में भी व्यक्ति की क्षीण धारा अन्तः सलिला की भांति निरन्तर प्रवाहित होती रही है। भाव एवं अभिव्यंजना सभी दृष्टियों से जयदेव का गीत गोविन्द इसी काव्य-धारा का पूर्ण विकसित रूप है।

गीत गोविन्द में नग्न चित्रों को प्राप्ति का कारण तत्कालीन बंगाल में फैली वज्रयानियों की 'मुद्रा साधना' प्रतीत होती है। जयदेव ने भक्ति एवं शृंगार तत्वों से राधा-कृष्ण के जिस चरित्र का निर्माण किया वह अपने माधुर्य के कारण अत्यन्त लोक प्रिय बना कि हमारे आलोच्य काल का साहित्य उससे अनुप्राणित हो उठा।

गीत गोविन्द के साथ-साथ कुछ अन्य ग्रन्थों की रचना भी इस काल में हुई जिनमें लीला शुरू का 'कृष्ण कर्णामृत' और ईश्वरपुरी का 'श्रीकृष्ण लीलामृत' प्रमुख हैं। 'कृष्ण कर्णामृत' को श्री चैतन्यदेव स्वयं दक्षिण से लाये थे, ऐसा कहा जाता है 'श्री कृष्ण लीलामृत' में राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति का सरस वर्णन है। इन दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त 'गीत गोविन्द' की परिपाटी पर उसी की प्रेरणा से अनेक काव्य ग्रन्थ रचे गये। प्रकाशानन्द सरस्वती ने 'संगीत माधव' चतुर्भुज ने 'गीत गोपाल' तथा राज प्रताप रुद्रदेव ने 'अभिनव गीत गोविन्द की रचना की।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के संधिकाल में श्रीधरदास ने 'संयुक्ति कर्णामृत' मुक्तक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमें बारह शीर्षकों में गोपाल कृष्ण की लीला के साठ श्लोक हैं।

यों तो कृष्ण का चरित्र अब भारत में सर्वत्र गाया जाता था। क्षेमेन्द्र और गीत गोविन्द जैसे काव्य-ग्रन्थों ने उसे भारत के कोने-कोने में बिखेर दिया था किन्तु इस युग में इसका प्रधान केन्द्र बंगाल के वैष्णवमतानुयायी सेन राजाओं का राज्य था। कृष्ण काव्य की यह प्रगति अभूत पूर्व थी। बारहवीं शताब्दी के बाद बोपदेव की 'हरिलीला' लिखी गई। श्रीधर स्वामी की व्रजबिहारी, रामचन्द्र भट्ट की 'गोपलीला', चतुर्भुज की 'हरि चरित काव्य', व्रजलोलिम्बराज की 'हरिविलास काव्य', पद्मनाभ की 'गोपाल चरित', कृष्ण भट्ट का 'मुरारिविजय नाटक तथा श्रीराम का 'कंसनिधन महाव्य' लिखे गये प्रतीत होते हैं।[६५]

पाँचवीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक राधाकृष्ण प्रेमकाव्य की सुनिश्चित परम्परा प्राप्त होती है। इस काव्य-धारा में यत्र-तत्र आध्यात्मिकता भी समाविष्ट है। सम्भवतः इसी से अनुप्राणित होकर निम्बार्क ने अपने आराध्य कृष्ण के बामांग में राधा की प्रतिष्ठा की। भाव, रस, शैली से प्रभावित होकर अनेक काव्य-ग्रन्थों का

---

६५ हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, सुकुमार सेन, पृ० ४८५

प्रणयन हुआ। क्षेमेन्द्र और जयदेव की रचनाओं में माधुर्य भक्ति को एक सुदृढ़ आधार मिला जिसके फलस्वरूप सभी भक्त सम्प्रदायों में इसकी मान्यता हुई। राधा-कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्ध एवं शृंगार निरूपण में नायिका भेद, शाक्तों के वामाचार तथा बौद्धों की वज्रयानी साधना का भी योग हुआ। नायिका भेद का चरम विकास विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' तथा भानुदत्त की रस मंजरी में पाया जाता है। दोनों ग्रन्थों का निर्माण काल तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी है।

शाक्तों के वामाचार के अन्तर्गत पंचमकारों—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा एवं मैथुन—को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। इन तत्वों के आध्यात्मिक अर्थ प्रारम्भ में ग्रहण किये जाते थे किन्तु कालान्तर में नितान्त लौकिक रूप में प्रयुक्त होने लगे।[६६] सम्भव है आभारों के प्रेमोपासना के विकास में इस साधना का भी हाथ रहा हो क्योंकि राधा को कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति मानना इसी का प्रभाव माना गया है।[६७] कुछ भी हो राधा के स्वरूप निर्माण में, उसकी काम केलि के विकास में तथा धार्मिक क्षेत्र के अन्तर्गत काम-क्रीड़ाओं की स्वीकृति में शाक्तों के वामाचार का हाथ अवश्य रहा है।[६८]

लगभग ८वीं शताब्दी तक बौद्धमत विकृत हो चुका था। बौद्ध भिक्षुओं ने 'गुह्य समाज' तथा 'चक्र संवर' तन्त्रों का निर्माण किया जिनमें धर्म के नाम पर घृणित आचारों मांस, मदिरा, स्त्री सम्भोग आदि का समर्थन किया गया था। इस नवीन धर्म को वज्रयान कहा गया।[६९] विशिष्ट प्रकार के परस्त्री (मुद्रा) सम्भोग को धार्मिक क्षेत्र में 'परकीया-भाव' नाम दिया गया। पालवंशीय शासक इसके समर्थक थे। सेनवंशियों ने इन्हें हराकर राज्य किया। किन्तु इस परकीया भाव को राधा के सम्बन्ध में उन्होंने भी ग्रहण किया।

हिन्दी भाषा साहित्य में कृष्ण का अंकन—१५०० ई० पू० से पूर्व

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में कृष्ण चरित्र सम्बन्धी प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। संस्कृत के माध्यम से समस्त भारत में कृष्णाख्यान का प्रचार तथा प्रसार हुआ।। प्राकृत भाषा[७०] ने उसे सर्वजन सुलभ बना दिया। कृष्ण को विशुद्ध मानवीय

६६ रामदास गौड़, हिन्दुत्व, पृ० ७१७-७१९, तथा बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ७६५-७६७।

६७ डा० हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ० २६९।

६८ डॉ० दयाशंकर मिश्र—हिन्दी काव्य में कृष्ण का चारित्रिक विकास, पृ० ८०।

६९ रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १८६।

७० 'इसे प्रारम्भ में अमीरों की भाषा माना जाता था'—हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका १७—१८

स्तर पर देखने की चेष्टा हुई। अपभ्रंश भाषाओं ने कृष्ण-कथा को अपनी प्रादेशिक विशेषताओं से ओतप्रोत कर दिया। मराठी अपभ्रंश मागधी अपभ्रंश तथा बंगला अपभ्रंश में भी कृष्ण-कथा की रचना हुई। बंगला के सेन राजा वैष्णव मतानुयायी तथा काव्य रसिक थे। उनके कारण कृष्ण-काव्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। जैनाचार्य हेमचन्द्र जयबल्लभ, क्षेमेन्द्र तथा जयदेव कवियों द्वारा रचित काव्य ने कृष्णाख्यान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न कर दी। फलस्वरूप कृष्ण लीला के लिये भूमि प्रस्तुत हो गई। शूरसेनी अपभ्रंश से धीरे-धीरे विकास कर हिन्दी की धारा बहती रही। अपने साथ कृष्ण-काव्य के जो तत्व बहाकर लाई थी उसके बीज तटवर्ती स्थानों में गहरी जड़ें जमाने लगे थे। लहलही खेती को अचानक जिसने देखा वही वाह-वाह कह उठा। सन् ईसवी की छटी शताब्दी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा का साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया। हिन्दी उसी में से धीरे-धीरे विकसित हो रही थी। १५ वीं शताब्दी में 'बिजली की चमक के समान'[१] धार्मिक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी का शुद्ध और परिष्कृत रूप दृष्टिगोचर हुआ। अचानक जैसे परिपक्वता आ गई। परन्तु कारण बिना कार्य का अचानक इस प्रकार हो जाना कैसे संभव है। 'उसके लिये तो सैकड़ों वर्ष से मेघखंड एकत्र हो रहे थे।'[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरसागर पर टिप्पणी देते हुये कहा था—'सूरसागर किसी चली आती गीतकाव्य परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।'[३] पिछले पृष्ठों में पांचवी शताब्दी से १५ वी शताब्दी तक विकास के कुछ चरणों का उल्लेख किया गया है। हिन्दी में विकास की परम्परा देखने के लिये अत्यल्प साहित्य उपलब्ध है। 'सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य' के लेखक डाक्टर शिव प्रसादसिंह ने इसका सम्यक विवेचन किया है। बारहवी शताब्दी के बाद लगभग दो शताब्दियों तक इस क्षेत्र में कुछ विशेष उल्लेखनीय रचना नहीं हुई। वस्तुतः १२ वी से १४ वीं शताब्दी का काल मध्यकालीन भाषाओं से नव्य भाषाओं के रूप ग्रहण करने का समय है। इसे संक्रान्ति काल कहा जा सकता है।'[४] आचार्य हेमचन्द्र के समय से ही साहित्यिक अपभ्रंश की प्रतिष्ठा कम हो गई थी संभवतः विक्रम की सातवी शताब्दी में ग्यारहवी तक अपभ्रंश की प्रधानता

---

७१ डा० ग्रियर्सन

७२ हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ४५

७३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६५

७४ डा० शिवप्रसादसिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य प्रस्ताविक पृ० ६

रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई।[७५] हेमचन्द्र की अपभ्रंश हिन्दी ब्रजभाषा की पूर्व पीठिका है यह निष्कर्ष निकलता है। १४०० ई० में मैथिल प्रदेश में अभिनव जयदेव मैथिल कोकिल विद्यापति का आविर्भाव हुआ। उनकी वाणी में कृष्ण की लीला का माधुर्य-भाव घोर शृंगारी रूप में अभिव्यक्त हुआ। हिन्दी में कृष्ण साहित्य हर विद्यापति का प्रभाव उतना नहीं दिखलाई पड़ता जितना संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश साहित्य-भण्डार का दृष्टिगोचर होता है। राजनैतिक अवस्था तथा धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव भी इस पर पड़ा। १५०० से १८०० ई० के साहित्य का प्रचुर भंडार अवलोकन करने से पूर्व तत्संबंधी विकासोन्मुख हिन्दी-साहित्य पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है :—यद्यपि ये कवि नगण्य हैं किन्तु सूरदास आदि कृष्ण-काव्य रचयिताओं को इनका योगदान कहां तक है यही देखना है।

गोपाल नायक और बैजूबावरा संगीतकार थे। इन्होंने अपनी संपूर्ण संगीत प्रतिभा को अपने आराध्य भगवान कृष्ण के चरणों पर लुटा दिया था। इनके पदों में आत्मनिवेदन, गोपी-प्रेम तथा भक्ति के विविध पक्षों का बड़ा ही विशद और मार्मिक चित्रण हुआ है। 'राज कल्पद्रुम' में इन दोनों कवियों की रचनाएँ संकलित हैं।

काँधे कामरी गो अलाप के नाचे जमुनातीर
पीछे रे पांवरे नेति नाचि लाई मांगवा—
धुव आली मृदग बांसुरी बजावें गोपाल बैन वतरस ले आनन्द।[७६]

बैजू बावरा ब्रज भाषा के कवि हैं। इसकी रचना उच्चकोटि का काव्य है:—
आंगन-भोर भई ब्रजपति के आज नन्द महोत्सव भयो।
हरद दूब दधि अक्षत रोरी ले छिरकत परस्पर गावत मंगलचार नयो।
ब्रह्मा ईस नारद सुर नर मुनि हरषित विमानन पुष्प वरस रंग ठयो।
धन धन बैजू संतन हित प्रकट नन्द जसोदा ये सुख जो दयो।

दोनों कवियों की रचनाओं में निहित संगीत-तत्त्व परवर्ती कृष्ण भक्त कवियों की संगीत साधना की पृष्ठ भूमि से जान पड़ते हैं किन्तु अभिव्यंजना शैली निम्न स्तर की है।

बैजू बावरा के एक अन्य पद में भी ध्रुपद-शैली का पूर्ववर्ती रूप दृष्टिगत होता है।

बोलियो न डोलियो ले आऊं हूँ प्यारी को,
तून हो सुघर वर अब हीं पै जाऊं हूँ।

---

७५ गुलेरी—पुरानी हिन्दी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ०, स० २००५, २६ई०
७६ राग कल्पद्रुम में आये बैजू के पदों को श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'संगीत कवियों की हिन्दी रचनाओं एकत्र किया है।

मानिनी मनाय के निहारे पाग स्याय के,
मधुर बुलाय के तो चरण गहाऊँ हूँ।
सुनरी सुन्दर नारि काहे करत एतीरार,
मदन डारत पार चलन पन तुझाऊँ हूं।
मेरो सीख मान नर मान न करो तुम,
हे जू प्रभु प्यारे सो बहियां गहाऊँ हूं।[77]

सन् १२७२ ई० में महाराष्ट्र के अभंगों के रचयिता नाम देव का मान हिन्दी के प्रथम कृष्ण भक्ति कवि के रूप में लिया जा सकता है। ये विठोबा के अनन्य भक्त थे। इनकी कृष्ण सम्बन्धी हिन्दी कविता इस प्रकार है—

धनि धनि मेघा-रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़े कावंली।
धनि धनि तू माता देवकी, जिह गृह रमैया कंवलापती॥
धनि धनि बनखण्ड वृंदावना, जहँ खेले श्री नारायना।
वेनु बजावै, गोधन चौरे, नामे का स्वामि आनंद करे॥[78]

नामदेव की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है, जो शौर सेनी का ही एक रूप है। शूरसेन से यह भाषा दक्षिण ले जाई गई और वहां उसे स्थानीय प्राकृत के अति न्यून प्रभाव में उपस्थित करके एक साहित्यिक भाषा का रूप दिया गया।[79]

सन् १३५४ ई० में कृष्ण चरित्र सम्बन्धी सबसे प्राचीन ब्रजभाषा हिन्दी ग्रन्थ साधार अग्रवाल जैन कृत 'प्रद्युम्नचरित' है। इसके नायक कृष्ण के प्रद्युम्न है। २४ तीर्थंकरों की वंदना के बाद कवि ने द्वारिकापुरी का वर्णन किया है। रनिवास में जाने पर सतभामा ने उनका स्वागत न करके कुरूपता का उपहास किया। नारद सतभामा के मानमर्दन का उपाय सोचने लगे। उन्होंने कुण्डनपुर के राजा भीष्मक से उनकी पुत्री रुक्मणि के कृष्ण से विवाह होने की भविष्यवाणी की और विवाह होने पर सतभामा और रुक्मणि में बाजी लगवा दी कि जिसके प्रथम पुत्र होगा, दूसरे उसके चरणों में अपने केश रखेगी। रुक्मणि के प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं और उन्हें एक दैत्य उठा ले जाता है। मेघकूट नरेश कालसंबर और उनकी रानी कनकमाला उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त कर लेते हैं। बड़ा होने पर वे कालसंबर के समस्त शत्रुओं को परास्त करके एक सर्वांग सुन्दरी से विवाह कर लेते हैं। नारद उन्हें लेकर द्वारिका आते हैं और मां

७७ डा० शिवप्रसादसिंह—सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य, पृ० २२३।
७८ रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ६६।
७९ डा० मनमोहन घोष—महाराष्ट्री शौरसेनी का परवर्ती रूप (जर्नल आफ डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय वाल्यूम २१, १९३३)।

से मिलने का स्वांग रचाते हैं। माँ को अपने साथ लेकर उन्होंने यादवों की सभा में जाकर कृष्ण को ललकारा "ओ यादवों और वीर पांडवों से सुसज्जित कृष्ण, मैं तुम्हारी प्राण वल्लभा को अपहृत करके लिये जाता हूं, मैं दुर्गुणी नहीं हूं केवल बल-पारखी हूँ ताकत हो तो उन्हें छुड़ाओ।"

तत्पश्चात् युद्ध होता है। नारद रहस्योद्‌घाटन करके युद्ध बन्द करवा देते हैं। वधू के साथ प्रद्युम्न का स्वागत होता है बधाइयां बजती हैं। अन्त में बहुत वर्षों तक राज्य करके कृष्ण के मरण का समाचार पाकर प्रद्युम्न ने जिनेन्द्र से दीक्षा ली।

प्रद्युम्न—कृष्ण युद्ध का पद इस प्रकार है :—

ईहि मोसों बोल्यो अगलाइ, अब मारउं जाइ पलाइ।
उपनेउ कोप भई चित कांणि, धनुप चढायेउ सारंग पांणि।
अर्धचन्द्र तिहि साधिउ बांण, अब या कउ देषिअउं पराण॥
साधिउ धनुप उदीठउ वाम, कोपारूढ़ मयण भौ ताम॥[८०]

प्रद्युम्नचरित का कवि जैन है, अतः हिन्दू पुराणों की कहानी को काफी परिवर्तित कर दिया गया है। इस ग्रन्थ से कृष्ण-कथा की लोकप्रियता का पता चलता है।

सन् १४३५ के लगभग विष्णुदास नामक कवि ने गीत-पद्धति में 'महाभारत', 'स्वर्गारोहण', 'रुक्मणिमंगल' और 'सनेह लीला' नामक कृष्ण सम्बन्धी चार ग्रंथ लिखे। इनमें से प्रथम दो ग्रंथों में कृष्ण की चर्चा प्रसंग वशात है, शेष दो का सम्बन्ध सीधे कृष्ण से है। रुक्मणि-मंगल में रुक्मणि-कृष्ण' की परिणय-कथा है तथा सनेह लीला भ्रमर गीत का पूर्व रूप सा प्रतीत होता है। इसमें स्नेह विह्वल कृष्ण उद्धव को गोपियों के लिये ज्ञान का संदेश देकर भेजते हैं किन्तु ज्ञान-गंभीर उद्धव ब्रज की धूलि में सारी निर्गुण गरिमा को लुटाकर मथुरा वापस लौट आते हैं। रुक्मणि-मंगल की रचना पदशैली में हुई है बीच बीच में दोहे भी हैं। पदों में यत्र-तत्र राग-रागनियों का संकेत है। सनेह लीला केवल दोहों में लिखी हुई है। विष्णुदास की भाषा १५वीं शताब्दी की ब्रज भाषा का आदर्श रूप है।[८१]

विष्णुदास ब्रजभाषा के गौरवास्पद कवि हैं तथा आने वाली भक्ति परम्परा में अपना महत्वपूर्ण योग देते दृष्टिगोचर होते हैं। भाषा का निर्माण भी इनके काव्य में दृष्टिगत होता है। कवि ने मार्मिक और मधुर काव्य की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत की है। रुक्मणि मंगल का एक उदाहरण :—

---

८० प्रद्युम्न चरित—४०२—४०३
८१ डॉ० शिवप्रसाद सिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० १५१

मोहन महलन करत विलास ।
कनक मन्दिर में केलि करत हैं और कोउ नहिं पास ।।
रुक्मिनी चरन सिरावै पी के पूजी मन की आस ।
जो चाहो सो अंवे पावों हरि पति देवकि सास ।।
तुम विनु और न कोऊ मेरो, धरणि पताल अकास ।
निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास ।।
घट घट व्यापक अन्तर जामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास ।
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम को दास ।।[८२]

सनेह लीला के कुछ दोहे उद्धव के उत्तर में इस प्रकार हैं :—

तब ऊधो आये यहाँ श्री कृष्ण चन्द के धाम ।
पाय लागि वन्दन कियो बोलत ले ले नाम ।।
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय ।
वे जानैं कै तुम भले मो पै कह्यो न जाय ।।
अस गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।
मैं पूछी षट् मास लों तऊ न पायो अन्त ।।
ब्रज तजि अनत न जायहों मेरे तो या टेक ।
भूतल भार उतारहो धरिहौं रूप अनेक ।।[८३]

सन् १४७० ई० में लालचदास हलवाई द्वारा हरिचरित लिखा गया । इनकी कथा का आधार भागवत ग्रंथ है । गोवर्धन लीला और इन्द्र स्तुति तक २५ अध्याय दशम स्कंध के विहार राष्ट्र भाषा परिषद् ने 'हरि-चरित' नाम से प्रकाशित कराये हैं । केवल ४५ अध्याय लालचदास द्वारा रचित हैं शेष आसानन्द नामक व्यक्ति ने सौ वर्ष बाद पूरे किये । ग्रंथ अवधी भाषा में कड़वक पद्धति से दोहे और चौपाइयों में लिखा हुआ है । आठ चौपाइयों बाद एक दोहे का क्रम है । इस ग्रंथ का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक है, काव्य-कला की दृष्टि से कम । एक ग्रंथ विष्णुपुराण के आधार पर भी कवि का लिखा बताया जाता है । 'हरिचरितों' की कुछ झलकियाँ इस प्रकार हैं :—

जेहि दिन ते लालच प्रभु, गोकुल प्रगटे आइ ।
कोटिन्ह कोटिन्ह लछिमी, गोधन गनि न सिराइ ।।[८४]

---

८२ खोज रिपोर्ट, १९२६-२८, पृ० ७५९, संख्या ४९८ ए

८३ सनेहलीला—क्रमशः १०९, १११, ११३ तथा ११८ । खोज रिपोर्ट वही पृ० ७५९ सं० ४९९

८४ हरिचरित—दोहा—पृ० ८४

बकासुर-वध

पैठि पियहिसी निर्मल नीरा । जंतु एक देखा तेही तीरा ।
दैत बकासुर आही रे भाई । बक के रूप वैठा मुख बाई ।।
क्रिस्नहि ग्रासि वैठु बक जबहीं । रचना रची विसंभर तबही ।
अर्घ कंठ बिच रहे मुरारी । कलिमल हरन भगतिभैहारी ।।
जेहि-जेहि सुरति बकाक्षर मारा । ग्रिह-ग्रिह प्रगटहि गोपकुमारा ।
मुनि व्रिजबासी अचरज मानही । तबहू सो नंद सुत करिजानही ।।[८५]

केशव कायस्थ कवि ने सन् १४७४ में 'कृष्ण क्रीड़ा काव्य' लिखा । यह काव्य चालीस सर्गों में विभक्त है । ग्रंथ गुजराती में है केवल एक स्थान पर ब्रजभाषा के दो पदों का प्रयोग किया है । पहले पद में राधा के मान का वर्णन है और दूसरे में यशोदा और गोपी-संवाद के रूप में कृष्ण की माखन चोरी आदि का उलाहना दिया गया है । दूसरे पद का कुछ अंश इस प्रकार है :—

कारिका

सुन हो जशोमति माय कृष्ण रत हैं अति अनियाय

त्रोटक

कृष्ण करत हैं अनियाय अत लीवल गोपी को कहूयो न माने ।
देखत लोक लाज कछु नाहीं नाट्य बोलावत हो शाने ।।
हम गुनवती सती सुलखना, यह विष्य रहो न जाय ।
कोपहि काल्य सुनेगो कंसासुर सुन हो जसुमति माय ।।

कारिका

अरे अरे बाउरी गोपी, ते लाज हमारो लोपी ।

त्रोटक

लाज हमारी लोपी तुमही सब मिलि वाल भुलायो
जहां जहां फिरयो गहन वन गोचर तहां तहां संग आयो
अंजी अखिया कियांतुम अंजन कहे इय माता कोपी
छाडो सब चतुरी चतुराई, अरे अरे बाउरी गोपी ।[८६]

शंकर देव असमियां साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं । १४८१ ई० में वृन्दावन की यात्रा के समय उन्होंने वरगीतों की रचना की थी । कहीं कहीं असमियां-

---

८५ वही—चौपाई पृ० ८८
८६ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० २३७ पर उधृत

भाषा के प्रयोग होने पर भी उनकी भाषा भूल रूप में ब्रज भाषा है। वर गीत का एक पद इस प्रकार है :—

१. ध्रु० गोपिनी प्रान काहेनो गयो रे गोविन्द ।
हामु पापिनी पुनु पेखबो नाहि आर मोहि वदन अरविन्द ।
कवन भाग्यवती, भयो रे सुपरभात आजु भेटन मुख चांदा ।
उगत सूर दूर गयो रे गोविन्द भयो गोप वंधु आन्धा ॥
आजु मथुरा पुरे मिलन महोत्सव माधव माधव मान ।
गोकुल के मंगल दूर गयो नाहि बाजत बेनु विषान ॥
आजु जत नागरी करत नयन भरि मुख पंकज मधुपाना ।
हमारि वन्ध विधि होत हरल निधि कृष्ण किंकर रस माना ॥[८७]

१५०० ई० से दो वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के कवि भानुदास का आविर्भाव हुआ। ये महान् वैष्णव-भक्त थे। इन्होंने पंढरपुर की विट्ठल मूर्ति की स्थापना की थी। इन्होंने कृष्ण सम्बन्धी अनेक हिन्दी ब्रजभाषा की रचनाएं प्रस्तुत की हैं। एक प्रभाती का उदाहरण इस प्रकार है—

उठहु तात मात कहे रजनी को तिमिर गयो,
मिलत बाल सकल ग्वाल सुन्दर कन्हाई ।
जागहु गोपाल लाल जागहु गोविन्दलाल जननी बलि जाई ॥
संगी सब फिरत वन तुम बिनु नहि छूटत धनु ।
तजहु सयन कमल नयन सुन्दर सुख दाई ॥
मुंह तै पट दूर कीजो जननी को दास दीजो ।
दधि खीर मांग लीजो खांड औ मिठाई ॥
झपत झपत श्याम राम सुन्दर मुख तल ललाम ।
थाती की छूट कछु भानुदास भाई ॥[८८]

मानसिंह के शासन काल के कवि थेघनाथ ने ठीक १५०० ई० में अपना गीता-भाषा काव्य लिखा। गीता भाषा में प्रायः मूलभाव को सुरक्षित रखा गया है। अत्यन्त सहज और प्रवाहपूर्ण शैली में गीता का मूल विषय छन्दोबद्ध किया गया है—

कुल क्षय भये देखि है जबही, बिनसै धर्म सनातन तबही ।
कुछ क्षय भयो देखिहे जाई, बहुरि अधर्म होई तब आई ॥[८९]

इनकी भाषा शुद्ध ब्रज है।

---

८७ वही पृ० २२७
८८ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० २३०
८९ गीता भाषा पद सं० ६०

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

मध्ययुगीन सम्प्रदायों में कृष्ण

वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना जाता है। जिस परम तत्व को श्रुतियों ने परब्रह्म कहा है।[1] उसी को वल्लभाचार्य जी ने पुराणेश्वर पुरुषोत्तम कहा है।[2] जब भगवान् व्यापी वैकुंठ में विराजते हैं तब वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं तथा जब प्रकट होते हैं तब वे ही श्रीकृष्ण कहलाते हैं। वेदान्त शास्त्र में जिसे ब्रह्म कहा गया है स्मृति अथवा पुराणों में जो परमात्मा शब्द से संहित है भागवत शास्त्र में जिसे भगवान् शब्द से व्यक्त करते हैं वही पुष्टि मार्ग में रस स्वरूप श्रीकृष्ण है[3]। श्रीवल्लभाचार्य का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत था। आचार्य शंकर के अद्वैत से भिन्नता दिखलाने के लिये ही अद्वैत के साथ 'शुद्ध' विशेषण दिया है। अद्वैत मत में मायाशबलित ब्रह्म जगत का कारण माना जाता है परन्तु इस मत में माया से अलिप्त, माया सम्बन्ध से विरहित अतएव नितान्त शुद्ध ब्रह्म जगत का कारण माना जाता है।[4]

भक्ति के जिस मार्ग का निर्देशन श्री वल्लभाचार्य ने किया उसे पुष्टि मार्ग कहा गया। परब्रह्म रक्षात्मक है आनन्दमय है तथा अपने भीतर अपनी आत्मा से ही निरन्तर रमण करता है इसलिए उसे आत्माराम भी कहा गया है। इस आनन्दमय ब्रह्म को मन वाणी आदि इन्द्रियाँ पहुँच नहीं सकती। वह मायातीत है एवं माया से

---

१ परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत—सिद्धान्त मुक्तावली श्लोक ३ षोडश ग्रंथ पृ० २४

२ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद् यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः ॥ तत्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बई पृ० २३७

३ श्रीकंठ मणि पुष्टि मा० सिद्धान्त की व्याख्या० पृष्ठभूमि

४ माया सम्बन्ध रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः
कार्यकारण रूपंहि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥ शुद्धाद्वैत मार्तण्ड—२८

आवृत भी। माया से परे होने के कारण उसमें माया के गुण व्याप्त नहीं होते अतः वह निर्गुण माना गया है। अनन्तमूर्ति ब्रह्म चल एवं अचल दोनों प्रकार का है। सब विरुद्ध धर्मों का आश्रय, निर्गुण होते हुए भी सगुण और निधर्मक होते हुए भी अधर्मक है। वह मन वाणी से परे है किन्तु इच्छा मात्र से गोचर भी हो जाता है। श्रीकृष्ण पूर्णानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म है। "अद्भुत अलौकिक कर्म करने वाले उस कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ जिससे जगत् का आविर्भाव हुआ और जो रूप और नाम के भेद से इस जगत् में रमण रहा है।[५]" आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। वल्लभाचार्य ने उन्हीं को अपने मार्ग का इष्ट और उन्हीं की भक्ति को परमानन्द प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना है। सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के अवतार रूप में दो रूप मान्य हैं। एक लोक वेद कथित पुरुषोत्तम दूसरा लोक वेदातीत पुरुषोत्तम, मथुरा, द्वारका, तथा कुरुक्षेत्र में लीला करने वाले, व्रज में दुष्टों का संहार करने वाले, तथा धर्म की स्थापना करने वाले वेद रक्षक कृष्ण हैं तथा बाल रूप से यशोदा और नन्द को मोहने वाले वृन्दावन में ग्वाल बालों के साथ गायें चराने वाले तथा वृन्दाविपिन में गोपियों के साथ रास करने वाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकी नन्दन वासुदेव धर्म रक्षक रूप है तथा यशोदानन्दन और नन्दनन्दन रस रूप हैं।[६] जब यह परब्रह्म अपने अपरिमित आनन्द को बाह्य रूप से अनुभव करना चाहता है तब वह अपनी आत्मा के दो विभाग करके उसके स्त्री भाव और पुं भाव को प्रकट करता है।[७] दो होकर भी परब्रह्म पूर्ण ही रहता है। इस प्रकार उनका द्विविधि अन्तर्यामी रूप पूर्ण हो पुरुषोत्तम में स्वामिनी भाव (राधा भाव) एवं स्वामिनी में पुरुषोत्तम भाव से स्थित रहता है। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूप लीला करते हैं तब उनकी शक्तियाँ भी बाह्य-स्थित रहती हैं और विविध रूप गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन अनन्त शक्तियों श्रिया, पुष्टि, गिरा और कान्त्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं। ये हैं: श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा, और यमुना आधिदैविक रूप और नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही स्थित रहती है।[८]

---

५ नमो भगवते तस्मै कृतराद्यावद्भुत कर्मणे,
रूप नामविभेदेन जगतः क्रीडति यो यतः ॥
त० दी० नि० शास्त्रार्थ प्रकरण श्लोक १ पृ० १

६ डा० दीन दयालु गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४०४

७ सएकाकी नारमत्। स्वात्मानं द्वेधा पातयत
तथा-भजनानंदसिद्धयर्थं द्विरूपत्वमथोच्यते। आ० ए० एकं नि० कारिका

८ द्वारकादास परीख "सूर निर्णय" पृ० १६०

श्रीकृष्ण अवतार तथा अवतारी भी है। जो ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण स्वरूप है वही इस लोक में अवतार धारण कर सगुण रूप से लीलायें करता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार वल्लभ सम्प्रदायी भक्तों ने भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओं की अवतरणा की है। सम्प्रदाय में भागवत को विशेष रूप से मान्यता प्राप्त है। जितने भी वल्लभ सम्प्रदायी कृष्ण भक्त कवि हुए प्रायः सभी ने भागवत को आधार मानकर श्रीकृष्ण की अनेक मनोहारी लीलाओं का उद्घाटन किया। काव्य के लिए भी उन्होंने भागवत को आधार न बनाया। सूरदास का 'सूर सागर' नन्द दास का 'भ्रमर गीत' तथा रास पंचाध्यायी आदि रचनायें इसकी प्रमाण है।

वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ राधा का भी समावेश है किन्तु उन्हें सच्चिदानन्द प्रभु की आल्हादिनी शक्ति माना जाता है। अपनी आल्हादिनी शक्ति के साथ ब्रह्म का जगत में आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है। वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के स्वरूपों की सेवा और पूजा होती है। सम्प्रदाय में इन्हें मूर्ति न कहकर भगवान् का साक्षात् स्वरूप माना जाता है। इसीलिए इन्हें "स्वरूप" कहा जाता है। अन्य सम्प्रदायी मन्दिरों में भगवान् की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा होती है परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में सेव्य स्वरूपों की प्राण प्रतिष्ठा न करके उन्हें पुष्ट किया जाता है। सम्प्रदाय का विश्वास है कि इन स्वरूपों के माध्यम से भगवान् साकार रूप में भू-तल पर विराजते है। परम सेव्य स्वरूप 'श्रीनाथ जी' तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म माने जाते है एवं अन्य स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम की विभूति तथा उनके व्यूहात्मक स्वरूपों के स्वरूप है। जिन नौ स्वरूपों की विशेष सेवा और पूजा वल्लभ सम्प्रदाय में होती आई है वे इस प्रकार है—श्रीनाथ जी २—श्री मथुरेश जी ३—श्री विट्ठलनाथ जी ४—श्री द्वारिकेश जी ५—श्री गोकुलनाथ जी ६—श्री गोकुल चन्द्रमा जी ७—बालकृष्ण जी ८—श्री मदन मोहन जी तथा ९—श्री नवनीत प्रियजी।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी का प्राकट्य करके उनके स्वरूप की स्थापना गोवर्धन में की। श्रीनाथ जी का यह स्वरूप गोवर्धन धारण करते समय के भाव का है। कहा जाता है कि भद्भागवत में जैसा स्वरूप भगवान् का वर्णित है ठीक वैसा ही श्री गोवर्धन नाथ जी का स्वरूप है।[१] श्रीनाथ जी

---

१ तस्यान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोयं मे व्रत आहितः॥
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्ण २ छत्राकमिव बालक:॥
श्री मद्भागवत दशम स्कंध अ० २२।२५ श्लोक १८, १९

के स्वरूप के प्राकट्य का वृतान्त श्री वल्लभाचार्य जी की जीवनी तथा श्री हरिराय जी कृत·········श्री गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता·········में दिया हुआ है। श्री वल्लभाचार्य ने सूर आदि चार कवियों को श्रीनाथ जी के सन्मुख पद गाने के हेतु नियुक्त किया था। श्री गुसाईं विट्ठलनाथ ने चार अन्य कवियों के साथ सूर आदि कवियों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की थी। इन कवियों के नाम है—सूरदास, परमानन्द दास, नन्ददास, कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी। उपर्युक्त आठों भक्त कीर्तनकार कृष्ण की अष्टयाम कीर्तन सेवा के लिए नियुक्त थे। सेवा आठ समय की थी—मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सध्या, आरती, शयन। इस सेवा पद्धति के तीन अंश हैं—सेवा, शृंगार तथा कीर्तन। समग्र वर्ष नाना पर्वों तथा उत्सवों में बाँटा गया है और प्रत्येक उत्सव में भगवान् का शृंगार किस प्रकार का होना चाहिये, उनके पूजन में क्या विशिष्टता होनी चाहिये। तथा नित्य पूजन में कब किस पद का कीर्तन करना चाहिये, इसका विस्तृत वर्णन साम्प्रदायिक ग्रन्थों में किया गया है।

इस प्रकार की दैनिक प्रक्रियाओं को सम्प्रदाय में नित्य की सेवा-विधि कहा जाता है। इसमें यशोदा जी की वात्सल्य भावना की ही प्रधानता रहती है। इसका कारण श्री वल्लभाचार्य का बाल रूप की उपासना को प्राधान्य देना है। वल्लभ सम्प्रदाय के स्वरूप में क्रमशः परिवर्तन पाया जाता है। श्री वल्लभ ने बाल भाव की उपासना को प्राथमिकता दी। प्रारम्भिक साधक के लिए उनको बाल रूपोपासना ही काम्य है।[१०]

अन्यपूर्वा वे गोपी थी जिनके विवाह हो गये थे परन्तु जो श्री कृष्ण में आसक्त थी। उन्होंने 'जार' भाव से कृष्ण को भजा था। वे लोकलाज और वेद मर्यादा छोड़कर परकीय भाव से कृष्ण को प्रेम करती थीं। भक्ति में प्रेम का यह रूप सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अनन्यपूर्वा गोपी वे कुमारी थी जिन्होंने कृष्ण को पति बनाने की साध की थी। दूसरी अथवा वे जिनका केवल कृष्ण से ही विवाह हुआ था। वस्तुतः दोनों प्रकार की अनन्यपूर्वा गोपियों ने कृष्ण को वरण किया था। अतः वे स्वकीया हैं। बाल रूप में कृष्ण को देखने वाली व्रज युवतियाँ सामान्या थीं। मर्यादा मार्ग में भगवान् साधन-परतन्त्र रहता है, स्वतन्त्र नहीं क्योंकि इस मार्ग में भगवान को अपनी बंधी हुई मर्यादाओं की रक्षा करना अभीष्ट होता है। पुष्टिमार्ग में वह किसी साधन का परतन्त्र न होकर स्वयं स्वतन्त्र होता है। अनुग्रह भी भगवान की नित्य लीला का अन्यतम विलास है। भगवान के अनुग्रह के बिना रागानुगा

---

१० 'गोपाल कृष्ण इनके उपास्य कुल देवता थे'—बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० ३७२।

भक्ति का आविर्भाव ही असम्भव है। पुष्टिमार्ग का उपदेश है कि पूर्ण निष्ठा से भगवान का सर्वथा तथा सर्वदा भजन किया जाय।[11] पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के अनुसार सर्वोत्तम भक्ति जिनसे 'पुष्टिपुष्ठ' भक्ति कहते हैं उसका ये अन्यपूर्वा गोपियाँ साक्षात् उदाहरण है। अनन्यपूर्वा की भक्ति मर्यादा पुष्टि भक्ति है तथा सामान्या भाव प्रवाही पुष्टि का है। प्रवाही पुष्टि भक्ति में भक्ति का उच्च रूप है। वल्लभ सम्प्रदाय में भक्ति की प्रथम सीढ़ी यही प्रवाही पुष्टि भक्ति है। इसीलिए कृष्ण मन्दिरों में भी विशेष रूप से बाल भाव की सेवा होती है।

वल्लभाचार्य ने श्री कृष्ण के साथ राधा का भी उल्लेख किया है।[12] मधुराष्टक में आचार्य ने इष्ट को 'मधुराधिपति' कहकर मधुर भक्ति का ज्ञान कराया है। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उस मधुर भावना को और अधिक विकास दिया।[13] वल्लभ सम्प्रदाय में माना जाता है कि मधुर भाव से भक्ति करने वाले भक्त सखी रूप होते है और सख्य भाव से भक्ति करने वाले सखा रूप होते हैं। सर्वानन्द की सिद्धिशील स्वरूप राधा अथवा चन्द्रावली सम्पूर्ण अन्य शक्ति स्वरूपा गोपियों में स्वामिनी है। मुख्य सखियाँ तथा मुख्य सखा की संख्या आठ-आठ है। इन अष्ट सखा और अष्ट सखियों के अलग वर्ग भी हैं जिनमें सखा और सखियाँ सैकड़ों की संख्या में हैं। अष्टछाप के भक्त कवि वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टसखा और अष्ट सखियों के अवतार माने जाते हैं। कृष्ण की गोचारण लीला में ये भक्त सखा रूप हैं और कृष्ण की शृंगारिक कुञ्ज लीला में सखी रूप। माधुर्य-भक्ति का मुख्य पात्र श्रीराधा हैं, जिनको वल्लभ-सम्प्रदाय में स्वकीया माना गया है। चैतन्य सम्प्रदाय में इन्हें परकीया माना गया है। पुष्टिमार्ग के अनुसार परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना—श्री चन्द्रावली हैं। श्री राधा सहचरी का उल्लेख वल्लभाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'त्रिविध नामावली' में भी किया है।[14] इसी राधा में कृष्णावतार के रास के समय ब्रह्म की मुख्य 'राधस्' शक्ति (लक्ष्मी) का प्रवेश हुआ था, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे विशेष रूप से रमण किया था।[15]

---

११ सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः। स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि-कदाचन—चतुः श्लोकी—१।

१२ श्री कृष्ण प्रेमामृत श्लोक २२-२३ तथा परिवृढाष्टक।

१३ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने राधा की स्तुति में दो ग्रन्थ लिखे हैं—"स्वामिन्याष्टक" तथा "स्वामिनी स्तोत्र"।

१४ राधा सहचराय नमः।

१५ तामस सुबोधिनी – १०-३०-१७

शुद्धा द्वैत सिद्धान्त के अनुसार श्री राधा परब्रह्म की आत्म शक्ति होने से सर्वथा अभिन्न मानी गई है। श्री नाथ जी के साथ राधा भाव अभिन्न है। इसी कारण राधा का प्रथक विग्रह दृष्टिगोचर नहीं होता। शुद्धा द्वैत सिद्धान्त में श्रीकृष्ण की प्रधानता है क्योंकि यहां शक्ति शक्तिवान के अधीन ही मानी गई है। वस्तुतः राधा और कृष्ण अभिन्न और एक रूप है यही शुद्धा द्वैत सिद्धान्त का वास्तविक स्वरूप है।

निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार ईश्वर चित् और अचित् है साथ ही भिन्न भी है। एकमात्र वेद प्रमाण से जानने योग्य, सबसे भिन्न और फिर सबसे अभिन्न भी विश्वस्त भगवान् ही ईश्वर तत्व है।[१६] वह स्वयं आनन्दमय है, और जीव के आनन्द का कारण भी है। वह पुण्य पाप से परे है। मुमुक्ष लोग इसी ईश्वर का ध्यान करते हैं। वह व्यापक और सर्वाधार है और जीव अणु (सूक्ष्म) है। अतः वह किसी भी स्थिति में सर्वाधार ब्रह्म से भिन्न नहीं रह सकता। इसलिए जीव ब्रह्म से भिन्न है और अभिन्न भी। वेदान्त भाष्यकारों ने इस विषय में अपने भिन्न-भिन्न अभिमत प्रकट किये हैं। शंकराचार्य के अनुसार अद्वैत, अभेद अर्थात् जीव और ब्रह्म अभिन्न ही हैं। श्री रामानुज के विशिष्टा-द्वैत के अनुसार एक स्थूल चिद् अचिद् विशिष्ट ब्रह्म है और एक सूक्ष्म चित् अचित् विशिष्ट। इनमें पहला दृश्यमान है और दूसरा अदृश्य, किन्तु दोनों ब्रह्मों में भेद नहीं है। भेद हो तो वह विशेषणों में सम्भव है, विशेष्यों (ब्रह्मों) में नहीं। बल्लभाचार्य के मत से शुद्ध ब्रह्म एक ही है, दो नहीं, इसी से इस मत को शुद्धाद्वैत कहा गया। वस्तुतः विशिष्टा द्वैत और शुद्धाद्वैत ये दोनों मत श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत का ही अनुसरण करते हैं केवल नाममात्र का ही भेद किया गया है।[१७] निम्बकाचार्य का सिद्धान्त स्वाभाविक भेदाभेद है। सभी अवस्थाओं में और सदा सर्वथा यहां तक कि मुक्त अवस्था में भी जीव अपने धर्मों की विभिन्नता के कारण ब्रह्म से भिन्न ही है। श्री निम्बार्काचार्य ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में दो उदाहरण दिये हैं। एक वृक्ष और उसके पत्तों का। दूसरा समुद्र और उसकी तरंगों का। जैसे वृक्ष के रूप से तो पेड़ डाली और पत्ते आदि सब अभिन्न हैं किन्तु जब सबका विश्लेषण किया जाय तो ये अपने रूपों में भिन्न भी हैं क्योंकि डाली और पत्तों को वृक्ष नहीं कहा जा सकता। ऐसे ही समुद्र को छोड़कर तरंगें कहीं बाहर नहीं जातीं अतः वे समुद्र से अभिन्न हैं किन्तु तरंगों को ही समुद्र नहीं कह सकते। भेदाभेद का सिद्धान्त भी इसी प्रकार कहा गया है।

अनन्य शरण उपासकों के ऊपर अनुग्रह दिखाने के लिये भगवान उनके

---

१६ वेदान्त पारिजात सौरभ,—१-१-२, ४, १०, १२

१७ श्री रामानुज का श्री भाष्य और श्री बल्लभाचार्य का अणुभाष्य

इच्छानुरूप स्वरूप धारण करते है। निरतिशय सुख स्वरूप भी वही है। उसमें स्वाभाविक आनन्द, ज्ञान, बल और क्रिया हैं। ईश्वर सभी शक्तियो से सम्पन्न है और सब कुछ कर सकता है। वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध ये चारों स्वरूप उन्हीं के अंग हैं।[१८] मुमुक्ष लोग गोपियों के सहित वृषभानु कन्या के साथ वैकुंठ में बैठे हुए श्री कृष्ण भगवान की ही उपासना करते हैं। वे संसार के उपादान तथा निमित्त कारण हैं। सर्व शक्तिमान ब्रह्म अपनी शक्ति के विक्षेप के द्वारा अपने को जगत के आकार में परिणत कर अव्याकृत स्वरूप, शक्ति और कृति से युक्त हो परिणत होता है अर्थात् जिस प्रकार दूध कार्य रूप में परिणत हो जाता है। उसी प्रकार अपनी असाधारण शक्ति से युक्त परमात्मा भी जगत के आकार में परिणत होता है।[१९]

सम्प्रदाय के कृष्ण सदैव राधा के साथ विराजित है। गोपियों से घिरे हुए कृष्ण को जिनमें राधा प्रधान है, महत्व दिया गया है। राधा कृष्ण की वमांगिनी कही गयी हैं।[२०] युगलकिशोर श्री राधा-कृष्ण की पूजा-उपासना और उनका ही ध्यान करने का विधान सम्प्रदाय में पद्मपुराण के पाताल खण्ड से लिया गया प्रतीत होता है।[२१]

सम्प्रदाय में भागवत का विशेष आदर है। भागवत के अनुसार नवधा भक्ति महत्व यहां भी है। कीर्तन पद्धति उनमें भी विशेष है। कृष्ण-राधा की माधुर्य लीला इस सम्प्रदाय की प्रमुख भावलीला है। साधना और सिद्धान्त अथवा आचार पक्ष तथा मान्यता-पक्ष दोनों में ही निम्बार्क सम्प्रदाय भागवत से प्रभावित है। सत्संग, सदाचार, हरि भक्ति साधना तथा मूर्तिपूजा (अर्चावतार) स्वाध्याय, अहिंसा आदि सभी में भागवत ही सम्प्रदाय का लक्ष्य है। नवधा अथवा वैधी भक्ति के अतिरिक्त सम्प्रदाय में प्रेम लक्षणा भक्ति भी मान्य है। वस्तुतः भागवत का प्रमुख उद्देश्य ही जीवों को श्री कृष्ण की भक्ति में प्रवृत्त करना है। एकाग्रचित्त होकर श्री कृष्ण की कथा सुने, उनके नामों का कीर्तन और लीलाओं एवं स्वरूप का ध्यान तथा निरन्तर उनकी ही पूजा करे।[२२]

सम्प्रदाय में रसोपासना की प्रधानता है। इसका आधार 'रसोवैसः' है। रस-भावना वाले साधक को चाहिये कि वह श्री प्रियाजी के साथ हंसते हुए और उनको

---

१८ वेदान्त पारिजात सौरभ—१-१-२,१५,२०,२२।

१९ दशश्लोकी ५,८-९।

२० अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्ट-कामदाम्॥
—दशश्लोकी, श्लोक ५।

२१ पद्मपुराण-पाताल खण्ड अध्याय ८१-३५-५० श्लोक।

२२ तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः,
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्चनित्यशः। भागवत १।२।१४

हंसाते हुए रतिकेलि द्वारा रसावेश से चपल नयन मुरली मनोहर श्याम सुन्दर श्री कृष्ण का ध्यान करे।[२३] उनके वाम भाग में नील वस्त्रों से विभूषित तप्त कंचन के समान वर्ण वाली श्री राधा जी विराजमान है। उन्होंने अपने पटांचल से आधा मुख-कमल ढंक रखा है और श्री श्यामसुन्दर के मुखारविन्द में अपनी दृष्टि लगा रखी है। वे अंगूठा और तर्जनी से प्राणनाथ प्रियतम नन्दन के मुख-कमल में ताम्बूल अर्पित कर रही है। मोतियों का हार पहने हुए हैं। सुन्दर पीन और उन्नत पयोधर, झीनी कमर तथा पृथुल श्रेणी भाग वाली नव-यौवन-सम्पन्ना सर्वावयव-सुन्दरी सुप्रसन्न चित्त से श्री राधा जी आनन्द में मग्न है। अनन्त सखियां चामर, व्यजन आदि से उनकी परिचर्या कर रही हैं। उनकी वयस और गुण भी श्री राधा जी जैसे ही है।[२४]

गोपी भाव की चर्चा भी पद्मपुराण में है। एक वार आराधना से प्रसन्न होकर श्री नारायण ने शंकर जी को वर मांगने का आदेश दिया। तब उन्होंने परात्पर ब्रह्म के परमानन्द दायक रूप को देखना चाहा। श्री नारायण ने तथास्तु कह कर उन्हें यमुना के पश्चिमी तट पर जाने की आज्ञा दे दी। शंकर जी ने पहुंचकर युगलकिशोर श्री राधा कृष्ण का दर्शन किया। प्रसन्न होकर श्याम सुन्दर ने कहा—हे शंकर। श्री राधा के साथ मैं यहीं रहता हूं। बृन्दावन को छोड़कर कभी कहीं नहीं जाता। शंकर जी ने प्रभु के इसी रूप में दर्शन की कामना की। श्याम सुन्दर ने कहा—"गोपी भाव से उपासना करने पर ही यह अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। किन्तु आपको श्री वृषभानु नन्दिनी के चरण कमलों का आश्रय लेना होगा।" तब श्री कृष्ण भगवान ने श्री शंकर जी के दक्षिण कान में युगलमंत्र सुनाया।

आगे पद्म पुराण पाताल खण्ड में सखी भाव से श्री राधा कृष्ण की उपासना करने का विशद् वर्णन किया गया है।

अद्वैतवादी आचार्य जीव को ब्रह्म से अभिन्न मान कर उपास्य-उपासक में अभेद मानते हुये 'अहं ब्रह्माऽस्मि' की भावना का चिंतन करते हैं किन्तु द्वैतवादी इसके विपरीत केवल भेद भावना से ही उपास्य-उपासक के स्वरूप का चिंतन करते हैं।

निम्बार्क संप्रदायी अपने उपास्यदेव की जो अष्टयाम सेवा करते हैं वह 'मानसी सेवा' कहलाती है। निम्बार्काचार्य ने उपासना के चार प्रकार—भृत्य, पुत्र, मित्र और प्रिया भाव बताये है।[२५] यही परा या रागानुगा भक्ति की उपासना का मूल आधार है, इन चारों प्रकारों में से श्री निम्बार्काचार्य को राधा कृष्ण का युगल ध्यान अतिशय प्रिय है जिसमें सहस्त्रों सखियों को राधिका जी की सेवा में नियुक्त बताया गया है।

---

२३ पद्मपुराण पाताल खण्ड ८१।४२-४३

२४ पद्मपुराण पाताल खण्ड ८१।४४ से ५० तक।

२५ रहस्य षोडशी, १६

निम्बार्काचार्य ने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का बहुत ही संक्षिप्त सूत्ररूप से कथन है। जो भी उन्होंने कहा वह अत्यन्त सारभूत और निश्चित शब्दों में है।

आचार्य केशव काश्मीरी भट्ट ने भगवान के आविर्भाव का प्रयोजन भक्तों की रसमयी उपासना को ही बतलाया है। आगे चलकर इसी भावना का विस्तार किया गया। वैसे तो भक्ति के पाँचों भावों में से इस सम्प्रदाय में सभी की स्वीकृति है परन्तु सिद्धान्त रूप से माधुर्य भाव की मुख्यता है। यह माधुर्य भक्ति श्री कृष्ण की कृपा से ही उपलब्ध हो सकती है।[२६]

सम्प्रदाय की अनुरागात्मिका उपासना में निकुंजबिहारी श्री राधा कृष्ण प्रिया-प्रियतम भाव से आराध्य हैं। इस भाव का स्थल इस भू-मण्डल से परे गोलोक धाम है जिसका दूसरा रूप ब्रज मण्डल में नित्य वृन्दावन धाम है।

भगवान की सेवा में समयानुसार विविध उत्सव मनाये जाते हैं। उत्सव के अनुसार ही ठाकुर जी का शृंगार होता है। भक्तगण सामयिक उत्सव लीला के अनुसार पूर्वाचार्यों की वाणियों का गायन करता है। मृदंग, तम्बूरा, सितार आदि की मंद ध्वनि में मुक्त कंठों से राग-रागिनी प्रवाहित होती रहती है। सम्प्रदाय में इसे 'समाज' कहते है। रासलीला भी उत्सव का अंग है। इस लीला के स्वरूपों में भक्तगण साक्षात लीला की कल्पना करके आनन्दित होते है।

चैतन्य अथवा गौड़ीय सम्प्रदाय में कृष्ण

चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात कृष्ण मानते है। श्रीकृष्ण राधा भाव का आस्वादन करना चाहते थे। केवल कृष्ण रूप से तो उनका अवतार ब्रज में हो ही चुका था अब राधा भाव से संयुक्त होकर उन्होंने प्रेम रस माधुरी का आस्वादन कराने के हेतु नवद्वीप में अवतार लिया।[२७] अतः चैतन्यदेव कृष्ण राधा संयुक्तावतार है। उनका गौर वर्ण भी इसी बात का द्योतक है कि उनमें राधा भाव समाविष्ट है। भाव और वर्ण उनमें दोनों ही राधा के थे। उनके अन्तर का वर्ण तो भिन्न है कृष्ण है बाहर का वर्ण श्री राधा की अंग कान्ति है।[२८]

---

२६ कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते,
यया भवेत्प्रेमविशेष लक्षणा—दशश्लोकी, श्लोक ६

२७ राधा भाव कांति दुइ अंगीकार करि।
श्रीकृष्ण चैतन्य रूप कइल अवतार॥ चै० च० आदि लीला ४ पृ० २५

२८ अंतरे वरण भिन्न, बाहिउ गोरांग चिन्ह।
श्री राधार अंग कान्ति राजे॥ गो० प० त० १।३।११।

श्री चैतन्य देव के शब्दों में 'व्रजेन्द्र नन्दन ग्रद्वय ज्ञान-तत्व वस्तु हैं। सबके आदि सर्वांशी, किशोर, शेखर, चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्रय और सर्वेश्वर हैं। वे स्वयं भगवान् हैं, इनका दूसरा नाम गोविन्द है, सर्वेश्वर्यपूर्ण हैं, गोलोक धाम में हैं।[२९] कृष्ण अवतार नहीं अवतारी है, अंश नहीं अंशी है। इष्टदेव कृष्ण की देह का धर्म बाल्य और पोगण्ड है किन्तु स्वयं अवतारी कृष्ण का स्वरूप नित्य किशोर ही है।[३०] राधा इनको आनन्द देने वाली और गोविन्द मोहिनी है। वे समस्त कांताओं की शिरोमणि है। ये राधा कृष्णमयी है, वे सब जगह कृष्ण को ही देखती है। राधा सर्व-पूज्य परम देवता है, सभी की पालन कर्तृ, जगत् माता है। कृष्ण स्वयं जगत-मोहन हैं, राधा इन्हे भी मोहित करती है। अतः वे सबसे श्रेष्ठ है। राधा पूर्ण शक्ति है, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान है। इन दोनों में इसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे मृगमद और उसकी गंध में तथा अग्नि और उसकी ज्वाला में। राधा कृष्ण एक ही स्वरूप है केवल लीला रस के आस्वादन करने के लिए दो रूप धारण किये हैं।[३१]

---

२९ कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन ।
अद्वय ज्ञान तत्व वस्तु व्रजेन्द्र नंदन ॥
सर्व्वादि सर्व्व अंशी किशोर शेखर ।
चिदानन्द देह सर्व्वाश्रय सर्व्वेश्वर ॥
स्वयं भगवान कृष्ण गोविन्द परनाम ।
सर्व्वैश्वर्यपूर्ण जांर गोलोक नित्य धाम ॥
चै० च० मध्यलीला परि० २० पृ० २६१

३० अंश शक्त्यावेश रूपे द्विविधावतार ।
बाल्य और पोगण्ड धर्म दुइत प्रकार ॥
किशोर स्वरूप स्वयं अवतारी ।
चै० च० आदि लीला परि० २ पृ० १६ ।

३१ गोविन्दा नन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी ।
गोविन्द सर्वस्व सर्व कांता शिरोमणि ॥
कृष्णमयी कृष्ण जांर भितरे बाहिरे ।
जोहा जोहा नेत्र पड़े तोहा कृष्ण स्फुरे ॥
अतएव सर्वपूज्या परम देवता ।
सर्वपालिका सर्व जगतरे माता ॥
जगत मोहन कृष्ण ताहार मोहिनी। अतएव समस्तेर परा ठकुराणी ॥
राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नाहिं शास्त्रेण प्रमाण ॥
मृगमद तारगंध जैसे अविच्छेद। अग्निज्वाला ते जैछे वसु नाहिं भेद ॥
राधाकृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप। लीलारस आस्वादि ते धरे दुइ रूप ॥
चै० चं० आदिलीला ४ पृ० २४, २५ ।

चैतन्य मत 'अचिन्त्य भेदाभेद' के सिद्धान्त को मानता है। भगवान् श्रीकृष्ण ही परम तत्व हैं। उनकी अनन्त शक्तियां हैं। शक्ति और शक्तिमान में न तो परस्पर भेद ही सिद्ध होता है और न अभेद, इन दोनों का सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है। व्रजस्वामी नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान् हैं। इनका धाम वृन्दावन है। व्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रमाणिक उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है—चैतन्य मत का यही सारांश है।[३२]

अपनी प्रिय वस्तु के प्रति सहज अनुराग को 'रति' कहते हैं। सर्वाधिक प्रिय वस्तु भगवान् श्रीकृष्ण हैं, अतः उनके प्रति होने वाली रति को कृष्ण-रति कहते हैं। इसकी परिपूर्णता ही 'भक्तिरस' कहते हैं। साधन भक्ति के द्वारा बड़े भाग्य से कृष्ण-रति का उदय होता है। इस रति के गाढ़ी होने पर उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेम की वृद्धि होने पर उसे क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव नाम दिये जाते हैं।[३३]

जिस प्रकार ईख से रस, रस से गुड़, गुड़ से खांड़, खांड़ से चीनी, चीनी से मिश्री, और मिश्री से सितोपला की उत्पत्ति है, जिनमें एक दूसरे से बढ़कर मधुरिमा होती है, उसी प्रकार कृष्ण-रति दृढ़ होकर क्रमशः प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव में परिणत होती हुई उत्तरोत्तर माधुर्य को प्राप्त होती है। कृष्णदास कविराज ने कहा—ये प्रेम, स्नेह, भाव तथा महाभावादि कृष्ण-भक्ति रस

---

३२ आराध्यो भगवान व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावन।
रम्या काचिदुपासना व्रज वधूवर्गेण या कल्पिता॥
शास्त्रं भागवतं प्रमाण ममले, प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न : परः॥
विश्वनाथ चक्रवर्ती वे० द० पृ० ५२७।

३३ साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार प्रेम तार नाम कय॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥
—चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला

के स्थायी भाव हैं । यदि इनमें उपयुक्त विभाव, अनुभाव, सात्विक, व्यभिचारी भाव मिलते हैं, तो वे कृष्ण भक्ति रस रूपी अमृत का आस्वादन कराते हैं ।[34]

कृष्ण के प्रति प्रेम काम किसी प्रकार भी नहीं हो सकता । गोपियों का कृष्ण के प्रति भाव काम का नहीं प्रेम का था । इसलिए वह उज्ज्वल था । गोपियाँ अपने सुख के लिए नहीं कृष्ण के सुख के लिए उनसे प्रेम करती थीं ।[35]

चैतन्य का शास्त्रीय रूप, विधि, विधानों की व्यवस्था, भक्ति शास्त्र के सिद्धान्तों का निर्णय बंगाल में न होकर सुदूर वृन्दावन में विद्वान गोस्वामियों द्वारा किया गया । इन आचार्यों के नाम, रूप, सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी थे । इनके कारण वृन्दावन में उक्त सम्प्रदाय का महत्व बढ़ा । श्री रूप गोस्वामी को श्री गोविन्द देव जी ने स्वप्न दिया कि मैं अमुक स्थान पर गड़ा पड़ा हूँ । एक गौ प्रतिदिन मुझे अपने स्तनों का दूध पिला जाती है । उसी गौ को लक्ष्य करके श्री रूप गोस्वामी ने गोविन्द देव की प्रतिमा को निकालकर मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित किया ।[36] श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति का रस रूप से शास्त्रीय विवेचन किया । भक्ति शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों की विवेचना की और सनातन ने इस मत के आदरणीय नियमों तथा आचारों का विस्तृत विवरण उपन्यस्त किया । दोनों भाइयों ने चैतन्य मत के लिए श्लाघनीय कार्य किया । इन्होंने चैतन्य मत के प्रसाद को दृढ़ता दी एवं नव-सौंदर्य प्रदान किया । सनातन गोस्वामी चैतन्य मत के कर्म काण्ड के निर्माता हैं । उन्हीं के नियमानुसार चैतन्य मन्दिरों में आज भी पूजा अर्चा का विधान किया जाता है ।

३४ एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव ।
स्थायी भावे मिलि जवि विभाव अनुभाव ।।
सात्विक, व्यभिचारी भावेर मिलने ।
कृष्ण भक्ति रस हय अमृत आस्वादने ।।
—चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला

३५ काम तात्पर्य कहे केवल संभोग निज, कृष्ण सुख तात्पर्य प्रेम बल यही है ।
वेद धर्म, लोक धर्म, देह धर्म, कर्म लज्जा, धैय आत्मदेह सुख जोई प्रिय सही है ।।
दुस्त्यज जो आर्यपथ परिजन स्वजन कों, ताडन और भर्त्सन सोऊ सुख नहीं है ।
सर्व त्यागि कृष्ण भजै, तत्सुख ही हेत सजै, करै प्रेम सेवा भांति प्रिय रुचि लही है ।।
—सुबल श्यामकृत चैतन्य चरितामृत

३६ वृन्दावन का सुप्रसिद्ध गोविन्ददेव का मन्दिर—मध्यकालीन स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है ।

रघुनाथदास गोस्वामी ने 'राधाष्टक' तथा 'विलाप कुसुमांजलि' में राधा की विशिष्टता का परिचय दिया है। रघुनाथ भट्ट रूप गोस्वामी की सभा में श्री मद्भागवत की कथा कहते थे। गोपाल भट्ट गोस्वामी के उपास्य देव श्री राधा रमण जी थे। नाभादास जी ने इनकी विलक्षण भक्ति का परिचय देते हुए एक घटना का उल्लेख किया है कि इनकी उत्कट इच्छा से शालग्राम जी की मूर्ति में हाथ पैर निकल आये और वे मुरलीधारी राधारमण जी बन गए।[37] चैतन्य सम्प्रदाय में ६ गोस्वामियों का वही स्थान है जो वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टछाप के कवियों का। अन्तर केवल यही है कि अष्टछाप की रचनायें हिन्दी में हैं जबकि गोस्वामियों की संस्कृत में। इन गोस्वामियों के कार्य में योग देने वाले कृष्णदास कविराज हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'श्री चैतन्य चरितामृत' है।

भगवान कृष्ण की भावमयी गोकुल लीला पांच भावों से सम्बन्ध रखती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। रति की निम्न कोटि शान्त में रहती है और उसका चरम उत्कर्ष माधुर्य में। महानुभाव रूप गोस्वामी ने उज्वलनीलमणि में इसे 'उज्वल रस' कह कर इस रस का विशद विवेचन किया है। चैतन्य मत की भक्तिभावना का महत्वपूर्ण पक्ष इसी रस सिद्धान्त की मान्यता है।

चैतन्य संप्रदाय में कृष्ण ही अन्तिम तत्व है। कृष्ण की तीन शक्तियां हैं। चित् माया और जीव। चित् शक्ति से भगवान् अपने गुणों की अभिव्यक्ति करते हैं। राधा उनकी ह्लादिनी शक्ति आनन्द-शक्ति है। कृष्ण प्रिया ही अपने व्यक्त स्वरूप में राधिका कही जाती है। माया शक्ति से भगवान् जड़ जगत् को उत्पन्न करते हैं और जीव शक्ति से अनन्त आत्माओं की। जीव भगवान से भिन्न है और अणु-परमाणु वाला है। जीव और जगत् भगवान् के विशेषण नहीं उनकी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। भगवान् के ईक्षण मात्र से माया में गति उत्पन्न होती है। संप्रदाय में मोक्ष का अर्थ है—भगवान् की प्रीति का निरन्तर अनुभव। प्रेम ही मुक्ति है। भक्ति ही वास्तविक मोक्ष है और भगवद्-भक्ति की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है।

चैतन्य के सिद्धान्त में चरम प्रेम को ही महत्व दिया है। चरम प्रेम परकीय भाव में है। परकीय प्रेम भगवत् भावना के माध्यम से पुण्य बन जाता है और उसमें भाव की पराकाष्ठा है। इस रस साधना के दो माध्यम हैं: (१) नाम साधना (२) मंत्र साधना।

नाम साधना से ह्लादिनी शक्ति अर्थात् भक्ति को बल मिलता है। यह ह्लादिनी शक्ति महाभावरूपा होती है। महाभाव बिना विशुद्ध देह के उदय नहीं होता।

---

३७ राधारमण जी के मन्दिर में आज भी गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुसार पूजा होती है।

श्री राधा महाभाव[३८] की प्रक्रिया रूपा है। प्रेम रूपिणी राधा आनन्द विग्रह श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं। आनन्द तथा प्रेम का घनिष्ट संबंध है। आनन्द आनन्द के घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं तो प्रेम की घनीभूत मूर्ति राधा हैं। दोनों का साहचर्य नित्य है। श्रीकृष्ण भोक्ता हैं, श्रीराधा भोग्या हैं।

चैतन्य मत का विकास माध्व संप्रदाय के अन्तर्गत हुआ है अतः इसे 'माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय' भी कहते हैं। वस्तुतः मध्वाचार्य के द्वैतवाद का विकसित रूप ही चैतन्य संप्रदाय में है।

हरिदासी संप्रदाय में कृष्ण

विधि विधान सम्पन्न भक्ति को छोड़ केवल रस की उपासना को सर्वप्रथम महत्व देने वाले स्वामी हरिदास जी ही थे। वृन्दावन में रस की उपासना के वे सर्व प्रथम आचार्य हैं। स्वामी हरिदास के द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय ही हरिदासी अथवा टट्टी संप्रदाय कहलाता है। स्वामी हरिदास का जन्म १५०५ ई० में हुआ था। वे श्री आशुधर के शिष्य थे। सं० १५६२ में उन्होंने दीक्षा ली तथा सं० १५६७ में उनके उपास्य श्री बाँके बिहारी जी का प्राकट्य हुआ। यही बाँके बिहारी स्वामी हरिदास के ठाकुर हैं। स्वामी जी इन्हें कुंज बिहारी भी कहते थे। कुछ विद्वान् इन्हें निम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत समझते हैं यहां तक कि निम्बार्क माधुरी[३९] में इन्हें तथा इनकी परम्परा के अन्य शिष्यों को समान रूप से स्थान दिया गया है किन्तु इनके सिद्धान्त निम्बार्क संप्रदाय से भिन्न हैं। निंबार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत या भेदा-भेद है जबकि स्वामी हरिदास जी ने किसी मत विशेष को मान्यता नहीं दी। भगवत रसिक जी ने "नहिं विशिष्टाद्वैत हरि, नहिं हरि द्वैताद्वैत, बंधे नहीं मतवाद में ईश्वर इच्छा द्वैत" कह कर मतवाद की अवहेलना ही की है। स्वामी हरिदास जी ने वृन्दावन में सखी भाव की उपासना का विधान किया जिसमें रसोपासना की प्रधानता थी। अतः समस्त दार्शनिक गूढ़ता से मुक्त थी। स्वामी हरिदास जी अत्यन्त भावुक भक्त थे। संगीत के उच्च कलाकार होने के कारण उनकी साधना स्वरों के सहारे और भी ऊँची

---

३८ ह्लादिनी कराय कृष्णेर आनन्दास्वादन।
ह्लादिनी द्वाराय करे भक्तेर पोषण।
ह्लादिनी सार प्रेम, प्रेम सार भाव।
भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव॥
महाभावस्वरूपा श्रीराधा ठाकुरानी।
त्रिगुण खानि कृष्णकान्तशिरोमणि॥

कविराज गोस्वामी।

३९ निम्बार्क संप्रदाय के कवियों का प्रकाशित संग्रह।

हो जाती थी। उन्हें पद गाते गाते राधा कृष्ण की लीला का दर्शन होने लगता था वे 'रुचि के प्रकाश' के रूप में उनके समक्ष खेलने लग जाते थे। इन्हीं के नित्य विहार का गायन स्वामी हरिदास को इष्ट था। यही उनकी भक्ति साधना का सार है।

इन नित्य विहारी का महत्व संप्रदाय में ब्रह्म से भी अधिक है क्योंकि इन भक्तों की दृष्टि में ब्रह्म नित्य विहारी की आभा मात्र है।[४०]

इन कृष्ण का कभी जन्म ही नहीं हुआ और न इनकी बाल लीलायें ही गोकुल में दृष्टि गोचर हुई। मथुरा और द्वारिका से इन्हें कोई काम नहीं। रसोपासना वाले ऐश्वर्य रूप के प्रति आकर्षित नहीं होते। वे वृन्दावन में माधुर्यभाव में ही दिन रात डूबे रहते हैं।

अतः ये कुंज बिहारी तो नित्य किशोर वय वाले हैं। उनका कभी जन्म नहीं हुआ था। यह जोड़ी तो नित्य है। यह आदि काल में भी थी, अब भी है और आगे भी इसी प्रकार नित्य विहार में निरत रह कर भक्तों को रस विभोर करती रहेगी।

स्वामी हरिदास जी सखी भाव से उपासना करते थे। सम्प्रदाय में उन्हें 'ललिता सखी' का अवतार माना जाता है। जिस प्रकार स्वामिनी जू की सखी ललिता अपनी स्वामिनी जू तथा उनके लाड़िले कृष्ण की नित्य सेवा प्रेमभाव से संयुक्त होकर करती थीं उसी प्रकार की भावना स्वामी हरिदास जी अपने हृदय में रखते थे। महल में अन्तरंग सखी का स्थान कर लेना इस भक्ति पद्धति की चरम साधना थी। यह स्थान प्राप्त करना सरल नहीं उसके लिए कुछ साधन बताये गये हैं। भक्ति-भाव की प्राप्ति कोई सरल काम नहीं है। भक्त को अनेक प्रकार की साधनायें करनी पड़ती हैं तब कहीं अनुराग का रंग लगता है और यह रंग लगने पर ही भक्ति सार्थक होती है। प्रेम का रंग लगने पर भक्त को देह की 'सुधि-बुधि' भूल जाती है। वह प्रेमासव पीकर प्रत्येक क्षण उन्मत्त रहता है। कमल पुष्प की पंखुड़ियों को छोड़ जैसे भ्रमर कर्णिका में पहुँचकर मधुपान करे उसी प्रकार भक्त भी भक्ति के अनेक उपादानों को छोड़ 'गुह्यति गुह्य' नित्य विहार रस का गुरु की कृपा से आस्वादन करता है। यही सखी का अन्तरंग प्रवेश है तथा यही सम्प्रदाय की चरम साधना है।

लाल और लाड़िली प्रत्येक क्षण विहार में रत रहते हैं। विहार के बिना वे

---

४० निर्गुण ब्रह्म जो बरणत वेद। ताको सुनो कुवो एक भेद
सों नित्य बिहारी की आभा आदि। निराकार पुनि बदत जो ताहि
स्वामी रसिकदेव—भक्ति सिद्धान्त मणि ८७-८

एक क्षण भी नहीं रह सकते अतः गर्वीली और मानिनी राधा जब मान[४१] करने लगती हैं तो अन्तरंग सखी हरिदास ही उन्हें मनाने जाती है।[४२] लाल की ओर से वह उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा करती है। प्रिया का विश्वास सहचरी पर है तथा इस विश्वास का बल सहचरी को है। सहचरी प्रिया जी को रस दान के हेतु प्रेरित करती है।[४३] इस प्रकार सहचरी प्रिया-प्रियतम राधा कृष्ण को सुख पहुंचाने में सफल होती है। लाल जी भी सहचरी के प्रति प्रिया के प्रेम और विश्वास को देखते हुए समय पड़ने पर सहचरी की दुहाई देते हैं।[४४] स्वामी जी की शिष्य परम्परा में उनके इस सहचरी रूप को और भी अधिक प्रस्फुटित और पल्लवित कर अपनी उपासना में स्थान दिया गया है।

प्रीति की रीति भी लड़ैनी ही जानती है। लाल सुकुमार हैं तथा प्रीति का सागर अथाह है। श्री नित्य विहारिणी राधा ही इस रस में प्रधान हैं, वे आलम्बन हैं और बिहारी जी आश्रय।

---

४१ सम्प्रदाय में स्थूल मान और विरह का स्थान नहीं है केवल रसवर्धन के लिए सूक्ष्म विरह की स्थिति मानी गई है। सूक्ष्म विरह अर्थात् मिलन में भी विरह की व्याकुलता तथा कपट मान इस प्रेम के सहायक तथा रस के संचारी हैं। इस मान और विरह का सम्प्रदाय में अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है।

४२ चलियै छबीली छबीलो बोलत !
आजु की बानक पर तृनु टूटत है,
कहो न जाय कछु स्याम तोहि रति।
—स्वा० हरिदास केलिमाल पद सं० ६६।

४३ मानि अब चलरी एक संग रह कीजै।
तौ कीजै जो बिन देखें जीजै॥
ये स्याम घन तुम दामनि प्रेम पुञ्ज बरषारस पीजै।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी तेरी प्रीति बांधे बांधे॥
—स्वा० हरिदास—केलिमाल १७

४४ राधा रसिक कुञ्जबिहारी कहत जू हौं,
न कहूं गयो सुन सुनि राधे तेरी सौं।
मोहि न पत्याहु तो सङ्ग हरिदासी हुती पुछि,
देखि सदूबहियों कहा भयो मेरी सौं॥
—स्वा० हरिदास—केलिमाल २५

रसिकों की दृष्टि में कुंज बिहारी सबसे बड़े (परमेश्वर से भी बड़े) तो हैं ही किन्तु वे उसके गुण कर्म से भी परे हैं। न तो वे सृष्टि के स्थिति लय आदि के पचड़े में पड़ते हैं, न प्रभुता धारण कर कर्मों का फल देते या जनों की फरियाद सुनते हैं। वे स्वयं अवतारी हैं अतः अन्य अंशकलावतारों की भाँति जन्म मरण, दुष्ट-दमन, आर्त्त-त्राण आदि के बन्धन में नहीं आते। ये सब कर्म उन्होंने परमेश्वर या अवतारों के लिए छोड़ रखे हैं। वे स्वयं तो अति सुकुमार है, सदा विहार में रत हैं। वे अपने को ठाकुर भी नहीं समझते। वे तो निकुंज में लाड़िली की जूठन पाने को ललचाते हैं। सखियों से अनुनय करते है कि लाड़िली के साथ बिहार का अवसर मुझे प्रदान करती रहो। विहार ही उनका आहार है। ठकुराई उन्हें अच्छी नहीं लगती। हरिदासी सम्प्रदाय में आगे चलकर हरिदास जी का स्थान प्रिया प्रियतम के साथ ही हो गया। स्वामी बिहारिणीदास ने प्रिया प्रियतम और स्वामी हरिदास को भिन्न होते हुए भी एक माना है। जैसे एक छिलके के अन्दर तीन चने हों, ऐसे ही ये तीनों भी निकुंज मन्दिर में समान रूप से स्थिति हैं। ये तीनों ही बिहार सुख के भोक्ता हैं। युगल स्वरूप राधा कृष्ण तन से सुख भोगते हैं तो स्वामी जी मन से। यदि गौर श्याम रति सुख से सुखी होते हैं तो स्वामी जी उनके सुख से सुखी होते हैं। उनका यह 'तत्सुख' भी श्यामा श्याम के 'तनसुख' का विलास है।

'कहिवे कों तो तीन हैं सुख मिल विल से एक।
तनु मन बिलसैं दोइ मिल मन करि बिलसै एक॥
ततसुख बिलसै मन मई सो सुख तनहि विलास।
गौर श्याम तनु सुख सुखी ततसुख श्री हरिदास।[४५]

सम्प्रदाय के रसिक भक्तों ने स्वामी हरिदास की रस पद्धति को इतना अधिक महत्व दिया कि राधा कृष्ण के साथ उनको एक कर दिया तत्पश्चात् स्वामी हरिदास जी उनसे भी बढ़कर उपास्य माने गये। कहा गया कि स्वामी हरिदास जी का भजन करने से ही नित्य विहार की प्राप्ति और प्रिया प्रियतम की प्रीति की प्राप्ति होती है। यहाँ तक कहा गया कि लाख बार 'हरि' 'हरि' जपने से लाड़िली उतनी प्रसन्न नहीं होती जितनी एक बार 'हरिदास' नाम उच्चारण करने से प्रसन्न होती हैं। जो हरिदास जी का भजन करते हैं उन्हें वे स्वयं वृन्दावन का वास प्रदान करती हैं।[४६]

उपासक की सम्पूर्ण साधना का फल है नित्य विहार का दर्शन। जब गुरु की कृपा से वह सखी रूप से निकुंज में प्रवेश करता है तब उसे और किसी फल की आवश्यकता नहीं रह जाती। लाड़िली लाल के निरावधि नित्य बिहार का दर्शन ही उसका

---

४५ स्वा० विहारिणीदास, सिद्धान्त के दोहा सं० ११५।

४६ स्वा० ललित किशोरी देव-सिद्धान्त की साखी पद सं० २१ तथा ३११।

परम प्राप्य है। इस दर्शन का एक लाभ उपासक को यह मिलता है कि वह गमनागमन तथा जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। यहां मुक्त होने का अर्थ संप्रदाय में वह मोक्ष नहीं जिसे साधारण जन चरम पुरुषार्थ मानते हैं। इसका अर्थ न ब्रह्म में मिल जाना है और न स्वर्गादि में पहुंचना। इसका अर्थ है बिहार की निकुंज में नित्य स्थिति। जब तक शरीर है तब तक सखी मानसी ध्यान में प्रिया की कृपा पात्र होकर युगल के नित्य विहार का दर्शन करती रहती है। जब शरीर छूट जाता है, तब भी सखी सूक्ष्म रूप से सदा सर्वदा के लिए, लाड़िली के साथ रहकर महल की टहल करती और नित्य विहार के दर्शन का सुख प्राप्त करती है।

जिस दिन उपासक को गुरु सहचारी की कृपा से सखी रूप मिलता है, महल की टहल और प्रिया का ममत्व प्राप्त होता है, उसी दिन उसे अपना परम प्राप्य मिल जाता है। फिर न उसे इस जीवन में कोई प्राप्य रह जाता है न मरण के बाद।

उपासना के उपास्य कुंज विहारी का विहार केवल वृन्दावन में होता है। वृन्दावन के बाहर ब्रज में भी नहीं। राधा कृष्ण ब्रज में रहते हैं परन्तु इस नित्य विहार के लिए तरसते हैं। परकीया रूप में राधा की कृष्ण से क्षणिक भेंट ही होती है स्वकीया रूप में सास-ससुर का संकोच तथा गृह कार्य मिलने से रोकता है किन्तु स्वा० हरिदास के नित्य बिहारी युगल सदा एक रस अखंडित विहार करते हैं।[४७]

वास्तव में नित्य विहार रस का समुद्र है। उस समुद्र से रस की एक बूंद छलक कर ब्रज में पड़ गई, उसी से ब्रज में चारों ओर आनन्द ही आनन्द हो गया।[४८]

ब्रज में एक नायक और अनेक नायिकाएं हैं। अतः एक रस विहार नहीं हो सकता। स्वा० हरिदास जी के विहार में एक लाल ही चकोर हैं, एक लाड़िली ही चन्द्रमा। इन दोनों का संबंध दृढ़ पातिव्रत से जुड़ा है। अतः यहां एक रस विहार चलता रहता है। यही वास्तविक श्रृंगार रस है।[४९]

आरम्भ में कहा जा चुका है कि स्वामी हरिदास जी के भक्ति रस का सिद्धान्त वृन्दावन में अनूठा है। उसके विषय में परम्परा के स्वामियों द्वारा कहा गया है कि दूध तो सभी को कहते हैं, चाहे वह आक के पौधे से निकले चाहे वट वृक्ष से, सेमल से या भेड़ के थन से। किन्तु ये सारे दूध गौ के दूध की समता तो नहीं कर सकते। लोग सफेद देखकर उसको दूध कह देते हैं, परन्तु वास्तविक दूध को तो स्वाद जानने वाला ही पहचान सकता है। इसी प्रकार सभी निकुंजों का "उज्जवल रस" कह दिया

---

४७ स्वा० बिहारिणी दास सिद्धान्त के पद—पद सं० १४२

४८ स्वा० ललित किशोरी देव सिद्धान्त के पद सं० ७, ७००-७०३ तक

४९ स्वा० बिहारिणिदास-सिद्धान्त के दोहा सं० ५१७-५१९

जाता है परन्तु वास्तव में वृन्दावन का नित्य निकुंज रस कौन सा है इसे मर्मज्ञ ही जान सकते हैं। अन्य सम्प्रदायों का भक्ति ज्ञान तो गंगाजल के समान है, जिसे किसी भी अनुयायी रूपी पात्र में रखा जा सकता है। किन्तु ललिता सखी रूप स्वामी हरिदास का उपासना-तत्व सिंहनी के दूध के समान है, जो या तो संस्कार प्राप्त सिंह-शावक के उदर में पच सकता है अथवा उसे स्वर्ण पात्र के समान तपे हुए साधक ही ग्रहण कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य के लिये वह अहितकर है।"[५०]

राधावल्लभ संप्रदाय में कृष्ण

श्री राधा वल्लभ सम्प्रदाय वृन्दावन का प्रमुख सम्प्रदाय है। श्रीकृष्ण तथा राधा इस सम्प्रदाय के उपास्य है। भक्ति में माधुर्य भावना की जो धारा निम्बार्काचार्य ने आरम्भ की थी राधा वल्लभ सम्प्रदाय में आकर उसका विकास हुआ। राधा वल्लभ सम्प्रदाय की भावपूर्ण माधुर्य उपासना का श्रेय श्री हित हरिवंश गोस्वामी को है। सं० १५५६ में उनका जन्म हुआ था और वे संवत् १५६० में वृन्दावन आये थे। संवत् १५६१ की कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को उन्होंने अपने प्रभु श्री राधा वल्लभ जी का पाट महोत्सव किया एवं पांच आरती और सात भोग वाली सेवा पद्धति प्रारंभ की।

मुरलिकावतार श्री हित हरिवंश जी अत्यन्त भावुक भक्त थे। वे राधा कृष्ण की माधुर्योपासना में प्रतिक्षण लीन रहते थे। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में नित्य विहारी युगल की उपासना की जाती है किन्तु उनकी भाव पद्धति की विशेषता है—राधा की प्रधानता। उनकी 'हरिते प्रथम पूजियत राधा' आराध्या मुख्य रूप से राधा तथा उनके द्वारा उन्हीं के सम्बन्ध से मधुर सम्बन्ध वाले कृष्ण उन्हें प्रिय थे। सुधर्म बोधिनी के अनुसार श्री राधा के चरणों में सुन्दर श्याम की अधिक आसक्ति देख कर ही हित हरिवंश उन पर रीझे हैं। अतः राधा वल्लभ सम्प्रदाय में श्री कृष्ण राधा के अनुसंग से पूजित होते हैं। वस्तुतः राधा ही इस सम्प्रदाय की इष्ट हैं। वे कृष्ण की आराध्या हैं तथा प्रेम स्वरूपा हैं। मधुर रस सुधा सिन्धु के सार से अगाध बनी हुई हैं। श्री राधा के प्रेम में पड़कर श्याम सुन्दर चारों ओर से इतने सिमट गये हैं कि सृष्टि रचना और पालन की बात तो दूर वे नारद आदि भक्तों को भी भूल गये हैं अर्थात् श्रीकृष्ण

---

५० सम्प्रदाय नवधा भगति, वेद सुरसरी नीर।
ललिता सखी उपासना, ज्यों सिंहिन को खीर॥
ज्यों सिंहिन को खीर, रहे कुन्दन के बासन।
कै बच्चा के पेट, और पट करै विनासन॥
'भगवत' नित्य बिहार, परौ सब ही को परदा।
रहै निरन्तर पास, रसिकवर सखी सम्प्रदाय॥

—भगवत रसिक की वाणी

का अन्तर्यामी शक्तिमान तथा सृष्टिकर्ता का स्वरूप यहां विस्मृत हो गया है। तथा वे एक परम प्रेमी के रूप में ही पूज्यनीय हैं। ये कृष्ण कुंज विथियों की उपासना करते हैं। इसमें उनकी अपनी भगवत्ता ही विस्मृत हो गयी है तथा वे विशुद्ध प्रेम स्वरूप हो गये हैं। उक्त सम्प्रदाय में राधा वल्लभ कृष्ण की उपासना का निर्देश इस बात का संकेत करता है कि इस सम्प्रदाय में उस कृष्ण की उपासना है जो राधा की स्वयं आराधना करता है। वे दोनों परम प्रेमी हैं अभिन्न हैं, एक ही चने के दो दल के समान हैं, अद्वय हैं परस्पर सुख प्रदान करने में संलग्न हैं।

सम्प्रदाय में तत्सुख सुखित्व भाव को बड़ा महत्व दिया गया है। राधा अर्थात् स्वामिनी जू जो कुछ करती है वह कृष्ण को सुख पहुंचाने हेतु तथा जो कुछ कृष्ण करते है वह सदैव राधा को सुख पहुंचाने हेतु होता है। श्रीकृष्ण राधा के साथ बिहार में रत रहते हैं। उनका यह नित्य बिहार अनन्त काल से चल रहा है और निरन्तर चलता रहेगा। दोनों की अवस्था किशोर है अतः वह नित्य किशोर अवस्था वाले हैं। राधा न स्वकीया है और न परकीया ही। हित हरिवंश जी के अनुसार स्वीकीया में मिलन है विरह नहीं। उधर परकीया में विरह है परन्तु मिलन का पूर्ण सुख नहीं। इसीलिए प्रेम के साम्राज्य में राधा स्वीकीया भी है तथा परकीया भी। श्री हिताचार्य ने इस सिद्धान्त को चकई और सारस के दृष्टान्त से प्रकट किया है। प्रकृति में सारस नित्य संयोग का और चकई वियोग का प्रतीक है। सारस वियुक्त होने पर जीवित नहीं रहता और चकई प्रति रात्रि वियोग ज्वाला का मान करती रहती है। चकई की यह स्थिति देख कर सारस के मन में उसके प्रेम के प्रति सन्देह होता है। और वह आश्चर्य करता है कि परम दुखदायी वियोग की स्थिति में भी चकई के शरीर में प्राण कैसे रहे जाते हैं। चकई को सारस के इस सन्देह पर तरस आता है और वह कहती है कि सारस अपनी प्रिया के वियोग को यदि एक क्षण भी तेरा शरीर सहन कर सकता तब तू मेरी पीड़ा को समझ सकता था। तू तो वियुक्त होने पर तुरन्त मर जाता है और तेरा मन वियोग के प्रभाव का अनुभव नहीं कर पाता। "श्री हित हरिवंश कहते हैं कि विरह के बिना शृंगार रस की स्थिति शोचनीय है। सदैव प्रिय के पास रहने वाला सारस प्रेम के मर्म को क्या जान सकता है। इस प्रकार संयोग और वियोग दोनों के अपूर्ण होने के कारण रस की वही स्थिति आदर्श मानी जा सकती है जिसमें संयोग और वियोग एक साथ उपस्थित रहकर अपने भिन्न प्रभावों द्वारा प्रेम के एकान्त अनुभव को पुष्ट बनाते हों। वृन्दावन रस में इसी स्थिति का ग्रहण किया गया है : संयोग की परावधि तो यह है कि एक क्षण के लिए भी दोनों वियुक्त नहीं होते और वियोग की सीमा यह है कि नित्य संयुक्त होने पर भी अपने को अनमिले मानते हैं।

श्री हित हरिवंश जी ने रास को अत्यन्त महत्व दिया है।[५१] इस रासलीला के लिए राधा वल्लभ सम्प्रदाय किसी गोलोक की कल्पना नहीं करता वह तो साक्षात् वृन्दावन में ही होती है।

सम्प्रदाय में राधा का मान वर्णित है। वे मान करती हैं कृष्ण मनाते हैं किन्तु इस मान को स्थूल रूप में स्वीकार न करके सम्प्रदाय ने सूक्ष्म मान को ही स्वीकार किया है। सम्प्रदाय में शृंगार रस चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। पूर्ण चन्द्र ज्योत्स्ना, यमुना पुलिन, पावस, शरद, वन-वीथिका कुंज आदि का उद्दीपन विभाव की दृष्टि से वर्णन किया गया है। निकुंज रस के विचार से ऐसे समस्त वर्णन नित्य विहार के पोषक माने जाने चाहिये। जिस प्रकार प्रिया प्रियतम एक दूसरे के प्रेम पाश में आबध्य होकर रति क्रीड़ादि करते हैं और अन्त में सुरत प्रसंग आदि काम भोग में उनकी रति का पर्यवसान होता है। ऐसे ही राधा और कृष्ण के नित्य विहार में दाम्पत्य भाव में प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन होता है। अन्तरंग भावना में इसका पक्ष आध्यात्मिक ही स्वीकार किया जाता है। लौकिक दृष्टि से नित्य विहार शृंगारमय प्रतीत होता है किन्तु भावना के उदात्तीकरण द्वारा उनका आध्यात्मिक रूप अन्ततः नेत्रों के सम्मुख आ सकता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में हित-तत्व प्रधान है। यह हित तत्व क्रीड़ापरायण तत्व है। श्री हरिवंश की दृष्टि में एक 'हित' ही भोक्ता, भोग्य और प्रेरक प्रेम के नित्य प्रकट रूप में क्रीड़ा कर रहा है। यह प्रेम का ही विशेष पर्यायवाची बनकर राधावल्लभ सम्प्रदाय के काव्य में प्रकट हुआ है। यों तो वात्सल्य सख्य आदि रसों की लीलायें भी हैं किन्तु इनमें से किसी में 'हित' के सहज पूर्ण स्वरूप आदि व्यक्त नहीं हुए। उसके लिए उज्ज्वल रस ही एकमात्र सहज एवं प्रेम के चरम परिपाक का उपाय है। सम्प्रदाय में परस्पर प्रेम ही हित है। श्री हित हरिवंश ने कहा—"यत्किञ्चिद् दृश्यते सृष्टां सर्वं हित मयं विदु:" अर्थात् संसार में जो कुछ दिखाई पड़ता है, उसे ही हित समझो। हित मंगलमय शुद्ध प्रेम है। उज्ज्वल रस में प्रेम के जितने सुन्दर और समृद्ध रूप प्रकट होते हैं उतने अन्य किसी रस में नहीं। अतः राधावल्लभ सम्प्रदाय में उज्ज्वल रस का ही बोलबाला है। राधा कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन सम्प्रदाय के कवियों ने किया है। यह वर्णन नित्य विहार के अन्तर्गत हुआ है। 'रसो वेसः' श्रुति के अनुसार परम तत्व प्रेमस्वरूप है। अतः राधावल्लभ लाल का अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा के साथ वृन्दावन को निभृत निकुंज में नित्य, अखण्ड, एक रस प्रेम क्रीड़ा करना ही उनका नित्य विहार है। इस विहार में न मान है, न विरह और न व्यवधान। रस, रूप, प्रेम

---

५१ उन्होंने ही रास मंडल की स्थापना की थी जहां आज भी नित्य लीला की स्थिति मानी जाती है।

ग्रौर ग्रानन्द के प्रतीक राधा कृष्ण के नित्य विहार की ध्यान-उपासना ही राधावल्लभ सम्प्रदाय की साधना का परम लक्ष्य है।

राधाकृष्ण सहचरी तथा वृन्दावन नित्य विहार के पोषक तत्त्व माने गये हैं। ये तत्त्व परस्पर तत्सुख सुखी भाव से प्रेरित हैं। सहचरी गण शुद्ध रति की साक्षात् प्रतिमा है वे राधा तथा कृष्ण दोनों को सुख पाते देखकर सुखी हैं। वे विविध भाँति से उनकी सेवा करती हैं ग्रौर उनके सुख के लिए ही ग्रपने को उन पर न्योछावर कर देती है। वृन्दावन सम्पूर्ण रूप से ग्रपने फल, फूल, लता, वृक्ष, कुंज के द्वारा राधा कृष्ण की सेवा में तत्पर रहता है। वृन्दावन के लता गुल्म ग्रादि ग्रन्य प्रकृति लता गुल्मों से भिन्न प्रकार के है। वे भक्तों के ही स्वरूप हैं जो राधा-माधव की क्रीड़ाग्रों को देखने के लिए धरती तल पर ग्रवतरित हुए है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय सखी सम्पदाय है। राधा कृष्ण की निकुंज लीला में केवल सहचरीगण को ही प्रवेश करने का ग्रधिकार है। भक्त को राधा कृष्ण का नैकट्य प्राप्त करने के लिए सहचरी बनना पड़ता है। सुर-मुनियों को दुर्लभ इस निकुंज लीला में केवल भक्त रूपी सहचरीगणों को ही प्रवेश करने का ग्रधिकार है। ये राधा कृष्ण को नहलाती, खिलाती, पिलाती शृंगार सज्जा करती तथा रुचि के भोजन कराती हैं। तत्पश्चात पान का बीड़ा खिलाकर शयन कराती हैं। जागने का समय होने पर नाना प्रकार के वाद्य तथा संगीत सुनाकर जगातीं तथा उनका नाना भाँति से मनोरंजन करती हैं। हित हरिवंश जी के मत में राधा कृष्ण का क्रीड़ा विहार सहचरी सखियों द्वारा ही सम्पन्न होता है। श्री युगल किशोर सहचरियों को सुख देने के हेतु इसकी रचना करते हैं। सखियाँ केवल विहार की सम्पन्नता में ही सन्तुष्ट नहीं हो जातीं। वरन् वे सब प्रकार की सेवा में नित्य तत्पर रहती हैं। इन सखियों का जहाँ प्रवेशादि कार्य है वहाँ शान्त दास्य सख्य तथा वात्सल्य भाव वाले भक्तों का प्रवेश सम्भव नहीं हो सकता। स्वयं श्रीकृष्ण इन सखियों की चाटुकारिता में संलग्न रहते हैं क्योंकि उन्हें इस प्रकार प्रिया का प्रसाद प्राप्त होता है। रासेश्वरी राधा को रास में प्रवेश कराने का ग्रधिकार सखियों को होता है। वे बड़े चातुर्य से ग्रपनी ग्राराध्या राधिका को रास के लिए बुला लाती हैं। नित्य परायण इन सखियों का स्वरूप ग्रन्य सम्प्रदायों में वर्णित गोपी भाव से सर्वथा पृथक एवं स्वतन्त्र ग्रस्तित्व वाला है। वल्लभ सम्प्रदाय की गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति रति भाव होता है। किन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय में यह सखियाँ श्रीकृष्ण के प्रति रति भाव से ग्रनुरक्त नहीं होतीं। वरन् श्रीकृष्ण इनको ग्रपनी ग्राराध्या राधिका की किंकरी जान कर इनके प्रति ग्रपने स्नेह भाव को व्यक्त भी करें तो भी सखियों में इस प्रकार की भावना नहीं जागती। सखियों के मन का तत्सुख सुखी भाव ही इनको सामान्य गोपी गण से पृथक विशेष स्थान का ग्रधिकारी बना देता है। उनका हृदय राधा माधव के

विभ्रत निकुंज में परस्पर मिलन से इतना प्रमुदित होता है कि वे आत्मविभोर होकर तथा मतवाली बनकर नाचने लगती है। जब कभी राधा श्याम से रूठकर मान करना आरम्भ कर देती है तो सहचरी राधा को मनाकर श्रीकृष्ण के पास कुंज कुटीर में ले जाती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय वर्तमान वृन्दावन में अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्प्रदाय है। राधावल्लभ लाल की काष्ठ प्रतिमा जिसकी स्थापना श्री हित हरिवंश जी ने की थी श्री राधावल्लभ के मन्दिर में अब भी विराजमान है। श्री राधावल्लभ लाल राधा एवं कृष्ण का सम्मिलित स्वरूप है। उनकी साज सज्जा भी दोनों के अनुरूप होती है। पीताम्बर और चूनरी दोनों ही पहनाये जाते हैं। राधा की गद्दी सेवा है जो इस बात की सूचक है कि सम्प्रदाय में राधा ही अधीश्वरी है अर्थात् वे कृष्ण की भी आराध्या हैं।

शुक अथवा चरणदासी सम्प्रदाय में कृष्ण

प्रस्तुत सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री श्याम चरणदास जी थे। उनका जन्म सं० १७६० में डहरा नामक ग्राम में हुआ था। कहा जाता है कि इन्होंने सखी रूप से रास का दर्शन प्राप्त किया एवं वंशीवट में श्री सुकदेव जी ने स्वयं प्रकट होकर इन्हें नवधा भक्ति के प्रसार की आज्ञा दी। दिल्ली जाकर इन्होंने धर्म प्रचार किया। इन्होंने 'भक्ति सागर' नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा जिसमें अनेक छोटे बड़े ग्रंथ हैं। ग्रंथ ब्रज भाषा में है। इनके प्रधान शिष्यों में ५२ पुरुष तथा सहजोबाई और दयाबाई नामक दो स्त्रियाँ थीं। सहजोबाई ने दया प्रकाश तथा दयाबाई ने 'वाणी' लिखी है।

सम्प्रदाय के लोग तिलक लगाने तथा पीले वस्त्र पहनते हैं। संक्षेप में इनके मत का सिद्धान्त इस प्रकार है :—

'राधा कृष्ण उपास्य धर्म भागवत हमारो।
निज वृन्दावन धाम मुक्ति सामीप निहारो॥
तीरथ गंगा जान वृत्त ध्यान रस को धारो।
क्षमाशील संतोष दया नित हिये विचारो॥
सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, आचार्य श्याम चरणदास।
'राम रूप' तिन पद शरण, नवधा भक्ति विलास॥'[५२]

अपने 'अमरलोक लीला' नामक ग्रंथ में श्री चरणदास वृन्दावन के चिन्मय स्वरूप का ध्यान करते हैं और वहाँ चार द्वार, चौसठ खम्भों से युक्त चबूतरे पर रंग-महल की कल्पना करते हैं। अनेक सखी सहेली यहाँ परिक्रमा करती हैं।

---

५२ श्री रूप माधुरीशरण—श्री शुक सम्प्रदाय पृ० ५० में उद्धृत

'आस पास मधु कुंज है, बीच लाल को धाम।
चरणदास कूं दीजिए, सखियन में विसराम॥

यहां श्रीकृष्ण के बामांग में श्री राधिका जी विराजमान हैं। चौंसठ खम्भों के सहार चौसठ सखी खड़ी है। यहां अखण्ड रास होता रहता है :—

'अखण्ड रास लीला अमर, नित वृन्दावन धाम।
नित बिहार जहां होत है, चरनदास को वास॥

यह सम्प्रदाय भी सखी भाव से माधुर्य का उपासक है। वृन्दावन को ही ये धाम मानते हैं। पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इन्हें निर्गुणी बताया है। इनकी वाणी में 'अनहद' आदि शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है परन्तु ये मूर्तिपूजा भी करते हैं। श्री राधा कृष्ण और शालिग्राम की पूजा इनके यहां होती है। वास्तव में इनमें निर्गुण और सगुण पद्धतियों का विलक्षण मेल है।

श्री प्राणनाथ जी के धामी सम्प्रदाय में कृष्ण

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री प्राणनाथ जी थे। इनका जन्म नवानगर में सं० १६७५ में हुआ था। सं० १७३६ में आपने सूरत में अपने स्वतन्त्र मत का प्रवर्तन किया। इनके गुरु श्री देवचन्द्र जी स्वामी हरिदास जी की शिष्य परम्परा में एक अन्य हरिदास नामक महात्मा से दीक्षित हुए थे। अतः ये निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। पन्ना के प्रसिद्ध राजा छत्रसाल सं० १७४० में श्री प्राणनाथ जी के शिष्य हुए। सं० १७५१ में श्री प्राणनाथ प्रभु नित्य धाम को पधारे। सम्प्रदाय के प्रमुख स्थान पन्ना, सूरत और जामनगर में हैं। ये श्री राधा कृष्ण की रास लीला के उपासक हैं तथा सखी भाव से युगल की मानसी आराधना करते हैं। सम्प्रदाय में आपके 'श्री मिहिर राज' श्री जी साहब, महु, इन्द्रावती, इंदिरा, महामति आदि नाम भी प्रचलित हैं। आपकी वाणी 'महावाणी' या 'श्रीमुख वाणी' कहलाती है। इस सम्प्रदाय को 'निजानन्दीय' श्रीकृष्ण प्रणामी तथा मिहिरराज पंथी सम्प्रदाय भी कहते हैं। श्री प्राणनाथ जी, श्री बांके बिहारी जी के किरीट तथा मुरली की सेवा करते थे।

श्री प्राणनाथ जी के हृदय में श्रीकृष्ण साक्षात्कार के फलस्वरूप जो प्रेम सागर उमड़ा उसको आपने प्रेम, इश्क, शराब, तारतम ज्ञान, भक्ति इत्यादि नामों से पुकारा। आपने श्रीकृष्ण लीला के व्यावहारिकी, प्रतिमासिकी, वास्तवी तीन भेद माने जो क्रमशः श्रेष्ठ हैं। नित्य ब्रज लीला व्यावहारिकी लीला है। नित्य रास लीला, प्रतिमासिकी है एवं दिव्य ब्रह्मपुर की वास्तवी लीला को ब्रह्मानन्द मानकर ये उसकी उपासना करते थे। श्री श्यामा जू ठकुराहन 'रासेश्वरी श्री राधा पर आपका अनन्य प्रेम था। श्रीकृष्ण की पराभक्ति करने का उपदेश आपने दिया है। श्री प्राणनाथ जी की वाणी के अन्तर्गत 'श्री धाम की पहेली' में घाट, पुल, महल, चबूतरा, पहाड़ों वाले धाम का वर्णन है;

योगमाया प्रकरण में रास का तत्व बताया है तथा 'भागवत को सार' में ब्रह्म लीला, ब्रज लीला, रास लीला की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता बतायी है।

वंशीअलि के ललित सम्प्रदाय में कृष्ण

ललित सम्प्रदाय राधा कृष्ण भक्ति को लेकर चलने वाला एक नवीन सम्प्रदाय है। इसे वंशीअलि जी का सम्प्रदाय कहा जाता है। यह सम्प्रदाय एक प्रकार के चार आचार्यों में श्री विष्णु स्वामी की परम्परा में रखा जा सकता है। श्री वंशी अलि जी ने अपने सम्प्रदाय का मर्म बताया है कि हमारा ललित सम्प्रदाय है। नामान्तर से इसे रुद्र सम्प्रदाय अथवा विष्णु स्वामी सम्प्रदाय भी कहते हैं। सम्प्रदाय के अन्य कवियों के विवरण से भी सिद्ध है कि वंशी अलि जी के ललित सम्प्रदाय का सीधा सम्बन्ध विष्णु स्वामी से है और इसका नाम ललित सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय पर स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित हरिदासी सम्प्रदाय का तथा राधा वल्लभ सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें सखी भावोपासक तत्व विद्यमान है।[५३]

सम्प्रदाय में राधा को विशिष्ट स्थान का अधिकारी माना जाता है। यह स्थान हरिदासी एवं हरिवंशी सम्प्रदाय से कुछ और भी विशेष है। श्री वंशी अली की दृष्टि में श्री राधा का ही अपर नाम ब्रह्म है। वे ही परा शक्ति के रूप में सर्वत्र सूत्र की भांति व्याप्त है और समस्त जड़ चेतन उन्हीं स्वतन्त्रता के आधीन हैं। किन्तु श्री राधा सर्वोपरि होते हुए भी भक्त पराधीन है। श्रीकृष्ण चन्द्र श्री राधा के अनन्य भक्त हैं अतः उनके साथ समान भाव से विहार करने के लिए ही श्री राधा ने अवतार ग्रहण किया है। श्री राधा सर्वेश्वरी है अतः विहार में उनकी समानता और कृष्ण पत्नीत्व भक्तों के आनन्द के लिए ही है। वंशी अलीजी ने राधा को दार्शनिक आधार भी दिया है। राधा प्राधान्य के प्रभाव से महारास में राधा ही महारास की ठीक वैसी नायिका है जिस प्रकार श्री मद्भागवत में श्रीकृष्ण। अतः यहाँ श्रीकृष्ण की स्थिति सेवक के समान है। वंशी अली जी ने कहा है :—

"सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नंद कुमार।
दूजे सेवक सहचरी, सेवा विपुल विहार।"[५४]

---

५३ वंशी अलिजी ने बरसाने में श्री ललिताजी की उपासना करके श्री प्रियाजी का दर्शन पाया :—

श्री बरसाने बरस बरस द्वावस हक कीनों।
श्री ललिता-संग आपु लाड़िली दरसन दीनों॥
रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गायी।
प्रेम-पंथ प्रति गुरु, तासु पदवी दरसायी॥

—श्री राधाचरण गोस्वामी नव-भक्तमाल

५४ हृदय सर्वस्व-५।

यहां सखियां राधा को ही अपना पति मानती है। इन राधिका जी की प्राप्ति श्री ललिता सखी का आश्रय लेने से हो सकती है। अतः ललिता ही सम्प्रदाय की गुरु है। यहां तक कि ललिता जी के जन्म-दिन की बधाइयों और मंगल के पदों की रचना भी सम्प्रदाय के कवियों ने की है। श्री ललिता के ही अंचल में प्रिया-प्रियतम नित्य विराजते है। वे श्री ललिता जी के ही सहचर है। तीनों एक प्राण हैं। वास्तव में श्री राधा, लाल, ललिता और वृन्दावन में कोई भेद नहीं है। ये सब ही श्री राधा के रूप है।[५५]

प्रिया प्रिय का नित्य विहार सहचरी की इच्छा के अनुकूल ही होता है। ललिता जो करती है वही लाल ललना को भाता है जो लाल ललना करते हैं वही ललिता को प्रिय है। ललिता ही उपासक के नेत्रों की पुतलियों में बैठकर ललित रूप का दर्शन कराती है। जो प्रिया प्रिय को तन मन से प्यारी है, वे ललिता उन पर अपने प्राणों को न्योछावर करती है। सम्प्रदाय की उपास्या श्री राधा है जो श्री कृष्ण के साथ नित्य विहार में रत है। श्री नित्य विहार रस संयोग वियोग से परे है। इस नित्य विहार की प्राप्ति राधिका चरण कमल कृपा बिना नहीं होती। रमापति, शुक, नारद भी श्री राधा को अपने ध्यान में भी नहीं पा सकते। उनकी प्राप्ति सखी भाव से ही हो सकती है। स्वयं श्रीकृष्ण भी सखियों के ही चरण कृपा बल से श्री राधिका चरण कमलों को प्राप्त कर सकते हैं यही श्री वंशी अलि जी का सिद्धान्त है।[५६]

मीरा-सम्प्रदाय में कृष्ण

मीरा-सम्प्रदाय की प्रवर्तक मेवाड़ की रानी मीराबाई कही जाती है। इनका जन्म सन् १४९८ ईसवी में हुआ। कविता-काल १६वीं शती है। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों की किसी परम्परा में उन्हें नहीं रखा जा सकता। श्री हितहरि वंश जी तथा स्वामी हरिदास जी की भाव-पद्धति भी उन्होंने कभी नहीं अपनायी। उनमें कृष्ण के प्रति पति-भाव को लक्षित कर कुछ विद्वानों ने उन्हें चैतन्य सम्प्रदाय का समझने में भूल की है। वृन्दावन आने पर जीव गोस्वामी से जो उनकी भेंट की किवदंती है,

---

५५ श्री राधा मेरी धनथली, राधा ही है लाल।
श्री ललिता राधा रूप हैं, हों श्री राधा लाल॥ हृदय सर्वस्व २९

५६ जय जय श्री राधिका पद कमल।
सखी जन मन मोदकारी, रसिक जीवन अमल।
रमापति सुकदेव नारद नहीं पावत ध्यान॥
मंद सुनु लहत कृपा बल सखी चरन प्रमान॥

—वंशी अलिजू की वाणी

कदाचित उसी आधार पर ऐसा कहा जाता है किन्तु मीरा वस्तुतः किसी भी सम्प्रदाय की नहीं थी। उन्होंने किसी को गुरू नहीं बनाया था। रैदास को उनका गुरू माना गया है किन्तु वे रैदास की शिष्या नहीं थीं।[५७] उन्हें बचपन से कृष्ण को पति रूप में पाने की धुन थी किसी अन्य को देखने की न उन्हें आवश्यकता थी और न अवकाश ही। कृष्ण अनन्य रूप से मीरा के प्रभु, प्रेमी तथा पति हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं का उन्हें ज्ञान तो था। कालियानाग नाथने की लीला का वर्णन भी उन्होंने अपने एक पद में किया है किन्तु उनका कृष्ण के प्रति प्रेम माधुर्य भाव का ही था।[५८] माधुर्य भाव में ही उनकी आसक्ति थी। युवा काल की प्रेम तथा माधुर्य से भीनी लीलाएँ ही उनका प्राण हैं, जिनमें कृष्ण से उनका सीधा सम्पर्क है। इस सम्पर्क में राधा का अस्तित्व नहीं है। यहाँ तो मीरा ही राधा है। एक-दो स्थलों पर जहाँ राधा का नाम उन्होंने लिया है वहाँ भी कदाचित उनका तात्पर्य अपने से ही है। मीरा के हृदय में कृष्ण की सांवली मूर्ति बसी हुई है। मोर मुकुट, पीताम्बर और गले में वैजयन्ती माला धारण करके मुरली बजा बजा कर वृन्दावन में जो गउयें चराता है वही कृष्ण उनका प्रियतम है। राधा बन कर मीरा उनके साथ लगी फिरती है। जब दिखाई नहीं देते तो विरह की तीव्र अनुभूति से व्याकुल हो जाती है। उन्मायन प्रेम में मतवाली होकर वह अपने प्रियतम को विभिन्न नामों से पुकारती है। हरि, रमैया, राम, नारायण, जगदीश नामों से वह कृष्ण की अभिन्नता प्रकट करती है तो सांवलिया, गिरधर, गिरधर नागर, गिरधर गोपाल, मोहन, मदन मोहन आदि नामों से कृष्ण के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करती है। इसके अतिरिक्त प्यार में पिया, प्यारे तथा लंगर भी कह कर कृष्ण को पुकारती है। भिन्न मनस्थिति में एक ही कृष्ण को विभिन्न नामों से पुकारती है। प्रत्येक भावपूर्ण स्थिति में कृष्ण ही उनके आलंबन हैं। अपार्थिव आलंबन के प्रति संयोग की भावना कल्पना मात्र रहती है और इसी से संयोग की भावना के साथ-साथ वियोग का दुःख सताने लगता है। विरह से प्रारम्भ होकर विरह में ही समाप्त होने वाली उनकी गम्भीर प्रेम-साधना में तपाये हुए सोने के समान वह निर्मल तेजस्विता है कि उसके सामने पड़ने वालों की लौकिक श्रृंगार-भावना भी शुद्ध हो जाती है।[५९] मीरा की भक्ति भावना में कृष्ण अपना ऐतिहासिक, पौराणिक तथा पारलौकिक अस्तित्व समाप्त कर प्रेम की परिपूर्णता और रस निष्ठा के प्रतीक बनकर रह गये हैं। प्रेम-साधना की इससे बड़ी ऊँची और चैतन्य स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। इस स्थिति में ईश्वर हृदय के अन्तर्गत में आत्मसात

---

५७ डा० श्री कृष्ण लाल—मीराबाई (जीवन चरित्र और आलोचना) पृ० १४३।
५८ भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'—मीरा की प्रेम साधना पृ० २६।
५९ डा० श्री कृष्ण लाल—मीराबाई पृ० १५९।

होकर अन्यतम बन जाता है।[६०] मीरा के गोपी के हृदय का प्रबलापन, कर्मठ दार्शनिक का पुरुषार्थ, भावुक का उत्कृष्ट प्रेम, चिन्तनशील की विरक्ति, साधक की लगन है तथा भक्ति की प्रेम जन्य विवशता स्वाभाविक भोलेपन और मार्मिक माधुर्य की कोमलता के साथ विद्यमान है इसी से संतों और भक्त योगियों और दार्शनिकों की चेतना तथा शब्दावली उनके प्राण स्वरों का कंपन में विद्यमान है।[६१]

मीरा कृष्ण प्रेम की वह अलौकिक मन्दाकिनी है जिसकी प्रतिभा सामान्य मानव भावों के गंदले नालों से उमड़ाई हुई किसी भक्ति-भाव-भरिता-कन्दलिता सरिता में पानी नितान्त असम्भव है।[६२]

---

६० प्रो० रामेश्वर प्रसाद शुक्ल 'अंचल'—'मीरा की वेदना' से।

६१ प्रो० शंभुप्रसाद बहुगुणा—'जनम जोगिण मीरा' से।

६२ डा० उदयनारायण तिवारी—मीरा की भक्ति साधना।

पाँचवा अध्याय

पाँचवा अध्याय

मध्ययुगीन साम्प्रदायिक हिन्दी काव्य में कृष्ण

वल्लभ सम्प्रदाय में श्री कृष्ण

नाम—श्रीकृष्ण

रूप—बाल एवं किशोर

लीला—व्रजलीला गोकुलीय लीला

धाम—गोकुल वृन्दावन एवं गिरिराज

परब्रह्म कृष्ण—वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख कवि सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य सात कवि हैं। वल्लभ अथवा पुष्टि सम्प्रदाय की हिन्दी कविता का रूप इन्हीं कवियों में प्राप्त होता है। रस स्वरूप ब्रह्म का कृष्ण के रूप में अवतरण समस्त धर्म के इतिहास की अपूर्व घटना है। ये कृष्ण भक्त-कवियों के कण्ठ का हार हैं। वल्लभाचार्य के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म का सैद्धान्तिक निरूपण भी इनके काव्य में प्राप्त होता है तथा ब्रह्म का रसमय-अवतरण—कृष्ण—के विभिन्न रूपों का भी। मंगलाचरण के पश्चात सूरसागर के पहले ही पद में सूर ने निर्गुण ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार किया है किन्तु अपने इष्ट कृष्ण की सगुण लीलाओं को कविता का विषय बनाया है वस्तुतः वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण निर्गुण और सगुण दोनों ही हैं।[1] वेद उपनिषद् जिसका निर्गुण कहकर यश गाते हैं; वही सगुण नन्द की प्रेम-डोर में बँध गया है। जो मनवाणी से अगोचर ब्रह्म हैं वही भक्तों के लिये अवतार धारण करता है। जिनके स्वरूप का वर्णन वेदों ने नेति-नेति कहकर किया है वही भक्तों के वश में

---

१ अविगत गति कछु कहत न आवै।

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालम्ब मन चकित धावै।

सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन लीला-पद गावै॥

—सूरसागर पद सं० २

होकर देह धारण करके पृथ्वीतल पर लीला के हेतु आता है।[२] नन्दगोपाल नन्द के सम्मुख हँस रहे हैं किन्तु नन्द उनका वास्तविक स्वरूप नहीं जानते। निर्गुण ब्रह्म सगुण लीला कर रहा है, उसे पुत्र समझने की भूल कर रहे हैं।[3] वह अच्युत, अविगत, अविनाशी, परमानन्द तथा सुख की रास है, धरती का भार हरण करने के लिये शरीर धारण करता है।[४]

कृष्ण परब्रह्म हैं। वेदान्त शास्त्र में जिसे 'ब्रह्म' कहा गया है, स्मृति अथवा पुराणों में जो परमात्मा शब्द से संज्ञिक है, भागवत शास्त्र में जिसे भगवान शब्द से व्यक्त करते हैं वही पुष्टिमार्ग में रस स्वरूप श्री कृष्ण है। परब्रह्म आदि सनातन और अन्तर्यामी है।[५] वेद की श्रुतियां जिस आत्मतत्व को निर्गुण बताती हैं उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में परब्रह्म कहा गया है।[६] केवल एक ब्रह्म है अन्त में ये अनेक

---

२ वेद उपनिषद् यश कहैं निर्गुनहिं बतावैं।
सोइ ब्रह्म होये नन्द की दावरी बंधावैं॥
ब्रह्म अगोचर मन वाणी ते अगम अनंत प्रसार।
भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला संसार।
गोविन्द तेरोइ स्वरूप निगम नेति-नेति गावैं।
भक्तन के वश श्यामसुन्दर देह धरैं आवैं।

—सूरसागर

३ हंसत गोपाल नन्द के आगे नन्द स्वरूप न जाने।
निर्गुण ब्रह्म सगुण लीला ताहिब सुत करि माने॥

—परमानन्द दास

४ तुम अच्युत अविगत अविनासी, परमानन्द सदा सुखरासी।
तुम धनु धारि हर्यो भुव भार, नमो नमो तुम्हें बारंबार॥

—सूरसागर

५ आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अन्तर्यामी।

—सूरसागर

६ परब्रह्म शुद्ध अद्वैत है—सूर ने उसका इस प्रकार वर्णन किया है:
पहले हौं ही हौं एक।
अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित, सुनि विधि विमल विवेक।
सो हौं एक अनेक भाँति करि शोभित नाना भेव।
ता पाछे इन गुननि गाए ते हौं रहि हौं अवशेष॥

—सूरसागर, द्वितीय स्कंध

रूप उसकी उत्पत्ति हैं।[७] एक में ही समाकर एक हो जायेंगे। सच्चिदानन्द ब्रह्म के चिद् अंश से जीवों का विषय बनाया है। वस्तुतः वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण निर्गुण और सगुण दोनों हैं।

परब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। इस प्रकार वह विरुद्ध धर्माश्रय है। श्रीकृष्ण सब धर्मों के आश्रय रूप है, इसीलिये वे धर्मी कहलाते है। इनमें विरुद्ध धर्म भी एक साथ रहते हैं यही इनकी विशेषता और विचित्रता है।[८] कृष्ण थे, कृष्ण है और अन्त में कृष्ण ही रहेंगे।[९] ब्रह्म पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण निकल जाने पर भी पूर्ण रहता है।[१०] वे निर्विशेष और निर्गुण होते हुये भी सविशेष और सगुण हैं। यदि वह अगम्य है तो गम्य भी। अदृश्य है तो दृश्य भी। वह असंख्य नेत्र, मुख, कान और पद वाला है तो इनसे सर्वथा रहित भी।

अक्षर ब्रह्म—कृष्ण ही अक्षर ब्रह्म हैं। निर्गुण ब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा में निरन्तर आंतर रमण करता है इसलिये वह 'आत्माराम' कहलाता है। उसको जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है तब स्वांतः स्थित दिव्य आनन्द धर्मों वाले अपने आधिदैविक रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रमण करता है। यही आनन्द धर्मों वाला उसका बाह्य प्रकट रूप पुरुषोत्तम

---

७ मिथ्या तन को मोह बिसारि, जाइ रह्यो भावे गृह वारि।
करत इन्द्रियत चेतन जोई, मम स्वरूप जानो तुम सोई॥
—सूरसागर द्वितीय स्कन्ध

चेतन घट-घट है या भाई, ज्यों घट-घट रवि प्रभा समाई।
घट उपजो बहुरो नशि जाई, रवि नित रहे एक ही भाई॥
—सूरसागर, तृतीय स्कन्ध

८ जाके उदर मधि जग सबै, सो देवकी उदर मधि अबै।

९ आगे कृष्ण, पाछे कृष्ण, इत कृष्ण, उत कृष्ण,
जित देखो तित कृष्ण ही मई री।
—छीतस्वामी पद संग्रह

१० ब्रह्म पूरन एक द्वितीय न कोऊ।
दीप तें दीप उजारी, तैसे हि ब्रह्म घर-घर बिहारी॥
—सूरसागर

कहलाता है। यह परब्रह्म का ही आधिदैविक साक्षात रूप है।[११] इस पुरुषोत्तम में अनन्त शक्तियों की निरन्तर स्थिति रहती है। ये सब शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा अधीन रहने वाली हैं। जब पुरुषोत्तम को वाह्य-रमण करने की इच्छा होती है तब वह अपने दो विभाग करके एक को पुंभाव एवं द्वितीय को स्त्रीभाव के रूप में प्रकट करता है। जैसा कि पहले कहा गया है ब्रह्म पूर्ण है। अपने आनन्द का स्वाद लेने की जब उसे आकांक्षा होती है तब अपनी शक्तियों को जगत में प्रकट करता है। इससे उसकी पूर्णता में कोई न्यूनता नहीं आती। उनका द्वितीय अन्तर्यामी रूप पुरुषोत्तम में स्वामिनी भाव एवं स्वामिनी में पुरुषोत्तम भाव से स्थित रहता है। निविड़ कुंज में जहाँ कोई नहीं आता दम्पति रस केलि में सुखपूर्वक संलग्न रहते हैं। यह कुंज गोवर्धन गिरि पर (श्रीनाथ जी) स्थित है। वहाँ रत्नों का सिंहासन है।[१२] सृष्टि के सम्पूर्ण अट्ठाईस तत्व ब्रह्माण्ड, सम्पूर्ण देवता, माया प्रकृति तथा आदिपुरुष

---

११ सोभा अमित अपार अखण्डित आप आत्माराम।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब विधि पूरन काम॥
आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्प अहार।
ऊँकार आदिवेद असुरहन निर्गुन सगुन अपार।

—सूरसारावली

ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादिक देवता ताको करत विचार।
पुरुषोत्तम सबही को ठाकुर इह लीला अवतार॥

—परमानन्द सागर

अविगत, आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निजलोक विलासी॥
जहँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुंजलता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय-प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥
जहँ गोवर्धन पर्वत मनिमय, सघन कंदरा सार।
गोपिन मन्डल मध्य विराजत, निस दिन करत विहार॥
खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रकट कियो है हरी-पुरुष अवतार॥

—सूरसारावली

१२ गोवर्धन गिरि रत्न सिंहासन दम्पति रस सुख मान।
निविड़ कुंज जहँ कोऊ न आवत रस बिलसत सुख खान॥

—सूरसारावली

श्रीपति लक्ष्मीनारायण ये सब कृष्ण के ही अंश है।[१३] कृष्णावतार में प्रकटित श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात परब्रह्म थे।[१४]

सूर की अनन्य भक्ति कृष्ण के प्रति है तथा आस्था कृष्ण के व्यूहात्मक तथा गुणावतारों में। राम और शिव को उन्होंने माना है परन्तु राम को कृष्ण का व्यूहात्मक अवतार और शिव को उन्ही का गुणावतार माना है। हरि राम, गोविन्द वस्तुतः सूर के लिए कृष्ण के ही स्वरूप है और इनकी स्तुति भी कृष्ण की स्तुति है तथा कृष्ण-प्रेम की प्राप्ति का साधन है। नन्ददास ने कृष्ण के प्रति अनेक स्तुतियों में अपने भाव प्रकट किये हैं। दशम स्कंध भाषा में वे कहते हैं—हे प्रभु आप परम पुरुष है, सब जड़ चेतन के आप ही कारण है; आप ही पालनकर्ता; आप ही तारने वाले और आप ही संहार करने वाले है! जो विश्व व्यक्त अव्यक्त है, वह आपका ही रूप है। काल का विस्तार भी आपकी लीला का विस्तार है। सब प्राणी भी आप ही के विस्तार स्वरूप हैं अर्थात् प्राणीमात्र आप ही के स्वरूप है। आप सर्वव्यापी, अन्तर्यामी हैं, सबके ईश और अच्युत है। सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण शक्ति, तीनों गुण, जीव, जीवन सब कुछ आप ही है। सर्वत्र आपके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है। हे करुणानिधि! आप मुझे अपनी भाव भक्ति दीजिए।[१५] नन्ददास ने कृष्ण की उपासना के अतिरिक्त कृष्ण की पूर्ण आनन्द-शक्ति राधा की भी उपासना की है। कृष्ण दास,

---

१३ सदा एक रस अखण्डित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत विहरत युगल-स्वरूप॥
सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब हैं अंश गुपाल॥ —सूरसारावली

१४ अपने अंस आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायण भुवभार हर्‌यो है अति आनन्द स्वरूप॥ —सूरसारावली

१५ परम पुरुष सबहिन के कारन, प्रतिपालत तारत संघारन।
व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप, वेद बदत प्रभु तुम्हारो रूप।
तुम सब भूतनि को विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहंकार।
काल तुम्हारी लीला श्रीधर, तुम व्यापी तुम अच्यय ईश्वर।
तुम ही प्रकृति सकित सब तुम हो, सत रज तम जे ते लं उम ही।
तुम ही जीवन तुम ही जीव, सब ठां तुम कोउ अवर न बीच।
× × × ×
हे करुणा निधि करुणा कीजं, अपनी भाव भगति रति दीजं।
—दशम स्कंध, दशम अध्याय

कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी तथा छीत स्वामी के काव्य में कृष्ण का रस रूप मुखर हुआ है। ये पांच कवि केवल रस-रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के उपासक थे।[16] गोपी-कृष्ण का प्रेम, राधा कृष्ण का विहार, रास, होली, झूला तथा विभिन्न उत्सवों पर आयोजन। इनमें कृष्ण का रसात्मक रूप प्रकट हुआ है।

सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण पूर्ण रस स्वरूप हैं। वे रसात्मा है रसेश एवं रसिकेश है। वैधी भक्ति की सीमा तक सम्प्रदाय में बाल भाव ग्राह्य है। वैधी अथवा नवधा भक्ति में आगे बढ़कर रागनुगा भक्ति के साध्य रसिकेश श्रीकृष्ण है। वे सर्वतोभावेन मधुर हैं। वल्लभ के मधुराकष्टक का तात्पर्य लेकर इन सम्प्रदायी कवियों ने श्रीकृष्ण को मधुराधिपति और मधुर भावापन्न पाया है। ये स्वयं रसस्वरूप है अतः उनका यह रसात्मक स्वरूप सम्प्रदाय का आराध्य स्वरूप है। रस नायक कृष्ण रास विहारी हैं। तथा अनन्त रसों के अधिनायक है। रास विलास में उनका मधुरतम रूप प्रस्तुत हुआ है। संगीत नृत्य एवं रास इनसे जड़ चेतन सब स्तब्ध हो जाते हैं। मुरली रव से यमुना स्थिर हो जाती है। जड़ चंचल हो जाते है तथा चर जड़ हो जाते हैं। रास से चन्द्रमा का रथ रुक जाता है और षट्मास की एक रात्रि हो जाती है। नृत्य से वासुकि और काली जैसे नाग मंत्र मुग्ध हो जाते है। रस स्वरूप कृष्ण के इस रसात्मक आवाहन से वशीभूत होकर गोपिकायें मर्यादा एवं आर्य पथ का त्याग कर देती है। पति एवं पुत्रों का त्याग कर चित्र विचित्र शृंगार किये चली आती है। कमनीय किशोर मूर्ति शृंगार रसात्म श्रीकृष्ण में एकत्र है।[17] प्रेम लक्षणा भक्ति के लिए एक मात्र आदर्श भूता व्रज गोपिकायें है। व्रज गोपिकाओं की भक्ति भावना को लेकर चलने वाले इन कवियों ने जो रसात्मक अनुभूतियां प्रस्तुत की है वे हिन्दी में अनन्य एवं अद्वितीय हैं। रसात्मक कृष्ण स्वयं साध्य अथवा फल रूप है। उनके इस स्वरूप को सिद्ध करने वाली नित्य सिद्धा स्वामिनी राधा एवं व्रजांगनाएं है।

---

१६ रस ही में बश कीने कुंवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रस ही रीझत, रसमिल रस त्यज माई॥
पिय को प्रेमरस सुन्यो है रसीली बाल रस में बचन श्रवन सुखदाई।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर सब रसनिधि रसता मिलि है रहसि हृदय लपटाई॥
—चतुर्भुजदास

नन्दलाल संग नाचत नवल किसोरी।
जहां रसिक गिरिधर शब्द उघटत धप धुकुट धुकुन होरी।
गोविन्द प्रभु बनी नवनागरी गिरधर रस जोरी।
—गोविन्द स्वामी

१७ कुम्भनदास पद संग्रह

आचार्य वल्लभ ने गोपियों के तीस भेद किये है। हिन्दी के कवियों ने भी पुष्टितत्व वाली गोपांगनाओं को ही विशेषकर लिया है। यशोदा आदि अन्य गोपिकाएं भाव क्षेत्र तक सीमित हैं। रस क्षेत्र वाली गोपिकाओं के दर्शन ऊखल-बंधन से आरम्भ हो जाते है। ऊखल बंधन उन्हीं के कारण होता है। पश्चात् दान लीला, पनघट लीला, यमुना तट पर विहार हरण आदि लीलाओं में इस रसात्मकता के दर्शन स्थान स्थान पर होते है। इसके उपरान्त कृष्ण के रसात्मक चित्रण में इन कवियों ने संयोग वियोग के अनेक चित्र प्रस्तुत किये है। कृष्ण के गोपी वल्लभ स्वरूप को लेकर ही भक्ति काल में रीति तत्वों का समावेश हुआ। कृष्ण का बहुनायकतत्व, उनका केलि-विलास विविध भांति का संयोग शृंगार इन पुष्टि मार्गीय भक्तों में मिल जाता है।

पुष्टिमार्ग की दास्य भक्ति के आलंबन कृष्ण—वल्लभाचार्य के अनुसार आत्म दोष-प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण तथा भगवान का सर्व सामर्थ्य की अनुभूति के भावों को दास्य भक्ति के अंग कहा जा सकता है। सूरदास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने कृष्ण के प्रति दास्य भाव की भक्ति प्रदर्शित की है।[18] प्रभु शरणागत वत्सल है।[19] पतित पावन है।[20] उन्होंने अनेक पापियों को तारा है। इसीलिए भक्त भी तारने की उनसे प्रार्थना कर रहा है।[21] व्याध, गीध-गनिका और गज को तारा। केशी, कंस और मुष्टिक को मारा। सुदामा के तंदुल खाकर तीनों लोक का वैभव उन्हें प्रदान कर दिया। गोतम ऋषि की पत्नी अहिल्या को पाषाण

---

१८ कृपा अब कीजिये बलि जाऊं।
नाहि मेरे और कोऊ (बलि) चरण कमल बिनु ठाऊं॥
हौं असोच अकृत अपराधी सन्मुख होत लजाऊं।
तुम कृपालु करुनानिधि केशव अधम उधारन नाऊं॥
करके द्वारा जाइहौ ठाढ़ो देखत काहि सुनाऊं।
अशरन शरन नाम तुम्हारो, हौं कामी कुटिल सुभाऊं॥
कलंकी और मलीन बहुत में सेंतमेंत बिकाऊं।
सूर पतित पावन पद अम्बुज क्यों सो परिहरि जाऊं॥ —सूरदास

१९ जो हम भले बुरे तो तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुन प्रभु मेरे॥
सब तजि तुम शरणागत आयो निजकर चरण गहेरे। —सूरदास

२० दीनानाथ अब बार तुम्हारी।
पतित उधारन बिरद जानि के बिगरी लेउ संवारी॥ —सूरदास

२१ प्रभु हौं बड़ी बेर को ठाढ़ो।
और पतित तुम जैसे तारे तिनही में लिखि राखो॥ —सूरदास

न पूर्ववत पवित्र नारी बना दिया।[२२] जरासंध का वध किया।[२३] गुरु पुत्र को वापस लाकर दिया।[२४] द्रोपदी का चीर बढ़ाया। महापापी अजामील को बातों ही बातों में तार दिया।[२५] पूतना मारी, कालिया नाग नाथ लिया। दुर्योधन की मेवा त्याग कर भक्त बिदुर के घर साधारण साग खाया। इन हरि की महिमा का पार नहीं है। वे हरिए, घनश्याम कान्ह, मोहन, बलबीर, केशव, नन्दनन्दन, नंदलाल, माधव, गोपाल, प्रभु, गोविन्द, भगवान, प्रभु आदि नामों से पुकारे गये है। एक-एक गुण का कथन अनेक बार हुआ है।[२६]

---

२२ व्याध-गीध-गनिका-गज इनमें को नाता।
सुमिरत तुम आए तहं, त्रिभुवन विख्याता।
केसि-कंस दुष्ट मारि, मुष्टिक कियो घाता।
धाये गजराज-काज, केतिक यह बाता।
तीनि लोक विभव दियौ, तंदुल के खाता।
सर बस प्रभु रीझि देत, तुलसी के पाता।
गौतम की नारी तरी, नैंकु परसि लाता।
और को है तारिबे कौं, कहौ कृपा-ताता।
मांगत है सूर त्यागि जिहिं तन-मन राता।
अपनो प्रभु भक्ति देहु, जासों तुम नाता।। —सूरदास

२३ जीत्यो जरासंध —सूरदास

२४ संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, विद्या-पाठ करयौ —सूरदास

२५ अजा मील बातनि ही तारयौ —सूरदास

२६ तुम हरि, सांकरे के साथी।
हमारे निर्धन के धन राम।
सन्त के बिन कौं हैं घनश्याम।
ऐसे कान्ह भक्त हितकारी।
मोहन के मुख ऊपर वारी।
हरे बलबीर बिना को पीर।
जिन जिनहीं केसव उर गायो।
हमें नंदनंदन मोल लिये।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नंदलाल।
माधो जू, सो अपराधी हौं।
अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
प्रभु हौं सब पतितन को टीको।
रे मन गोविन्द के ह्वै रहिये।
अबकी राखि लेहु भगवान। —सूरदास

परमानन्द दास की दास्य भक्ति में सूर का सा ही भाव है। जिस पर कमलाकान्त द्रवित हो जाते हैं वह चाहे घास-लकड़ी बेचने वाला हो परन्तु छत्रधारी हो सकता है।[२७] कृष्ण दीनदयाल हैं, पतित पावन हैं, उनका यश वेद उपनिषद् गाते हैं।[२८] कृष्ण दास की विनती में कुछ अन्तर है। उन्होंने कृष्ण के ही गुण गाये हैं।[२९] जबकि सूरदास और परमानन्ददास ने उन्हें व्यापक रूप में देखा है। अजामिल और गज की चर्चा करके विष्णु रूप की, अहिल्या के तारने का स्मरण करके राम रूप की, हिरण्याकश्यप-वध का स्मरण करके नृसिंह अवतार की; विदुर और सुदामा की चर्चा करके कृष्ण के ऐश्वर्य रूप की विनती की है। वेद उपनिषद् जिसे गाते हैं वही कृष्ण है जिसको ब्रह्म कहकर व्याख्या की गई है। सूर और परमानन्द दास को छोड़कर अन्य पुष्टि मार्ग के कवियों की रचना में प्रार्थना के पद हैं परन्तु उनमें दास-भाव की प्रार्थना नहीं है।

सख्य भक्ति के आलम्बन कृष्ण—सख्य भक्ति कृष्ण के प्रिय सखा मानकर की जाती है। स्वार्थ रहित मैत्री जिस प्रकार लौकिक व्यवहार में श्रेष्ठ मानी जाती है इसी प्रकार भगवान के प्रति की गई मैत्री भी आदर्श मानी जाती है। भागवत में ब्रज के निवासी नन्दगोपों को ब्रह्मा जी ने अपनी स्तुति में श्रेष्ठ बताया है जिनका परमानन्द पूर्ण सनातन ब्रह्म मित्र है। वल्लभ संप्रदाय में अष्टछाप भक्तों को कृष्ण के अष्ट सखा माना जाता है। २५२ वैष्णवन की वार्ता से विदित है कि कुछ भक्त वस्तुतः

---

२७ जापर कमला कान्त ढरें।
लकरी घास को बेचन हारो तासिर छत्र धरें॥
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कछु चाहैं सोइ करें।
रीतें भरें भरे पुनि ढोरें जो चाहें तो फेरि भरें॥
सिद्ध पुरुष अविनाशी समरथ काहूते न डरें।
परमानन्द सदा यह सम्पति मन में कबहु धरें॥

—परमानन्द दास

२८ ताते तुम्हारो मोंहि भरोसो आवें।
दीन दयाल पतित पावन जस वेद उपनिषद् गावें॥

—परमानन्द दास

२९ जै जै लाल गोवर्धनधारी, इन्द्रमान भंग कीनों।
वाम बाहु राख्यो गिरिनायक दासनि को सुख दीनों॥
सात दिवस सुरपति पचिहार्‍यो गोसुत सींग न भीनों।
कृष्णदास स्वामी मोहन के पांय परयो मति हीनों॥

—कृष्णदास

मानसिक जगत में सख्य भक्ति का अनुभव करते हुये श्रीनाथजी के स्वरूप के साथ मित्र का सा व्यवहार भी करते थे।

सुदामा के प्रति कृष्ण की मैत्री प्रसिद्ध है। सूर ने इसका वर्णन किया है। दूर से ही सुदामा को मलिन वसन और क्षीण शरीर वाला देख कर अपनी शैया से ही रुक्मणि को छोड़ कर कृष्ण आगे आये। सुदामा से मिलकर नैनों में जल भर लाये। कृष्ण का दर्शन तथा स्पर्श करके सुदामा की पीड़ा मिट गई। सुदामा के लाए हुए चावल कृष्ण ने ज्योंही चबाए कि कमला ने हाथ पकड़ लिया।[30] कृष्ण अपने ग्वाल सखाओं के साथ विविध प्रकार के खेल खेलते हैं। आँख मिचौनी का खेल हो रहा है। कृष्ण की आँखें मुंदी हुई है। बलराम तथा अन्य सखा भागकर छिप गये हैं।[31] वृन्दावन में कृष्ण जब गायें चराने जाते हैं तो श्रीदामा आदि सखाओं को साथ ले जाते हैं। जहाँ तहाँ वे सब क्रीड़ा करने लगते हैं। गायें बिखर जाती हैं तब भाग कर सब उन्हें घेरने लगते हैं।[32] दही खाते समय बाल विनोद करने का एक पद परमानन्द

---

३० दूरिहि ते देखे बलबीर।
अपने बाल सखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन शरीर॥
पौढ़े हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिणी चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नैन भरि आए नीर॥
× × × × ×
दरसन परसि दृष्टि संभाषन, रह्यो न उर अंतर कछु पीर।
सूर सुमति तंदुल चबात ही, कर पकर्यो कमला गई और॥

—सूरदास

३१ हरि तब आपनि आँखि मुंदाई।
सखा सहित बलराम छिपाने जहाँ तहाँ गये भगाई॥

—सूरदास

३२ चरावत वृन्दावन हरि गाई।
सखा लिए संग सबल श्रीदामा डोलत हैं सुखपाई॥
क्रीड़ा करत जहाँ तहाँ सब मिलि आनन्द बढ़ाइ बढ़ाइ।
बगरि गईं गैयाँ बन बीथिनि देखी अति अकुलाई॥
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोऊ गए बछरु लिवाइ।
आपुहि रहे अकेले बन में कहुँ हलधर रहे जाइ॥

—सूरदास

दासका है।[33] नन्ददास ने भी कुछ पद लिखे हैं। सखाओं के साथ कृष्ण का ग्रामोद-प्रमोद तथा 'छाक' खाने के प्रसंग ही अन्य कवियों की रचनाओं में अधिक मिलते हैं।

गोपी वल्लभ कृष्ण—वल्लभ सम्प्रदाय की उपासना गोपी भाव की सूरदास और नन्ददास ने श्रीमद्भागवत् गीता तथा श्री वल्लभाचार्य कथनों का अनुकरण करते हुए कहा है—'भगवान सभी भावों से भजनीय हैं'।[34] फिर भी इनकी भक्ति में प्रधानता सभी भाव की ही है जो परकीया स्वकीया तथा मातृ हृदय के रूप में प्रकट हुई हैं। गोपियों में अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा तथा सामान्या तीन कोटियाँ हैं। इनमें अन्यपूर्वा वे गोपियाँ थीं जिन्होंने कृष्ण को लोकलाज और वेद-मर्यादा त्याग कर परकीया भाव से भजा था। अनन्यपूर्वा गोपियों ने कृष्ण को पति भाव से भजा था। वस्तुतः अन्यपूर्वा एवं अनन्यपूर्वा दोनों ही कृष्ण से माधुर्य-भाव का प्रेम करने वाली गोपियाँ थीं। कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाली गोपियाँ सामान्या थीं। परकीया भाव से प्रेम करने वाली गोप वधुयें थी जिन्हें गोपागनी कहा गया। स्वकीया भाव से भजने वाली व्रज की कुमारियाँ थीं जिन्हें 'गोपी' कहा गया। व्रजांगनाएँ वयोवृद्ध गोपियाँ थी जो कृष्ण को बालभाव से स्नेह करती थी।

सूरदास और परमानन्ददास की वात्सल्य-भक्ति अन्य अष्ट छाप भक्तों की भक्ति से अधिक बढ़ी चढ़ी थी।

सूरदास तथा नन्ददास में सामान्या गोपियों का भाव चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। चतुर्भुजदास ने भी बाल लीला का गान किया है। पालने में कृष्ण को

---

३३ आजु दधि मीठो मदन गोपाल।
भावत मोहि तिहारो झूँठो चंचल नयन विशाल॥
आने पात बनाए दोना, दिये सबन को बाँट।
जिन नहिं पायो सुनो रे भैया, मेरी हथेली चाट॥
बहुत दिनन हम बसे कुमुदवन कृष्ण तिहारे साथ।
ऐसो स्वाद हम कबहुँ न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ॥
आपुन हँसत हँसावत ग्वालन मानसलीला रूप।
परमानन्द प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप॥

—परमानन्द दास

३४ भजै जेहि भाव जो मिले हरि ताहि त्यों, भेद भेदा नहीं पुरुष नारी।
सूर प्रभु स्याम व्रजवाम आतुर काम मिलीं बनधाम गिरिराज धारी॥

—सूरसागर

सर्वभाउ भगवान कान्ह जिनके मन माहीं। —रासपञ्चाध्यायी, नंददास

भुलाती हुई भावना इस प्रकार वर्णित हुई है। हे लाल पालने में झूलो, मुस्कराओ, हाथों से आंखों को मत मलो अन्यथा हाथ काजल से भर जायेंगे और आंखें लाल हो जायेंगी।[35] मेरा नन्हा गोपाल कब बड़ा होगा। इस मुख से मधुर वचनों से मुझे मां कहकर कब पुकारेगा' यशोदा मां की यह लालसा भक्त का जीवन है।[36] यशोदा कृष्ण का मुख चुम्बन करके कौर लिये हुए आंगन में दौड़ते हुए बालक कृष्ण को भोजन करा रही हैं।[37] कृष्ण के ठुमुक ठुमुक चलने का वर्णन भी परमानन्द दास ने ग्रामीण परिवेश में किया है। एक दिन कोई काछिन बेर बेचने आई। वह नन्द के घर भी बुलाई गई। काछिन की आवाज सुनते ही आंगन में सूखते धानों को छोटी-छोटी उंगलियों की अञ्जुलि में भरकर बालक कृष्ण भी उत्सुकता के साथ ठुमुक ठुमुक चलकर आ गये। माता ने उठाकर मुख चुम्बन कर लिया।[38]

यशोदा खड़ी होकर दही मथ रही है। कृष्ण से कहती है तनिक ठहरो मैं अभी तुम्हें माखन देती हूँ। उन्हें भूख लगी है यह सोचकर आतुर दही मथती जाती है। श्याम को भुलावा देने के लिए कुछ न कुछ बात पूछती जाती है। वे कुछ भी नहीं

---

३५ पलना झूलो मेरे लाल पियारे।
मुसुकनि की वारी हौं बलि-बलि, हठ न करहु तुम नन्द-दुलारे।
काजर हाथ भरो जनि मोहन ह्वै नैना अति रतनारे।

—सूरदास

३६ मेरो मान्हरिया गोपाल बेगि बड़ो किनि होहि।
इहि मुख मधुरे बयन हंसि कबहूं जननि कहेगो मोहि॥

—सूरदास

३७ बाल विनोद गोपाल के देखत मोहि भावें।
प्रेम पुलकि आनन्द भरि जसोमति गुन गावें॥
बल समेत धन सांवरो आंगन में धावे।
वदन चूंबि कौरा लिए सुत आनि खिलावे॥

—परमानन्ददास

३८ कोउ मैया बेर बेचन आई।
सुनत ही टेरि नन्द रावरि में लई भीतर बुलाई॥
सूकत धान पेर आंगन में कर अंजुलि बनाई।
ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रंग गोपीजन बलि जाई॥
लिए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बत न अघाई।
परमानन्द स्वामी आनन्दे बहुत बेरि अब पाई॥

—परमानन्ददास

समझ पाते केवल हूँ हाँ करते जाते हैं।[39] एक दिन कृष्ण चन्दा लेने के लिए अड़ जाते हैं। माता मोहन को चंदा देती है। थाली में पानी भर के चाँद दिखा रही है। 'हे मेरे लाल बलिहारी जाती हूँ तनिक नीचे देखो, आकाश के चन्दा को पंछी भेजकर नीचे बुला लिया है। अब अपने हाथ से इसे निकालकर जो चाहो सो करो।[40] चिड़ियाँ चुहचुहाईं, चकई का स्वर गूँजा कि यशोदा ने कृष्ण को जगाया। नन्ददास ने इसका अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है।[41] चतुर्भुज दास ने भी बाल भाव पर कुछ पद लिखे हैं। 'मेरे लाल को जो अच्छा लगता है वह उसे दे दो। दही मक्खन उसके बदले मे

---

३९ नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौं।

ठाढ़ी मथति जननी दधि आतुर, लौनी नंद-सुवन कौं॥
मैं बलि जाउँ स्याम-घन सुन्दर, भूख लगी तुम्हें भारी।
बात कहूँ की बूझति स्यामहिं, फेर करत महतारी॥
कहत बात हरि कछू न समझत, झूठहिं भरत हुँकारी।
सूरदास प्रभु के गुन तुरतहिं, बिसरि गईं नंद-नारी॥

—सूरदास

४० लै लै मोहन, चंदा लै।

कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै।
जा कारन तैं सुनि सुत सुन्दर, कीन्ही इती अरै॥
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिं परै।
नभ तैं निकट आनि राख्यो है, जल-पुट जतन जुगै॥
लै अपने कर काढ़ि चंद कौं, जो भावै सो कै।
गगन मंडल तैं गहि आन्यो है, पंछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरो लाल हठै॥

—सूरदास

४१ चिरैया-चुहचानी, सुन चकई की बानी,
कहत जसोदा-रानी जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानी, कुमुदनी सकुचानी,
कमल बिकसे दधि मथत् बाला॥
सुबल श्रीदामा, तोक उज्ज्वल बसन पहिरें।
द्वारें ठाढ़े टेरत हैं बाल गुपाला।
नंददास बलिहारी उठि बैठो गिरधारी,
सब कोउ देख्यो चाहैं लोचन बिसाला॥

—नन्ददास

चौगुना दे दूँगी।[४२] वात्सल्य विरह की अनुभूति भी इन कवियों को हुई है। परमानन्द दास ने गोपाल के बिना व्रज का रहना व्यर्थ बताया है। 'धूल से धूसरित पुत्र को उठा कर 'लाल' किसे कहूँगी। कृष्ण के मधुपुरी-निवास के दिन सोच-सोचकर तन में शूल उत्पन्न करते हैं। कृष्ण को छोड़कर अब किसकी शरण ली जाय।[४३]

अनन्यपूर्वा गोपियों ने कृष्ण को स्वकीय भाव से पाने की इच्छा की थी। जप, तप, व्रत साधन से पाषाण भी द्रवित हो जाते हैं तो श्यामसुन्दर क्यों नहीं द्रवित हो सकते ? संसार में किसी के लिए जीवन नष्ट करने से तो कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए जप-तप आदि करना चाहिए।[४४] इस उद्देश्य से शिव की पूजा आरम्भ हो गई। नियम धर्म से रहकर वे शिवजी की आराधना करने लगीं। हे शिवशंकर हमें नन्द-

---

४२ माई लेन देहु जोई मेरे लालहिं भावै।

दधि माखन चौगुनो देऊँगी या सुख के लेखे जाकों जितो आवै ॥
पालना झूलत कुलदेव आराध्यो यतन-यतन करि घुटुरन धावै।
सरबस ताहि देऊँगी जो मेरे नन्हरे गोविन्द कों पाया चलन सिखावै ॥
यह अभिलाष होत दिन-दिन प्रति कब मेरो मोहन बेनु बजावै।
चतुर्भुजदास गिरिधरन प्रिय इहरस निरखि-निरखि उर नैन सिरावै।

—चतुर्भुजदास

४३ गोपाल बिन कैसे कैं व्रज रहिवो।

धूसरि धूरि उठाय गोद लै लाल कौन सों कहिवो ॥
जो मधुपुरी दिवस लागत हैं सोच सूल तन सहिवो।
परमानन्द स्वामी को तजि कें सरन कौन की गहिवो ॥

—परमानन्द दास

४४ भवन रवन सबही बिसरायो।

नन्द-नन्दन जबतें मनहर लियो, बिरथा जनम गँवायो ॥
जप, तप, व्रत, संजम, साधन तें, द्रवित होत पाषान।
जैसे मिलै स्याम सुंदर वर, सोइ कीजै, नहिं आन ॥
यहै मंत्रदृढ़ कियो सबनि मिलि, यातें होइ सुहोइ।
वृथा जनम जग में जिनि खोवहु, ह्यां अपनो नहिं कोइ ॥
तब प्रतीत सबहिनि कों आई, कीन्हों दृढ़ बिस्वास।
सूर स्याम सुन्दर पति पावैं, यहै हमारी आस ॥

—सूरदास

कुमार पति रूप में प्राप्त हों।[४५] एक दिन प्रातःकाल ही सब गोप-बालाएं यमुना-तट की ओर चल दीं। वहां पहुंचते ही उन्हें नन्दनन्दन दृष्टिगोचर हुए। मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल, पीले वस्त्र, तन चन्दन से चर्चित लोचन तृप्त हो गये।[४६]

श्याम तट पर खड़े हैं गोप बालाएं व्रत-स्नान कैसे करें। संकोच में डूबकर वे नयन मूंदकर सूर्य की उपासना करने लगीं। कृष्ण ने उनकी कामना पूर्ण करने का विचार किया। इतना तप करने पर इन्हें फल तो मिलना ही चाहिए। मुझे कैसे भी कोई भेजे, अपने विरह की लाज रखनी ही होगी। इन्होंने कामातुर होकर मुझे भेजा है। अतः इनके चीर-हरण कर लूं।[४७] कृष्ण ने उनके सारे वस्त्र कदम के वृक्ष पर चढ़ा दिये। सोलह सहस्र गोप कन्याओं के वस्त्राभूषण चुरा लिए। नीलाम्बर, पाटम्बर, सारी सभी लेकर कदम की डालों पर जहां तहां लटका दिया।[४८] कृष्ण कहने लगे हे गोप कुमारियों! तुम्हारा व्रत पूर्ण हो गया। आंखें खोलकर देखो तुम्हारा व्रत-तप

---

४५ गौरी पति पूजति व्रजनारि।
नेम धर्म सों रहति क्रिया-जुत, बहुत करति मनुहारि॥
यहै कहति पति देहु उमापति, गिरिधर नन्द कुमार।
सरन राखि लीजे शिव शंकर, तनहिं असावत मार॥
कमल-पुहुप मालूर-पत्र फल, नाना सुमन सुवास।
महादेव पूजति मन वच करि सूर स्याम की आस॥

—सूरदास

४६ जमुना तट देखे नंद-नंदन।
मोर मुकुट, मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन, तन चंदन॥
लोचन तृप्त भये दरसन तें, उरकी तपनि बुझानी।
प्रेम मगन तब भई सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी॥

—सूरदास

४७ वर्ष भर व्रत-नेम-संजम, स्रम कियो मोहिं काज।
कैसे हूं मोहिं भजै कोऊ, मोहिं बिरद की लाज॥
धन्य व्रत इन कियो पूरन, सीत तपति निवारि।
काम-आतुर भजीं मोकों, नव तरुनि ब्रज नारि॥ —सूरदास

४८ बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग-अभूषन स-हित चुराए।
नीलाम्बर, पाटंबर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति बिस्तार नीप सक तामैं, लै-लै जहां-तहां लटकाए॥ —सूरदास

फलीभूत होरहा है। जल से सब निकल आओ, व्यर्थ ही पाले में क्यों मर रही हो।[४९] सोलह सहस्र घोष-कुमारियों को भुजा पसारे देखकर कृष्ण रीझ गए। कदम के नीचे उन्हें बुलाकर सबके लिए प्रकट होकर उनकी कामाग्नि का निवारण किया।[५०] व्रत पूर्ण करके युवतियों के जंजाल नंदकुमार ने मिटा दिये 'जप तप करके अब शरीर मत गलाओ, तुम पत्नी हो और मैं तुम्हारा पति हूँ।[५१]

अन्य पूर्वा गोपियाँ वेद और कुल की मर्यादा त्याग कर मन-वचन, कर्म से केवल कृष्ण की हो गई थीं। सिर पर छाक रखकर गोपी कृष्ण को पुकार रही है। खोजने पर भी वे मिलते नहीं। कोई भी आवाज सुन कर उसी दिशा में भागती है। श्याम की छवि का जी भर कर पान कर गोपी समाज तृप्त होता है। प्रत्येक अंक की शोभा दर्शनीय है। एक-एक अंक को तृषित-लोचनों से देख कर भी गोपियाँ अघाती नहीं है।[५२] हरि के चरण, कटितट पर पीताम्बर, रोम राजि, भुजायें सभी कुछ अनुपम

---

४९ आवहु निकसि घोष-कुमारि।
कदम पर तै बरस दीन्हो, गिरधरनि बनवारि॥
नैन भारि व्रत फलहिं देखो, फरयो है द्रुम डार।
व्रत तुम्हारो भयो पूरन, कह्यो नंद-कुमार॥
सलिल तें सब निकस आवहु, वृथा सहति तुषार।
देत हौं किन लेहु मोसों, चीर, चोली हार॥ —सूरदास

५० सोरह सहस घोष कुमारि।
देखि सबकों स्याम रीझे, रहीं भुजा पसारि॥
बोलि लीन्हो कदम के तर इहां आवहु ब्रजनारि।
प्रकट भये तहं सबनि कों हरि, काम-दंद निवारि॥

५१ व्रत पूरन कियो नंद-कुमार। जुवतिनि के मेटे जंजार।
जपतप करि तनु अब जनि गारो। तुम घरनी मैं कंत तुम्हारो॥
अंतर सोच दूरि करि डारो। मेरो कह्यो सत्य उर धारो।
सरद-रास तुम आस पुटाऊँ। अंकम भरि सबकों उर लाऊँ॥ —सूरदास

५२ छाक लिए सिर, स्याम बुलावति।
ढूँढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं, कितहूँ भेद न पावति॥
टेर सुनत काहू की स्रवननि, तहीं तुरत उठ धावति।
पावति नहीं स्याम बलरामहिं, व्याकुल ह्वै पछतावति॥
वृन्दावन फिरि-फिर देखति है, बोलि उठे तहँ ग्वाल।
सूर स्याम बलराम इहां हैं, छाकलेहु किन लाल॥ —सूरदास

है। मुख चन्द्र, नेत्र, अधर, भ्रू-भंगिमा, तिलक, घुंघराली घनी काली लटें श्याम वर्ण के साथ अद्भुत मेल मिलाती हैं। अधर पर मुरली रखकर जब श्याम बजाते हैं तो गृह व्यवहार शिथिल पड़ जाते हैं, गोपियां मर्यादा मार्ग का त्याग करके कृष्ण की मुरली सुनने चली आती हैं। शीघ्रता में शृंगार भी उल्टा-पल्टा हो जाता है। शरीर की सुध नहीं रहती, वस्त्र उल्टे पहन लेती हैं एक को दूसरी की कोई सुध-बुध नहीं है। नेत्रों का अंजन अधर पर आंज लेती है तथा कानों के कुण्डल उल्टे पहन लेती हैं। अंचल धारण किये बिना ही कृष्ण मुख से बांसुरी धुन सुनने बन की ओर चल देती हैं।[५३]

इन गोपियों के मुरली से धीरे धीरे वैर भाव उत्पन्न हो जाता है। आपस में मुरली चुरा लेने की सलाह करती हैं। इस मुरली ने सबकी प्रीति तोड़ कर गोपाल को अपने वश में कर लिया है।[५४] न जाने इसने क्या क्या पुण्य किये हैं कि मोहन की अधर-सुधा का पान करती रहती है।[५५] कितना ही कष्ट देती है विविध-भांति से नचा लेती है फिर भी हे सखी यह मुरली कृष्ण को सबसे बढ़कर अच्छी लगती है।[५६]

मुरली के द्वारा कृष्ण ने एक बार ब्रज युवतियों को एकान्त बन में टेर कर बुला लिया किन्तु उनके वहां पहुंच जाने पर उपदेश भी दिया। वेद मार्ग सुझाया। कपट तज कर पति की पूजा करो। पति की पूजा करके ही संसार तर सकोगी और

---

५३ करत शृंगार जुवती भुलाहीं।
अंग सुधि नहीं, उलटे बसन धारहीं, एक एकहिं कछु सुरति नाहीं॥
नैन अंजन अधर आंज हीं हरख सौं, श्रवन ताटंक उलटे संवारैं।
सूर-प्रभु-मुख-ललित बेनु-धुनि, बन सुनत, चलीं, बेहाल अंचल न धारैं॥

—सूरदास

५४ सखी री, मुरली लीजै चोरि।
जिनि गुपाल कीन्हें अपनें बस, प्रीति सबनि की तोरि॥

—सूरदास

५५ मुरली कौन सुकृत-फल पाए।
अधर सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गंवाए॥

—सूरदास

५६ मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनरी सखी यदपि नंद नंदहि नाना भांति नचावति॥
राखति एक पायें ठाढ़ो करि अति अधिकार जानवति।
आपुनि पौढ़ि अधर सेज्यापर कर पल्लव सौं पद पलुटावति॥

—सूरदास

कोई दूसरा उपाय नहीं है। अपने पति को त्याग कर तुम वन में क्यों आईं ? यहाँ आकर क्या पाया ? पति यदि वृद्ध, अभागा, पापी, मूरख और रोगी कैसा भी हो किन्तु उसको त्यागना नहीं चाहिये। जगत में पति सेवा ही सार है। उसके बिना संसार कैसे तरोगी।[५७] गोपियाँ अपने अपने पति के पास जाना अस्वीकार कर देती हैं। तुमने बासुरी क्यों बजाई ? वनिताओं की अनन्य भक्ति और प्रेम देख कर कृष्ण रास का आयोजन करते हैं।

कृष्ण और ब्रज की स्त्रियाँ रास मंडल में उपस्थित हैं। कृष्ण के शिर पर मोर मुकुट और लटकन है। कुण्डल और मस्तक पर मृगमद चंदन है। मोहन की जोड़ी राधा की सुन्दरता अपार है। जैसे मेघ के मध्य विद्युत शोभा दे रही हो। चारों ओर गोपियों का मण्डल है बीच में कृष्ण हैं। सब गोप-कुमारियाँ राधा के ही समान हैं। रास में वे भी क्रीड़ा कर रही हैं।[५८] महा रास की शोभा कुछ और भी विचित्र है। एक गोपी और एक कृष्ण की जोड़ी रास कर रही है मानों एक एक बादल में एक एक बिजली हो। जमुना-पुलिन पर मनोहर शरद रात्रि में यह महारास रचा

---

५७ इहि विधि वेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ॥
कंत मानहु भव तरोगी, और नाहि उपाय।
ताहि तजि क्यों विपिन आईं, कहा पायो आय॥
बिरध अरु बिन भागहूँ कौ, पतित जो पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ॥
यहै मैं पुनि कहत तुम सौं, जगत मैं यह सार।
सूर पति सेवा बिना क्यों, तरोगी संसार॥

—सूरदास

५८ धन्य नंद जसुदा के नंदन।
धनि सीखंड-पीड़ सिर लटकनि, धनि कुण्डल, धनि मृगमद चंदन॥
धनि राधिका, धन्य सुन्दरता, धनि मोहन की जोरी।
ज्यों घन मध्य दामिनी की छवि, यह उपमा कहौं थोरी॥
धनि मण्डली जुरी गोपिनि की, ताबिच नंद कुमार।
राधा सम सब गोप कुमारी, क्रीड़ति रास बिहार॥

—सूरदास

गया है। कृष्ण इसके नायक हैं, गोपियाँ नायिकाएं जिनमें राधा भी एक नायिका है।[५९]

कृष्ण पनघट रोक लेते हैं। जमुना जल कोई भी गोपी न भर सके इसलिये ग्वाल-बालों को वृक्ष के नीचे बिठाल कर स्वयं गोपियों को राह तकते रहते हैं। ज्यों ही एक गोपी घड़ा भर कर चली कि उसका घड़ा सिर से ढलका दिया।[६०] गोपी कृष्ण का लकुट छीन लेती है। जब घड़ा भर कर उसे दे देते हैं तभी लकुट मिल पाता है। कभी किसी व्रज युवती की जल भरते समय चोटी पकड़ लेते हैं। किसी की गगरी फोड़ देते हैं किसी का आलिंगन करके काम व्यथा मिटा देते हैं।[६१] जमुना घाट पर रसिक कृष्ण ने चन्द्रावलि को रोक लिया।[६२] खरिक में गायें दुहने जाते समय कृष्ण राह रोक लेते हैं। जिस यौवन के बल पर तुम किसी को भी कुछ नहीं समझती, हे व्रज बालाओं, तुमसे मैं उसी यौवन का दान लूंगा।[६३] कृष्ण ने दही की मटकी छीन ली।[६४] सखाओं के साथ जाकर गोपियों के घर से माखन चोरी करते हैं। गोपिका उन्हें मक्खन खाते देख कर आनन्द से भर उठती हैं।[६५]

---

५९ मानो माई घन-घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि ब्रज भामिनि॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई-जामिनि।
रच्यो रास मिलि रसिक राइसौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि॥
—सूरदास

६० घर कों चली जाइ ता पाछें, सिर तें घट ढरकायो॥ —सूरदास

६१ काहू की गागरि भरि फोड़ें। काहू सौं हंसि बदन सकोरें।
काहू कौं अकम भरि भेटें। काम बिथा तरुनिनि की मेटें॥
—सूरदास

६२ जमुना घाट रोकी हो रसिक चंद्रावलि।
हंसि मुसिकाइ कहति ब्रज सुन्दरि छबीले छैल छांड़ों अंचल॥
—गोविन्द स्वामी

६३ जोबन-दान लेउंगो तुम सौं।
जाके बल तुम बदति न काहूहिं, कहा दुरावति हमसौं॥ —सूरदास

६४ दधि-मटुकी हरि छीनि लई। —सूरदास

६५ गोपिका अति आनन्द भरी।
माखन-दधि हरिखात प्रेम सौं निरखति नारि खरी॥
कर लै लैं मुख परस करावत, उपमा बड़ी सुभाइ।
मानहुं कंज मिलत ससि कौं लिए, सुधा कौर कर भाइ॥ —सूरदास

ब्रज-युवतियों के साथ कृष्ण फाग खेलते हैं। कुंकुम में अरगजा मिलाकर उसे सुगंधित बना लिया जाता है। उसे पिचकारियों से परस्पर छिड़ककर प्रसन्न होते हैं। डफ, मृदंग, बाँसरी तथा किन्नरी वीणा बज रही है। उसके साथ नन्दनन्दन की मुरली का स्वर भी मिल रहा है। हार टूट रहे हैं वस्त्र फटे जा रहे हैं। होली खेलने वाले जहाँ तहाँ धरती पर गिर-गिर पड़ते है। किसी को अपनी सुध नहीं है, क्रीड़ावश होरहे हैं। अत्यन्त आनन्द में कितना समय व्यतीत हो गया, पता नहीं चलता।[६६] समय बदलता है। कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं। राधा सहित सभी गोपियाँ अतिशय व्याकुल हो जाती हैं। विरह की दसों दशाओं का वर्णन सूरदास ने किया है। सब गोपियाँ कृष्ण की याद में ही अपने दिनरात व्यतीत कर रही हैं। वह राधा जो नन्दनन्दन गिरधर बहुनायक कृष्ण की पटरानी थी मौन धारण कर लेती है किन्तु गोपियाँ वैसा नहीं कर पातीं। उनके लिए बिना गोपाल के कुंजें भी शत्रु हो जाती हैं।[६७] जो लताएँ कृष्ण से मिलन के क्षणों में शीतल जान पड़ती थीं वे विषम ज्वाल की पुंज बन जाती हैं। वे जो रति-रति फूलों से डालें भरी थीं सो अब हरि के बिना जिनसे अंगारे झर रहे हैं फुलझड़ी-सी जान पड़ती हैं।[६८] मथुरा से संदेश लेकर ऊधो आते हैं। कृष्ण की पाती की चर्चा सुनकर सब गोपियाँ अपने-अपने घर से दौड़ीं और पाती को लेकर अपने हृदय से लगा लिया। न जाने कौनसी भूल से श्याम उनकी सुध

---

६६ जुवतिनि-संग खेलत फागु हरी।
बालक बृंद करत कोलाहल सुनत न कान परी॥
कुमकुम बारि अरगजा विविध सुगंध मिलाइ करी।
पिचकाइनि परस्पर छिरकत अति आमोद भरी॥
बाजत डफ, मृदंग, बाँसुरी, किन्नरि सुर कोमल री।
तिनहिं मिलत सुघर नंद-नंदन मुरली अधर धरी॥
टूटत हार, चीर फाटत गिरि जहाँ-तहाँ धरनि परी।
काहू नहीं संसार क्रीड़ा-बस सब तन-सुधि बिसरी॥
अति आनन्द मगन नहिं जानत, बीतत जाम घरी।
कुंभन दास प्रभु गोवर्द्धन-धर सब सुख-दान करी॥ —कुंभनदास

६७ बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें।
तब वे लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजें॥
—सूरदास

६८ वे जो देखियत राते-राते फूलन फूली डार।
हरि बिनु फूलझरी सी लागत झरि-झरि परत अंगार॥ —सूरदास

भूल गये हैं।[६९] ऊधो से बातचीत करने में कुब्जा की चर्चा भी आती है। कुब्जा ने चलते समय ऊधो से कहा था कि 'कृष्ण न तो यशोदा के पुत्र हैं और न गोपियों के प्रियतम ही हैं। कहाँ वे बालक कृष्ण और कहाँ तुम मत्त ग्वालिनी ? यशोदा ने मक्खन के लिए उन्हें अत्यन्त भय दिखाया। राधा ने जो कुछ किया उसी की लज्जा से कृष्ण ब्रज छोड़ आए हैं। 'कृष्ण ने कुब्जा की ये बातें सुनकर अपना सिर झुका लिया।[७०] इसीलिए गोपियाँ ऊधो को कुब्जा का नाम लेकर व्यंग्य करती हैं। इस योग की बात अवश्य ही कुब्जा ने ऊधो को सिखाई होगी क्योंकि वही उनकी शत्रु हैं। जब गोपियों का मन कृष्ण से किसी प्रकार भी विरक्त नहीं हुआ तो उन्हें योग सिखाने ही ऊधो को भेज दिया। वेद-पुराणों में कहीं भी युवतियों के लिए योग बताया है कि ऊधो ही बता रहे हैं।[७१]

कुछ भी सही, योग तो वे करेंगी ही नहीं निर्गुण की आराधना साकार कृष्ण

---

६९ पाती सखि ! मधुबन तें आई।
ऊधो-हाथ स्याम लिखि पठई, आय सुनो, री माई॥
अपने-अपने गृह तें दौरी लै पाती उर लाई।
नयनन नीर निरखि नहिं खंडित, प्रेम न बिथा बुझाई॥
कहा करौं सूनो यह गोकुल हरि बिनु कछु न सुहाई।
सूरदास प्रभु कौन चूक तें स्याम सुरति बिसराई॥ —सूरदास

७० नाहिंन स्याम तिहारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए।
समझौ बूझौ अपने मन में तुम जो कहा भलो कीन्हो॥
कहं बालक, तुम मत्त ग्वालिनी सबै आप बस कीन्हो॥
और जसोदा माखन-काजैं बहुतक त्रास दिखाई॥
× × × ×
अरु वृषभानु सुता जो कीन्ही सो तुम सब जिय जानो।
याही लाज तजी ब्रज मोहन अब काहे दुख मानो॥
सूरदास यह सुनि-सुनि बातें स्याम रहे सिर नाई।
इत कुब्जा उत प्रेम ग्वालिनी, कहत न कछु बनि आई॥

—सूरदास

७१ कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामधन जूधौं।
वेद पुराण सुमृति सब ढूंढ़ौ जुवतिन जोग कहूं धौं ?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधो॥

—सूरदास

के रहते वे कैसे कर सकती हैं। उनकी तो हृदय से कामना थी कि गोकुलनाथ पुनः ब्रज में आकर बस जायें। जो कुछ भूलें उन्होंने कृष्ण के ब्रज बसते समय की थीं वे अब कभी नहीं करेंगी। अब कभी जगा कर गायों के साथ नहीं भेजेंगी। मक्खन खाने में भी नहीं रोकेंगी कहेंगी कि जितना जी चाहे खाओ और लुटाओ। कभी उरहना यशोदा के सामने नहीं ले जायेंगी। यशोदा को कभी रस्सी और लकुटि नहीं पकड़ायेंगी। मुरली बजाने और गीत गाने को भी नहीं कहेंगी। अपने पैरों में महावर देने को तथा वेणी में फूल गूँथने में भी नहीं कहेंगी। यदि एक बार भी दर्शन दें तो प्रेम पंथ बस जाय। हे नन्दनन्दन दर्शन दे।[७२] मिलन की ही आशा है कृष्ण की छवि देखने को लोचन प्यासे मर रहे हैं। ये लोचन प्यासे ही रह गये। उधर कृष्ण भी ब्रज की याद में तड़पते रहे किन्तु अब वे गोकुल के नहीं थे महान कर्तव्य उनके सामने था। मथुरा वासी से द्वारिकावासी हो सकते थे किन्तु गोकुल लौटना कठिन था।

राधा वल्लभ कृष्ण—

राधा अनन्यपूर्वा गोपी हैं। वह स्वकीया है।

अष्टछाप भक्तों की रचनाओं से एकाकी कृष्ण तथा युगल दोनों प्रकार की भक्तियों का परिचय मिलता है। उनकी दृष्टि में कृष्ण उनके स्वामी हैं तो राधा स्वामिनी हैं। वे कृष्ण की अभिन्न शक्ति-स्वरूपा प्रिया हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय की राधा एक गोपी हैं। विशिष्ट गोपी कृष्ण जिसके प्रति

---

७२ फिर ब्रज बसहु, गोकुलनाथ।
बहुरि तुमहिं न जगाय पठावौं, गोधनन के साथ॥
बरजौं न माखन खात कबहूँ, देहु देन लुटाय।
कबहुँ न देहौं उराहनो जसुमति के आगे जाय॥
दौरि दाय न देहुँगी, लकुटि न जसुमति पानि।
चोरी न देहुँ उघारि, किए अवगुन न कहिहौं आनि॥
करिहौं न तुमसौं मान हठ, हठि हौं न मांगत दान।
कहिहौं न मृदु मुरली बजावन, करन तुमसौं गान॥
कहिहौं न चरनन देन जावक, गुहन बेनी फूल।
कहिहौं न करन सिंगार बट-तट, बसन जमुना-कूल॥
× × × ×
एक बार जो देहु दरसन प्रीति-पंथ बसाय
× × × ×
देहु दरसन, नंदनंदन ! मिलन की ही आस।
सूर प्रभु की कुँवर-छवि को मरत लोचन प्यास॥ —सूरदास

पूर्ण रूप से आसक्त हैं। वे नित्य सिद्धा स्वामिनी परव्रत अवतारी, भक्तों के आराध्य कृष्ण क्रीड़ा कुंजों में राधा का पांय पलोटते हैं। यह प्रगाढ़ प्रेम क्रमिक विकास से है। प्रथम परिचय में सूर ने राधा के स्वरूप और स्वभाव के चित्रण के साथ कृष्ण के स्वरूप और स्वभाव का चित्रण कर दिया है। यह परिचय अत्यन्त सरल स्वाभाविक ढंग से होता है। प्रथम परिचय में ही नेत्र से नेत्र मिल जाते हैं। प्राणों का प्राण से, आत्मा का आत्मा से; देह का देह से विनिमय हो जाता है। एक दूसरे पर पूर्णरूपेण आसक्त हो जाते हैं। तन मन की सुधि खोकर एक दूसरे को सर्वस्व सौंप देते हैं। यह प्रथम परिचय प्रथम मिलन ही अनन्त जन्मों के पूर्व परिचय का द्योतक है। राधा माधव के लिए तथा माधव राधा के लिए हैं। श्रीकृष्ण का दिव्य सौन्दर्य, उनकी वेशभूषा जितना आकर्षक एवं मनमोहक है उतना ही राधा का सौन्दर्य एवं वेशभूषा आकर्षक एवं मनोहारी है। वे एक दूसरे को अचानक ही देखते हैं तथा नील वसना राधा जिसके नेत्र विशाल हैं तथा भाल पर रोली लगाये है अपनी कतिपय सहेलियों के साथ कृष्ण के दृष्टिपथ में आती है।[७३] श्याम उस पर रीझ जाते हैं। अचानक प्रश्न पूछ बैठते हैं। 'तुम कौन हो'? वैसी अनिद्य सुन्दरी उन्होंने कभी नहीं देखी थी। राधा ने भी स्पष्ट कह दिया कि वह किसी माखन चोर का नाम सुनती रहती थी इसी से इस ओर नहीं आती थी। कृष्ण ने चोर होना स्वीकार कर लिया किन्तु उस भय से मुक्त करके आश्वासन दे दिया। वे उसका कुछ भी नहीं चुरायेंगे। और भोली राधा कृष्ण के साथ चली जाती है।[७४] साहचर्य से स्नेह उत्पन्न हुआ और

---

७३ खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधि, हाथ लए भौंरा चक डोरी ॥
मोर मुकुट, कुण्डल स्रवननि धर, दसन दमक दामिनी छवि छोरी ॥
गये स्याम रवि तनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी ॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विशाल भाल दिए रोरी।
नील वसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुलति झकझोरी ॥
संग लरिकिनी चलि इति आवति, दिन थोरी, अति छवि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ॥
—सूरदास

७४ बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी ॥
काहे कों हम ब्रज तन आवति खेलत रहति आपनी पौरी ॥
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन दधि चोरी ॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लेहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी ॥
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरई राधिका भोरी ॥ —सूरदास

यह क्रमशः वर्धमान होता चला गया। प्रेम के संकेत चलने लगे। हिन्दी पुष्टि मार्गीय भक्त कूट शैली पर आगये। नागरी राधा को संकेतों से प्रेम के रहस्य समझाये जाने लगे। गुप्त प्रीति को दोनों ने छिपाना प्रारम्भ कर दिया।[७५] इस प्रकार प्रथम परिचय प्रेम में परिणत हो गया। कृष्ण के साथ रहने में जो समय बीतता उसके अनेक बहाने बनाये जाने लगे।[७६] राधारानी सुन्दर हैं तथा रास-रस की नायिका हैं।[७७] श्याम-श्यामा रासमंडल में शोभित होते हैं।[७८] मानो मेघ के बीच बिजली कौंध रही हो। दोनों एक रूप हैं। आठ नायिकाएँ आठ दिशाओं में शोभा दे रही हैं उनके चारों ओर सब गोपकन्याएँ हैं। श्रीकृष्ण ने सोलह सहस्र रूप धारण किये हैं। इस प्रकार महारास का आयोजन है।[७९] श्यामा श्याम दोनों नृत्य करते हैं। राधा-रमण मुरली बजाते हैं तो तीनों भुवनों में उसका नाद समा जाता है। बछड़ा थनों का स्पर्श नहीं करता, गायें घास चरना भूल जाती हैं। यमुना की धारा उलटी बहने लगती है। पवन

---

७५ सैननि नागरी समुझाय।
गुप्त प्रीति न प्रकट कीन्हीं, हृदय दुहुँन छिपाय॥

७६ माता कहति कहाँ हो प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका, खरिक देखि हौं आई॥

७७ सुनहु सूर रस-रास नायिका, सुवरि राधा रानी। —सूरदास

७८ रास मंडल बने स्याम स्यामा। —सूरदास
चलहि राधिके! सुजान, तेरे हित सुख-निधान,
रास रच्यो कान्ह तट-कालिंद-नन्दिनी॥
निर्तत जुवती समूह, रागरंग अति कुतूह,
बाजति रस-मूल, मुरलिका अनंदिनी॥
—कुंभनदास

७९ रास-मंडल-मध्य स्याम राधा।
मनो घन बीज दामिनी कौंधति सुभग, एक है रूप, है नाहि बाधा॥
नायिका अष्ट अष्टहु दिसा सोहहीं, बनी चहुँ पास सब गोप कन्या।
मिले सब संग नहिं लखत कोउ परसपर, बने षट-दस सहस कृष्ण सन्या।
सजे श्रृंगार नव-सात जगमगि रहे, अंग भूषण, रैनि बनी तैसी।
सूर प्रभु नवल गिरिधर, नवल राधिका, नवल ब्रजनारि-मंडली जैसी॥
—सूरदास

शिथिल हो जाता है।[८०] राधाकृष्ण का विहार नित नया बढ़ता जाता है। प्रेम में मान होता है। राधा मान करके बैठती है। कृष्ण मनाते हैं। एक-एक पल उन्हें कल्प के समान व्यतीत होता है। अन्त में राधा का मान भंग होता है और प्रेम-क्रीड़ाएं आरम्भ हो जाती हैं।[८१] कुंज विहार आरम्भ हो जाता है। जमुना जल में दोनों जल बिहार करते हैं। राधा अपने हाथों में जल लेकर कृष्ण के ऊपर छिड़कती हैं। वे बूँदें कृष्ण के श्यामल मुख पर पवन के झोंके के साथ हिलकर झलमलाती हैं।[८२] राधा और ब्रजनारियों के साथ कृष्ण कालिन्दी-जल में क्रीड़ा कर रहे हैं।[८३]

पावस ऋतु आती है तो झूलने का सुख होता है। झूले पर बैठे हुये राधा और कृष्ण सखियों की सहायता से झूल रहे हैं। जमुना-तीर पर कुंज कुटीर में कदंब की डाल पर-कभी कंचन के खंभ पर झूला पड़ता है—प्रेम में मत्त दोनों झूल रहे हैं।

---

८० तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यो,
राधा रमन बजाई
बछरा थन नाहीं मुख परसत
चरति नहीं तृन धेनु।
जमुना उलटी धार चली बहि,
पवन थकित सुनि बेनु ॥
—सूरदास

८१ राधा मान सों रस रीति बढ़ी।
सादर करि भेंटी नंदनंदन दूने चाऊ चढ़ी ॥
वृन्दावन में क्रीड़त दोऊ जैसे कुंजर-क्रीड़त करनी ॥
'परमानन्द स्वामी' मन मोहना ताहू की मन हरनी ॥ —परमानन्ददास

८२ स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्मल करत बिहार।
पीत कमल इंदीवर पर मनु मोर भये नीहार ॥
श्री राधा अंबुज कर भरि-भरि, छिरकति बारम्बार।
कनक लता मकरंद झरत मनु, हालत पवन-संचार ॥
—सूरदास

८३ क्रीड़त कालिंदी जल माँहि।
नवल साजि सिंगार किए तहां श्री राधा गल बाँहि ॥
आस पास सोभित ब्रजनारी यथि राजत नंदलाल।
जल सीकर डारत चहुँ दिसि तें निरखि मुदित गोपाल ॥
—गोविन्द स्वामी

ग्रानंद में मगन हो रहे हैं तथा ब्रजनारियों को भी अनुपम आनन्द प्रदान कर रहे हैं।[८४]

फूल-डोल के अनेक चित्र इन अष्ट छापी कवियों ने उतारे हैं। फागुन में बसन्त और बसन्तोत्सव का कृष्ण-भक्त कवियों ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। ब्रज की होली अब भी प्रसिद्ध है। इस होली की ऋतु का उत्साह तत्सम्बन्धी काव्य में दर्शनीय है। कभी राधा के साथ तथा कभी राधा और ब्रज नारियों के साथ उत्साह में भर कर होली खेली जाती है। गिरिधरलाल राधिका के साथ होली खेल रहे हैं। परस्पर गुलाल, अबीर और अरगजा छिड़कते हैं। उधर मुरली के साथ वाद्य वृन्द बज रहे हैं। ऐसे वातावरण में होली का रंग जम रहा है।[८५] राधा और माधव ब्रजरानी की गोद में बैठे परस्पर फाग खेल रहे हैं।[८६] कृष्ण का गारुड़ी बनकर वृषभानु के घर जाना भी सूर ने कई पदों में वर्णन किया है। राधा सर्प से काटे जाने का बहाना करती है। कृष्ण वहाँ बुलाए जाते हैं।[८७] कुंज कुटीर में कृष्ण राधा के चरण दबाते हुए भी दृष्टिगोचर हुए हैं।[८८]

---

८४ दोऊ मिलि झूलत कुन्ज-कुटीर।
कंचन खंभ हिंडोरे विराजत तरनि तनया तीर॥
प्रफुलित कुसुम मल्लिका मुकुलित रुचिर पद जहां बहत समीर।
सारस हंस मोर पिक अरु खग बोलत कीर॥
सप्त सुरनि मिलि गावत दोऊ वृषभानु कुंवरि बलबीर।
गोविन्द प्रभु गिरिराज धरन पिय सुरति सुभट रनधीर॥ —गोविन्द स्वामी

८५ गिरिधरलाल रस भरे खेलत बिमल बसंत राधिका-संग।
उड़त गुलाल, अबीर, अरगजा, छिरकत भरत परस्पर अंग॥
बाजत ताल, मृदंग, अघोटी बीना, मुरली तान तरंग।
'कुंभनदास' प्रभु इहि विधि क्रीड़त जमुना-पुलिन लजावत अनंग॥ —कुंभनदास

८६ राधा माधो बैठारे ब्रजरानी की गोद।
भाग सुहाग सबै ब्रज्यो खेलत फाग बिनोद॥ —छीत स्वामी

८७ हरि गारुड़ी तहाँ तब आए।
यह बानी वृषभानु सुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए॥
बड़ो मंत्र कियो कुंवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायो,
मुख चूम्यो दियो घरहिं पठाई॥ —सूरदास

८८ देखो दुरो यह कुंज कुटीर में
बैठो पलोटत राधिका पायन —रसखान

पुष्टिमार्ग में राधा स्वकीया के रूप में चित्रित की गई है। अनेक भक्तों ने राधा कृष्ण के सरस विवाह प्रसंग को गाया है।[८९] दूल्हे दुलहिन के दिव्य सौंदर्य के चित्रण हुये हैं।[९०] स्वकीया राधा के साथ कृष्ण प्रेम क्रीड़ायें करते हैं। इन प्रेम क्रीड़ाओं का कोई अन्त नहीं, ये अनन्त हैं। कभी कृष्ण राधा का शृंगार करते हैं—कभी महावर लगाते हैं।[९१] कभी वेणी गुंथन करते और कभी मुक्ताहार पहनाते हैं। किसकी वेसर (नथ) अच्छी है इसकी होड़ राधा और कृष्ण में हो जाती है।[९२] इस

---

८९ छाये जु फूलनि कुंज-मंडप,
पुलिन में बेदी रची।
बैठे जु स्यामा स्याम वर,
त्रैलोक की सोभा सची ॥

× × × × × ×

तब देत भाँवरि कुंज-मंडप,
प्रीति ग्रंथि हिये परी।

—सूरसागर

जसुमति कह्यो नंद के आगें,
कीरति श्री वृष भाने ॥
सुनत सगाई की बातनि सों
आनन्द उर न समाने ॥

—कुंभनदास

९० मंडप के स्यंदन बैठे हरि,
संग श्री राधा गोरी।

× × × × × ×

तन घन स्याम, मुकुट बनमाल।
कुंडल किरनि अति चमकत।
पीताम्बर कटि-तट उपरेन।
नभ दामिनि मनु दमकति ॥

—सूरदास

९१ भरी प्यारी के लाल लागे देन महाउर पाय।
नंददास रिझि कहत लाड़िली रहो, रही तब पगनि दुराय ॥

—नन्ददास

९२ बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥ —नन्ददास

प्रेम में प्रणय कलह और मान भी चलता है। मानवती राधा को कृष्ण अनुनय विनय करके मनाते हैं। इन कवियों ने राधा कृष्ण के मान, प्रणय तथा संयोग के अनेक सरस मार्मिक प्रसंग दिये हैं। प्रेम की इस गहन अनुभूति का दूसरा पक्ष भी इन कवियों से छूटा नहीं है। भ्रमर गीत प्रसंग में राधा की विरह पीड़ा की सूचना अन्य गोपिकाओं के मुख से मिलती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर व्यथित राधा एक प्रकार से पार्थिक जीवन को ही समाप्त कर देती है। वृषभानु कुमारी को संयोग के सुख स्पर्श को ही सुरक्षित रखने में संतोष है। वह कृष्ण के पसीने से भीगी साड़ी को वियोग के क्षणों में भी स्मृति की धरोहर समझकर रखे रहती है, उसे धुलाती नहीं।[९३] यह विरह असीम होता चला गया। विरह की दस दशाओं का इस स्थल पर मार्मिक वर्णन हुआ है। राधा अपने प्रियतम कृष्ण को अनेक वर्ष बाद कुरुक्षेत्र में ही देख सकी। उस समय तक दीर्घकालीन विरह उसने झेला। वह दोनों दशाओं में विरहिणी थी। राधा के रूप में वह माधव, माधव रटती थी और जब कृष्ण बन जाती थी तब राधा के विरह में जलती थी इस प्रकार वह द्विधा पीड़ित थी।[९४] वह अपने प्रियतम के दीर्घकाल के पश्चात् कुरुक्षेत्र में दर्शन करती है। वहाँ राधा माधव की भेंट होती है। माधव राधा के रंग में रंग जाते हैं और राधा माधव के रंग में। इस प्रेम योगिनी के लिए कृष्ण उधो से कहते हैं कि उनके चित्त से ऐसी राधा की प्रीति किसी क्षण भी नहीं टलती।[९५] वे सदैव राधा वल्लभ हैं। किशोर कृष्ण का स्वरूप राधा से विहीन संप्रदाय में कहीं नहीं माना है। कुरुक्षेत्र में राधा कृष्ण का प्रेम चरम उत्कर्ष को पहुँच जाता है। महाकवि सूर ने उसे निम्नलिखित पद में इस प्रकार प्रकट किया है।[९६]

---

९३ अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि श्रम जल अंतर तनु भीजे, ता लालच न धुवावति सारी।
अधो मुख रहति उरध नहिं चितवत, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी॥

—सूर

९४ जब राधा तबही मुख माधो, माधो रटत रहे।
जब माधो ह्वै जात सकल तन, राधा विरह दहे॥

—सूरदास

९५ सूर चित तें टरत नाहिं राधिका की प्रीति।

—सूरदास

९६ माधव राधा के रंग राचे, राधा माधव रंग रई।
सूरदास प्रभु राधा-माधव, ब्रज बिहार नित नई नई॥

—सूरदास

निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण

हिन्दी-काव्य

नाम — सर्वेश्वर

रूप—युगल

लीला—नित्य विहार

धाम—वृन्दावन

निम्बार्क सम्प्रदाय की चर्चा पूर्व अध्याय में हो चुकी है। वस्तुतः निम्बार्क सम्प्रदाय का प्राचीन रूप वैधी भक्ति का है किन्तु मध्ययुग में इसका स्वरूप रागानुगा भक्ति का हो गया था। अतः सम्प्रदाय के हिन्दी-काव्य पर परवर्ती प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

सम्प्रदाय में हिन्दी ब्रजभाषा के अनेक कवि उत्पन्न हुए जिनमें से श्री भट्ट सम्प्रदाय के प्रथम हिन्दी कवि माने जाते हैं। इनकी एक मात्र रचना युगल शतक को 'आदि वाणी' कहकर पुकारा जाता है।[८०] हमारे अलोच्य काल में युगल शतक का महत्वपूर्ण स्थान है। श्री बलदेव उपाध्याय ने कहा है कि "जुगल शतक सामान्य पाठकों की चीज नहीं है, यह है प्रेम मार्गी भावुक साधकों के मनन तथा अनुशीलन की मनोज वस्तु। दृढ़ अनुशीलन से ही इस अनुपम काव्य का हृदय जाना जा सकता है, यह केवल काव्य की वस्तु न होकर साधना जगत् का एक मनोरम मन्त्र समूह है। केवल श्री निम्बार्कीय वैष्णवों के लिए ही नहीं अपितु सभी भावुकों के लिए यह जुगल शतक श्रीमद्भागवत कथा के समान पवित्र तथा तथ्य सम्पन्न है। आदिवाणी 'युगल शतक' में श्रीकृष्ण तथा राधा के युगल स्वरूप ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

सिद्धान्त सुख में युग स्वरूप की वंदना है। ये युगल ब्रजभूमि वृन्दावन में विहार करते हैं। अपने सेव्य श्री युगल का परिचय श्री भट्ट जी इस प्रकार देते हैं—

सेव्य हमारे हैं सदा, वृन्दा विपिन विलास।
नन्द नन्दन वृषभानुजा, चरण अनन्य उपास॥

तथा

जनम जनम जिनके सदा, हम चाकर निशि भोर।
त्रिभुवन पोषण सुधाकर, ठाकुर युगल किशोर॥

बीच में युगल किशोर तथा चारों ओर गोपी और ग्वाल हैं ऐसे राधा कृष्ण की श्री भट्ट बार-बार आरती करते हैं। सम्प्रदाय में केवल संयोग है वियोग नहीं।

---

८० ब्रजभाषा आदि वाणी—श्री युगल शतक की भूमिका से।

वृन्दावन में श्री राधा कृष्ण का विहार ही भक्त कवियों के जीवन का आधार है।[९८] सौन्दर्य के आगार श्री राधेश्याम अनेक प्रेमभरी लीलाओं में अहर्निश पगे रहते हैं।[९९] जहाँ-जहाँ राधा विहार करती है वहीं कृष्ण चरण चिन्हों पर चलते रहते हैं।[१००] स्पष्ट ही युगल शतक के श्रीकृष्ण रसात्मा, रसेश तथा सम्पूर्णतः रस स्वरूप हैं। श्री भट्ट जी के पश्चात् अन्य सम्प्रदायी कवियों ने भी श्रीकृष्ण को इसी रूप में देखा है।

महावाणी में शुद्ध नित्य-विहार रस को ही ग्रहण करने का यत्न किया गया है। श्री राधा कृष्ण की सुरति क्रीड़ा का वर्णन कवि ने सखी भाव से किया है। तीसरे कवि श्री परशुराम देव जी पूर्णतया सखी भाव के कवि नहीं हैं। इनके कृष्ण कभी-कभी निर्गुण ब्रह्म जैसे प्रतीत होने लगते हैं। इनके कृष्ण सर्वेश्वर, भक्त उद्धारक तथा भक्त रक्षक भी हैं।[१०१]

इनकी नित्य विहार पदावली सरस और शृंगार रस पूर्ण है। इनके काव्य में मार्दव एवं माधुर्य कूट-कूट कर भरा हुआ है। रास लीला विषयिक इनके पद अत्यन्त

---

९८ वृन्दावन फुलवारि में पहरि फूल उरमाल।
विहरत श्री वृषभानुजा, नन्द नन्दन गोपाल॥

—युगल शतक

९९ मुकर मुकर निरखत दोउ, मुख ससि नयन चकोर।
गौर स्याम अभिराम अति, छवि न कवी कछु थोर॥

—युगल शतक

१०० जित-जित भामिनि पग धरे, तित-तित आवत लाल।
करत पलक निज पांवड़े, रूप विमोहित बाल॥

—युगल शतक

१०१ (क) भक्तरक्षक स्वरूप —
मेरी तुम ही कों सब लाज बड़ाई।
ज्यों जानों ज्यों हीं त्यों राखो, अपनों करि आपन हरिराम॥

(ख) भक्तोद्धारक स्वरूप—
परम पवित्र, पतित पावन प्रभु, अधम उधारन बिरद सवाई।
पाप हरन, त्रैताप निवारन, असरन सरन बड़ी सरनाई॥

(ग) भक्तानन्द प्रदाता स्वरूप—
अब न तजों तन मन ह्वै भजि हों, हरि-अमृत-निधि प्यासे पाई।

—परशुराम सागर

मुग्ध एवं तन्मय करने वाले हैं।[१०२] रूप रसिक जी ने रसात्मक कृष्ण की उपासना के अतिरिक्त सिद्धान्त उपदेश एवं नीति का भी कथन किया है। श्री तत्त्ववेत्ता जी ने नित्य विहारी कृष्ण का वर्णन किया है। उन्होंने उत्सवों पर अधिक बल दिया है। रसात्मक कृष्ण का वर्णन करने वाले निम्बार्कीय कवियों में वृन्दावन देव, श्री गोविन्द देव श्रीमती बांकावती जी एवं सुन्दर कुँवरि हुई हैं इन्होंने प्रिया और प्रियतम के परस्पर प्रेम का वर्णन किया है। इसमें राधा वल्लभ कृष्ण[१०३] की भी कहीं-कहीं चर्चा है तथा गोपी वल्लभ कृष्ण भी हैं।[१०४]

संक्षेप में निवार्क सम्प्रदाय के मध्ययुगीन हिन्दी कवियों के रसात्मक कृष्ण का स्वरूप इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप है, राधा उनकी अह्लादिनी शक्ति है।[१०५] वे दोनों दो नाम से एक होकर विलास करते हैं।[१०६] सम्प्रदाय में कृष्ण सदैव राधा के साथ

---

१०२ नूपुर कंकन किंकिनि की धुनि, सुनि लज्जित कलहंस।
भुज फरकनि, तरकनि कुंचुकि कस छुरि धु रहे छुरि अंस॥
तथा
पलक ललक मग चलत कलक मुख अलक संगीत स-हेत।
पग पटकंन, पट झटकंन, लटकंन भूखन मन चटकानि॥
× × ×
क्रीड़त बहु गत रास बिलासहि, थकित भए दोउ चन्द।
रूप रसिक यह सोभा निरखत, पावत अति आनन्द॥
—रूपरसिक देव की वाणी

१०३ राधा वल्लभ कृष्ण—
मेरी प्रान संजीवन राधा।
कब तव बदन सुधाधर दरसों, जो अखियन हरे बाधा॥

१०४ गोपी वल्लभ कृष्ण—
मन-मोहन सोंहन स्याम नन्द ढिठोंना री।
बिन देखे पल कल न परत है, मेरो जीव लगोंना री॥
होरी में भी पे ठगोरी सी डारी हो रिझई रीझि रिझोंना री।
खेलोंगी मिलि "रसिक बिहारी' सों या बिन खेल अलोंना री॥
—रसिक बिहारी

१०५ प्रिया शक्ति आल्हादिनी, प्रिय आनन्द स्वरूप—श्रीहरिव्यास देव

१०६ सदा सर्वदा जुगल इक, एक जुगल तन धाम।
आनन्द अरु आह्लाद मिलि, विलसत ह्वै ह्वै नाम॥ —आदिवाणी

शोभायमान होते हैं। राधा उनकी स्वकीया है।[१०७] सदैव उनके वामांग में शोभित होती है। नन्द कुँवर अलबेले नागर और श्री वृषभानु दुलारी दोनों कुंजों में बैठे हुये हैं। श्री राधा अपने सुकोमल करों में कमल पुष्प लेकर उसकी सुरभि का आनन्द ले रही हैं। वे रति-रस-निपुणा तथा प्रियतम प्यारी हैं। समस्त सखियाँ इन गौर श्याम युगल के मुख पर न्योछावर होती हैं।[१०८] ये युगल कभी सावन में हिंडोला झूलते हैं तो कभी प्रिया प्रियतम होली का आनन्द लेते हैं। गुलाल उड़ाते तथा पिचकारी एक दूसरे पर छोड़ते हैं एवं प्रेम रंग में रंग जाते हैं।[१०९]

उनकी जोड़ी अनुपम सांचे में ढली है[११०] जिसे देखकर बुद्धि ठगी सी रह जाती है। यह सहज जोड़ी अत्यन्त अद्भुत है। इन्हीं की पद नख ज्योति की आभा का एक कण मात्र परब्रह्म परमेश्वर है।[१११]

राधा वल्लभ कृष्ण

कृष्ण राधा के दूल्हा हैं—पति हैं। राधा कृष्ण की स्वकीया दुलहिन हैं—पत्नी हैं। कृष्ण की अनुरूप भामिनी हैं। श्री भट्ट जी ने धूमधाम से उनका विवाह

---

१०७ बैठे पुलिन विराज हीं, अनूप बेलि तमाल।
नच्यो किधौं यह रच्यो है, ब्याह बिहारी लाल॥

—नागरीदासजी

१०८ बैठे दोऊ कुंजन में बलिहारी।
नन्द कुँवर अलबेले नागर, श्री वृषभानु दुलारी॥
सूंघत सौरभ लिए कमल कर, रति रस प्रियतम प्यारी॥
जै श्री भट्ट गौर सांवर मुख, लखि सखियां सब वारी॥

—युगल शतक पद सं० ११

१०९ आज फाग अनुराग भरे, नव नागार नवल निकुंज बिहारी।
सिथिलित बसन गुलाल सयोगा, रंगे हैं रंगों का रंग बिहारी॥
उमग्यो है रति रंगधार, अपार छूटे पिचकारी कटाच्छ अपारी।
रूप चलह में रहे अलह दोऊ, सुख लूटत सन्मुख सहचारी॥

—रूपरसिक देव

११० अति अनुपम सांचे ढरी निरखि होति मति भोरि।
अद्भुत स्यामा स्याम की सहज सांवती जोरि॥

१११ जाके पद नख जोति की आभा को लवलेश।
जगमगात हैं जगत में पारब्रह्म परमेश॥ —हरिव्यास देवाचार्य

कराया है।[112] उनका राधा के प्रति पुत्री एवं कृष्ण के प्रति जामाता का भाव है। राधा उन्हें प्रतिशय प्रिय हैं इसीलिए राधा के प्रिय पति कृष्ण भी उनके प्राण प्यारे हैं।[113] वे दोनों को लाड़ लड़ाकर ग्रानन्दित होते थे।[114]

गोपी वल्लभ कृष्ण

समस्त गोपियों में श्री राधा सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी है। स्वतन्त्रता और परतन्त्रता दो प्रकार की गोपियों में वे स्वतन्त्रा गोपी है। निंबार्क सम्प्रदाय में गोपियों को प्रायः कृष्ण की स्वकीया रूप में ही स्वीकृत किया गया है। वे श्रीकृष्ण की नित्य कान्ता हैं। इन प्रेयसियों में सापत्न्य नहीं है। श्रीमद्भागवत के आधार पर गोपियों के उज्ज्वल प्रेम को ही निम्बार्क सम्प्रदाय के उपासकों ने अपना आदर्श माना है। कृष्ण-राधा सदैव गोपियों से सेवित हैं अथवा सखियों से।

श्री नन्द नन्दन सदैव वृषभानुजा के साथ प्रतिष्ठित हैं। सम्प्रदाय के सेव्य केवल नन्द नन्दन श्रीकृष्ण भगवान् ही नहीं अपितु वृषभानुजा से अभिन्न श्रीकृष्ण हैं।[115] राधा कृष्ण की जोड़ी सनातन है न इसका आदि न मध्य और न अन्त ही।[116] सुख के पुंज श्री कुंज महल में कृष्ण राधा के साथ भोजन करते हैं, आचमन करते हैं कृष्ण राधा परस्पर बीड़ा खिलाते हैं[117] और तब कृष्ण अपने हाथ से राधा के लिए

---

११२ गोपाल लाल दूलह ब्याल बराती।
गोवन आगे सखिन यूथ में राधा दुलहिन लाल नवाती। —युगल शतक २०
रंग रंगीले गात के संग बराती ग्वाल।
दूलह रूप अनूप हैं, नित विहरत नन्दलाल॥ —युगल शतक १६

११३ निम्बार्क सम्प्रदाय ने साध्य तत्व की स्थिति राधा में मानी है, श्रीकृष्ण में नहीं। सम्प्रदायी भक्त इस तत्व की व्याख्या के लिए पुत्री और जामाता का ही उदाहरण देते हैं।

११४ सम्प्रदाय में स्वयं निंबार्काचार्य रंगदेवी गोपी के रूप में दिखाये गये हैं।
—सिद्धान्त रत्नावलि पृ० २७६-२७७

११५ सेव्य हमारे हैं सदा वृन्दाविपिन विलास।
नन्द नन्दन वृषभानुजा चरण अनन्य उपास॥
युगल शतक—आदिवाणी ५

११६ सदा सनातन एक रस जोरी उपमा कौन अनूप।
रूप रसिक जन के सुखदायक दो आंवत भूप॥ —रूप रसिकदेव जी

११७ ले करि बीरी पिय प्रिया बदन मनोहर देत।
लेत नांहि जब लाड़िली, बिनय करत सुख हेत॥
युगल शतक—आदिवाणी पद ४४

सुन्दर सेज तैयार करते हैं। तत्पश्चात् दोनों शयन करते हैं। इस प्रकार की क्रीड़ाओं के अनेक सुन्दर चित्र उक्त सम्प्रदाय की निधि हैं। कभी दोनों मिलकर दर्पण देखते हैं तथा परस्पर एक दूसरे के रूप पर मोहित होते हैं। कृष्ण वृन्दावन की फुलवाड़ी में फूलमाला पहनकर नन्द नन्दन कृष्ण और राधा विहार करते हैं। कभी राधा कृष्ण की मुरली छीनने लगती है। कृष्ण विनय सुनाने लगते हैं और कहते हैं—हे राधे तूने बिना मूल्य के मुझे मोल ले लिया है, जो चाहो सो करो किन्तु हे राधे मैं तुमसे विनती करता हूँ कि मेरी मुरली मुझको दे दो।[११८] कृष्ण राधा के प्रेम में इतने अधिक अनुरक्त हो गये हैं कि वे अथक अधर सुधा का रस ले रहे हैं।[११९] राधा के दिव्य रूप में सर्वस्व त्याग कर कृष्ण राधा प्रेम स्वरूप हो गये हैं। प्रेमातिरेक से जहाँ उनकी भाँवती पैर रखती है वहीं श्रीकृष्ण अपने पलकपांवड़े बिछा देते हैं।[१२०] कभी वे अपने हाथ में राधा के चरण लेकर उन्हें पलोटने लगते हैं।[१२१] सारांश यह है कि राधा ने अल्पावस्था में ही मोहनलाल को ऐसा मोह लिया है कि वे प्रेम के रस में पगे कामदेव को भी मोहने वाले श्याम अपने मुख से सदैव राधे-राधे रटते रहते हैं।[१२२] 'सुरत सुख' में पगे श्यामा श्याम को कुंज भवन में सखियाँ उल्लसित होकर झाँककर देख रही हैं।[१२३]

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों का मन ब्रजलीला में नहीं रमा[१२४] 'उत्साह सुख'

---

१२८ बिन दामन लियो मोल हों करहु जो भावे सोहि।
अहो! राधे! विनती करौं मुरली दीजे मोहि॥
—युगल शतक पद सं० ७१

११९ प्यारी प्रीतम परस्पर, सच्यो संग अनुराग।
अधर सुधा रस देत हैं, लेत श्याम बड़भाग॥ —आदिवाणी पद ७७

१२० जित-जित भामिनि पग धरें तित-तित भावन लाल।
करत पलक निज पांवड़े रूप विमोहित बाल॥
—आदिवाणी पद सं० ६६

१२१ कबहुँ लै निज करन में, लावत नैन विशाल।
प्रान प्रिया मन हरनि के, चरण पलोटत लाल॥ —युगल शतक सं० ७६

१२२ प्रीती रीति रस बस भये, यदपि मनोहर नैन।
तदपि रटें निज मुख सदा श्री राधे-राधे बैन॥ —आदिवाणी पद सं० ६८

१२३ उझकति सहचरि निरखि सुख, हिय में भरी हुलास।
नव निकुंज रस पुञ्ज छबि, श्यामा श्याम निवास॥ —युगल शतक ७४

१२४ भागवती जसुमति मई, अति प्रमुदित लखि लाल।
गोकुल मंगल आजु सखि बाढ्यो निशब विशाल॥ —युगल शतक ६५

के अन्तर्गत लालजी की बधाई का एक पद है तथा गर्ग ऋषि के द्वारा कृष्ण को पवित्रा पहनाने का एक पद दिया है।[१२५] उन्होंने वृन्दावन लीलाओं का ही विशेष गान किया है। वृन्दावन देव जी ने नन्द बाबा और यशोदा का वात्सल्य भी वर्णन किया है एवं अन्य ब्रज लीलाओं को भी लिया है किन्तु सम्प्रदाय का प्रमुख विषय तो माधुर्य भावना से ही सम्बन्धित है।[१२६] श्री राधा और कृष्ण का प्रेम वर्णन ही सम्प्रदाय के कवियों को अभीष्ट रहा है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का, शृंगार का तथा नित्य विहार और निकुंज लीला का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। उनके शरीर के नील वर्ण, सुन्दर नासिका, कमल के रतनारे नेत्र आदि का अत्यन्त आलंकारिक वर्णन समस्त भक्त-कवियों ने किया है।

श्रीकृष्ण के शिर की लाल पाग वाम भाग में किंचित झुक रही है मानो नील मेघ के ऊपर अरुण मेघ आ पहुँचा हो। पेच पर अद्भुत रत्न और हीरे हैं जिनके कारण वह शोभा विद्युत और इन्द्र के धनुष जैसी प्रतीत होती है। सुगन्धि में बसी अलकें और उनके मध्य मीन के आकार के कुण्डल शोभायमान हैं। भौंहें घनी और मोहित करने वाली हैं। नासिका में मनोहर मोती तो ऐसा शोभा दे रहा है मानो कमल की किसी सुन्दर कलिका पर ओस का एक कण शोभा दे रहा है। लाल-लाल अधरों के मध्य दन्तावली ऐसी शोभा देती है मानों अरुण किरण से दीप्त मोतियों की माला हो। कंठ में तीन रेखाएं हैं। विशाल वक्ष पर मौक्तिक माल ऐसी शोभा दे रही है। जैसे नील पर्वत शृंग से उतर कर गंगा बह रही हो। हाथों में पहुँची, अंगुलियों में मुदरी। रामोवलि ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे प्रयाग रूपी नाभि हमें जमुना जी से बहकर मिली हों। कमर में करधनी का मधुर शब्द हो रहा है। पीला दुपट्टा पहने हुए और चन्दन लगी हुई छवि वर्णन करते समय कवियों की बुद्धि पंगु हो जाती है। इस वेशभूषा से सुसज्जित होकर लाड़िली श्रीराधा के साथ वे हँसते, बोलते, बीड़ा खाते और खिलाते हैं। श्रीकृष्ण तो मुरली बजाते हैं और श्रीराधा वीणा। इस प्रकार दोनों तान से तान मिलाकर गा बजाते हैं। परस्पर रीझि के वश होकर परस्पर आलिंगन करते हैं, अधर पान करके प्रेम से विवश हो जाते हैं। राधा और नन्द नन्दन के ये शृंगार लौकिक नहीं अलौकिक हैं। वृन्दावन में नित्य

---

१२५ कान्ह प्रान के प्रान हित, जसुमति गर्ग बुलाय।
कह्यो पवित्रा दामरचि, पहरावहु ऋषिराज ॥

१२६ सब्य अंग वृषभानुजा, चहुँदिशि गोपी ग्वाल।
जै जै कहि करि कीजिये, आरती श्री गोपाल ॥ —युगल शतक १८

विहार गर्व खर्व और वैकुण्ठ का भी गर्व मेटने वाला है।[127] युगल की क्रीड़ा जहाँ होती है उस वृन्दावन की महिमा कहने में हजार वेद हार गये हैं।[128] दोनों प्रेम के हिंडोले में झूल रहे हैं। सहज सुख सम्पत्ति हृदय में हिलोरें ले रही हैं।[129] सुरत सुख भी इस जोड़ी का अभीष्ट है। दोनों परस्पर घने प्रेम से पगे हुए हैं। श्याम के गुणों को श्यामा जी विस्तार देती हैं उस क्षण की लीला को गाने से ब्रह्मा और शम्भु भी हार गये हैं। जो क्रीड़ा वृन्दावन धाम में राधा और सुन्दर श्याम ने की है वही रसिकों का जीवन है। वह एक वस्तु और दो नाम हैं।[130] जमुना तीर पर कदम की छाँह में वे परस्पर ग्रीवा में भुजा डालकर खड़े हैं। मोहन कृष्ण बाँसुरी में मधुर स्वर से कोई राग गा रहे हैं। मोहन कृष्ण समस्त व्रज के प्यारे और राधा सबकी प्यारी हैं। सखी कुंज की ओट से इस लीला को देखकर धन्य हो रही हैं।[131] सखी रूप भक्ति का यह लीला दर्शन ही तो सर्वस्व है।[132] श्री परशुराम देव जी तो गोविन्द

---

१२७ स्यामा स्याम विहार नित वृन्दाविपिन उदार।
गर्व खर्व वैकुण्ठ तो गर्व मिटावन हार॥ —रूप रसिक जी की वाणी

१२८ वही पद ४

१२९ दोउ जन झूलत प्रेम हिंडोरे।
स्यामा स्याम सहज सुख संपति हिय ही लेत हिलोरे॥ —वही पृ० १०६

१३० स्याम गुन स्यामा जु विस्तारयो।
एक ही छिन की लीला गावत विधि शम्भू पचि हारयो॥
जो क्रीड़ा वृन्दावन कीनी राधे सुन्दर स्याम।
रूप रसिक रसिकन को जीवन एक वस्तु द्वै नाम॥
—रूप रसिक जी की वाणी निम्बार्क माधुरी पृ० १०७

१३१ देखी सुन्दरता की सींवा, जमुना तीर कदम की छहियाँ द्वै ठाढ़े भुज ग्रीवा॥
वह बंसी वह मधुर-मधुर सुर गावत राग उचारी।
वह मोहन सब व्रज को सजनी वह माहनी महारी।
दुरी कुंज दै ओट लखोरी धन्य प्रहर पलघरी॥
रूप रसिक वह स्याम सुन्दर वह राधे रूप भरी॥

१३२ विहरत युगल दिये भुज ग्रीवा।
सुन्दरता सौभाग्य सिरोमनि, रसकी रासि रूप की सींवा।
हाव भाव आलिंगन चुम्बन देत परसपर प्रियतम प्यारी।
रति अधीर अनुराग विवस दोउ, सुरत रंग रंगे महारी॥
रसमय रसिक रसीली भामिनि, रसमय रसिक रसीली केली॥
रसमय रहसि निरखि हरखत हिय, रसिकहितू हरिप्रिया सहेली॥ —महावाणी

के बन्दीजन बनने को भी प्रस्तुत हैं। नित्य प्रातः उठकर मोहन को जगाने में उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है। वृन्दावन देव जी प्रातःकाल श्री गोविन्द का स्मरण करते हैं। भक्त वत्सल प्रभु गोप गोपियों से घिरे रहते हैं।

राधा कृष्ण की जोड़ी का नित्य विहार सहचरी आदि परिकरों के साथ होता है। सखियाँ आठोयाम सेवा करती रहती हैं।[133] अपनी सेवाओं से श्यामा श्याम को रिझाने का प्रयत्न करती रहती हैं। भक्त का हृदय सखी बनकर प्रिया प्रियतम की कृपा का सतत आकांक्षी रहता है। वे उल्लास सहित नव निकुंज में विहार करने वाले श्यामा श्याम की कुंज रंध्रों से झांककर आनन्द में रम जाती है। नवीन किशोर और किशोरी हैं, नवीन सज्जा है नये वृन्दावन में वसन्त नवीन पुष्पों को लाया है। ऐसे वातावरण में दम्पत्ति का सुख भी नवीन रूप धारण कर रहा है।[134] जोड़ी परस्पर चुंबन, आलिंगन में अपने को भूल बैठी है। नाना प्रकार की लीलाओं का विस्तार होता है। कभी विपिन-विहार होता है तो कभी रास में सांवले और गोरे दोनों गाते और तत थई नृत्य करते हैं।[135] श्री परशुराम देव ने रास का कारण राधा कृष्ण की

---

१३३ अंग संगनि तत्पर सदा, टहल करें सब याम।
सब सुख अवधि जहां बसे, अद्भुत स्यामा स्याम॥
—हरिव्यास देव-महावाणी

१३४ नव किशोर नव नागरी नव नव सांज सजाज।
नव वृन्दावन नव कुसुम नव बसंत ऋतुराज॥ —आदिवाणी

१३५ रास में रसभरी रसिकनि जू गावैं।
तत तत थेई तत थेइय बहुत गति भेदयुत परनि समुझावैं॥
—युगल शतक

तथा

हरिदास रच्यो केलि करण को।
वृन्दावन जमुना तट मोहीन प्रगट करण ब्रज सरण कौं॥
लीनी कर मुरली हरि हितकारि हित सों ओसर अधर निज धरण कूँ।
सुनि सुनि धुनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाय परण कूँ॥
थकित पवन सुणि जाणि पर्म सुख जासनि चलि जल थल विसरण कूँ॥
मोहे पसु पंखी थिरचर सुर लोचन सकल सरोज चरण कूँ।
सोभित अति सखी सरद निसा सुख देखो स्याम स्नेह वरण कूँ।
परसराम प्रभु सब सुखदाइ कहरि मंगल पद वो रण कूँ॥
राम सागर—परसुराम—काशी नागरी प्रचारिणी सभा पद सं० २०

रंग भरे गुन रस भरे सांवल गोर सहास,
दोउ रसिक मनमोहने सरस नृत्यत रास॥

परस्पर केलि क्रीड़ा बताया है। गोपियाँ सहास रास में भाग लेती हैं। वृन्दावन की नयी डाल और उस पर नया हिंडोला पड़ा है जिस पर श्यामा श्याम झूल रहे हैं।[136] रंगदेवी आदि सखियाँ इन्हें झुला रही हैं।[137] इसी प्रकार होली का सुन्दर दृश्य उपस्थित होता है।[138] गुलाल के बूके उड़ाये जाते हैं। एक अनोखा ही रंग उपस्थिति हो जाता है।

राधा वल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण

हिन्दी काव्य

नाम—राधावल्लभ लाल

रूप—युगल

लीला—नित्य विहार

धाम— वृन्दावन

राधावल्लभ संप्रदाय विशुद्ध मध्ययुगीन संप्रदाय है। गोस्वामी हित हरिवंश ने इसमें राधा को कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। राधा संप्रदाय की प्राण संजीवनी हैं। संप्रदाय की उपासना मधुर भाव की है किन्तु युगल स्वरूप में राधा का प्राधान्य है श्रीकृष्ण उनके अनुसंग से पूजित होते हैं। राधा वल्लभ हैं अतः राधावल्लभ लाल कहलाते हैं। वे रसेश अथवा रसात्मा हैं।

परब्रह्म श्रीकृष्ण

संप्रदाय में श्रीहित हरिवंश जी ने भगवान् कृष्ण को सगुण निर्गुण से परे अजन्मा, अलेख परब्रह्म माना है। राधा कृष्ण अद्वय हैं। वे दो होकर एक ही को व्यक्त करते हैं। अतः उनके यहाँ रास लीला अन्तरंग दृष्टि से जीव और ब्रह्म का अद्भुत संयोग ही है। अतः इस सम्प्रदाय में भी श्री कृष्ण का परब्रह्म स्वरूप पुराण श्रीमद्भागवत के ही अनुसार सुरक्षित है। इस सम्प्रदाय के कवियों ने किशोर लीला के मंजुल और मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए भी उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्म को लक्ष्य

---

१३६ नवल निलय नीरज महा आंगन अंग रसाल।
नवल हिंडोरे झूल ही आली री नंदलाल॥
—हरिव्यास देव जी-महावाणी

१३७ जमुना बंशीवट निकट हरन हिंडोरे होय।
रंग देव्यादि झुला वहीं झूलत प्यारी पीय॥ —आदिवाणी

१३८ यह सावन हिय जिय भरे चुनि सुमन सुरंग।
सांझी खेलत सांझ मिलि प्रिय प्यारी दोउ संग॥ —हरिव्यासदेव जी

में रखा है।[139] वह कृष्ण अखिलेश्वर है, आदि अन्त और मध्य से परे है। वह दुर्लभ है, अकथनीय है परन्तु भक्त के वश में है।[140]

अवतारी श्रीकृष्ण

राधावल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण अवतारी है।[141] राधावल्लभीय सम्प्रदाय में चाहे परब्रह्म की चर्चा हो अथवा अवतार धारक कृष्ण की किंवा भक्तोद्धारक अथवा लीलाधारी कृष्ण की किन्तु वे युगल भावना से पृथक नहीं हो सकते उनके युगल न कभी कहीं से आते हैं और न कहीं जाते हैं। सृष्टि के सृजन, सिंचन संहार से परे, यहाँ तक कि ब्रज गोपिका, ब्रज सखा नन्द, यशोदादि ब्रज वासियों एवं ब्रह्मा शुक सनक नारदादि भक्तों से भी अलक्षित हैं।[142] परन्तु वे अवतार धारण करके इस भूतल पर आते अवश्य हैं। अन्यत्र वे दुष्ट दलन और भक्तोद्धार के निमित्त आते हैं किन्तु राधावल्लभीय सिद्धान्त के अनुसार वे युगल महारस के विस्तार के लिए आते है। यह महारस भाव की पराकाष्ठा है। इस गुप्त भाव या चरम भाव भी कहा जाता है। यही उज्जवल रस कहलाता है। उनके कृष्ण नित्य बिहारी हैं। वे अपने सम्पूर्ण परिकर के साथ अवतार लेते हैं। जब वे लीलामय होकर अवतार की इच्छा करते हैं तो वे ब्रज मण्डल में पधारते हैं। सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी प्रकट होती हैं। उनके अवतार ग्रहण में देहली दीपक न्याय है।[143] ब्रजगोपों के घर आकर नित्य बिहारी अवतार

---

१३९ या राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैक: क्रीड़नार्थंद् द्विधाभूत।

—राधातापनी उपनिषद्

१४० प्रबल प्रेमेश्वर तत्व पायो।

जाको आदि अंत मधि नाहीं, रसिक नृपतिजू प्रबिल बितायो॥
दुर्लभ, दुर्घट, दुर्गम ठाहर जाको प्रभु अति मारग पायो।
नागरीदास श्री व्यास सुवन यू अकह निरवधि पकरायो॥

—नेही नागरीदास जी की पदावली

१४१ कुंजन क्रीड़न राधा कंत, तिनके अंश कलाशु अनंत।
परपूरन मुरलीधर एक इनके अंशकला जु अनेक॥

—चाचा हित वृन्दावनदास

१४२ राधासुधानिधि—श्लोक ६८
तथा
प्रबोध नन्द शतक—४

१४३ श्री राधावल्लभ कुंज बिहारी। सब अवतारन के अवतारी॥
नित्य केलि वृन्दावन धाम। जहाँ विराजत श्यामा श्याम॥
ब्रज वृन्दावन क्रीड़त सदा। बरषत अतुलित सुख सम्पदा॥
देहरी दीपक धरिये जैसे। यह वह समझ लीजिये ऐसे। —ध्रुवदास जी

ते है। अतः नित्य विहारी अवतारी हैं।[१४४] यह अद्वय युगल नित्य विहारी हैं। उन्हें हम विशुद्ध प्रेम तत्व भी कह सकते हैं। वे रस की मूर्ति हैं अत्यन्त रसिक भोक्ता हैं। राधा की रूप राशि पर आसक्त कृष्ण आठोयाम उनके अनुग्रह एवं केलि की याचना करते रहते हैं।[१४५]

कृष्ण का रसात्मक स्वरूप

राधा वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण का रसात्मक स्वरूप ही प्राण है। यहाँ श्रीकृष्ण राधा के अनुसंग से पूजित होते है। वस्तुतः राधा ही उक्त सम्प्रदाय की इष्ट है, वे कृष्ण की आराध्या हैं।[१४६] तथा स्वयं प्रेम स्वरूप है, मधुरस, सुधा-सिन्धु के सार से अगाध बनी हुई है। श्री राधा के प्रेम में पड़कर श्याम सुन्दर चारों ओर से इतने सिमट गये हैं कि सृष्टि रचना और पालन की बात तो दूर रही वे नारदादि भक्तों को भी भूल गये हैं। अपने श्रीदामा आदि मित्रों से नहीं मिलते और अपने माता पिता के स्नेह की बुद्धि नहीं करते। अब तो मधुपति कुंज वीथियों की उपासना करते हैं।[१४७] इसमें उनको अपनी भगवत्ता ही विस्मृत हो गयी है, वे विशुद्ध प्रेम स्वरूप बन गये हैं। उनका प्रेम इतना उज्ज्वल और एक रस बन गया है कि उसके आगे भगवत्ता भी फीकी पड़ गई है। उन्होंने निकुंज की स्थिति में अपने बड़प्पन को भी इस प्रकार छोड़ दिया है कि अब उसकी बातें भी उन्हें नहीं सुहाती। राधा को पाकर वे अपने भाग्य को धन्य मानते है और राधा के नेत्र में अंजन बन कर रहना चाहते

१४४ रस मूरति अति रसिक भोगता सांचो नाम बिहारी ॥ —चाचा वृन्दावन दास

१४५ आठों पहर केलि के जाचक मनु मराल सुख सागर मढ़े ॥

—चाचा वृन्दावन दास

१४६ सुनि मेरो बचन छबीली राधा।
तैपायो रस सिन्धु अगाधा॥
तू वृषभानु गोप की बेटी।
मोहनलाल रसिक हैं सिमेंटी॥
जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापै तू बन फूल बिनाये। जो रसनेति नेति श्रुति गायो।
ताकों तैं अधर सुधारस चाख्यौ, तेरो रूप कहन नहिं आवैहित हरि वंस कछुक जस गावै॥ हित० चो० पद सं० १८

१४७ राधासुधानिधि—२२५

है।[१४८] कृष्ण मदनमोहन है किन्तु श्री राधा के प्रेम सौंदर्य ने उन्हें इतना अधीर बना रखा है कि कोटि कामनी कुल से घिरे रहने पर भी उन्हें धीरज नहीं रहता।[१४९] सखी गण के मुख से कृष्ण की राधा के प्रति आसक्ति इस प्रकार वर्णित है—हम उनके नेत्रों की बात क्या कहें वे श्री राधा के कमल मुख रस में भ्रमर के समान अटके हुए हैं और अन्यत्र कहीं नहीं जाते, जब ये पलकों के सम्पुट में रुकते हैं तो अत्यन्त आकुल होकर अकुलाने लगते हैं। उक्त संप्रदाय में राधा वल्लभ प्रिय कृष्ण की उपासना का निर्देश इस बात का संकेत करता है कि इस संप्रदाय में उस कृष्ण की उपासना है जो राधा की स्वयं आराधना करता है। श्री राधा श्रीकृष्ण की परम प्रिया है। वे दोनों प्रेम के कारण इतने अभिन्न समझे गये हैं कि संप्रदाय में उनका राधा से पृथक स्वतंत्र वर्णन अत्यल्प है। हित हरिवंशजी ने कृष्ण का प्रथक-वर्णन किया है वह दो-चार स्थलों पर ही किया है। उनके माथे पर मुकुट, कानों में कुण्डल और वक्षस्थल पर सुन्दर वनमाला सुशोभित है।[१५०] त्रिभंगी अदा में कामदेव को भी सुख देने वाले हैं। वे बाँसुरी बजाकर उसके स्वर से ब्रज नारियों को बुलाते हैं।[१५१] गोपियाँ काम ताप को भूल जाती हैं।

---

१४८ भये दीन यों तजी बड़ाई पुनि ताकी बातें न सुहाई।
भाग है धनि भाग बड़ाई, ऐसी कुँवरि किशोरी पाई॥
अब मोको कछु और न चहिये, नैननि में अंजन ह्वै रहिये॥

—हि० चौ १४१

१४९ निकट नवीन कोटि कामिनि कुल, धीरज मनहि न आवे॥

१५० मोहन मदन त्रिभंगी।
मोहन मुनि मन रंगी॥
मोहन मुनि सघन प्रगट परमानंद गुन गम्भीर गुपाला।
शीश किरीट श्रवण मणि कुंडल उर मंडित बनमाला॥
पीताम्बर तनु धातु विचित्रित कल किंकिणि कटि चंगी।
नख मणि तरणि चरण सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी॥

—हि० चौ० १-४-६३

१५१ मोहन् बेनु बजावे।
इहि रव नारि बुलावे॥
आईं ब्रज नारि सुनत बंसी रव, गृह, पति बंधु बिसारे।
दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज ताप निवारे॥
हरषित बदन, बंक अवलोकनि, सरस मधुर धुनि गावे।
मधुमय श्याम समान अधर धर मोहन बेनु बजावे॥

—हि० चौ० ६-४-६३

यद्यपि राधा वल्लभीय भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण तथा राधा के माधुर्य का ही वर्णन अधिक किया है किन्तु श्रीकृष्ण के बाल-स्वरूप-वर्णन का भी अभाव नहीं है। कवियों ने यत्र तत्र उसकी चर्चा की है। कुछ भक्त कवियों ने तो बाल, पोगंड तथा किशोर तीनों अवस्थाओं के कृष्ण का स्वरूप वर्णन किया है।[१५२] राधा वल्लभ संप्रदाय की सखी भावना में सख्य, दास्य और माधुर्य का स्वतः समावेश हो जाता है। श्री लाड़लीदास ने 'सुधर्म बोधिनी' में सखियों में मित्रवत् आत्मवत् और पतिवत् भाव के अतिरिक्त पुत्रवत् भाव अर्थात् वात्सल्य भी माना है, जो प्रातःकाल रतिक्लान्त युगल को जगाने में संकोच के द्वारा तथा उन्हें रुचि पूर्वक भोजन कराने में प्रकट होता है।[१५३]

राधावल्लभीय साहित्य में कृष्ण की बाँसुरी का वर्णन है। मोहन, मनमोहन हैं, वंशी बजाते हैं। वंशी रव से ब्रज वनिताओं को बुलाते हैं। ब्रज वनिताएँ कृष्ण के

---

१५२ चाचा हित वृन्दावन दास ने 'नवनीत चोर पच्चीसी' में कहा है कि भागवत में शुक मुनि ने जो लीला गाई है, मैं वही लीला गा रहा हूँ। इसी ग्रंथ में श्रीकृष्ण की बाल, पोगंड एवं किशोर लीलाएँ वर्णित हैं। कृष्ण के बाल स्वरूप वर्णन में कवि ने अत्यन्त मौलिकता का परिचय दिया है।

हौं चौका दे पानी गई।
तामें आनि बखेरयो कूरो यह बेरी को धौं वई। —नवनीत चोर पच्चीसी

कृष्ण सूत की कतनोड़ी को खोल डालते हैं, माला तोड़ देते हैं और तकुआ टेढ़ा कर देते हैं :—

रानी देखौ करतब पूत को।
भरी हुती कतनोड़ी कीयो हाल खोलि यह सूत को॥
माल्ह तोरि टेढ़ौ कियो तकुवा कहौं कहा चलन सपूत को॥

रोते हुए बाल कृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया है :—

दोऊ कर मीड़त है अँखियाँ यह छवि कहा बखानौं।
कमल अमल भयो संपुट मनु आंसु मकरंद चुवानौं॥
—लाड़ सागर पृ० २२

एक और वर्णन इस प्रकार है :—

लाल के कांधे चढ़े कन्हाई।
कंचन विटप शिखर चढ़ि कमनी मनु तमाल छवि छाई॥
—लाड़ सागर पद ६२

१५३ निसदिन लाड़ लड़ाव हो, अति माधुर्य सुरीति।
पुत्र मित्र पति आत्मवत, उज्ज्वल तत्सुख प्रीति॥ —सुधर्म बोधिनी

पास सब बंधुओं को त्याग कर आती है, कृष्ण उनके काम ताप का नाश करते हैं। तदुपरान्त कृष्ण ब्रज वनिताओं के साथ कदंब वृक्ष के नीचे रास रचना करते हैं। इस रास के दृश्य ने सबको आकृष्ट कर लिया है। पशु पक्षी, लता, गुल्म, गिरि, निर्झर, सभी मुग्ध होकर इस लीला को देखते हैं। श्रीकृष्ण का यह रूप सबको मनोमुग्धकारी प्रतीत हुआ।[१५४] एक अन्य स्थान पर श्री हित हरिवंश जी ने मोहन की बांसुरी का वर्णन किया है। कृष्ण मोहिनी बांसुरी बजाते हैं और राधा के श्रवण पुट उसे सुनते हैं काम का ताप मिटाने वाली है यह बांसुरी।[१५५]

श्रीकृष्ण राधा के साथ नित्य विहार में रत रहते हैं। इस नित्य विहार की स्थिति में प्रियतम के रूप में कृष्ण का स्थान है। राधा वल्लभ संप्रदाय के श्रीकृष्ण राधा के प्रेमी हैं, पति हैं एवं दास हैं, राधा कृष्ण की स्वकीया है। चाचा वृन्दावन दास जी ने लाड़ सागर में कृष्ण का राधा से विधिवत् विवाह का वर्णन किया है।[१५६] इस सम्बन्ध में श्री हित हरिवंश जी का कहना है कि परकीया तथा स्वकीया दोनों का भाव अपूर्ण है। स्वकीया में मिलन है विरह नहीं, उधर परकीया में विरह है किन्तु मिलन को पूर्ण सुख नहीं। इसीलिए प्रेम के साम्राज्य में राधा स्वकीया भी है तथा परकीया भी।

राधा वल्लभ संप्रदाय में नित्य किशोर उपासना का ही विधान है यह लीला लौकिक नहीं वरन् अलौकिक है। चाचा हित वृन्दावन दास जी ने इस प्रेम लीला में श्रीकृष्ण और राधा की स्थिति रस और रूप की मानी है।

श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए हरिवंश जी इस प्रकार कहते हैं—"सुकुमार सांवले कुमार की शोभा अंग-अंग मनोहर है। सिर पर रंगीली पाग बाईं ओर लटक रही है तथा घुंघराली अलकों में चंपा की कलियां सजी हुई हैं। विशाल एवं रतनारे नेत्र हैं। कपोलों पर कुण्डल-झलक रहे हैं, दन्ति पंक्ति प्रकाश करने वाली है। अभय देने वाली भुजायें हैं, पुष्ट कंधे हैं। जिस प्रकार कसौटी पर सोने की शोभा होती है इसी प्रकार श्रीकृष्ण के श्यामल शरीर पर पीला दुपट्टा शोभा दे रहा है। उसकी चमक से विद्युत भी दब गई है। हृदय पर पारिजात पुष्पों का हार है, संग में

---

१५४ हित चौरासी पद संख्या ६३

१५५ मोहिनी मदन गोपाल की बांसुरी।
माधुरी श्रवण पुट सुनति राधि के, करत रतिराज के ताप को नासुरी॥
—हित चौरासी

१५६ दूलहु सांवरो बनि आयो। साज बरातहिं लायो।
राधा हरि की भांवरि विधि सों पारहीं॥
—लाड़ सागर पृ० १६७ तथा १६१

मुक्ताओं की माला है। मस्त हाथी के समान चाल है जिसे देखकर स्त्रियाँ अपनी दशा भूल जाती हैं। खिलती हुई नयी किशोर अवस्था है। वचन चित्त को चुराने वाले हैं मानों उनकी वाणी रूपी कोकिल ने मधु ऋतु की नूतन आम्र मंजरी को चख लिया हो। इस समस्त सौंदर्य को बढ़ाने वाली मुरली की तान सप्त स्वरों में बोल उठती है।[१५७] एक स्थान पर मदनगोपाल जी की आरती भी गाई गई है। अगर, धूप, कुंकुमचंदन से रंजित घृत में पगी हुई वर्तिका नंदलाल के भाल पर तिलक, तत्पश्चात् भोग लगाने का तथा चमर ढोरने का भी वर्णन हुआ है। कपूर के जल से आचमन, शंख घंटिका भी और बांसुरी का सप्त स्वरों वाला रव आदि का वर्णन उनके कृष्ण के प्रति प्रेम को प्रगट करता है।[१५८] एक अन्य पद में 'नंद के नंदन' और 'राधिका वर' कह कर श्याम सुन्दर की आरती की गई है। इसमें भक्ति का दीपक और प्रेम की बाती है जो कि साधु संगति से दिन रात जल रही है। ब्रज की युवतियों का इस आरती में उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हित हरिवंश ने अपने पदों में कृष्ण का गायन किया है।[१५९]

---

१५७ लाल की रूप माधुरी नैननि निरखि नेकु सखी।
मनसिज मन हरन हास सांवरो सुकुमार राशि।
नखसिख अंग अंगनि उमंगि सोभग सींव नखी॥
रंग भगी सुरंग पाग लटकि रही वाम भाग चंपकली कुटिल अलक बीच बीच रखी।
आयत दृग अरुण लोल, कुण्डल मंडित कपोल अधर दसन दीपति की छवि,
क्यों हू न जात लखी।
अभय पद भुजदण्ड मूल पीन अंश सानुकूल॥
कनक निकष लसि दुकूल दामिनी धरखी॥
उर पर मंदार हार मुक्ता लर सुढ़ार।
मत दुरद गति तियन की देह दसा करखी॥
मुकुलित वय नव किशोर वचन रचन चित के चोर मधु रितु पिक साख नूत
मंजरी चखी॥
जै श्री नटवर हरिवंश गान रागिनी कल्याण तान सप्त स्वरन कल इते पर
मुरलिका बरखी
—स्फुट वाणी २२

१५८ स्फुट वाणी पद सं० १८।
१५९ आरती कीजे श्याम सुन्दर की नन्द के नंदन राधिका वरकी।
भक्ति करिदीप प्रेम कर बाती।
साधु संगति करि अनुदिन राती।
आरती ब्रज युवति यूथ मन भावे।
श्याम लीला श्री हित हरिवंश गावे॥
—श्री स्फुट वाणी १९

किन्तु उक्त संप्रदाय की इष्ट श्री श्यामा अर्थात् राधिका हैं।[१६०] हित हरिवंश का कथन है कि राधा वल्लभ संप्रदाय में 'रसोवैसः' की परावधि श्रीकृष्ण तक ही स्वीकार नहीं की गई है। अपितु जिनका सुन्दर मोर पंख को निर्मित मुकुट श्री राधा के चरण कमलों में लोटता रहता है तथा जो विचित्र केलि महोत्सव से उल्लसित है उन रसघन मोहन मूर्ति श्री हरि की मैं वन्दना करता हूँ। वन्दनीय हरि राधा के कृपा कटाक्ष की कामना करते हैं। राधा के आदेश, निर्देश पर चलना ही उनका धर्म है।[१६१] श्रीकृष्ण दिव्य किशोरी राधा के चरणों में विलुठित होकर अपने को कृत्य-कृत्य मानते हैं। इस राधा के नाते से ही श्याम हरिवंश जी को प्रिय हैं। 'सुधर्म बोधिनी' के अनुसार श्री राधा के चरणों में सुन्दर श्याम की अधिक आसक्ति देखकर ही हित हरिवंश प्रभु उन पर रीझे हैं।[१६२] राधा कृष्ण मिलन भी नित्य है और विरह भी। इस नित्य मिलन में भी विरह का सुख है। यह सुख चकई तथा सारस के संवाद रूप में प्रकट हुआ है। प्रिय के विरह में चकई जीवित रह जाती है इसे वह सारस प्रेम की न्यूनता मानती है क्योंकि सारस नित्य मिलन में विरह का अनुभव नहीं करता। हरिवंश जी ने दोनों का समन्वय करके 'प्रेम विरहा' का सिद्धान्त प्रकट किया है।[१६३] युगल किशोर श्री राधा वल्लभ लाल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है। किन्तु प्रेम में न्यूनता चाह और चटपटी है। प्रेमासव का अनवरत पान करने पर भी अतृप्ति रूपी महान विरह की छाप सदा बनी रहती है। कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम निष्काम है। राधा के अंग-संग से जो बातें उत्पन्न होती हैं ये सभी प्रियतम श्री लाल जी को प्यारी लगती हैं, अतः यह

---

१६० रहो कोऊ काहू मनिहि दिये, मेरे प्राणनाथ श्री श्यामा शपथ करों तृण छिये ॥

१६१ रसघन मोहन मूर्ति विचित्र केलिमहोत्सवोल्लसितम् राधा चरण विलोड़ित
रुचिर शिखण्ड हरिवन्दे ।
—राधा सुधानिधि श्लोक २००

१६२ अति आसक्ति लखि लालकी रीझे व्यासकुमार ।
यह जोड़ी अविचल सदा कीन्ही निजु उर हार ॥ —सुधर्म बोधिनी

१६३ सारस सर बिछुरंत को जो पल सहे शरीर ।
अगिन अनंग जु तिय भखे तो जाने परपीर ॥
तो जाने पर पीर धीर धरि सकहि न बजजन ।
मरत सारसहि फूटि पुनि न परयो अलहुत मन ।
जै श्री हित हरिवंश बिचारि प्रेम विरहा चिनवारस ।
निकट कंत नित रहत मरम कह जाने सारस ।
—श्री हित हरिवंश स्फुट वाणी ६

काम प्रेम अप्राकृतिक है। श्रीकृष्ण काम के वश में नहीं हैं। जिनका रूप देखकर कोटि-कोटि मनोज रति सहित मूर्छित होते हैं वे साक्षात् प्रेम हैं। कृष्ण राधा के प्रेम में इतने अधिक अनुरक्त हैं कि जो कुछ करते हैं सब राधा के सुख के लिए करते हैं और राधा भी उनके सुख की ही बात सोचती है। दोनों ही परस्पर 'तत् सुख सुखित्व' की भावना से अनुप्राणित हैं। प्रेम में दोनों इस प्रकार हैं—"जो कुछ श्रीकृष्ण करते हैं वह राधा को भला लगता है जो राधा करती हैं वह कृष्ण को। राधा श्रीकृष्ण के नयनों की पुतली तथा श्रीकृष्ण राधा के नयनों के तारे होना चाहते हैं। दोनों एक दूसरे को प्राणों से अधिक प्रिय हैं। वे स्यामल गोर हंस हंसनी हैं।[१६४] जिन्हें जल और तरंगों के समान कोई न्यारा नहीं कर सकता। सारांश यह है कि दोनों का व्यक्तित्व स्थूल शरीर दो होते हुए भी एक है।[१६५] जो कृष्ण शिव और ब्रह्मा से सदैव पूजित होते हैं उनसे राधा वन फूल बिनवाती हैं और जिस रस को श्रुतियों ने नेति-नेति कह कर गाया है। राधा ने उन्हीं को अधर सुधा का पान किया है।[१६६] इस प्रकार परब्रह्म स्वरूप तथा अवतार स्वरूप कृष्ण राधा के वश में हैं। संप्रदाय में राधा कृष्ण के प्रेम तथा उनके समस्त क्रिया कलाप को 'सहज' शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है।[१६७] यहां

---

१६४ जो कोऊ कहे कि काम नेम में कहि आये हैं तो उनमें की काम-केलि तो गाई है। सो यह काम प्राकृत न होई। प्रेम मई जानिबो निज प्रेम मई जानिबो निज प्रेम ही नेम रस सिंगार पोषक के लिए प्यारी के कहे हैं। जो बात पिया जू के अंग संगते उपजे सोई प्रीतम कों प्यारी लगे यह अप्राकृत प्रेम है। श्री कृष्ण काम के वश नाहीं। जिनको रूप देखते ही कोटि-कोटि मनोज रति सहित मूर्च्छित होहि सो साक्षात् प्रेम है॥

—सिद्धान्त विचार ब्यालीस लीला पृ० ४७

१६५ जोई जोई प्यारो करे सोई मोहि भावे, भावे मोहि जोई सोहि करे प्यारो।
मो कों तो भावंती प्यारे के नैनानि में प्यारो भयो चाहें मेरे नैनानि के तारे।
मेरे तन-मन प्राण हू ते प्रीतम प्रिय, अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोंसो हारे॥
जे श्री हित हरिवंश हंस हंसनी सांवल गोरे कहो कौन करे जल तरंगनि न्यारे॥

—श्री हित चा० पद १।

१६६ जाहि विरंचि उमापति नायें।
ता पैं तें बनफूल बिनाये॥
जो रस नेति नेति श्रुति गायो।
ताको अधर सुधारस चाख्यो॥

१६७ तेरो रूप कहत नहिं आवे, हित हरिवंश कछुक जस गावे॥

सहज का तात्पर्य तन और मन की अकृत्रिम, स्वाभाविक, अनायास अप्रयत्न होने वाली क्रिया से है। कृष्ण राधा के परस्पर प्रेम की प्रेरक कोई स्वार्थ बुद्धि, स्वसुख कामना या वासना नहीं है। यह आकर्षण नैसर्गिक है। संप्रदाय में 'सहज' शब्द को प्रेमानुभूति का प्रबल व्यंजक शब्द माना जाता है। सहज प्रेम भाव न होने पर किसी प्रकार की कामना वासना या स्वार्थ भावना राधा कृष्ण प्रेम के क्षेत्र से बाहर की वस्तु है। श्रीकृष्ण एवं राधा एक रस होकर नित्य विहार की लीलाओं में लीन रहते हैं।[१६८] राधा के साथ कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन संप्रदाय के कवियों ने किया है। यह वर्णन नित्य विहार के अन्तर्गत हुआ है। नित्य स्याम और स्यामा दोनों कुंज में विहार करते हैं। सूरति की क्रीड़ाऐं होती हैं। रति-रस की वर्षा होने लगती है। अचानक राधा किसी बात पर रूठ जाती है और मानकर बैठ जाती हैं। कृष्ण व्याकुल होकर मान छोड़ देने के लिए प्रार्थना करते हैं और निकुंज कुटीर में ले जाने के लिए मनुहार करते हैं।[१६९] वे प्रीति की रीति जानते हैं। यद्यपि कृष्ण समस्त लोक के चूड़ामणि हैं किन्तु राधा के मान के सम्मुख अपने को दीन मानते हैं। राधा और कृष्ण की क्रीड़ाऐं अत्यन्त मनोहर हैं। ये दोनों गट्ठर बन और खिरकमें कंठ में बाहें डालकर विहार करते हैं। नवलकिशोरे ऐसे शोभित होते हैं जैसे तमाल के वृक्ष पर कनक लता। चुम्बन परिरंभन का सुख लेते हुए रति क्रीड़ाओं में रत हो जाते हैं।[१७०] नया पीताम्बर, नई नई चुनरी तथा नई बूंदों मे भीगती हुई राधा है। नया हरा भरा वृन्दावन जहाँ नये

---

१६८ सहज वृन्दावन सहज विचार, सहज स्याम स्यामा दोऊ कामी उपजत सहज विकार।
सहज कुंज रस पुंजनि वरषत सहज सेव सुखसार।
सहज नेम नैननि दें सहज हंसनि भ्रुव भंग सिंगार।
सहज माधुरी सागर नागर धन्य अनन्यनि के आधार॥
—व्यास वाणी उत्तरार्द्ध पद सं० २०४

१६९ चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर।
तो बिनु कुंवरि कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर।
गद् गद् सुर विरहाकुल पुलकित श्रवत विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु नंदिनी बिलपति विपिन अधीर।
बंशी निसेष व्यास माला अलि पंचानन पिक कीर॥
मलयज गरल हुतासन मारुत साखा मृग रिपु तीर।
श्री हित हरिवंश परम कोमल चित चपल चली प्रिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र को पूंजर सूर रणवीर॥

१७० हित चौरासी ३।४९ हित चौरासी ३।५४

चातक और मोर मोरिनी बोल रहे हैं। नई मुरली में नई मल्हार गाई जा रही है। नए आभूषण, नया मुकुट है तथा नई नई उरप लेते हैं। भूतल पर यह जोड़ी अद्भुत है।[१७१]

रासरसेश कृष्ण

मान और प्रेम का पर्यवसान रास में होता है। यों तो काम-प्रेम की तरंगे ही लीला को सदा चलाती रहती हैं परन्तु रास में आनन्द की चरम दशा होती है।

---

१७१ अ—रास रच्यो बन मांहि।

विमल कलप तरु छांही, विमल कलप तरु तीर सुपेशल शारद रैन पर चन्दा।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहे तहां नंद नंदा।
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर किंकिन शब्द कराहीं।
यमुना पुलिन रसिक रस सागर रास रच्यो बन मांही।
वेलत मधुकर केली मोहे खगमृग वेली।
मोहे मृग धेनु सहित सुर सुन्दरि प्रेम मगन पट छूटे।
उडगए चकित थकित ससि मण्डल कोटि मदन मन लूटे।
यमुना पुलिन तट तरु सुर तरु के निकट श्री हित हरिवंश रचित रास चलि चलि मिलि सजनी॥
बाजत मंद मृदंग नाचत सबे सुधा तैन श्रवन सुन्यो वेनु बजनो।
जै श्री हित हरिवंश प्रभु राधिका रमन मोको भवि माई जगत भगवत भजनो जगत भगत भजनो॥

ब—रास रच्यो बन कुंज बिहारी।
सरद मल्लिका वेल प्रफुल्लित बनि आई पिय प्यारी॥
वाम स्याम कैं स्यामा सोभित जनु चांदनी अंधियारी॥
भूषण गन तारका तरल छवि बदन चंद उजियारी।
कोमल पुलिन कमल मण्डल महं मंडित नवल दुलारी॥
—व्यासवाणी उत्तर० पद २२६ पृ० ३४६

स—रच्यो स्याम जमुना जल पर रास।
संग राधिका अंग रंग छवि सब गुन रूप निवास।
विविध कमल मण्डल की सोभा, जल थल कुसुम विकास।
उडगन सहित सकल रामा निसि बरननि तन आकास॥
भूषन धुनि सुनि हंस हंसिनी मधुप न छांडत पास।
पद पटकत बन छींटन छिरकत लेति मान तज त्रास॥
—व्यास वाणी उत्त० पद २४३

राधा वल्लभ सम्प्रदाय में रास का अत्यधिक महत्व है। सम्प्रदाय सम्बन्धी नित्य विहार लीला का भी यह एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत पूर्णचन्द्र ज्योत्सना धौतरात्रि, यमुनापुलिन आदि समस्त वर्णन निकुंज रस के विचार से नित्य विहार के पोषक माने जाते हैं। शरद् रजनी में उज्ज्वल चन्द्रिका में यमुना के तीर पर जहाँ शीतल मन्द सुगन्धि बहती है, रास का आयोजन होता है। गोपिकाओं की किंकणी के मधुर शब्द से वातावरण मुखरित हो जाता है।[१७२] इस रास को देखने के लिए खग, मृग, बेलों तथा गायों सहित देवताओं की स्त्रियाँ वहाँ आकर उपस्थित हो जाती हैं। समस्त वातावरण में एक अनोखा समा बंध जाता है। तारे चकित रह जाते हैं। चन्द्रमा मोहित होकर शिथित हो जाता है। करोड़ों कामदेवों के मन लुट जाते हैं। मुरली से अमृत की वर्षा हो रही है। श्यामाजू सप्त स्वर से संयुक्त उरपि ले रही हैं। 'तत थेई थेई' हो रही है। गज गामिनी स्त्रियाँ इस रास क्रीड़ा का आनन्द ले रही हैं। कृष्ण के साथ राधा रास मंडल में उपस्थित हैं। चारों ओर मंडलकार सखियाँ खड़ी हुई हैं। चम्पक वर्ण राधा के साथ खड़े हुए कृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों विद्युत के बीच में मेघ हो तथा स्वर्ण के मध्य में नीलमणि।[१७३] सा रे गा म् म् प् ध नी स-सप्त स्वरों के साथ नृत्य की गति बढ़ती है। राग रागनियों की तान से तथा इस मोह संगीत से शरद राकेश थकित हो गये हैं।

---

१७२ रास में रसिक मोहन बने, भामिनी।
सुभग पावन पुलिन, सरस सौरभ नलिन, मत्त मधुकर निकर, शरद की जामिनी।

१७३ श्याम संग राधिका रास मंडल बनी।
बीच नन्दलाल ब्रज बाल चम्पक बरन ज्योंव घन तड़ित बिच कनक मर्कत मनी।
लेति गतिमान तत्त तत् थेई हस्तक भेद। सारिगमपधानि ये सप्त सुर नंदिनी।
निर्त्य रस पहिर पटनील पकटिते छबी बदन जनु जलद में मकर की चान्दिनी॥
राग रागिनी तान मान संगीत मन थकित राकेशनभ शरद की गामिनी।
जै श्री हित हरिवंश प्रभु हँसे केटि केहरी कृत मदन मद मत गज गामिनी॥
—हि० च० १।४।७१

आज बननीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन वेनु बजायो।
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायो॥
जुवतिन मण्डल मध्य श्याम घन सारंग, राग जमायो॥
ताल मृदंग उमंग मुरज डफ मिलि रस सिन्धु बढ़ायो॥
विविध विषद वृषभानु नंदिनी अंग सुधंग दिखायो॥ —हित चौ० ३६।

राधा वल्लभ संप्रदाय के मतानुसार यह लीला श्रीलाल जी (श्रीकृष्ण) प्रेम तत्व (हित तत्व) के विकास के लिए करते हैं। गोपी रूप में एक ही तत्व श्रीकृष्ण और गोपी रूप में अविर्भूत होता है। यह शुद्ध अनाविल निरातिशय आनन्दपूर्ण प्रेम लीला है। इसलिए प्रेम के लौकिक रूप को सम्मुख रख कर शृंगारमयी भावनाओं का प्रस्फुटन इस लीला का आवश्यक तत्व बनता है। हित ध्रुवदास ने नित्य बिहार का विशुद्ध एवं स्वतन्त्र निकुंज-रस वर्णन किया है। प्रेम-रस में तल्लीनता की अवस्था की चरम सीमा है। सारी रात जागने पर भी प्रेम-विलास में युगल तल्लीन हैं अधिक विलास करके भी तृप्त नहीं होते।[१७४] संप्रदाय का यह रस किसी अनाधिकारी (अरसिक) के सम्मुख वर्णन करना चाहिये क्योंकि यह महागोप्य रस है।[१७५]

भक्त कामना पूरक कृष्ण

राधा वल्लभ संप्रदाय में कृष्ण का भक्त कामना पूरक स्वरूप भी बड़ी निष्ठा के साथ ग्रहीत है। भक्त की कामना नित्य केलि अथवा नित्य बिहार में रहती है और उसे वे अत्यन्त कृपा पूरक रस का आस्वादन कराते हैं। वे भक्त के चित्त की समस्त वासनाओं के केन्द्र बन जाते हैं। उनके नित्य बिहार में सम्मिलित होकर भक्त अनन्त कोटि जन्मों के लिए कृतार्थ हो जाता है। भक्त विधि निषेध की शृंखला से छूट जाता है। ज्ञान, धर्म, व्रत, कर्म सब उसके किंकर हो जाते हैं।[१७६] भक्त की यह कामना

---

१७४ नेह नीर नैननि की सैननि में रहे भीजि।
कौन रंग बाढ़यो जहाँ बोलि बोऊ मार री॥
अति ही आसक्त सखी रही मोहि जोहि ताहि।
हित ध्रुव प्राननि को यही है अहार री॥
—आनन्द दास बिनोद लीला, पृ० २२६।

१७५ यह रस परस्यो नाँहि जिन,
तिनहिं न नेक जताइ।
जैसे धन को धनी ध्रुव,
राखत दूरि दुराइ॥ —आनन्दलता लीला पृ० २३५
महा गोप्य अद्भुत सरस,
चितत रहो मन माँहि।
या रस के रसिकन बिना,
सुन ध्रुव कहियो नाँहि॥ —रस रत्नावली लीला, पृ० १६७।

१७६ विधि निषेध शृंखला छुड़ावे, निज आलय बन आनि बसावे॥
—सेवक वाणी पृ० १२६।

नहीं कि वह सांसारिक ऐश्वर्यों को प्राप्त करे और भौतिक सुखों में मग्न रहे। यदि उसकी एक मात्र कामना है तो यही कि दुर्लभ महारस के दाता युगल स्वरूप श्री वृन्दावनेश्वरी एवं श्री वृन्दावन चन्द्र आनन्दघन नित्य किशोर, गोप गोपियों के प्राणाधार अपनी निकुंज माधुरी में उसे सम्मिलित कर लें और प्रेम लक्षणा भक्ति उसको प्रदान करें।[१७७]

श्रीकृष्ण का भक्तोद्धारक स्वरूप भी संप्रदाय में अन्य कृष्ण भक्त सम्प्रदायों जैसा नहीं है। इसमें भक्त का उद्धार इसी रूपी में है कि वह निकुंज माधुरी में सम्मिलित हो जाय अथवा नित्य विहार के दर्शन का पात्र हो जाय। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नितान्त युगल लीला और उनकी रस माधुरी में निमग्न रहते हैं। अतः उनका भक्त ऐसी किसी लौकिक आपत्ति का पात्र नहीं बनता जिसमें भगवान् को उसके उद्धार का कष्ट करना पड़े। इनके प्रेम सिद्धान्त में सिवाय प्रेम तत्व के अन्य किसी तत्व का समावेश ही नहीं है। उनके नित्य विहार अथवा निकुंज क्रीड़ा में तथा तत्सुखीत्व भाव में न दुष्टों का प्रवेश है और न दैत्यों का समावेश। वस्तुतः यह सिद्धान्त ही प्रेम और सौन्दर्य की पराकाष्ठा का है। जिसमें किसी भौतिक तत्व के लिए स्थान नहीं है। अतः दैत्य विनाशक कृष्ण के स्वरूप का अभाव है उसी प्रकार यशोदोत्संग लालित कृष्ण भी वहाँ नहीं है। उनकी किशोर लीला में शिशु कृष्ण का बाल कृष्ण का किसी एक सीमा तक ही समावेश है।[१७८] किशोर लीला बाल लीला से अधिक महत्वपूर्ण है—सर्वोपरि है।[१७९]

राधा वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण का अर्चावतार

राधा वल्लभीय मन्दिरों में युगल भावना की सेवा है। गो० हित हरिवंश जी के द्वारा स्थापित श्री राधावल्लभ लाल की प्रतिभा काष्ठ प्रतिमा है। उसका शृंगार अत्यन्त सुन्दर होता है। श्री राधा उसमें समाहित हैं। शृंगार स्वामी तथा स्वामिनी

---

१७७ देखो ब्यालीस लीला—सिद्धान्त विचार लीला पृ० ४५।

१७८ केवल कुछ कवियों ने जिनमें चाचा हित वृन्दावन दास प्रमुख हैं, वात्सल्य भाव का वर्णन किया है। अपने 'गिरि पूजन बेलि' ग्रंथ में चाचा जी ने 'इन्द्र' का कोप तथा ब्रज में कृष्ण के गोवर्द्धन पर्वत उठा लेने का विस्तृत वर्णन किया है।

१७९ अद्भुत बाल चरित्र को जो यशुदा सुख लेत।
तातें अधिक किशोर-रस, ब्रज जुवतिन के हेत॥

तथा

सर्वोपरि है मधुर रस, युगल किशोर विलास —ध्रुवदास

दोनों भाव से होता है। मुक्ताहल तथा नथ, मस्तक पर चन्दन बिन्दु और कुमकुम, पीताम्बर और काञ्चनी, उत्तरीय और दुपट्टा दोनों प्रकार का शृंगार समन्वित होकर राधा वल्लभ लाल को अद्वय सूचित करता है। राधा की गद्दी सेवा है। उनकी गद्दी श्री राधावल्लभ लाल की प्रतिमा के बाईं ओर रहती है तथा उस पर उन्हें अधीश्वरी सूचित करने वाला मुकुट रखा रहता है। यहाँ इसी प्रसंग में नाम सेवा का उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा। यह एक प्रकार से राधा के अमूर्त रूप की सेवा का ही दूसरा प्रकार है। इसमें किसी लता, काष्ठ अथवा पाषाण पर श्री राधा नाम लिख कर उसे रास मण्डल आदि पवित्र स्थलों पर स्थापित कर दिया जाता है और उसकी सेवा परिचर्या उसी श्रद्धा भक्ति के साथ होती है जैसे मन्दिर में स्थित श्री राधावल्लभ जी के विग्रह की। इस प्रकार प्रतिमा अथवा श्री विग्रह की अष्टयाम सेवा में सात दर्शन होते है—मंगला, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या भोग, शयन तथा सैया।

इस अष्टयाम सेवा में भी राग, भोग और कीर्तन का विधान है। भगवान के अष्टयाम सेवा के पदों का गान होता है। इनमें नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा—दोनों प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित हैं।

हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्ण (हिन्दी काव्य)

नाम—कुंज बिहारी
रूप—अद्वय किशोर रूप
लीला—नित्य बिहार
धाम—वृन्दावन

स्वा० हरिदास सखि भाव के उपासक अत्यन्त रसिक भावुक भक्त थे। उन्होंने अपने अष्टदेव का जो रूप रखा, संप्रदाय में वही मान्य हुआ। अतः सम्प्रदाय में परात्पर रस स्वरूप नित्य किशोर वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं। स्वा० हरिदास अनन्य सखी ललिता का अवतार माने जाते थे। ललिता सखी की दृष्टि ने वृन्दावन विहारी और विहारिणी की नित्य केलि क्रीड़ाओं की जो झाँकी देखी वह सम्प्रदाय की अतुल सम्पत्ति है। युगल सरकार की रसात्मक उपासना के अन्तर्गत ही उनके सारे स्वरूपों परब्रह्म, लीलावतारी, दुष्टदलन, भक्तत्राता, आदि का अन्तर्भाव हो गया है। दमनीय किशोर मूर्ति श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के मधुपायी चंचरीक हरिदास जी एवं परवर्ती भक्तों ने भगवान् की रसात्मक केलि और किशोर क्रीड़ा में अपने को निमज्जित कर दिया है।

स्वामी हरिदास जी के परात्पर रस स्वरूप नित्यबिहारी श्रीकृष्ण के भी अवतारी

है।[१८०] उपासना की यह छूट रस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वामी हरिदास जी ने स्पष्ट कहा है कि उनकी उपासना ब्रज की उपासना नहीं है—

उनका यह उपास्य ब्रज का नहीं है, यह तो नव निकुंज सुखपुंज महल में बसने वाला है। जिसे वेद, तत्व और विचार से भी नहीं पाया जा सकता—उसी रस को स्वामी हरिदास प्रत्यक्ष रूप से पाते हैं। उनके इष्ट का नाम श्री कुंज बिहारी है।[१८१] धाम वृन्दावन है और नित्य बिहार उनका क्रम है। हरिदास जी युगल की काम केलि के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के प्रेम प्रकाशन को महत्व नहीं देते। सर्वदा नव-यौवन से उन्मत्त किशोर किशोरी एक दूसरे के प्रेम में आबद्ध हैं।

नित्य विहार में गोपियों की पहुँच नहीं है। यह सखी सम्प्रदाय है। सखी भी नित्य विहारी परात्पर प्रेम का एक स्वरूप है। यह प्रेम परात्पर प्रेम है। नित्य तत्व है। अतः प्रेम के ये सभी स्वरूप नित्य हैं। सखी सहचरी नित्य हैं। इस नित्य आनन्द की उपासना भी नित्य है।[१८२]

सर्वेश्वर कृष्ण

नित्यविहारी की एक कलामात्र से प्रथम पुरुष उत्पन्न होता है। उसके अंश से माया उत्पन्न होती है। उससे महान् तत्व की उत्पत्ति होती है। महत् तत्व से अहंकार जन्म लेता है। यह अहंकार ही त्रिविध होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप धारण

---

१८० सरि श्री हरिदास जी की करि है।
कर्म धर्म भक्ति मुक्ति इति मरजा वहि को टरि है।
प्रसकला प्रवतारन के, ब्रज के रस—सिंधुहि को तरि है॥
रस रीति सों रीति प्रतीत महै श्री विहारिनदासहि जो वरि है।
जिनके सुख सार बिहार सहो, सरि श्री हरिदास की को करि है॥
—बिहारिनदास

१८१ श्री कुंज बिहारी सर्व संसार
—बिहारिनदास जी की वाणी, सिद्धान्त के पद सं० १४१

१८२ नित्य बिहारिनि नित्य बिहारी।
नित्य निकुंज मंजु सुख पुंजनि, नित्य नेह उपचारी॥
नित्य सखी सहचरी, संपति वन, नित्य मोद मनुहारी।
नित्य उपास किशोरदास अति नित आनन्द उदारी॥
—सिद्धान्त सार संग्रह किशोरदास पृ० २१५

करता है। इन सबसे ही जगत् का उद्भव पालन व संहार होता है। निश्चित रूप से इन सबका बीज श्री नित्यविहारी हैं।[१८३]

हरिदासी भक्त नित्यबिहारी का उपासक है, उसके ऐश्वर्य का नहीं। ऐश्वर्य और वैभव का ज्ञान अथवा माहात्म्य उस नित्य माधुर्य का आवरण है। सम्प्रदाय के रसिक केवल नित्यबिहारी की अन्तरंग लीलाओं के महामधुर रस की ही उपासना करते हैं।[१८४] हरिदास जी के हृदय में जब वैराग्य उदय होता तो बिहारी-बिहारिन युगल के प्रति आत्म निवेदन के रूप में उनके उद्गार निकलते थे। ऐसे उद्गार सिद्धान्त के पदों में व्यक्त हुये हैं। रस की उपासना उनकी केलिमाल में प्रकट हुई है। इस ग्रन्थ में रस साध्य है और वे स्वयं रसिक हैं। वे अपने को श्यामा श्याम की अन्तरंग सखी कल्पित करके उनके नित्य विहार के पद गाते हैं।

श्री निकुंज बिहारी का लाल स्वरूप पुरुषत्व की कठोरता से परे है। यहाँ उनका निकुंज का शृंगार है, जो बहुत कुछ प्रिया जी के ही अनुकूल है। सम्प्रदाय में कभी अकेले बिहारी जी का ध्यान नहीं किया जाता इसलिए उनके अलग से वेशभूषा के चित्र बहुत कम प्राप्त होते हैं। भगवत रसिक जी ने युगल ध्यान वर्णन करते हुये लाल जू श्रीकृष्ण का ध्यान अलग से किया है। इसमें श्रीबिहारी जी के शृंगार का वर्णन चरणों से आरम्भ किया गया है। उनकी एड़ियों में महावर लगा है। नख रंगे

---

१८३ नित्य बिहारी की कला प्रथम पुरुष अवतार।
तासु अंश माया भई जाको सकल पसार॥
जाको सकल पसार, महातत्व उपज्यो जाते।
अहंकार उत्पत्ति भई श्रुति कहे जु ताते॥
अहंकार त्रैरूप भयो शिव विधि असुरारी।
भगवत सबको तत्व बीज श्री नित्य बिहारी॥
—अनन्य निश्चयात्म—भगवत रसिक पृ० २६

१८४ आचारज ललिता सखी।
रसिक हमारी छाप॥
नित्य किशोर उपासना।
जुगल मन्त्र को जाप॥
जुगल मन्त्र को जाप।
वेद रसिकन की बानी॥
श्री वृन्दावन धाम।
इष्ट श्यामा महारानी॥ —भगवतरसिक

हुये है, अंगुलियों में छल्ले पहने है, चरणों में पायजेब और नूपुर धारण किये है। जानुओं से नीचे पायजामा पहने है, जिसमे पीले रंग का फुंदना है और कसीदे के बेल बूटे कढ़े हुये हैं। मणियों का अपूर्व शृंगार है। ऊपर चोली धारण किये है। अंग में लेपन हो रहा है। अचु नितम्ब है, कटि क्षीण है। गम्भीर नाभि है। सुन्दर त्रिवली है। थोड़ी सी तोंद भी है। हृदयस्थल विशाल है। स्कन्ध पुष्ठ हैं और भुजायें जंघाओं तक लम्बी हैं। हाथों में पहुंची है। हथेली के पृष्ठ पर कर फूल पहने। अंगुलियों में अनेक प्रकार की मुंदरी पहने है। हथेली में महदी लगाये हैं। उनमें सुन्दर मुरली धारण किये हैं, जिसमे से मधुर राग रागनियों से युक्त ध्वनि निकल रही है। अधर अरुण वर्ण के हैं। मुख में पान खाये हैं। नासिका में बेसर और बुलाक है। नेत्र चंचल और विशाल हैं तथा उनमें अंजन लगा है। तिरछी भृकुटी हैं। माथे पर प्रिया जी की प्रसादी बिन्दी लगी है तथा चन्दन की खौर भी लगी है। कपोलों पर भी चित्र रचना हो रही है। सौरभ में सनी अलकावली उड़ रही है। कानों में कुण्डल हैं। शीश पर चिकने केशों का जूरा बंधा है जिस पर अद्‌भुत मणि चूड़ा है। सिर पर बांकी पाग बंधी है जिसके अग्रभाग में जराऊ सिर-पेंच बंधा है, उस पर कलगी लगी है। एक ओर अनुपम तुर्रा भी लगा है।[१८५]

श्री विहारी जी के इस ध्यान में एक ओर पुरुषत्व रूप का शृंगार और शरीर शोभा है तो दूसरी ओर चोली जैसे वस्त्र। चरणों में पायजेब आदि जैसे आभूषण एवं केश का जूड़ा और उस पर पाग दोनों का वर्णन है। उपरोक्त वर्णन में एक ओर तो स्वरूप का लालित्य है तथा दूसरी ओर अक्षय विहारी-विहारिणी का परस्पर मिला हुआ रूप। सम्प्रदाय में प्रिया या प्रियतम का अलग से वर्णन नहीं किया जा सकता, इसलिए ध्यान में प्रिया प्रियतम का मिला हुआ रूप और शोभा वर्णित रहती है। भगवत रसिक जी जैसे भावुक साम्प्रदायिक भक्तों ने कभी केवल बाँके विहारी के स्वतन्त्र वर्णन की चेष्टा ही नहीं की। जो अद्वय हैं उनका स्वतन्त्र वर्णन कैसे हो। प्रेम में—नित्य विहार में अनुरक्त युगल को दो करके कैसे देखें। राधा का वर्णन करते-करते उनके प्रिय कुंज बिहारी का वर्णन हो जाय तो हो जाय। ऐसी दशा में कभी मुरली-वादन, त्रिभंगी अदा तथा रूप सज्जा का भी वर्णन किया गया है।[१८६]

राधावल्लभ कृष्ण—सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण श्याम-श्यामा हैं। वृन्दावन

---

१८५ अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ—भगवत रसिक।

१८६ आजु त्रनु टूटत है री ललित त्रिभंगी पर।
चरन-चरन पर मुरली अधर धरें, चितवनि बंक छबीली भूपर॥
—केलिमाल—१८

में श्यामा का राज्य है। व्रज का सिरताज उसके अधीन है। जोड़ी मेघ और बिजली की तरह अपृथक है।[१८७]

सम्प्रदाय में प्रिया-प्रियतम दोनों दो तन एक प्राण हैं। एक ही चने के दो भागों के समान दो होते हुये भी एक है। नित्य विहारिणी राधा प्रेम तत्व हैं। वे प्रेम, रस, सौन्दर्य, नववय, रूप, लावण्य की सीमा हैं। वे लीला माधुर्य भी, सौख्य की तथा रति-कला-केलि-माधुरी की परावधि है। यदि प्रिय कुंज बिहारी हैं तो प्रिया कुंज विहारिणी, यदि प्रिय रसिक हैं तो वे रसिकनी, यदि वे श्याम हैं तो वे श्यामा, यदि कृष्ण नित्य विहारी हैं तो वे नित्य विहारिणी हैं। यदि कृष्ण नन्द के पुत्र नहीं है तो राधा भी वृषभानुजा नहीं हैं क्योंकि दोनों ही अजन्मा हैं तथा नित्य हैं। कृष्ण अकेले नहीं राधा के साथ जोड़ी के रूप में सहज भाव से प्रकट हुए हैं। यह श्याम गौर की जोड़ी नित्य है। यह पहले भी थी। अब भी है और आगे भी रहेगी। अंग-अंग का सौन्दर्य तथा अवस्था भी सदैव ऐसी ही रहेगी। युगल बिहारी चिर किशोर हैं तथा समान अवस्था वाले हैं।[१८८] श्रीकृष्ण एकाकी नहीं सदैव श्रीराधा के साथ वर्णित हैं। राधा और कृष्ण, कृष्ण और राधा बस दो ही कुंज में—अन्तर्महल में एक दूसरे के कण्ठहार बने हुये हैं।[१८९] इनका साहचर्य नित्य है।

गोपियों के यूथों की सम्प्रदाय में चर्चा नहीं है यहाँ केवल सहचरियाँ हैं। ये सखियाँ तत्सुख सुखित्व भाव के नाते राधा और कृष्ण के परस्पर सुख में ही पगी हैं।

---

१८७ हमारे माई स्याम जू को राज।
जाके आधीन सदाई सांवरो या ब्रज को सिरताज॥
यह जोरी अविचल वृन्दावन माँहि लाल सौं काज।
श्री बिरल बिकल बिहारिनि के बल बिन जलधर संग गाज॥

—बिट्ठल बिपुल की बाणी २५

१८८ माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर स्याम घन दामिनी जैसे।
प्रथम हूँ हुती अबहू हूँ रहिहैं न टरिहैं तैसे॥
अंग-अंग की उजराई सुघराई चतुराई सुन्दरता ऐसे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी सम वेस वैसे॥

—श्रीकेलिमाल पद १

१८९ हमारो जीवन जुगल किशोर।
कुंज बिहारिनि कुंज बिहारी, नित नव जोबन जोर॥
भूलि न जाऊँ पलक कहे इत उत रहों निरन्तर पासा।
दम्पति सम्पति बिन दुलराऊँ और न दूजी आसा।

—भगवत रसिक जी की बाणी ३२

राधा कृष्ण भी उन्ही सखियों को सुख प्रदान करने के हेतु लीलायें करते हैं। 'तत्सुख सुखित्व' सम्प्रदाय की विलक्षणता है। अन्य सम्प्रदायों में प्रायः राधा की चर्चा स्वकीया अथवा परकीया के रूप में होती है। बल्लभ सम्प्रदाय में राधा स्वकीया है तथा गौड़ीय सम्प्रदाय में परकीया किन्तु स्वा० हरिदास के सम्प्रदाय में वह न स्वकीया है और न परकीया। वे स्वकीया और परकीया दोनों भावों से रहित वृन्दावन नित्य निकुंजेश्वरी हैं। वे नित्य निकुंज में सतत विद्यमान रहती हैं। स्वकीया परकीया से भिन्न वे निकुंज विहारिणी हैं।[१९०] स्वा० हरिदास ने उन्हें 'दुलहिन' कह कर सम्बोधित किया है। कृष्ण दुल्हा हैं वे दुलहिन।[१९१] यहां स्वकीया परकीया से तात्पर्य नहीं है। श्री विट्ठल विपुलदेव ने प्रवरय मण्डप छवा कर कोकिल और मधुपों के गान के साथ कृष्ण की भांवर डलवाई हैं।[१९२] रसिक कृष्ण रसिकिनि राधा के प्रेम में अहर्निश तन्मय रहते हैं।

प्यारी के बंधन में प्रियतम कृष्ण ऐसे बंध गये हैं कि जो राधा कहती हैं वही करते हैं। प्रेमाधिक्य के कारण वे राधा के पूर्णतः वशीभूत हो गये हैं। राधा ने पूर्ण रूप से उन्हें मोहित कर लिया है।[१९३] जिस प्रकार कि जल के बिना मीन नहीं रह सकती उसी प्रकार कृष्ण राधा के बिना नहीं रह सकते।[१९४] श्रीकृष्ण और राधा

---

१९० कोउ स्वकीय कोउ परकीया,
कल्प कियो मतवादि।
जोरी भगवत रसिक की,
नित्य अनंत अनादि॥ —भगवत रसिक की वाणी

१९१ डोल झूलत दुलहिनी दूलह।
उड़त अबीर, कुमकुमा छिरकत, खेल परस्पर फूलह॥
—श्री केलिमाल—स्वा० हरिदास ४८

१९२ तुम बिन दुलहिन ए बिन दूलह, सघन लतागृह मंडप छायो।
कोकिल मधुप गान परेंगी भांवरि, जहां श्री वीठल मेघ मृदंग बजायो।
—वीठल विपुल जी की वाणी ३०

१९३ तैं मोह्यो प्यारी मेरो लाल। —विट्ठल विपुल की वाणी पद सं० १६

१९४ जो भावे सो करो किसोरी।
मोहन तेरे बस परयो॥
लालन तेरे ही आधीन।
सुनि री हौं सांच कहत हो, तू जल में मीन॥
—विट्ठल विपुल की वाणी पद १७

दोनों अभिन्न, एक दूसरे के प्रेम मे पगे हुए है। उनके तन और मन दोनों एक है। वे परस्पर हँसते, खेलते, बोलते, और मिलते हैं। एक दूसरे को पान का बीड़ा खिलाते हैं।[१९५] इसी प्रकार की अनेक क्रीड़ाओं में वे परस्पर खोये रहते हैं। परस्पर शृंगार करके दोनों दर्पण में अपना बिम्ब अवलोकन करते हैं। उनके अनुपम सौन्दर्य के सन्मुख आने से दर्पण भी झूठा हो जाता है।[१९६]

अतिशय प्रेम के कारण कृष्ण राधा की वश्यता स्वीकार कर लेते हैं। कृष्ण ब्रज के सिरताज हैं किन्तु वे भी राधा के आधीन है इसी से राधा ही वृन्दावनेश्वरी सिद्ध होती है। सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने इसी से कृष्ण से बढ़ कर राधा के प्राधान्य को स्वीकार किया है।[१९७] श्रीकृष्ण प्रतिक्षण राधा के ऊपर न्योछावर होते हैं। सलोनी राधा के रूप को देखकर प्राणपति कृष्ण रीझ-रीझ जाते हैं। जहाँ-जहाँ राधा के चरण पड़ते है वहां उनका स्नेही मन छाया करता फिरता है।[१९८] वे प्रेम के आधिक्य में भी राधा पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा कभी नहीं करते, वे स्वयं ही प्रेमाधीन हो जाते है। यहाँ तक कि राधा के चरण पलोटने लगते हैं।[१९९] प्रेम के राज्य मे प्रेमी याचक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत्यन्त तिरछे और छैल बिहारी यहां प्रिया जी की जूठन के लिए ललचाते हैं। मांगने पर कठिनाई से यहाँ उन्हें जूठन मिल पाती है। पैरों पड़कर उन्होंने 'हा-हा' खानी पड़ती है। उस समय

१९५ हंसति खेलत बोलत मिलत देखों मेरी आंखनि सुख।
बीरी परस पर लेत खवावत ज्यों दामिनि घन चमचमात सोभा बहु भांतिन सुख॥
—केलिमाल पद सं० ४२

१९६ एक समें एकांत बन में करत सिंगार परसपर दोई।
वे उनके वे उनके प्रतिबिम्बन देखत रहत परस्पर खोई॥
जैसे नीके आज बनें ऐसे कबहूं न बने।
आरसी सब झूंठी परीं कैसी और कोई॥ —केलिमाल पद सं० १३।

१९७ धनि सुहाग अद्भुत सर्वोपरि राधे जू रानी। —बिहारिन दास की बाणी।

१९८ जहाँ जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे।
तहाँ-तहाँ मन मेरो करत फिरत परछांही॥ —केलिमाल पद सं० ५३

१९९ सोचक आइपरी सखी तहां पिय पै पांइ चंपावती।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी सों मिलि पोंकी तन-मन रांचती॥
—केलिमाल १०४

उनसे कोई ठाकुर नाम से बुला भी दे तो वे बड़ा संकोच अनुभव करते है।[२००] वास्तव में उन्हें अपनी ठकुराई और प्रताप विस्तार सुहाता भी नहीं है। वे तो रात दिन अपनी जीविका (विहार) की प्रिया जी से याचना करते रहते हैं। अपने अन्य क्षेत्रों में वह सब ठाकुरों का ठाकुर है किन्तु इस प्रेम राज्य मे उस ठाकुर की भी ठाकुर राधा है। प्यारी जी के वदन चन्द्र को देखकर श्याम के हृदय सरोवर में कुमुदिनी विसित हो उठती है। मन के मनोरथ की अपार तरंगें उस सौन्दय में अपनी गति भूल जाती हैं।[२०१]

प्रेम में मान का महत्वपूर्ण स्थान है। राधा-कृष्ण के निरवधि नित्य बिहार में भी सूक्ष्म मान तथा विरह की कल्पना है। राधा मान कर बैठती है। कृष्ण उसे मनाते हैं। राधा को मनाने में उनके हृदय की आतुरता प्रकट हो जाती है। वे राधा का मान वस्तुतः सह नहीं सकते। उनका विछोह पल भर को भी उनके लिये असह्य है।[२०२] वे राधा से अभयदान मांगते हैं। उन्हें भय है कि राधा पुनः मान न कर बैठे।[२०३]

---

२०० अति टौंचक अति चिकनियां अधिक चतुर इतराय।
किन विभव कित ठकुरई जूठन कों ललचाय॥
जाचें जूठन पाइये पाइ परि हा हा खाय।
जो ठाकुर कहि बोलिये तनक सकुच ह्वै जाय॥
ताहि सुहाय न ठकुरई बड़ो प्रताप विस्तार।
जांचत है दिन जीविका सखि मोहि अहार विहार॥
—विहारिनदास की वाणी

२०१ प्यारी तेरो वदन चंद देखे, मेरे हृदय सरोवर में कमोदनी फूलीं।
मन के मनोरथ-तरंग अपार, सौन्दर्यता तहां गति भूलीं॥
—केलिमाल ५७

२०२ तेरो मग जोवत लाल बिहारी।
तेरी समाधि अजहूँ नहिं छूटत, चाहत नाहिंनें नैकु निहारी॥ —केलिमाल १५
अथवा
तू रिस छाड़ि री, राधे-राधे।
ज्यों ज्यों तोकों गहर, त्यों त्यों मोकों विथारी साधे-साधे॥
प्राननि कों पोषत, सुनियत तेरे बचन आधे-आधे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी, तेरी प्रीति बांधे-बांधे॥
—केलिमाल—१७

२०३ राधे दुलारी मान तजि।
प्रान पायो जात मेरो है री सजि॥
मेरे माथे अपनो हाथ धरि, अभयदान दे अजि॥
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी कहत री प्यारी, यों बसि रंग रचि सों सजि॥
—केलिमाल—२२

कुंज में निकुंज मे प्रिया प्रियतम, श्यामा-श्याम अनेक प्रकार की प्रेम से युक्त लीलाएं करते है। राधा का शृंगार वे अपने हाथों से करते हैं। उसमें वे अत्यन्त कुशल है। रसिक कृष्ण राधा के केश कंघी से काढ़ कर वेणी गूंथते हैं। वेणी के मध्य श्वेत और पीत पुष्प सजाते है। अपने नख से प्रिया श्री राधा जू के नेत्रों में प्रेम से युक्त होकर काजल लगाते है।[२०४] संगीत के क्षेत्र मे वे सर्वज्ञ है। अत्यन्त प्रवीण हैं। नृत्य विशारद हैं। नृत्य गीत, ताल आदि के भेद उनके समान अन्य कोई नहीं जानता।

नित्य विहार

हरिदासी सम्प्रदाय मे राधा कृष्ण के नित्य विहार की चर्चा अत्यन्त विस्तार से की गई है। स्वामी हरिदास जी ने नित्य निकुंज लीला का वर्णन किया है। निधुवन निकुंज मे श्री राधा श्रीकृष्ण एक रस स्वरूप और एक वयस स्वरूप स्थिर होकर रस की अनुभूति करते हैं। इनकी क्रीड़ा, इनका भोग, राग, लीला अर्चन वंदन सब रस मय है और दोनों ही पारस्परिक रस की चाहना करते हैं। दोनों एक एक के आधीन हैं। राधा और कृष्ण दोनों स्वयं सत्तावान हैं, एक रस है एक स्वरूप हैं, एक वयस है और एक गुण है। दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। नित्य विहार के लिए अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं की कल्पना हरिदासी सम्प्रदाय में की गई है। वन विहार करने के समय ऋतुओं का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है वृन्दावन श्यामा श्याम की नव क्रीड़ाओं से प्रमुदित होता है। नई कुंजों में नए वृक्ष फूलते हैं। सौरभ से मतवाले होकर भ्रमर इन पर गुंजार करते हैं, ऐसे में रसिक रास-वर झूला झूलते हैं।[२०५] ऐसे ही नव-मुकुलित कुंज में श्यामा-श्याम सुगन्धित अबीर और

---

२०४ बेनी गूंथ कहा कोउ जानें मेरी सी तेरी सों।
बिच बिच फूल सेत पितराते, और को करि सके री सो॥
बैठे रसिक संवारन बारन कोमल कर ककाही सों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी, वे काजर नखही सों॥

२०५ सजनी नव निकुंज द्रुम फूले।
अलि कुल संकुल करत कुलाहल,
सौरभ मन्मथ मूले॥
हरषि हिंडोल रसिक रासवर,
युगल परस्पर झूले।
श्री बिट्ठल बिपुल बिनोद,
देखि नभ देव बिमानन भूले॥ —बिट्ठल बिपुल की बानी—१३

अरगजा छिड़क कर परस्पर होली खेलते हैं।[२०६]

कहीं ग्रीष्म में फूलों का शृंगार, कहीं पावस की भीनी फुहारें, कहीं चन्दन मृग मद, कहीं होली में केसर की कीच, कहीं वसन्त की सर्वत्र फूली हुई पीताभा। अति आतुर प्रिया प्रियतम विहार सुख में मस्त हैं। वे परस्पर दर्शन के भूखे हैं—रूप का मकरन्द पान करने को व्याकुल रहते हैं। वे कभी शतरंज खेलते हैं तो कभी कृष्ण मोरों के साथ मिलकर नृत्य प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। ऐसे समय राधा मध्यस्थ बनती हैं।[२०७] इसी प्रकार श्याम सलौने कृष्ण मोरों के साथ नाचकर श्यामा जू को रिझाते रहते हैं।[२०८] यमुना स्नान के लिए राधा जाती हैं तो किसी न किसी बहाने आकर कृष्ण अपनी लाड़ली जू के गले से आ लगते हैं।

वर्षा और वसन्त दो ऋतुयें नित्य विहार के लिए विशेष उपयुक्त हैं। जब बूँदें रिम झिम बरसती हैं तो अत्यन्त आतुर होकर प्रिय पिया जू की चूनरी उतार कर बगल में दबा लेते हैं तथा परम प्रेम से परस्पर आलिंगन करते हैं।[२०९] कभी एकान्त

---

२०६ जुगल किशोर भरे कुंज बिहारी।
प्यारी बन विहार विहरत नवरंगा॥
अरुण हरित मुकुलित द्रुम पल्लव।
अलिकुल गुंज अनंग तरंगा॥
सोंधे बहुत अबीर अरगजा।
खेल परस्पर छिरकत अंगा॥
श्री बीठेल विपुल विनोद रीति रस।
सुख देखत ललितादिक संगा॥
—विट्ठल विपुल की वाणी—१४

२०७ होड़ परी मोरनि और स्यामहिं।
आवहु मिलहु मध्य सब की गति, लेहि रंग यों कामहिं।
हमारे-तुम्हारे मध्यस्थ राधे, और जाहि बदौ बूझि देखौ तिन वे कहा है यामेंहि।
श्री हरिदास के स्वामी को चौपरि कौ सो खेल,
इक गुन-दुगुन-तिगुन, चतुरागुन री जाके नामेंहि॥
—केलिमाल पद सं० ८२

२०८ नाचत मोरन संग स्याम मुदित स्यामहिं रिझावत। —केलिमाल ६६

२०९ बूँदें सुहावनी री लागत, मति भीजै तेरी चूनरी।
मोंहि दे उतारि धरि राखौं बगल में सूँनरी॥
लगि लपटाइ रहे छाती सों छाती, ज्यों न आवै तोहि, बौछार की फूँनरी।
हरिदास के स्वामी स्यामा कहत, बीजुरी कौंधे करि हाँ, हूँनरी कि हूँनरी॥
—केलिमाल ६२

बन में राधा और कृष्ण झूला झूलते हैं।[२१०] कभी बिहारी और बिहारिन डोल झूलते हैं और सखियां वाद्य लेकर संगीत छेड़ती हैं। संगीत की मादकता में, क्रीड़ा के कौतुक में श्यामा और श्याम ने डोलकी डण्डियाँ हाथों में छोड़ देते हैं और बढ़ चढ़कर 'झोटा' लेते जाते हैं। नागरी और नागर दोनों ही झूलने में बड़े निपुण हैं। उनके खेल को भला कोई कैसे समझ सकता है।[२११]

बसन्त खेलने का वर्णन भी हरिदासी सम्प्रदाय में प्रचुरता से मिलता है। कुंज निकुंज में जहाँ सखी संगी तो क्या पंछी भी नहीं है वहाँ सखियों की भीड़ से न्यारे होकर कृष्ण और राधा परस्पर होली खेल रहे हैं। परस्पर बूका और चन्दन छिड़क रहे हैं।[२१२] बसन्त खेलना उन्हें एकान्त में ही अच्छा लगता है।[२१३] दोनों ही 'हरिहार' बड़े सुकुमार हैं, दोनों थोड़ी-थोड़ी देर में निभृत निकुंज की ओर दौड़ जाते हैं।

रसिक हरिदास के कृष्ण पूर्ण रसिक हैं। नट नागर, प्रणय सागर एवं शृंगार रस रसिक हैं। कुंवर किशोरी राधा के साथ अद्भुत गति से नृत्य करते हैं। चारों ओर ब्रज बनितायें वाद्य वृन्द लेकर ताल में ताल मिला रही हैं। वृन्दावन फल फूल रहा है। त्रिविध पवन बह रही है। इनका नृत्य देखकर यमुना का जल भी शिथिल हो जाता है, काम देव पुष्पों की वर्षा करता है। ता ता तम् थेइ दोनों बोल रहे हैं। कृष्ण नृत्य करके राधा को भी नचा रहे हैं। नृत्य के अनुकूल राइ, उपंग, चचेरी, झपतार, धुवा, चन्द्रा गति की तालों का बंधान बंध रहा है। मृदंग की ततथेई,

---

२१० झूलत डोल श्री कुंजबिहारी दुलारी।
दूसरी ओर रसिक राधावर नागरि नवल॥ —केलिमाल १०८

२११ डोल झूलत बिहारी बिहारिनि रागरमि रह्यौ।
काहू के हाथ अघोटी, काहू के बीन, काहू के मृदंग॥
कोऊ गहे तार, काहू के अरगजा छिरकत रंग रह्यौ।
डांड़ी छाड़ि खेल बढ़्यौ जु परस्पर, नाही जानियत पग क्यौं रह्यौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा—कुंजबिहारी को खेल खेलत काहू न लह्यौ॥
—केलिमाल ९१

२१२ चलिरी भीरतें न्यारेई खेलें। कुंज-निकुंज मंजु में झेलें।
पंछिन सहित सखी न संग कोऊ, तिहिं बन चलि, मिलि केलें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, प्रेम परस्पर बूका-बंदन मेलें॥
—केलिमाल १००

२१३ अबकें बसन्त न्यारई खेलें, काहू सौं न मिलि खेलें री सखी तेरी सौं।
—केलिमाल पद सं० १०१

ततथेई, थुंग, थुंग, धन्ननना, तन्ननना, तक्-तक् थुंग ध्वनि पर युगल किशोर के चरण सहज गति से उठते चले जा रहे हैं। कभी लाड़ली जू देशी में नाचती हैं तो लाल जू त्रिभंगी युत सुघंग में। ताण्डव लास्य आदि अनेक नृत्य भेद प्रकट हो रहे हैं। इस महारास के अलौकिक स्वरूप का दर्शन कर यमुना स्तब्ध हो अपनी गति भूल जाती है, कामदेव न्योछावर होने लगता है एवं देवगण पुष्प वर्षा करने लगते हैं।[२१४]

सम्प्रदाय में रति क्रीड़ा के चित्र भी रसोपासना के नाते प्रस्तुत किये गये हैं तथा इसे गोप्य रस कहा गया है—

जो सृष्टि के कारण प्रकृति पुरुष से भी परे हैं उस अत्यन्त गोप्य प्रेम समुद्र की अगाध तरंगों में नित्य विलास करने वाले प्रिया—प्रियतम की नित्य केलि का परम शोभामय आनन्द प्राप्त करना ही रसिकों का अभीष्ट है। वृन्दावन की निकुंजों में शोभा की शोभा, प्रेम के प्रेम, सुख के सुख, रूप के रूप, सनेह के सागर रस के रस, महा रिझवार उदार नित्य विहारी विहारिणी आनन्द रस की नित्य क्रीड़ा में निरत हैं। एकान्त कुंज में जहाँ परम शान्ति है, सखियाँ भी अपने प्राण—प्रियतम की केलि को निकुंज रंध्रों से देख अपने को तृप्त कर रही हैं। वहाँ किसी प्रकार का शब्द नहीं हो रहा है। पक्षियों का कलरव और मधुकर की गूंज भी वहाँ नहीं पहुँच रही है। मृदंगादि वाद्य इस समय पूर्ण मौन धारण किये हैं क्योंकि रंग महल में सुख-शैया पर प्रेम के दो रूप परस्पर अंगों को अंगों में, मन को मन में तथा प्राणों को प्राणों में समाने का यत्न कर रहे हैं।[२१५] यह नित्य बिहार है।[२१६] यह निकुंज गत काम, प्रेम और रस दूसरा ही है। यह लौकिक नहीं अलौकिक है।

---

२१४ अद्भुत गति उपजत अति, नृत्तत दोऊ मण्डल कुंवर किसोरी।
सकल सुघंग अंग भरि भोरी, पिय नृत्तत मुसकनि मुख मोरी परिरम्भन
रस रोरी॥

× × × ×

श्री वृन्दावन फूलनि फूल्यो पूरन ससि, त्रिविध पवन बहे, थोरी-थोरी।
गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी॥
जमुना जल थिरकित पुहुपनि बरखा, रति-पति डारत तृन तोरी॥
—केलिमाल ३३

२१५ केलिमाल—हरिदास ३५।

२१६ सर्वोपरि नित्य बिहार सो न्यारो।
औरे काम प्रेम औरे रस औरे वेस_विचारो।
उपदेस्यो हरिदास बिपुल श्री बिहारीदास दुलारो॥

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की युगल जोड़ी अमर है। हरिदास जी के सम्मुख यह जोड़ी सहसा ही भाव भक्ति के कारण प्रकट हुई थी। सखी भाव की सेवा प्रकृत देह से न होकर भाव देह से होती है। सम्प्रदाय की परम्परा इन युगल को, इनकी केलि—क्रीड़ाओं को अपने में अनुस्यूत किये हुए है।[२१७] सखियों के द्वारा निरखी गई कुंज बिहारी तथा कुंज बिहारिणी की नित्य लीलायें सम्प्रदाय की अतुल सम्पत्ति हैं। श्रीकृष्ण का रसात्मक रूप ही सम्प्रदाय में उभरा है। कृष्ण रसात्मा, रसेश तथा नित्य बिहारी हैं।

प्रकट विग्रह कृष्ण—

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रकट विग्रह का नाम बाँके बिहारी है। यह दिव्य युगल विग्रह है। राधा इनके अंग में समाकर एक हो गई हैं।

स्वामी हरिदास जी प्रिया प्रियतम की इच्छानुसार उनकी सेवा करते थे। इन श्यामा श्याम ने रात्रि भर सुरति विलास किया है। अब उन्हें तनिक विश्राम मिला है तो क्या घंटे बजाकर उन्हें उठाकर नहलाया जाय। उधर भूल से भी नहीं जाना चाहिए। प्रिया प्रियतम को विश्राम करने दो। जब वे उठें जल की आवश्यकता होगी अतः दबे पांव जाकर सिरहाने रखी कंचन जल झारी में से प्रिया प्रियतम को जल दो। सखी समस्त सेवा कर रही है। प्रातः लगभग नौ-दस बजे सेवा आरम्भ होती है। उपासक स्नान कर मन्दिर में पहुँच, मन्दिर को पवित्र करता है। तब निरन्तर भावना द्वारा अपने प्रिया-प्रियतम की सेज के निकट रखता है और उत्थापन कराता है। श्री बिहारी जी को दुग्ध धवल शैया से उठा कर कनकमय सिंहासन पर विराजमान करता है। युगल को कुल्ला आदि के लिए जल निवेदन पर माखन मिश्री का कलेवा कराता है। बीरी देता है। तदुपरान्त श्री विग्रह को दिव्य सुगंधित जल से स्नान कराया जाता है। श्री स्वामिनी जी को हृदय में विराजित देख श्री बिहारी जी के चरणों में तुलसी और चन्दन अर्पित कराता है। पायजामा के ऊपर घुमावदार पेचदार जामा धारण कर बिहारी जी दूलह बन जाते हैं। शरीर में अंगिया जंचती है और ऊपर से ओढ़नी ओढ़ते हैं। माथे पर पाग और टिपारे आदि अनुपम शोभा कर देते हैं। पार्श्व में प्रिया जी की 'गादी' का शृंगार होता है अतरोटा, लहंगा और साड़ी पहिनाकर श्री प्रिया जी के लघु विग्रह को वहाँ स्थापित कर उन्हें चंद्रिका धारण कराई जाती है। निकट

---

२१७ ऐसे ही देखत रहो जनम सफल कर मानों।
प्यारे की भामती-भामती के प्यारे जुगल किशोरहि जानों॥
छिन न टरो पल होइ न इत उत रहौ एक ही तानों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी मन रानों॥—केलिमाल ३

ही श्री स्वामी जी के चित्रपट का शृंगार होता है। तदुपरांत दिव्य पकवानों का भोग लगाया जाता है। भोग लगाकर मुख समार्जन कर ताम्बूल निवेदित कर उपासक पट खोलता है। दर्शन खुलते ही रसिक दर्शक अपने नेत्रों को तृप्त करते हैं। ११ बजे के लगभग आरती होती है। बिहारी जी के दर्शन की एक विलक्षणता है कि दर्शन लगातार खुले नहीं रहते वरन् क्षण-क्षण झाँकी होती रहती है। प्रिया प्रियतम की मोहिनी जोड़ी को किसी की नजर न लगे इसलिए परदा बार-बार आता जाता रहता है। झाँकी झरोखे के ये दर्शन सखी भाव की उपासना के द्योतक हैं।

कुछ देर बाद दोपहर को श्री बिहारी जी को कच्ची रसोई का भोग लगाया जाता है जिसमें दूध भात आवश्यक होता है। भोग के पश्चात् पुनः मुख प्रक्षालन कर तांबूल निवेदित कर राजभोग आरती की जाती है। आरती के पश्चात् पट बन्द हो जाते हैं। उपासक उनके वस्त्र उतार कर सुगन्धित पदार्थों का सेवन कराके प्रेम से चरण सेवा कर शयन कराता है।

सायंकाल लगभग छः बजे पुनः सेवा आरम्भ होती है। दोपहर के समान ही आठ बजे के लगभग दर्शन खुलते हैं जो लगभग दो घंटे खुले ही रहते हैं। तदुपरान्त शयन आरती होती है और पुनः श्री बिहारी जी को शयन कराया जाता है। सम्प्रदाय में मान्यता है कि इस क्षण के उपरान्त बिहारी जी निधि वन में नित्य बिहार के लिए पधारते हैं अतः उपासक दिव्य भाव देह से निधि वन निकुंजों में पहुँच जाता है।

बिहारी जी की प्रकट विग्रह सेवा में ऋतुओं का विशेष महत्व है। प्रिया प्रियतम के नित्य स्वरूप श्री बिहारी को विभिन्न ऋतुओं में ऋतु के अनुकूल शृंगार धारण कराया जाता है इस प्रकार नित्य सेवा में नित्य प्रति नवीनता रहती है।

नित्य सेवा से सम्बन्धित विशेष उत्सव भी संप्रदाय में होते हैं। ये उत्सव विशेष रूप से वर्ष में एक बार ही मनाये जाते हैं। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी श्री बिहारी जी के प्राकट्योत्सव की तिथि है। इसे बिहार-पंचमी कहते हैं। इस दिन बिहारी जी का पुष्पों से शृंगार होता है। विशेष भोग का आयोजन भी होता है।

बसन्त का आनन्द होली द्वारा मनाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु का उत्सव वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के दिन होता है। उस दिन श्री बिहारी जी के चरण दर्शन होते हैं। पावस का विशेष उत्सव श्रावण शुक्ला हरियाली तृतीया के दिन होता है। इस एक ही दिन श्री बिहारी दिव्य हिंडोले में झूला झूलते हैं। शरद का उत्सव कार्तिकी शरद पूर्णिमा को होता है। इस आज के दिन ही श्री बिहारी जी वंशी, मुकुट और कटि काछनी धारण करते हैं।

प्रकट सेवा का स्वरूप नित्य विहार की प्रत्यक्ष उपासना है।

चैतन्य अथवा गौड़ीय संप्रदाय में श्रीकृष्ण

हिन्दी काव्य

नाम—गोपी-वल्लभ, राधा रमन

रूप — किशोर

लीला—व्रज लीला

धाम—गोकुल

चैतन्य संप्रदाय पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है अतः संप्रदाय के श्रीकृष्ण हैं। वे पूर्णावतार हैं उनका स्वरूप सच्चिदानन्दघन है। इनसे सम्बन्धित संधिनी, संवितः और आह्लादिनी तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। राधा इनकी ह्लादिनी शक्ति है। वे कृष्ण को आह्लाद प्रदान करती हैं। वे स्वयं आह्लाद रूपिणी हैं अर्थात् प्रेम स्वरूपिणी हैं। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में लिखा है कि ह्लादिनी का सार ही प्रेम है। इस प्रेम तत्व को और भी सूक्ष्म करते हुए उन्होंने कहा है—"प्रेम का सार भाव है, भाव का सार अथवा पराकाष्ठा महाभाव है और श्री राधा महाभाव स्वरूपा हैं।

रसात्मक कृष्ण

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि संप्रदाय में राधा कृष्ण प्रेम की प्रधानता है। संप्रदाय के हिन्दी रचयिताओं ने इसी प्रेम को प्रधानता दी है तथा कृष्ण राधा के प्रेम स्वरूप का दर्शन कराया है। श्री गदाधर भट्ट, सूरदास, मदन मोहन वल्लभ रसिक जी तथा माधुरी शरण आदि संप्रदाय के हिन्दी वाणीकारों ने राधा कृष्ण के परम अद्वय रूप को ही चित्रित किया है। संभवतः संप्रदाय के हिन्दी वाणीकारों पर राधा वल्लभ अथवा हरिदासी संप्रदाय का प्रभाव पड़ा है। चैतन्य अथवा गौड़ीय संप्रदाय में राधा भाव एक परकीया भाव है। परकीया भाव कृष्ण रस की प्राप्ति की साधन अवस्था है क्योंकि उसमें भाव उच्छलित रूप वाला रहता है इसलिए भागवत्प्राप्ति की क्रियाओं में तत्परता तथा उत्सुकता बनी रहती है।[२१८] किन्तु हिन्दी की वाणियों में राधा का परकीया भाव नहीं, उन्हें सर्वत्र स्वकीया रूप में ही चित्रित किया गया है। गदाधर भट्ट जी ने विधिवत् राधा कृष्ण का विवाह कराया है। सेहरा बंधवा कर

---

२१८ परकीया भावे रसेर उल्लास। व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास।

चै० च० १, ४, २७६

गाँठ जोड़ कर राधा और कृष्ण को विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है।[२१९] ब्रज की ज्योनार भी विवाह के उपलक्ष में गाई गई है।[२२०]

चैतन्य संप्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत तथा बंगला भाषा में है किन्तु ब्रजनन्दन कृष्ण की लीला भूमि ब्रज की भाषा से प्रभावित होकर अनेक बंगाली भक्तों ने ब्रज भाषा में रचना की जो 'ब्रज बुलि' के नाम से विख्यात है।[२२१] श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाहित पटरानियाँ स्वकीया हरि वल्लभा हैं। इनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवंती, यमुना, शैव्या, भद्रा, कौशिल्या और माद्री ये प्रमुख हैं।[२२२] अन्तर के अनुराग से ही जिन्होंने अपने आपको समर्पित कर दिया है परन्तु बहिरंग प्रक्रिया से जिसको स्वीकृत नहीं किया गया है। वे नायिका परकीया हैं। इस दृष्टि से ब्रज सुन्दरियाँ परकीया सिद्ध होती हैं। ये कृष्ण की नित्य प्रिया हैं। राधा और चन्द्रावली प्रभृति गोपियाँ नित्यप्रिया हैं। इनके यूथों में कोटि-कोटि सखियाँ हैं। इन दोनों में भी राधा ही सर्वथाधिका हैं जो महाभाव स्वरूपा और सर्वगुण बरीयसी हैं।[२२३] सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की ह्लादनी शक्ति का सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव और भाव की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है।[२२४]

संप्रदाय में गोपियों के सखी और मंजरी नाम के दो प्रमुख भेद हैं। जो गोपियाँ श्री राधा की समजातीय सेवा से श्रीकृष्ण का प्रीति विधान करती हैं उन्हें सखी कहते

---

२१९ गदाधर भट्ट की वाणी पद नं० ५२, ५३, ५४ तथा 'माधुरी' की वृन्दावन माधुरी।

(चंपक कों चंपकलता, दीनों कंठ लगाय।
ए दूलहा और दुलहिन, दोऊ सरस सुभाय।)

२२० गदाधर भट्ट की वाणी पद नं० ५६।

२२१ बंगाल के वैष्णव कवियों के पदों का एक बड़ा और महत्व संग्रह 'पदकल्पतरु' है। इसमें तीन हजार से भी अधिक पद संग्रहीत हैं। इसमें ब्रजबुलि तथा बंगला के पदों के साथ-साथ कुछ ब्रज भाषा के कवियों के पद भी पाये जाते हैं जैसे सूरदास, श्रीभट्ट तथा व्यास आदि के। इस 'पद कल्पतरु' में हमारे आलोच्य काल के लगभग एक सौ तीस पद कर्ताओं के पद संग्रहीत हैं।

२२२ उज्ज्वल नीलमणि, श्री रूप गोस्वामी पृ० ५० श्लोक ६-७-८।

२२३ तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी॥
—उज्ज्वल नील मणि पृ० ७३

२२४ ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेमसार भाव, भावेर परम काष्ठा नाम महाभाव।
—कृष्णदास कविराज चैतन्य चरितामृत

हैं जैसे ललिता, विशाखा आदि। जो श्री राधा गोविन्द का मिलन एवं उनकी सेवा का अनुकूल होकर संपादन करना अपना प्रधान कर्तव्य समझती हैं उन्हें मंजरी कहते हैं जैसे रूप मंजरी, अनंग मंजरी आदि। मंजरी राधा को किंकरी होने से अन्तरंग सेवा की अधिकारिणी है।[२२५]

श्रीकृष्ण तथा गोपियों का रमण इस संप्रदाय में मान्य है उनमें श्रीकृष्ण सुख संपादन ही प्रधान है। किन्तु स्वसुख की कामना न करके श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण की लीला का संपादन कराना ही उन्हें अभीष्ट है। इसी कारण संप्रदाय में श्रीकृष्ण राधा की लीलाओं को अत्यन्त महत्व प्राप्त है। उपरियुक्त गोपी विवेचन से राधा परकीया[२२६] नायिका सिद्ध होती है किन्तु संप्रदाय में राधा को कहीं कहीं स्वकीया भी माना गया है। जीव गोस्वामी ने श्रीकृष्ण के साथ उनका विवाह संपन्न कराया है।

शारदी पूर्णिमा में जमुना तट पर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में विवाह का मनोहर आयोजन होता है। दूल्हे के रूप में श्रीकृष्ण की शोभा अनुपम है। सेहरे में पुष्प पिरोये हुये हैं जो कि मोतियों की कांति का अपहरण करने वाले हैं। कानों में सूर्य के समान दो कर्ण फूल चमक रहे हैं। कुंकुम का तिलक, नाक का मोती, अधरों की तांबूल रस से रची लालिमा तथा श्वेत दंत पंक्ति है। गज मुक्ताओं की दुलरी के मध्य माणिक्य चमकता है। सर्प जैसी भुजाओं में पहुँची शोभायमान है। उनके वक्ष पर अनेक वर्ण के पुष्पों की माला धारण किए हुए हैं। कमर में करधनी हैं तथा पांव में नूपुर हैं। वृन्दावन की भूमि पर कुंजें ही मण्डप हैं तथा भ्रमरों का गुंजन ही वेद वाणी है। ऐसे में व्रजराज दूलह बने हैं तथा राधा दुलहिन बनी हैं। शरद पूर्णिमा को यह विवाह सम्पन्न हो रहा है। कोकिलायें मंगल गाती हैं। देव और मुनीश्वर विवाह की समस्त रीति संपन्न कराते हैं। तत्पश्चात् गोपी गणों के मध्य कंगन खोला

---

२२५ बरन बापत नामा चाह सों रसमंजरी, सुग सोभा वेलि गुनमंजरी सुभात है।
उत्सव मंजरी बीन बजावत सरसात, रति मंजरीसु बलि-बलैया कों जात है।
लवंग मंजरी प्रिया-प्रियतम के अंगपरि, चंदन चर्चात मीठी मीठी कहि बात है
काव्य कला में निपुन श्री रूप मंजरीसु हैं, कला बरसावें सोभा कहि नहीं जात है।

इहि विधि सब सेवा करें, अपनी स्वामिनि जानि।
ललिता चिक सब सखिन संग, निज निज भाग्य सु मानि॥

—वृन्दावन चंद्र के 'अष्टयाम' से।

२२६ परकीया भावे अतिर सेर उल्लास।
व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहिं वास॥

—चैतन्य चरितामृत

आता है जिसमें मधुर हास परिहास चलता है। गठजोड़े में दोनों यशोदा के पास आते हैं तथा माता का आशीर्वाद प्राप्त करते है।[२२७]

राधा अपने आराध्य कृष्ण के सुख के लिए लीला करती है तथा कृष्ण राधा के सुख के लिए। सखियाँ राधा तथा कृष्ण के सुख के लिए उनकी लीलाओं में भाग लेती हैं। श्रीकृष्ण तथा राधा का लीला दर्शन ही उनका जीवन प्राण है। स्वसुख की कामना न करके श्री राधा एवं कृष्ण की लीला का संपादन कराना ही सखियों को अभीष्ट है। वृन्दावन में यह लीला चारों उपकरणों के साथ नित्य विहार की संज्ञा पा जाती है। इस नित्य विहार की राधा वल्लभ अथवा हरिदासी संप्रदाय के समान ही स्थिति है। राधा कृष्ण की निकुंज-क्रीड़ा, मान, काल्पनिक विरह तथा सुरत के चित्र उक्त संप्रदाय में भी उपर्युक्त संप्रदायों के समान है। श्रीकृष्ण राधा के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं। वसन्त ऋतु में होली का खेल खेल कर परस्पर रंग छिड़कते है तथा गुलाल लगाते हैं।[२२८] साथ साथ प्रेम का खेल भी खेलते

---

२२७ सुन्दर सेहरो बन्यो लाल जू को सेहरो बन्यो।
जाहि देखि लघु लागत बने मोतिन की कांत॥
छवि रवि की जगमगाति ज्योति न सम तूल।
कुंकुम को तिलक बन्यो है ललाट॥
मानो यहाँ विधि संवारो मनसिज को बाट।
मुक्ता फल नासा को लसे चित चोर रे॥
हसन दसन रदन ज्योति अधर रंग संवारे।
दुलरी गज मोतिन की मध्य माणिक दमके॥
मानो नक्षत्र पंक्ति में मंगल की चमके।
भुज भुजंग अंग को छवि कहा कहूं॥
चरण चरण फूलन की माला मन मोहे।
ति पति के कुलना सों कुलना उर मोहे। —गदाधर भट्ट की वाणी

२२८ फेंटन भरे गुलाल की साधो सरस मिलाय।
दुरि भाजत हैं प्राण पति प्रिया बदन लपटाय॥ —माधुरी वाणी।
रंग भरी छवि भरी सहचरी, पहिरे रंग रंग चोर।
गावत मृदु कल कंठ लसि, छूटत मन्मथ घोर॥
पटकोली रतनन जटित, रचिपचि रह्यो हिंडोर।
झूलत प्यारी राधिका, झुलवत नंद किसोर॥
—किशोरी गोपिका वाणी से

जाते हैं।[२२९] पावस ऋतु में राधा एवं कृष्ण झूला झूलते हैं। ललिता फूल डोल रचती है दोनों झूलते हैं।[२३०] झूला झूलने के अनेक पद संप्रदाय में प्राप्त होते हैं।[२३१] राधा कृष्णहोली खेलते हैं, झूला झूलते हैं, चौपड़ खेलते हैं तथा अत्यन्त आनन्द में मग्न होकर नृत्य करते हैं। जल केलि में राधा कृष्ण अत्यन्त आनंदित होते है। वे राधा को आँखों में पानी छिड़क कर जल में नीचे छिप जाते हैं और फिर जल के भीतर ही राधा से आकर लिपट जाते हैं।[२३२] अब राधा की बारी आती है। उनकी समस्त सखियां मन मोहन को अकेले पाकर घेर लेती है। सभी अनेक प्रकार से उन्हें छेड़ती हैं। इसी स्थल पर जल रति क्रीड़ा का भी वर्णन है।[२३३] भोजन करते समय भली प्रकार से आनंदित होते हुए एक दूसरे को कौर खिलाते हैं। शेष बचा हुआ सखियों को देते हैं। भोजन के पश्चात् पान का बीड़ा कृष्ण राधा के मुंह में देकर विविध भांति की क्रीड़ायें करके हास परिहास करके रस के सागर कृष्ण और राधा सदा विहार करते रहते हैं। उनके प्रेम की प्यास नहीं बुझती। उनका प्रेम निरन्तर अतृप्त रहता है।[२३४] कभी कृष्ण राधा का शृंगार अपने हाथ से करते हैं। फूलों के आभूषण बनाने एवं मस्तक पर

---

२२९ श्री नवल वधू रंगभीनी प्रीतम संग खेले।
झूमि झूमि रस लालन गावति भाई छैल नवेले॥
रंगीलो लाल पिचकारनि रंग भरि भरि उरजनि ऊपर मेलें।
झुकि झुकि बदन दुरावति मैंमत जोबन को रस झेले॥
—वल्लभ रसिक की वाणी

२३० झूलत दोऊ रंग भीने अति ललिता डोल रच्यो। —वल्लभ रसिक की वाणी

२३१ फूल डोल झूलत हैं पिय प्यारी।
लाड़िली गिरिधर प्रिया जिय नैननि आनंद देत री॥
—वल्लभ रसिक की वाणी

२३२ मन मोहन कीनो कछु घात। छिरक छींट जल में दुरिजात।
हेरि हेरि जल में दुरि आई गहत प्रिया के उर लपटाई॥
—वल्लभ रसिक की वाणी।

२३३ नैन कमल कमलन सों खेलत, करि कमलन सो हरि भरि पेलत।
उरज कमल लपटानों, बदन कमल में बदन समानों॥
मदन खेल के खेल में तनमय सुकुमार।
झलकत कमल बदन पर जनु वारिज परिवार॥ —माधुरी वाणी

२३४ खेलत विविध बिलास रस करत हास परिहास।
रस सागर बिहरहिं सदा मिटे न मन की प्यास॥ —माधुरी वाणी

तिलक और बेंदी लगाते है सखियां दर्पण दिखा के इस सुख का आनन्द लूटती है। कभी कृष्ण राधा का कमल के फूलो से शृंगार करते है तो कभी नवीन कमल पुष्पों से राधा कृष्ण का शृंगार करती हैं तत्पश्चात् पुनः कुंज निकुंज विहार होता है।[२३५]

रास

सम्प्रदाय में रास का अत्यन्त महत्व है अतः उसका वर्णन भी अत्यन्त माधुर्य के साथ किया गया है। यह रास यमुना तट पर आयोजित होता है। कृष्ण इस रास मण्डली की रचना करते हैं। चारों ओर गोपियों के बीच में रस भरे नन्द नन्दन तथा कुंवरि वृषभानु नन्दिनी विराजमान हैं। कृष्ण के अधरों पर सजी हुई मुरली की मधुर तान अमृत रस की वर्षा कर रही है। संगीत रस रसिक युगल राधा कृष्ण रास रचाते हैं। दिव्य गति से दोनों ही घूम घूम कर नृत्य कर रहे हैं।[२३६] श्री गदाधर भट्ट ने मुरली के माधुर्य की पर्याप्त चर्चा की है। वंशी को सरस और अपने प्रति प्रेममय जानकर कृष्ण ने उसे अपने हाथ से उठाकर हृदय से लगा लिया है। अब वह कृष्ण के अधरों का रसपान करती रहती है। सब मर्यादाओं का त्याग कर बार बार कृष्ण के मुख से लगती है। इसने तीनों लोक अपने अधीन कर लिए हैं। इस नन्हीं सी भोली मुरली में जितना भार है उतना गोवर्धन पर्वत में भी नही है। श्रीकृष्ण ने इसको

---

२३५ एक बार इन लोचननि देखौं नवल विहार।
इनही हाथ दुहून को, करो बैठि शृंगार ॥
नव निकुंज के रंध्र में, छिन छिन नवल विहार।
निरखि माधुरी नैन भरि, भरहिं नैन मतवार ॥ —अभिलाष माधुरी

२३६ निर्तत राधा नन्द किशोर।
ताल मृदंग सहचरी बजावत बिच-बिच मोहन मुरली कल घोर।
उरप तिरप पग धरत धरणि पर मण्डल फिरत भुजन भुज जोर ॥
शोभा अमित विलोक गदाधर रीझ-रीझ डारत तृण तोर ॥
—गदाधर भट्ट पद सं० ५०

जुगल कुंज जमुना तट निर्तत, मिलि-मिलि ललित मेघ श्री गावत।
नाना बाल गह्यो कर अपने, संग बाँसुरी ताल बजावत ॥
—रामराय—आदिवाणी से

अमर सुहाग प्रदान किया है। यह बाँसुरी विधाता से भी सबल है। इसने समस्त जगत को अपने अधीन कर लिया है।[२३७]

रास नित्य बिहार का एक अंग है। इसके अनुसार राधा कृष्ण सतत रास क्रीड़ा में संलग्न है। सखियाँ उनकी क्रीड़ा में सहयोग देती है।

अनेक कवियों ने कृष्ण को ब्रज लीलाओं का भी वर्णन किया है। उनके सौंदर्य को निरखकर पलकें गतिहीन हो जाती हैं। ये गोविन्द आनन्दमय सरस सरोवर से प्रकटित नील कमल हैं। नन्द यशोदा सखा गण ब्रज गोपियों के जिनमें राधा भी सम्मलित है, वे प्राणाधार है—एक मात्र प्रेमिक है। जिनके शीश पर मुकुट, कुंचित अलकें, नासिका में श्वेत मोती, कमर में पीताम्बर हाथ में मुरली तथा कानों में कुण्डल शोभायमान है। ये श्रीकृष्ण सम्प्रदाय के आधार हैं।[२३८] भक्तों ने इन्हीं को अपना

२३७ बंसी पटरानी भई।

उपजी सरस सुबस जानि कर हरि गहि पानि लई।
सोवत स्याम लगाइ हृदे सौं छिन-छिन प्रीत नई॥
याही सो नित मतो करत प्रिय दृष्टि न अनत गई।
पीवति अधर करति रति कूजित गति विपरीत ठई॥
बार-बार मुंह लावत हरि संग मर्यादा बितई।
करें है अधीन त्रिलोक-लोक वाली कीरति जगत छई॥
रसबस भए गदाधर प्रभु यह करी जगत बिजई॥

—गदाधर भट्ट पद सं० २१

२३८ सीस मुकुट लटा छुटीं और छुटी अलकें।
सुर नर मुनि द्वार ठाड़े, दरस हेतु किलकें॥
नासिका को मोती सोहैं, बीच लाल ललकें।
कटि पीताम्बर, मुरलीकर, श्रवन कुण्डल झलकें॥

—सूरदास मदन मोहन पद ११

हृदय सौंप दिया है। कानों में कुंडल और कंठ में कौस्तुममणि धारण करके कृष्ण कौतुक-कुंज में मुरली बजा कर विलास कर रहे हैं।[२३९]

संप्रदाय में कृष्ण का रसात्मक रूप अधिक वर्णित है। राधा कृष्ण की लीलाएं एवं नित्य विहार के दृश्य बड़े रंगीन चित्रित हुए हैं। कृष्ण नये किशोर और राधा नवीन किशोरी हैं।[२४०]

वल्लभ रसिक जी ने स्पष्ट कहा है कि राधा का स्थान ऊंचा है। राधा आराध्या हैं कृष्ण उपासक—

यद्यपि सब मिलि कहत हैं दोऊ एक समान।
पै प्यारी महबूब है आशिक प्यारो जान॥

श्रीकृष्ण का बाल वर्णन भी सम्प्रदाय में हुआ है। वे यशोदा के नेह नीर से नित्य पोषित हैं। उनके नये नये लाड़ होते हैं।[२४१] यह वर्णन भी अनेक कवियों की वाणी में प्राप्त होता है। नाग नाथन लीला का अत्यन्त चित्रोपम रूप प्रस्तुत किया गया है।[२४२]

---

२३९ हौं बलीरी तहां, जहां मोहन मुरली मधुर-मधुर धुन बाजै री।
जमुना-पुलिन, सुभग वृन्दावन, मदन गोपाल बिराजै री॥
सजल नील घनस्याम बरन तन, बसन दामिनी छाजै री।
मोर मुकट की सोभा निरखत, इन्द्रधनुष-दुति लाजै री॥
घुंघर वारी अलकैं झलकैं, चंदन तिलक ललाट री।
अमल कमल दल मंजुल नैनन जोहत हैं मम बाटरी॥
कुंडल स्रवन, कंठ कौस्तुममनि, आनंद मुसहि प्रकासै री।
चरन धरन कहत न बनि आवै, कौतुक कुंज बिलासै री॥
—भगवान दास

२४० नवल किशोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया।
करत बिनोद तरनि तनया तट स्यामा स्याम उमंगि रस भरिया॥
यों लपटाय रहे उर अन्तर मरकत मणि कंचन ज्यों जरिया॥
—सुरदास मदन मोहन पद ३९

२४१ जसुमति नीर नेह नित पोषित नव-नव ललित लाड़ सुख-कन्द॥—गदाधर भट्ट

२४२ नचत गोपाल फणि फणा रंगे।
मनहु नील मनि के खम्भ ऊपर सिखी नृत्य आरम्भ किय अति उमंगे॥
प्रथम तरुतुंग चढ़ि झंप यमुना लई सुभग पट पीत कटि लपेटे।
एक धनतें निकसि और घन को चल्यो स्याम घन मनहु चपलाहिं भेंटे॥
—गदाधर भट्ट की वाणी

सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् है। इसमें ब्रज लीला, मथुरा लीला तथा द्वारिका लीला का वर्णन हुआ है। द्वारिका लीला पूर्ण, मथुरा लीला पूर्णतर तथा ब्रजलीला पूर्णतम मानी गई है। कृष्ण ब्रज में पूर्णतम रूप में रहते है। इसी ब्रज का नाम गोकुल है। इसी को गोलोक, वृन्दावन एवं श्वेत द्वीप भी कहा गया है।

कृष्ण ब्रजजन की रक्षा करने वाले है। गोवर्धन पर्वत को उठाकर इन्द्र के गर्व का मर्दन करने वाले है। समस्त गोप तथा गोकुल के पालक होते हुये भी वे दूध दही मक्खन के भोगी और सबसे न्यारे हैं।[२४३]

कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करके उनके प्रति विनय भाव प्रकट हुआ है।[२४४] जैसे गोवर्धन का उठाना, इन्द्र का हार मान कर कृष्ण की शरण में आना, कालिया नाग को नाथ लेना आदि। कुछ स्थलों पर यशोदा के साथ कृष्ण का उपालंभ लाने वाली गोपियों का झगड़ा भी वर्णित है। साथ ही गोपाल की कृपा का आलय भी बताया गया है।[२४५] मोहन के बदन की शोभा कह कर कृष्ण के ललित मकराकृति कुण्डल, नासिका का मोती, मस्तक पर कुमकुम के बिन्दुक इनका सुन्दर वर्णन किया

---

२४३ हमारो माई ब्रजजन को रखवारो।
आपु पुजै आपहिं पुजवावै, ब्रजवासिन को प्यारो।
जीव जन्तु त्रिभुवन को स्वामी, सो गिरिराज उधारो।
बाल किसोर आदि कौमारिक, लीला ललित विचारो।
मक्खन को हरिदास वयं है, दुष्ट-दलन दई मारो।
सकल गोपकुल गोकुलपालक, पुनि हू सबतें न्यारो।
दूध दही माखन को भोगी, रोगी रोग निकारो॥

—राधिका नाथ के पद

२४४ नमो नमो जग श्री गोविन्द।
आनन्दमय ब्रज सरल सरोवर, प्रगटित विमल नील अरविन्द।
जसुमति नीर नेहनित पोषित नव-नव ललित लाड़ सुखकन्द।
ब्रजपति तरनि प्रताप प्रफुल्लित प्रसरित सुजस सुवास॥

—गदाधर की वाणी पद सं० २८

२४५ कहो गोपाल कृपालय प्यारे।
अविजानि होई रंग हुआ कुम नाहिं तुम छाड़े गति और।
माधवदास जगन्नाथी—ग्वालिनी झगरो॥

गया है। गोपी रूप भक्त कृष्ण के रंग में रंग जाता है और उसके रसमय अनुपम अलौकिक रूप पर मुग्ध होकर रह जाता है।[२४६] वही स्वप्न में रहता है और जागने पर वही दृष्टि में बना रहता है। इन कृष्ण को देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते हैं।

संप्रदाय की हिन्दी कविता में कृष्ण गोपीजन वल्लभ है, हरि हैं, राधा रमण हैं। गोकुलानन्द, गोपाल, नन्दसुवन, मोहन, श्याम, तथा नंदकुमार हैं। इन नामों से स्पष्ट है कि वे गोपियों के आराध्य कृष्ण हैं अतः उनका सम्बन्ध ब्रजलीला से है। बाल लीला की चर्चा इसी से हुई है। राधा विशेष गोपी है अतः वे राधा वल्लभ भी हैं। राधा रमण रूप उनके रसात्मक रूप की ओर संकेत कर रहा है। हिन्दी कवियों ने सभी प्रकार की युगल केलियों का वर्णन किया है।[२४७] दोनों मिलकर वर्षा में भीगते हैं।[२४८] नई अवस्था, नया नेह प्रेम के नये रंग से भरे हुगे वर्षा की नई बूंदों में नया

---

२४६ सखि हौं स्याम रंग रंगी।
देखि बिकाय गई वह मूरति सूरति मांहि पगी॥

—गदाधर भट्ट की वाणी पृ० २५

२४७ हमारी सखी, श्री राधा-माधव जोरी।
सजल घटा सम स्याम माधुरी, प्यारी बिज्जुत गोरी॥
एक प्रान द्वै देह, अलौकिक रूप रसामृत घोरी।
गलबांही दै चलत परस्पर, सखी जूथ दोऊ ओरी॥

—मधुसूदनदास, प्रेमदर्शन

२४८ भीजत सखी हमारे प्यारे।
ओट करत अधरान की बहु विधि, जात कदम्ब किनारे।
तिलक छुट्यो, मृग मग सब छुटि गयो, नैंन बहे कजरारे।
एकटक कों ओटत आगे ह्वै, सकल उपाय बिसारे॥
सारी लगी अंग सों, देखत सहचरि हंसत गिरारे।
कोऊ सहाय न करति, जुगल मिलि अंग-अंग प्रतिपारे॥
उपरैना-चूनरि रंग मिलि गयो, मिले रुचिर रुचिकारे।
'लालदास' धन्य गुरु करुना, दरसन मिले सबारे॥

—लालदास, श्री वृन्दावन कल्पद्रुम

विलास कर रहे हैं।[२४९] कभी कृष्ण को साँवली सखी बन कर राधा की प्रीति-परीक्षा लेने जाते हैं।[२५०]

अर्चावतार

वृन्दावन में श्री राधा रमण जी का मंदिर इस संप्रदाय का विशेष स्थान है। गोविन्द देव का मंदिर भी श्री राधा कृष्ण की पूजा का पावन स्थल था। विग्रह-पूजा चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार होती है जिसमें हिन्दी की वाणियों का पठन पाठन नहीं होता। इन मंदिरों में जयदेव, विद्यापति तथा बंगाली कवियों की वाणियां ही विशेष महत्व की हैं।

संप्रदाय के मंदिरों में जहाँ श्री राधा कृष्ण के विग्रह हैं, वे सभी सम्प्रदाय की प्रणाली से पूजित होते हैं। नित्य स्नान, शृंगार, आरती, भोग तथा विश्राम के अनन्तर पुनः भगवान् के मंदिर में संध्या काल में उत्थापन, भोग और आरती की व्यवस्था रहती है। नाम जप, तुलसी पूजन, तुलसी माला धारण, गोपी चन्दन का तिलक, एकादशी, व्रत, गंगा स्नान, दान परमावश्यक है।

राधा कृष्ण के श्री विग्रह के अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय में भगवान् कृष्ण की भी मान्यता कृष्ण के तुल्य ही होने लगी थी क्योंकि उनको राधा कृष्ण का सम्मिलित अवतार कहा जाता है। चैतन्य महाप्रभु के पूज्य प्राचीन श्री विग्रह भारतवर्ष में १२ स्थानों पर हैं। इनमें एक श्री विग्रह श्री विष्णुप्रिया देवी के द्वारा संस्थापित है। यह नवद्वीप में है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में श्री कृष्ण चैतन्य की चित्र सेवा अनेक स्थलों पर चलती है और वे राधा कृष्ण की भाँति पूजित होते हैं।

वर्ष के विशेष पर्व और अवसरों पर विशेष उत्सवों का आयोजन होता है। आषाढ़ कृष्ण द्वितीय पर रथ यात्रा का उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है।

श्री शुक संप्रदाय में कृष्ण
(हिन्दी काव्य)

नाम—लाल

रूप—युगल किशोर

---

२४९ नवल बेस नव नेह, नव किशोर नव रँग भरे।
नव विलास भर मेह, बरषत अतु नव बूँद सें॥

× × × ×

एकै मन एकै सुतन, एकै चिन्ह चिन्हार।
प्रिया पीय कै पिय प्रिया, कछु न होत विचार॥ —माधुरी, 'केलिमाधुरी'

२५० माधवदास जगनाथी—परतीत परीक्षा।

लीला—नित्य लीला

धाम—वृन्दावन

शुक संप्रदाय में सखी भाव की उपासना है। वृन्दावन को संप्रदाय में अमरलोक कहा गया है। तेज पुंज को सूर्य मंडल कहा गया है। योगी इस धाम को योग युक्ति से प्राप्त करते हैं। अमरलोक धाम इन सबसे भी और काल गति से भी परे है।[२५१] इस अगम पुरी का वर्णन करना कठिन है। इसकी शोभा निराली है। इसकी अंतिम स्थिति के पूर्व तक सखा भाव की पहुँच है परन्तु इसके अंततंम प्रदेश में सखी भाव ही पहुँच पाता है।[२५२] यह नित्य वृन्दावन है। चरण दास जी कहते हैं कि यही वृन्दावन मेरे हृदय में बसा रहे।[२५३] चरणदास जी के श्री कृष्ण इसी वृन्दावन में वृषभानु दुलारी राधा के साथ नित्य विहार में रत रहते हैं। श्री कृष्ण श्याम वर्ण के हैं तथा राधा गौर वर्णी।[२५४] श्री कृष्ण पीत वसन पहने हैं शिर पर मोर मुकुट धारण किये हुये हैं। कानों में कुण्डल तथा गले में मोतियों की माला धारण किये हुये हैं। चीरा फेंटा और तुर्रा से विभूषित होकर नाक में बुलाक और कान में कुण्डल पहन कर ललित बांसुरी कन्हैया मंद मंद मुस्काता है। सुन्दर शरीर में अन्य आभूषण भी सजे हुये हैं कमर के ऊपर केशराशि फूल रही है।[२५५] कृष्ण के साथ प्रिया राधा हैं। इन युगल स्वरूप श्यामा श्याम के साथ असंख्य सखियाँ हैं जो अनेक प्रकार से रास केलि का खेल करती हैं। सब मिल कर अखण्ड रास करते हैं। अनेक वस्त्रालंकारों से सुसज्जित सदा

---

२५१ भक्ति सागर चरणदास जी पृ० १६

२५२ सखाभाव पहुँचत नहि ठाई। सखी भाव भीतर को जाई॥

—अमर लोक वर्णन पृ० १६

२५३ निज वृन्दावन है वह ठाहीं। सदा बसो मेरे मन माहीं॥

—अमर लोक वर्णन पृ० १६

२५४ नित विहार जहं करे विहारी, कृष्ण कुंवरसंग राधा प्यारी।
गौर रूप वृषभानु दुलारी, श्याम रूप हैं कृष्ण मुरारी॥

—भक्ति सागर पृ० ८

२५५ चीरा फेंटा तुर्रा सजके नाक बुलाकी
अधरन मुरली छटकी।
मन्द मन्द मुसक्यात कन्हैया कुण्डल
झलक चपलासी चटकी॥
सब तन आछे सजे आभूषण कटि ऊपर झुल्कें लटकी॥
चरण दास सुकदेव कहत हैं, चित चोहट मटनी पटनी॥

—राम कल्पद्रुम पृ० ६६ से उद्धृत

सुहागिनी सखियाँ विभिन्न प्रकार से श्याम श्यामा की सेवा करती हैं। कोई नृत्य करती है, कोई गाती है, कोई वाद्य वादन करती है। रास केलि का समस्त आयोजन ये सखियाँ ही जुटाती हैं।[२५६]

बनवारी कृष्ण रास में नृत्य करते हैं। संग में राधा रास के रंग को द्विगुणित कर रही है। मोर मुकुट की छवि शिर पर है, नाक में बुलाक का सुहावना मोती है। हाथ में मुरली, कमर में कछनी काछे हुये हैं। उनकी अलकें घुँघराली हैं। राधा नीला परिधान पहने हैं तथा उनके सिर पर चन्द्रिका शोभा दे रही है। इन रूप के सागर श्याम और श्यामा के साथ नखशिख के रूपवती सखियाँ गीत गाती हैं। राधा कृष्ण दोनों थेइ थेइ करके नाचते हैं तथा परस्पर देखकर मुस्कुराते हैं। चरणदास को मुरारी का यह दर्शन रास नित्य बिहार का अत्यन्त प्रिय हैं।[२५७]

चरणदासी सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण का रसात्मक स्वरूप ही स्पष्ट है। यद्यपि कुरुक्षेत्र लीला के अन्तर्गत द्वारिका लीला का वर्णन भी हुआ है तथा रुक्मिणी आदि रानियों की चर्चा भी है। दूसरी ओर ब्रजलीला के परिकर नन्द यशोदा आदि की भी चर्चा है किन्तु उसमें भी रसात्मक स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। सम्प्रदाय में राधा कृष्ण का प्रेम ही सर्वोपरि है। कुरुक्षेत्र में इसी प्रेम की पुष्टि का एक दृश्य दिखाया गया है। कुरुक्षेत्र में रुक्मिणी ने राधा को गरम दूध पीने को दे दिया तो कृष्ण के

---

२५६ भक्ति सागर पृ० ६ से आगे।

२५७ रास में निरस करत बनवारी।

मुदित मनोहर रंग बढ़ावत, संग वृषभानु दुलारी॥
मोर मुकट छवि शीश विराजत, नाक बुलाक सुढारी।
कर मुरली कटि काछनी काछे अलकें घूंघर वारी॥
राधा जू के शीश चन्द्रिका नीला वर जरतारी।
गावें सखी श्याम श्यामा संग, नखशिख रूप उज्यारी।
ता धिन ता धिन बजत पखावज, ताल बीण गति न्यारी।
ठनन ठनन ठन नूपुर की धुनि, झनन झनन झनकारी॥
थेइ थेइ थेइ थेइ नचत दोऊ मिले, बिहँसि बिहँसि मुसकारी।
चरण दास शुक देव दया सूँ पायो दरस मुरारी॥

—भक्ति सागर शब्द २ वर्णन पृ० २५६-२५७

चरणों में छाले पड़ गये।[२५८] इस घटना से राधा कृष्ण के परस्पर प्रेम का ही निदर्शन हुआ है। राधा ब्रजभूमि का टोना है जो कोई श्रीकृष्ण को वश में करना चाहता है वह पहले राधा की सेवा में अपना चित लगाये। इस प्रकार राधा कृष्ण के युगल स्वरूप में भी राधा की प्रधानता की ओर भक्त कवि ने निर्देश किया है।[२५९]

सम्प्रदाय श्रीमद्भागवत संमत है। अनेक भक्तों ने उससे प्रवाहित हो श्रीकृष्ण भक्ति सागर श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया है। भक्ति साधना की दृष्टि से ऐसे ग्रंथ उच्चकोटि के हैं। श्री जुगतानन्द जी के द्वारा भागवत् के एक दृश्य की झाँकी इस प्रकार दी गई है—

ऐसी बनमाली जाली बंसी बजाई।
सुन धुन व्याकुल रह्यो न जाई॥

त्यागी सदन बदन सुधि बिसरत, कुंज कुंज वन हेरत धाई।
अहो मालती मोहि बतावो, मनमोहन ब्रजराजै कन्हाई॥
श्याम सुन्दर प्रीतम बिन देखें, अति व्याकुलता नाहि सुहाई।
वृन्दावन कों दरसन दीजै, जुगतानन्द मोहन सुखदाई॥

दयाबाई जैसी भक्ता विहारी के दर्शन की प्यासी है।[२६०] चरणदासी सम्प्रदाय को साहित्यकारों ने निगुंण उपासना का सम्प्रदाय कहा है किन्तु यह निगुंणियाँ नहीं सगुण—निगुंण दोनों के मध्य का सम्प्रदाय है।[२६१] एक ओर इन कवियों की रचनायें कबीर आदि की बानियों जैसी हैं तो दूसरी ओर सगुण कृष्ण भक्तों की सी। यही इनके सम्प्रदाय की विशिष्टता है।

---

२५८ भक्ति सागर पृ० ५३१।

२५९ मन बच करके मोहि जु चाहे बस करे॥
श्री वृषभानुकुमारि की सेवा चित धरै॥ —भक्ति सागर पृ० ४२६

२६० श्याम रंग अरु नैन सलौने, अलक रही बल खाई।
मोर मुकट सिर अधिक विराजे, मुरली मधुर बजाई॥
मुक्ताहल नासा बिच राजै, लाल अधर पर वारो
दासी दया दरस की प्यासी, किरपा करो बिहारी॥

२६१ नहिं निरगुण सरगुण नहीं, नहिं दोनों से न्यार।
जोया सो जाना नहीं, सोया बारंबार॥
अनंत शक्ति लीला, अनंत गुण अनंत वह भाव।
कौतुक रूप अनंत हैं, चरण दास बलि जाव॥

प्राणनाथी संप्रदाय में कृष्ण

(हिन्दी काव्य)

नाम—राज

रूप—युगल किशोर

लीला—नित्य लीला

धाम—श्रीधाम—वृन्दावन

प्राणनाथी सम्प्रदाय का मुख्य आधार ग्रंथ भागवत पुराण है। सम्प्रदाय के अनुसार भागवत वेदों का सार है।[२६२] भागवत की रास पंचाध्यायी का इनके लिए विशेष महत्व है। इसे योग माया द्वारा प्रकट लीला रास माना जाता है। यह परम रहस्य लीला शुकदेव जी आवेश में आकर परीक्षित से कह गये थे परन्तु परीक्षित इसे सहन न कर सका। यह रास सबका सार है, वही अब इन्द्रावती के मुख से प्रकाशित हुआ है। यह रास का सार ही तारतम के रूप में प्रकट है। उस रास में चल कर भाग लेना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। प्राणनाथ कहते हैं कि देखें यह रास कब मिलता है।

अखण्ड वृन्दावन का स्वरूप बताते हुए प्राणनाथ जी वही श्रीकृष्ण और राधा की नित्य लीला का वर्णन करते हैं। यमुना के पार का यह स्थल ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का निवास स्थान है। यही परमात्मा का धाम है। इससे परे कुछ नहीं है। प्राणनाथ जी के श्री धाम का वर्णन वैष्णवों के दिव्य वृन्दावन धाम का ही वर्णन है। उन्होंने वहाँ के भवन, चबूतरे, पुष्प, सज्जा, वन, उपवन, बेलि, क्यारियाँ, यमुना घाट आदि का विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यन्त दिव्य और वैभव मय है। यह धाम अखण्ड वृन्दावन है।[२६३]

सम्प्रदाय में कृष्ण का रसात्मक रूप ही मान्य है। वे रस स्वरूप हैं, नित्य बिहारी हैं। इस नित्य वृन्दावन धाम में चित्रकृत चक्र के ऊपर युगल बिहारी विराजमान हैं।[२६४] वे दोनों प्रिया राधा प्रिय कृष्ण एक स्वरूप हैं। केवल लीला के लिए दो हैं।[२६५] किशोर की लीलाओं का सुख सखियों को ही प्राप्त होता है। इस लीला का

---

२६२ वेद को सार कह्यो भागवत, यह उपजा शास्त्रों के अन्त ॥

—भागवत का सार—प्रेमपाठ पृ० ३४

२६३ प्राणनाथ रचित श्रीधाम वर्णन—श्रीधाम वर्णन पृ० २८ से आगे

२६४ कई चाकिले चित्रकारी तापर बैठे जुगल बिहारी।

—श्री धाम वर्णन प्रेमपाठ पृ० २६

२६५ स्वरूप एक है लीला दोई—श्रीधाम वर्णन प्रेमपाठ पृ० २२

सुख कहा नहीं जा सकता।[२६६] राजा श्रीकृष्ण और श्यामा जी राधा सखियों की सेवा प्रसन्नता से स्वीकार करती हैं। सखियाँ स्वयं समय समय पर प्रफुल्लित होकर सेवा रत रहती हैं। वे प्रिया प्रिय को भोजन कराती हैं, उनके वस्त्र बदलती हैं, उनके सम्मुख नृत्य करती हैं, संगीत का आयोजन करती हैं।[२६७] संध्या को श्री राज और श्यामा शैया पर पधारते हैं और नित्य बिहार होता है। वह प्रेम अकथनीय है।[२६८]

संप्रदाय में कृष्ण का नित्य बिहारी रूप ही ग्रहण किया गया है किन्तु इन कृष्ण की व्याख्या अन्य प्रकार से भी की गई है। वैकुंठ, गोलोक और अखण्ड वृन्दावन के भेद से कृष्ण का स्वरूप तीन प्रकार का कहा गया है।[२६९]

असुरों का संहार करने वाला श्री कृष्ण का स्वरूप वैकुण्ठ निवासी विष्णु का अवतार है। वसुदेव, देवकी ने जिस चतुर्भुज विष्णु से पुत्र होने का वरदान पाया था उनके यहाँ उत्पन्न होकर वे दो भुजाधारी कृष्ण के रूप में परिणत हो गये। उसी रूप में उन्हें व्रज में लीला करनी थी। ये लीलायें ग्यारह वर्ष और बावन दिन हुईं। कंस गोलोक का एक सखा था जो शाप के कारण असुर बना। उसका उद्धार करने के लिये भी गोलोकवासी श्री कृष्ण को आना था। यह कृष्ण का दूसरा रूप है।

इन्हीं गोलोकवासी कृष्ण के अन्दर परम धाम वासी पूर्ण ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्रवेश किया। उसी से उन्होंने रास लीला की थी। भगवान की यह रास

---

२६६ और यह तो लीला किसोर। सखियां सुख लेवें अति जोर॥

—श्रीधाम वर्णन पृ० २३

२६७ यह सब इच्छा सों जो मंगावे। पर सखियों को सेवा भावे।
सैंया सेवा करन बेलि लावे। लेवें एक दूजी पे छिनावें॥
श्री राज बैठे वार्ता करें। श्री श्यामा जी चित धरें।
सखियां परस परस करें हास। लेवें धनी जी को विविध विलास।
सखियां दौरि-दौरि के जावें। आरोगन की वस्तु लावें।
हुआ संध्या को अवसर। श्री राज स्यामा जी बैठे सिंगार कर॥

—श्रीधाम वर्णन पृ० २६

२६८ श्री राज स्यामा सेज्या पधारें। कोई कोई वस्तर भूषण बधारें।

—श्री धाम वर्णन पृ० २७

२६९ कृष्ण कृष्ण सबहीं कहें पर भेद न जाने कोय।
नाम एक विध है सही पर रूप तीनि विध होय॥
एक भेव बैकुंठ का दूजा हो गोलोक।
तीसरा धाम अखंड का कहत पुराण विवेक॥ —ज्ञान सरोवर पृ० ६६

लीला पूर्ण पर ब्रह्म की रास लीला थी। इसके पश्चात् सात दिन तक गोलोक वासी श्रीकृष्ण की शक्ति ब्रज में रही तदुपरान्त उसी शक्ति से उन्होंने कंसादि का बध किया। फिर गोलोकवासी कृष्ण की शक्ति निकल कर ब्रज की गोपियों में प्रविष्ट हो गई। द्वारका की समस्त लीलाएं कृष्ण के विष्णु रूप से सम्पन्न हुई।

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के श्रीकृष्ण में अवतार का क्या कारण था, इसको स्पष्ट करते हुए प्राणनाथ जी कहते हैं। वर्णित लोकों में जो सर्वोच्च अक्षर धाम है, उस मन से उत्पन्न सखियों के चित्त में धनी जी का प्रिय विलास देखने की इच्छा हुई है। वे ब्रह्म सृष्टि की सखियाँ ही ब्रज में गोपिकाएं बनीं। उनके साथ गोलोक के श्रीकृष्ण भी लीला विलास नहीं कर सकते थे। अतः पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण ही अपने उस रूप में अवतरित हुए। यही पूर्ण परब्रह्म इस सम्प्रदाय के इष्ट हैं।

प्राणनाथ जी ने श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में एक तारतम्य माना है। जिसमें वृन्दावन लीला को सर्वोपरि स्थान दिया है।

ललित संप्रदाय में श्रीकृष्ण

(हिन्दी काव्य)

नाम—लाल

रूप—युगल—लाल – ललना

लीला – नित्य बिहार

धाम—वृन्दावन

श्री वंशी अलि जी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्होंने संस्कृत तथा ब्रज दोनों ही भाषाओं में रचनायें कीं। सम्प्रदाय का सिद्धान्त कथन संस्कृत की रचना में है तथा भावोद्गार ब्रजभाषा में। भक्त कवि ने सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को विशिष्ट स्थान नहीं दिया है। राधा को प्रधान बनाकर कृष्ण को उनके प्रेमाधीन सेवक की भाँति चित्रित किया है।[२७०] श्री राधा ही सच्चिदानन्द रूपिणी हैं। वे ईश्वर और जीव की प्रकल्पिका और सर्वोपरि हैं। श्रीकृष्ण राधा के भक्त हैं। उनकी राधा के प्रति अनन्य भक्ति है अतः उनके साथ समान भाव से विहार करने के लिए ही श्री राधा ने अवतार ग्रहण किया है। विहार में उनकी समानता है तथा वे कृष्ण की पत्नी भी हैं किन्तु वह सब भक्तों के आनन्द के लिए ही है। श्री राधा विशुद्ध प्रेम मूर्ति हैं तथा अपने अनन्य भक्त श्रीकृष्ण और सखियों के हृदय में नित्य विराजमान रहती हैं।

---

२७० सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नन्द कुमार।
दूजे सेवक सहचरी, सेवा विपुल बिहार॥ —हृदय सर्वस्व ५

सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत के महारास रचने वाले श्रीकृष्ण का स्थान अनायास ही राधा ने प्राप्त कर लिया है। अतः युगल में प्रेम की समता के कारण जो रस उत्पन्न होना चाहिए था वह नहीं हो पाया है। हृदय-सर्वस्व ग्रन्थ में श्री वंशी अलि ने नन्दकुमार कृष्ण को राधा की सेवक कोटि में बता दिया है। राधा के प्रति अतिशय प्रेम के कारण श्रीकृष्ण ने स्वयं ही सेवक बनना स्वीकार किया है। राधावल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय में भी वे प्रेम के वश राधा की पराधीनता स्वीकार कर लेते हैं किन्तु ललित सम्प्रदाय में श्री राधा एवं उनकी सहचरी ललिता का प्रभाव इतना बढ़ता है कि उनका अस्तित्व नगण्य रह जाता है।

राधा के प्रेम के नाते वे स्वेच्छा से उनका सेवक बनना स्वीकार कर लेते हैं। यह उनके हृदय की विशालता का ही परिचायक है। सखी ललिता चरणों के प्रताप से नन्द पुत्र श्री कृष्ण राधा की कृपा प्राप्त करते हैं।[२७१]

सम्प्रदाय के द्वितीय भक्त कवि श्री किशोरी अलि रसिकों की परिपाटी पर चले थे। रूप राशि स्वामिनी राधा जी ही इनकी उपास्या थीं। वे ही सखियों की जीवन और कुंज बिहारी जी की प्रियतमा हैं। वे अपनी वाणी में कहते हैं—

'गहि अनन्य मत सेइ किसोरी, निरखौ जुगल बिहारे।'[२७२]

तथा अन्यत्र अपनी वाणी में उन्होंने श्रीकृष्ण के द्वारा उनके चरणों में पड़ जाने का वर्णन किया है—

'प्यारी वदन सदन सुषमा को, उपमा नाहिंत कोटि निवहे री।
तोसी तुही किसोरी गोरी, यों कहि लालन चरण गहे री।।

सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के विहार का वर्णन भी किया गया है।[२७३]

मीरा के हिन्दी-काव्य में कृष्ण

मीरा ने मध्ययुगीन भक्ति कालीन हिन्दी काव्य में एक नई परम्परा को जन्म दिया। वे अपने समय के किसी भी संप्रदाय में दीक्षित नहीं थीं। उन पर प्रायः सभी संप्रदायों की भक्ति-भावना का प्रभाव था किन्तु उनमें से किसी का भी अनुकरण न

---

२७१ रमापति सुकदेव नारद नहीं पावत ध्यान।
नन्द सुनु लहत कृपा बल सखी चरन प्रमान।।
—श्री वंशी अलि जू की वाणी

२७२ श्री किशोरी अलि जी की वाणी

२७३ मिलेई रहत मानत अनमिलियो, हरखि दोऊ, फिरि-फिरि लपटात।
अतिरस लुब्ध मुग्ध मन मांही, तृपत न नेंकु तृषित सब गात।।
—श्री किशोरी अलि की वाणी

करके उन्होंने कृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेमासक्ति का मार्ग अपनाया। कृष्ण के प्रति उनकी आसक्ति की व्यंजना आण्डाल के समान थी। यह प्रेमानुभूति तथा विरह की तड़प उन्हें भक्तों की परम्परा से हटकर एक विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी बना देती है।

मीरा के कृष्ण सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वे अविनाशी हैं;[२७४] गगन मंडल के वासी हैं; वहां उनकी सेज बिछी है।[२७५] उनके पास पहुंचने का रास्ता ऊँचा-नीचा और रपटीला है जिस पर पांव नहीं ठहरते जहां कोस कोस पर पहरा बैठा हुआ है और पग पग पर चोर लुटेरों का भय है।[२७६] त्रिकुटी महल में बने हुये झरोखे से मीरा उसकी झांकी लेने को तथा सुन्न महल में सुरत जमाकर सुख की सेज बिछाने को प्रस्तुत है।[२७७]

कृष्ण हरि हैं। विष्णु के अवतार हैं। मीरा उन्हीं हरि के चरण स्पर्श करने को आतुर है जिनका स्पर्श कर प्रह्लाद ने इन्द्र की पदवी पाली, ध्रुव ने अटल स्थान पाया तथा जो 'अगम तारन तरन' हैं। इन्होंने इन्द्र का गर्व हरण करने के लिये गोवर्धन धारण किया था।[२७८] भक्त पर जब जब भीर पड़ी हरि ने उसे गले लगाया।

---

२७४ मीरा के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल।

२७५ गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलना होय।

२७६ गली तो चारों बन्द हुई, मैं हरि से मिलूं कैसे जाय।
ऊँची नीची राह रपटीली, पांव नहीं ठहराय॥
सोच सोच पग धरूं जतन से, बार-बार डिग जाय।
ऊँचा-नीचा महल पिया का, हमसे चढ्या न जाय॥
पिया दूर पथ म्हारो झीणों, सुरत झकोला खाय।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड-पैंड बटमार॥

२७७ त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहां ते झांकी लगाऊंरी।
सुन्न महल में सुरत जमाऊं, सुख की सेज बिछाऊंरी॥
कुंजन कुंजन फिरति राधिका, सबद सुनत मुरली को॥

२७८ मन रे परसि हरि के चरन।
जिन चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी सरन।
जिन चरन गोवर्धन धारयो, इन्द्र को गर्व हरन॥
दासी मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन।

मीरा को भी विश्वास है कि प्रार्थना करने से हरि उसका दुःख हरण कर लेंगे।[२७९] इन हरि के आने की आवाज भी उसे सुनाई पड़ती है। उनकी चरण-चाप वह मन के कान से सुनती है।[२८०]

कृष्ण उसके लिये राम का रूप भी बन जाते हैं। राम और कृष्ण में अन्तर ही कहाँ है? किसी भी नाम से पुकारो; हैं तो वे एक ही। इसी राम से मिलने के लिये वह जोगन बन जाने को प्रस्तुत है।[२८१]

मीरा जोगन होकर कृष्ण को जोगी के रूप में भी देखती है। नारी का प्रिय अथवा पति जब घर छोड़ कर जोगी बन जाता था तो वह अपने जोगी की राह देखा करती थी। उसे खोजने के लिये वह वन वन भटकती थी। ऐसे ही जोगी (कृष्ण) से मीरा प्रीति लगा बैठी है और दुःख उठा रही है।[२८२] कृष्ण प्रीत जोड़ कर जब जाने लगे तो वियोग की कल्पना मात्र से मीरा सिहर उठी और चीत्कार कर उठी 'हे योगी तू मत जा, मैं तेरे पाँवों में पड़ती हूँ। तेरे वियोग से तो जल मरना अच्छा है। मैं चंदन की चिता बनाती हूँ, तू इसमें अपने हाथ से अग्नि जला जा। अब मैं जल कर भस्म हो गई हूँ, तू (यदि जाना ही है तो) इस भस्म को ही अपने शरीर से लगा कर जा इस प्रकार ज्योति में ज्योति मिल जायगी'।[२८३]

मीरा के कृष्ण उसके प्रेमी पति हैं। वे मुख्य रूप से 'गिरधर नागर' हैं किन्तु अपने हृदय की गंभीर अनुभूति के क्षणों में वह उन्हें किसी भी पर्यायवाची नाम से

---

२७९ हरि तुम हरो जन की भीर।

२८० सुनी मैं हरी आवन की आवाज।

२८१ राम मिलन के काज आज जोगन बन जाऊँगी।

या

राम मिलन के काज सखी मेरे आरति उर में जागी री॥

२८२ जोगिया से प्रीत किये दुःख होय।

या

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ारो मूल।

या

जोगिया रे तू कबरे मिलेगो आई।
तेरे ही कारन जोग लियो है घर घर अलख जगाई।

२८३ जोगी मतजा, मतजा, मतजा।
अगर चंदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपने अंग लगा जा॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्योति में ज्योति मिला जा॥

पुकार लेती है। नारायण[२८४] से लेकर गोविन्द[२८५] साँवरिया[२८६] प्रभु[२८७] पिया[२८८] मोहन[२८९] तथा प्यारे[२९०] संबोधनों का प्रयोग भी कृष्ण के लिये हुआ है। कृष्ण उसकी प्रत्येक प्रेमानुभूति के आलम्बन है। कृष्ण के प्रति संयोग की भावना तो कल्पना है बस मीरा के भाग्य में तो कृष्ण के प्रति वियोग की भावना ही है। उसे ज्योंही कृष्ण के प्रति संयोग की भावना उठती है, विरह का दुःख सताने लगता है। विरह से प्रारंभ कर विरह में ही समाप्त होने वाली उनकी गंभीर प्रेम साधना में तपाए हुये सोने के समान वह निर्मल तेजस्विता है कि उसके सामने पड़ने वालों की लौकिक शृंगार-भावना भी शुद्ध हो जाती है।[२९१] मीरा दर्द दिवानी है उसका दर्द कोई नहीं जानता। दर्द जानने वाला वैद्य तो केवल साँवलिया है मीरा की पीड़ा (दिल का दर्द) वही मिटा सकता है।

मीरा का शैशव से ही गिरधर गोपाल से पति पत्नी का नाता था। उसने गिरधर गोपाल को अपने पति रूप में वरण किया था अतः उन्होंने स्वयं में कांता भाव का आरोपण कर लिया था। मीरा में चरम कोटि की स्वरूपासक्ति है। इस स्वरूप का आस्वादन वे अनेक प्रकार से करती हैं। कभी प्रत्यक्ष, कभी अप्रत्यक्ष। कभी मानस पटल पर अपनी कल्पना में और कभी किसी झुरमुट में। मीरा का प्रत्यक्ष रूप राग उनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। भगवान् की त्रिभुवन मोहन कमनीय मूर्ति को देखकर वह अटक जाती है। भले वह अपने को रोके या टोके पर वह कृष्ण के मोर मुकुट पर अटक जाती है।[२९२] किशोर मूर्ति कृष्ण के अनियारे नेत्रों पर मीरा मुग्ध है। कृष्ण की रूप सुधा का पान करते हुए मीरा के नेत्र परितृप्त नहीं होते। कृष्ण के कमल मुख को देखकर उसके नेत्र भ्रमर वहीं उस रस में अटक गये हैं।

---

२८४ मैं तो अपने नाराण की आपुहि हो गई दासी।
२८५ मैं तो गोविन्द लीनो मोल।
२८६ मीरा की प्रभु पीर मिटे जब वैद्य साँवरिया होय।
२८७ मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत बछल गोपाल।
२८८ होली पिया बिनु मोहि न भावे, घर अंगना न सुहावे।
२८९ या मोहन के मैं रूप लुभानी।
२९० प्यारे दर्शन दीजो आय॥
२९१ डा० श्री कृष्ण लाल। —मीरा बाई पृ० १५६
२९२ प्यारो रूप देख्यां अटकी।
कुल कुटम्ब सजण सकल बार बार हटकी।
बिसरयांणा लगण लगां मोर मुगट नटकी॥

मीरा अपने आराध्य के त्रिभंगी स्वरूप पर अत्यन्त आसक्त है तथा प्रेम से परवश है।[२९३]

भावाशक्ति

श्रीकृष्ण मीरा के प्रियतम हैं। वह उन्हें सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करती है। इस प्रेम में स्वकीया की जैसी शांति है तो परकीया का सा उन्माद भी।[२९४] कृष्ण मीरा के पति तथा प्रेमी हैं। वे माधुर्य भाव के आलंबन हैं। दो एक स्थलों को छोड़ कर उनके पदों में राधा[२९५] का अस्तित्व प्रकट नहीं होता। अतः मीरा के लिए राधा-कृष्ण की क्रीड़ाओं और लीलाओं का महत्व नगण्य था।

अतिरिक्त पदों में मीरा और उसके प्रियतम के मध्य कोई नहीं है। केवल वह है और उसके प्रियतम। जिस दिन से मीरा ने उन्हें निरखा है।[२९६] वह उनसे मिलने को बेचैन है। तभी से वह गिरधर के रंग में रंग गई है।[२९७] कदाचित् मीरा ने

---

२९३ निपट बंकट छब अटके।
म्हारे णेणा निपट बंकट छब अटके।।
देख्यां रूप मदन मोहन री, पियत पियूख न मटके।
बारिज भवां अलक मतवारी, णेण रूप रस अटके।
टेढ्यो कट टेढ़े करि मुरली, टेढ्यां पाग लर लटके।
मीरा प्रभु रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर नट के।।

२९४ मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
जित बैठारे तित ही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।।

२९५ आली म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।।

२९६ जबतें मोहिं नन्दनन्दन दृष्टि पड्यो माई।
तब तें परलोक लोक कछु ना सोहाई।।

२९७ 'सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।'
या
मीरा लागो रंग हरी, और न रंग अटक परी।
या
मेरो मन लागो हरि सूँ, अब न रहूँगी अटकी।
या
मेरो मन बसिगयो गिरधर लाल सों।

कृष्ण प्रियतम से सपने में विवाह किया है।[२९८] तभी से वह अपने को उनकी पत्नी ही समझने लगी है। उसका संसार में कोई नहीं। यदि कोई है तो केवल गिरधर गोपाल ही।[२९९] जिसके सिर पर मोर मुकुट है वही तो उसका पति है इस पति को उसने अत्यन्त कष्ट से पाया है। आँसू के जल से सींच-सींच कर प्रेम की बेल बोई थी जिससे कि आनन्द का फल उसे प्राप्त हो। उसको सन्तों के पास बैठकर लोक लाज खोनी पड़ी थी और चूंदरी को फाड़कर लोई ओढ़नी पड़ी थी। इस पति को पाना सहज नहीं। गिरधर के आगे उसे रिझाने के लिए नाचना भी पड़ा था।[३००] प्रेम के घुंघरु और सुरत की कछनी काछकर नृत्य करना प्रीतम के लिए ही सम्भव है। मीरा के कृष्ण पार्थिव अपार्थिव लौकिक और अलौकिक सभी कुछ हैं। "मीरा की वेदना के पीछे एक कुचले हुए स्वप्न की एक प्रेमदग्ध हृदय की विकलता है। उस वेदना में पार्थिव यथार्थता है। मीरा ने कृष्ण के लिए उसी तीव्र वेदना का अनुभव किया होगा जो एक प्रेमिका अपने हाड़ मांस के प्रेमी के लिए करती है। स्पष्ट है कि जब किसी अशरीरी अतीन्द्रिय प्रियतम के लिए वह यातना भोगी जायगी; वह विरह की आकुलता झेली जायगी जो एक स्थूल पार्थिव प्रियतम के लिए अनुभव की जाती है, तब उसमें सजीव वास्तविकता जीती-जागती यथार्थता के साथ-साथ भव्यता और दिव्यता अवश्य होगी। मीरा में इसीलिये 'मजाजी' और 'हकीकी' पार्थिव और अपार्थिव दोनों का मिलन है।

अतः मीरा के कृष्ण भव्य और दिव्य होते हुए भी लौकिक और सगुण हैं। सौन्दर्य और प्रेम से पूर्ण हैं। वह श्यामल, मोहिनी मूर्ति और विशाल नेत्र वाले हैं। हृदय पर वैजयन्ती माला फहरा रही है। कमर में सुन्दर करधनी है और पावों में मधुर शब्द करने वाले नूपुर। अधरों पर रखकर मुरली बजाता है। सांवलिया का

---

२९८ माई मोरी सुपने में परण गयो नन्दलाल।

२९९ मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
असुंअन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई आनन्द फल होई॥
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
चुंदरी के किये टूंक ओढ़ि लई लोई॥

३०० श्री गिरधर आगे नाचूंगी।
प्रेम प्रीत के बांध घूंघरु सुरत की कछनी काछूंगी॥...

यह रूप किसका मन नहीं मोह लेता।[३०१] सिर पर मोर मुकुट, पीताम्बर, गले में वैजयन्ती माला, मुरली वाला यह मोहन वृन्दावन में गायें चराता है।[३०२] यह यशोदा-पुत्र गायों के साथ-साथ वृन्दावन में डोल रहा है। बिहारी कृष्ण में कान्त भाव का आरोप करते हुए मीरा परितृप्त नहीं होती।

मीरा उसकी सेवा का अवसर चाहती है। भाव क्षेत्र में मीरा विप्रलब्धा स्वकीया है।[३०३]

लीला सक्ति

मीरा वृन्दावन बिहारी कृष्ण को आराध्य मानती है। उन्हें कृष्ण का दुष्टदलन उतना प्रिय नहीं जितना कि भक्त रक्षक स्वरूप। काली नाग को नाथने, गोवर्धन उठाने और द्रोपदी का चीर बढ़ाने के प्रसंग में उनकी अत्यन्त आसक्ति है। कृष्ण की भक्तोद्धारक लीलायें ही मीरा को अतिशय प्रिय हैं। तात्पर्य यह है कि मीरा की साधना प्रधान रूप से कान्ता भाव की है। उनकी अनुभूति प्रगाढ़ और तीव्र है।

---

३०१ बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
सांवरो सूरत मोहनी मूरत, नैना बने बिसाल॥
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजन्ती माल॥
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल॥

३०२ मोर मुकुट पीताम्बर सोहे गल बैजयन्ती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावे मोहन मुरली वाला॥

३०३ जोगिया जी निस दिन जोऊं बाट।
पांव न चाले पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट॥
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीति न पाई।
मैं भोली भोलापन कीन्हीं, राख्यो नहि बिलमाइ॥
जोगिया कूं जोवत बोहो दिन बीता, अजहूं आयो नांहि॥

ষষ্ঠ অধ্যায়

षष्ठम अध्याय

मध्य युगीन संप्रदायिक काव्य में कृष्ण चरित्र का विस्तार

ब्रज लीला

मध्ययुगीन भक्त कवियों ने कृष्ण की ब्रजलीला, मथुरालीला तथा द्वारिकालीला—तीनों लीलाओं का गान किया है। अष्ट छाप के आठ कवियों में प्रायः कृष्ण कथा के समस्त सूत्र मिल जाते हैं। अन्य सम्प्रदाय के कवियों ने माधुर्य भक्ति के नाम से राधा-कृष्ण और गोपी कृष्ण के अनन्य प्रेम का गद्‌गद् कंठ से गायन किया है। ऐसे सम्प्रदायों में राधावल्लभ हरिदासी प्रमुख हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय ने भागवत के आधार पर कृष्ण चरित्र लेते हुए भी उसके माधुर्य पक्ष पर अधिक बल दिया है। चैतन्य सम्प्रदाय ने भी कृष्ण चरित्र का सम्पूर्ण वर्णन किया किन्तु इसमें प्रधान तत्व माधुर्य भाव का ही था।

संक्षेप में हिन्दी कवियों द्वारा वर्णित कृष्ण कथा इस प्रकार है—

आदि सनातन, पूरन ब्रह्म देवकी के गर्भ से मथुरा में कंस-कारागार में प्रकट हुआ। जन्म के समय उसके माथे पर मुकुट, शरीर पर पीला पीताम्बर तथा वक्ष पर भृगु-रेखा थी। चारों हाथों में शंख चक्र गदा और पद्म शोभा दे रहे थे। शिशु का ऐसा रूप देखकर माता देवकी व्याकुल हो गई। वसुदेव को बुलाकर दिखाया। प्रभु ने कहा—'मुझे गोकल ले चलो।' वसुदेव गोकुल लेकर चले। यमुना पार करने लगे तो शिशु कृष्ण के चरण स्पर्श करने को यमुना ऊपर चढ़ने लगी। जब चरण स्पर्श कर लिये तभी यमुना शांत हुई। शेषनाग ने अपने सहस्त्र फन छत्र की तरह छा लिये। वसुदेव उन्हें लेकर गोकुल यशोदा के पास पहुँचे। योग माया को गोद में लिया, कृष्ण को उस स्थान पर लिटा दिया और लौट कर मधुपुरी पहुँच गये। मथुरा में देवकी के पुत्री होने की घोषणा हुई। उसे कंस ने मृत्यु के घाट पहुँचा दिया किन्तु वह आकाश में जाकर बोली—'तेरा काल ब्रज में पैदा हो गया है।"

ब्रज में जन्म महोत्सव—उधर यशोदा ने जागकर पुत्र का मुख देखा और आनन्द की तुरही बज उठी। गोकुल में कृष्ण प्रकट हुए।[१] सखियों ने मंगल गाया। बंदीजन गुण गाने लगे। नन्द बाबा ने अनेक वस्त्राभूषणों का दान किया।

नार-छेदन—नार छेदने वाली यशोदा से गले का हार मांगती है। यशोदा हार देती है। नार छेदा जाता है।[२] परमानन्ददास ने छठी पूजन का वर्णन भी किया है।

पालने में झूलना—यशोदा कृष्ण को पालने में झुला रही है। कभी कृष्ण पलक मूंद लेते हैं, कभी अधर फड़काते हैं। यशोदा अपना गुनगुनाना बंद करके सबको संकेत से चुप कर देती है। इतने में व्याकुल होकर जगजाते हैं। यशोदा पुनः मधुर लोरी गाने लगती है।[३]

पूतना-वध—कृष्ण अभी पालने में ही थे कि कंस द्वारा भेजी पूतना उन्हें स्तनों से लगा विष पिलाकर मारने आई। उन्होंने उसके स्तन को पकड़ कर ऐसा चूसा कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये।[४]

श्रीधर अंग भंग—कृष्ण को मारने श्रीधर आया। यशोदा पाहुन समझकर उसके लिए यमुना-जल लेने गई तो पीछे उसने कृष्ण को मारने का विचार किया। कृष्ण समझ गये। उन्होंने उसकी जीभ मरोड़ दी। भाजन फोड़ कर दही ढलका दिया

---

१ गोकुल प्रकट भए हरि आइ। —सूरदास

२ जासुदा, नार न छेदन दैहों।
मनिमय जटित हार ग्रीवा को, वहै आजु हौं लै हौं॥

× × × ×

मन में बिहँसि तबै नंदरानी, हार हिये को दीन्हौ। —सूरदास

३ जसोदा हरि पालने झुलावै।

× × × ×

कबहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं, कबहुँ अधर फड़कावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि-करि सैन बतावै॥
इहिं अंतर अकुलाय उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै॥ —सूरदास

४ कपट करि ब्रजहिं पूतना आई।
अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई॥

× × × ×

गई मुरछाई, परी धरनी पर, मनो भुवंगम खाई। —सूरदास

और कुछ उसके मुंह से लगा दिया और पालने में आकर लेट कर रोने लगे। यशोदा ने आकर श्रीधर को घर से निकाल दिया।[५]

कागासुर वध—एक दनुज काग-रूप धारण करके आया। पालने पर कृष्ण को लेटा हुआ देखा तो एक दम पास आ गया। कृष्ण ने कंठ मरोड़ कर ऐसा पटका कि मर कर कंस के पास जा पड़ा।[६]

सकटासुर वध—सकट का रूप धारण करके असुर व्रज पर आकर गर्जना करने लगा। पालने में पड़े हुये कृष्ण पैर का अंगूठा चूस रहे थे। उसे देखकर उन्होंने अपने नन्हे चरण से तनिक सी ठोकर लगा दी। आकाश में भयंकर शब्द हुआ और सकट मर गया।[७]

तृणावर्त-वध—यशोदा मन में अभिलाषा कर रही है। पुत्र घुटनों से कब चलेगा और कब दो पैरों से धरती पर चलेगा। कब दूध के दांत निकलेंगे? कब तोतले वचन बोलेगा? इतने में बात-चक्र के बहाने व्रज के ऊपर तृणावर्त आ गया। कृष्ण

---

५ जबहीं बांभन हरि ढिग आयो।
हाथ पकरि हरि ताहि गिरायो॥
गुवौ चांपि लै जीभ मरोरी।
दधि ढरकायो भाजन फोरी॥

—सूरदास

६ काग रूप इक दनुज धरयो।
× × × ×
पलना पर पौढ़े हरि देखे,
तुरत आइ नैननिहिं अरयो॥
कंठ चांपि बहु बार फिरायो,
गहि पट दयौ नृप पास परयो॥

—सूरदास

७ सकट को रूप धरि असुर लीन्हो।
× × × ×
आपु गयो तहां जहं प्रभु परे पालनें कर गहे चरन अंगुठा चचोरें।
× × × ×
नैंकु फटक्यो लात, सबद भयो आघात, गिरयो महरात सकटा संहारयो।

—सूरदास

को आकाश में उड़ा कर ले गया। कृष्ण ने उसे शिला पर दे पटका और स्वयं उसके ऊपर बैठ गये। यशोदा और नन्द ने दौड़कर उन्हें गले से लगा लिया।[८]

नाम करण—गर्ग ऋषि ने कृष्ण का नामकरण संस्कार किया।[९]

अन्नप्राशन—बड़ी धूम धाम से कृष्ण का अन्नप्राशन हो रहा है। कृष्ण छः माह से कुछ ही दिन छोटे हैं। उबटन लगाकर कृष्ण को स्नान कराया गया है तथा वस्त्राभूषण पहनाये गये हैं। शरीर में झँगुली, सिर पर लाल चौतनी तथा दोनों हाथ और पैरों में चूड़ा पहनाया गया है। स्वर्ण के थाल में खीर रखी गई, उसके ऊपर घी और शहद डाला गया। नन्द बाबा ने थाली में से खीर लेकर कृष्ण का मुख जुठाला है। स्त्रियाँ मंगल गाने लगीं।[१०]

वर्ष गाँठ—एक वर्ष बाद कृष्ण की वर्ष गाँठ मनाई गई। अक्षत दूब लेकर एक गाँठ बाँध दी गई।[११]

घुटरुवों चलना—घुटनों चलकर कृष्ण आँगन में डोल रहे हैं। मुँह में मक्खन लिपटा हुआ है।[१२] धूल से भरे घुटने के बल चलने का वर्णन भी किया गया है। ये सुन्दर नील वर्ण हैं। लाल-लाल चरणों में नख-ज्योति जगमगाती है। पैरों में

---

८ अति बिपरीत तृनावर्त आयौ।
बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद-पौरि कैं भीतर धायौ।
पौढ़े स्याम अकेले आँगन, लेत उड़यो, आकास चढ़ायौ।
× × × ×
मारयौ असुर सिला सौं पटक्यौ, आपु चढ़यौ ता ऊपर आयौ।
दौरे नंद, जसोदा दौरी, तुरतहिं लै हित कंठ लगायौ। —सूरदास

९ गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत हैं अविनासी। —सूरदास

१० जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौं, पट-भूषन पहिराइ।
तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ॥
× × × ×
धरी आनि सुत-मुख जुठरावन, नंद बैठे लै गाद।
× × × ×
कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नंद ले-ले हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ॥ —सूरदास

११ अच्छत-दूब दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ,
इहै मोहिं लाहो नैननि दिखरावो। —सूरदास

१२ घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत मुख मंडित नवनीत। —सूरदास

पैंजनियां रुनझुन-रुनझुन कर रही हैं। कटि में रत्न मणियों से जड़ी करधनी है, उस पर पीट पट तना हुआ है। हाथों में पहुंची, बाघ-नख, हीरा तथा गज मुक्ता का कठुला कंठ में शोभायमान है। अधर, दांत नासिका और ठोड़ी सुन्दर वर्ण की हैं। भौंहें टेढ़ी सुख की राशि मुख-मंडल, सुडौल कपोल की छवि अनुपम है। मस्तक पर तिलक उस पर काजल का डिठौना तथा सिर पर लाल चौतनी शोभायमान है। तोतले वचन, तथा मुनियों के मन को हरण करने वाली मुस्कुराहट। बाल स्वभाव चपल और भोले नेत्र हैं। चितवन मन को मोह लेती है। नन्द सुवन की छवि चांद जैसी है।[१३]

पांवों चलना— यशोदा कृष्ण को पांवों चलना सिखा रही हैं। नन्हें-नन्हें हाथ पकड़ कर खड़ा होना सिखाती हैं तो लड़खड़ाकर गिर पड़ते हैं और फिर घुटनों के बल दौड़ कर भाग जाते हैं।[१४] कृष्ण धरती पर दो-दो कदम चलने लगे। चलने में पैर के नूपुर बजते हैं। उनसे मधुर ध्वनि उठती है। झट बैठ जाते हैं फिर तुरन्त ही उठ जाते हैं।[१५]

कौये द्वारा कृष्ण के हाथ से मक्खन रोटी लेना—कृष्ण का सारा शरीर धूल से भरा है। सिर पर सुन्दर चोटी शोभा दे रही है। माखन रोटी खेलते हुए खा रहे हैं—सारे आंगन में घूम रहे हैं। घूमने से पैरों की पैंजनियां बज रही हैं पीली कछनी

---

१३ सुन्दर स्याम-सरोज-नील-तन, अंग-अंग सुभग सकल सुखदनियां।
अरुन चरन नख-जोति जगमगति, रुन-झुन करति पाइं पैंजनियां॥
कनक-रतन-मनि-जटित-रचित कटि किंकिनि कुनित पीतपट तनियां।
पहुंची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ मंजु गज-मनियां॥
रुचिर चिबुक-द्विज-अधर नासिका अति सुन्दर राजति सुबरनियां।
कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन, कल कपोल की छवि न उपनियां॥
भाल तिलक मसि-बिंदु बिराजत, सोभित सीस लाल चौतनियां।
मन-मोहिनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन हरनि सु हंसि मुसकनियां॥
बाल सुभाव बिलोल बिलोचन, चोरति चितहिं चारु चितवनियां।
निरखति ब्रज जुवती सब ठाढ़ी, नंद-सुवन छवि चंद-बदनियां॥ —सूरदास

१४ तनक तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ो होन सिखावै।
लरखरात गिरि परत हैं, चलि घुटुरुनि धावै॥ —सूरदास

१५ कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
× × × ×
रुनुक-झुनुक नूपुर पग बाजत, धुनि अतिहीं मन-हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरतहीं, सो छवि जाइ न बरनी॥ —सूरदास

काछे हुये हैं। एक कौआ ऐसे क्षण में कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी छीन कर ले जाता है।[१६]

मृत्तिका भक्षण—कृष्ण धूल में खेलते हैं शरीर धूल से भरा हुआ है। चौंक कर चारों ओर चकित से देखते हैं और सबसे छिपाकर मिट्टी मुँह में डाल लेते हैं तथा घुटनों के बल शीघ्रता से भाग जाते हैं।[१७] परमानन्द दास ने भी मिट्टी खाने का वर्णन किया है किन्तु वह कुछ और बड़े होकर खाते हैं। ग्वालबाल आकर यशोदा से कृष्ण द्वारा मिट्टी खाने की शिकायत करते हैं। यशोदा साँटी और रस्सी लिए खड़ी है कृष्ण आयें तो साँटी से खूब मार लगायेगी और रस्सी से हाथ बाँध देगी। कृष्ण ने आकर मुख खोल कर दिखाया। अखिल ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर हुआ। सूर ने भी इस लीला का वर्णन परमानन्द दास की तरह किया है।

पहले-पहल बोलना—कृष्ण सबसे पहले 'माँ' कहने लगे उसके बाद 'बाबा' तथा 'भैया'।[१८]

मैया से बड़ा तथा मोटा कर देने का आग्रह—हे मैया मुझे बड़ा कर दे। दूध, दही, घी-मक्खन और मेवा जो कुछ माँगू सो दे दे।[१९] हे मैया मुझे मोटा कर दे। दुबला देख कर सब कहते हैं कि क्या नन्द के घर खाने का टोटा पड़ गया है? बलदाऊ को पतली रोटी करके खिला दे किन्तु मुझको मोटी रोटी बना दे।[२०]

---

१६ धूरि-भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनी बाजतीं, पीरी कछोटी॥
× × × ×
काग के भाग कहा कहिए, हरि हाथ सों लै गयो माखन-रोटी॥
—रसखान

१७ रजमाँहि मगन कैसो खेलत है।
सुभग चिकुर तन धूरि धूसरित डेलिक किलक सकेलत है॥
चौंकि चकित चहुँ ओरनि चितवत छिपि माटी मुख मेलत है।
'सुन्दरि कुँवरि' घुटुरुवनि दौरत कोटिन छवि पग पेलत है॥
—सुन्दर कुँवरि

१८ कहन लगे मोहन मैया मैया।
नंद महर सों बाबा-बाबा, अरु हलधर सों भैया॥ —सूरदास

१९ मैया मोहि बड़ो हरि लै री।
दूध-दही-घृत-माखन-मेवा, जो माँगों सो दै री॥ —सूरदास

२० मैया करि मोहि ऐसो मोटो।
× × × ×
देखि दूबरो सबै कहत कहा परयो नंद घर टोटो।
बलि कों कर दै पतरी रोटी मो कों दै रोटो॥ —चाचा वृन्दावन दास

चंचलता—यशोदा चौका देकर पानी लेने गई कि कृष्ण ने चौके में कूड़ा बखेर दिया।[२१] सूत की भरी हुई आटी खींचकर उलझा दी। चरखे की माल तोड़ दी। तकुआ टेढ़ा कर दिया।[२२]

कनछेदन – हाथ में सुराही और गुड़ की भेली रखी है। रोली भर कर सींक से यशोदा कानों को छेदने के स्थान पर छुवाती है। कृष्ण रोने लगते हैं। माता व्याकुल हो जाती है। कान छिदते समय उधर से आंखों में आंसू भर कर मुंह फेर लेती है।[२३]

रक्षाबन्धन – कृष्ण और बलराम दोनों के यशोदा राखी बांधती है।[२४]

कलेवा कराना—यशोदा जगाकर कलेवा कराती है और भंवरा चकडोर, हंस चकोर तथा अन्य खिलौने देती है।[२५]

दूध पीने के लिये चोटी बढ़ने का लालच देना—मां कजरी गाय का दूध पीने को कहती है। दूध पीने से चोटी बढ़ेगी।[२६] दूध पीते ही बाल टटोलने लगते हैं। मां, मेरी चोटी कब बढ़ेगी। कब से दूध पी रहा हूं किन्तु यह अभी तक छोटी सी ही है।[२७] हे मां तेल डाल कर मेरे सिर की चोटी को बड़ा कर दे।[२८]

---

२१ हों चौका दै पानी गई।
तामें आनि बखेरयो कूरो॥ —चाचा वृन्दावन दास

२२ राखो देखो करतब पूत को।
भरी कुली कतनोड़ी कीयो हाल खोंसि यह सूत को॥
माल्ह तोरि टेढ़ो कियो तकुआ कहों कहा चलन सपूत को॥
—चाचा वृन्दावन दास

२३ कान्ह कुंवर को कन छेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की॥
× × × ×
रोचन भरि ले देत सींक सौं, स्रवन, निकट अति ही चातुर की॥
लोचन भरि-भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियो तुरत नौआ कों घुरकी॥ —सूरदास

२४ राखी बांधति, जसोदा मैया। —परमानन्द दास

२५ खेलिए आंगन छगन-मगन कीजिए कलेवा।
× × × ×
सूरदास मदन मोहन घर में ही खेलो प्यारे ललना।
भंवरा चकडोर दै हैं, हंस चकोर परेवा। —सूरदास मदन मोहन

२६ कजरी को पय पियहु लला, तेरी चोटी बढ़ै। —सूरदास

२७ मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बेर मोहि दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी। —सूरदास

२८ तेल डारि नित चुपरि बढ़ै ज्यों मेरे माथे चोटी। —चाचा वृन्दावन दास

चौगान खेलना—ब्रज के कुमारों के साथ कृष्ण चौगान (गेंद) खेलते हैं।[२९]

पिल्ला घेरना—बालकों की इस सहज प्रवृत्ति की चर्चा भी कृष्ण-काव्य में की गई। परमानन्द दास ने कृष्ण द्वारा पिल्ला पकड़ कर लाने की चर्चा की है।[३०]

पवित्रा—श्रावणी एकादशी को कृष्ण पवित्रा पहनते हैं।[३१]

चंद्र-प्रस्ताव—सूर ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। अपने आँगन में खड़ी होकर यशोदा अपने कृष्ण को चन्दा दिखा रही है। गोल-गोल चमकीला देखकर कृष्ण उसे लेने को अड़ जाते हैं। 'भूख लगी है चन्दा को खाऊँगा।' तब माता आकाश में उड़ती हुई चिड़िया दिखाने लगती है।[३२] फिर भी कृष्ण भला क्यों मानने लगे वह तो बाल-हठ ठहरा। चन्दा लेने से पहले वे कुछ भी काम करने को प्रस्तुत नहीं हैं। वे तो चन्द-खिलौना लेकर ही मानेंगे। अन्त में माता एक युक्ति सोचती है। थाली में पानी भरकर कृष्ण से कहती है कि नीचे देखो। मैंने चन्दा आकाश से मँगाकर नीचे रख लिया है। अब अपने हाथ से इसे निकाल लो।[३३]

राम की कहानी सुनना—नन्द नन्दन कहानी सुन रहे हैं। दशरथ के पुत्र राम थे उनकी पुत्री जानकी थी। पिता की आज्ञा से अयोध्या छोड़कर पंचवटी वन में चले गये। वहाँ निवास करने के समय राक्षस ने सीता को हर लिया। इतने में कृष्ण उठ बैठे और कहने लगे—'हे लक्ष्मण! धनुष लाओ।' यशोदा मन में डर गई।[३४]

---

२९ गोपाल माई खेलत हैं चौगान।
ब्रज कुमार बालक संग लीने वृन्दावन मैदान॥ —परमानन्द दास

३० परमानन्द दास को ठाकुर पिल्ला लायो घेर। —परमानन्द दास

३१ पवित्रा पहिरत गिरिवर लाल। —छीत स्वामी

३२ लागी भूख चंद में लैहौं।
× × × ×
सूर स्याम को जसुमत बोधति,
गगन चिरैयाँ उड़त दिखावत। —सूरदास

३३ मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं। —सूरदास
नभ तें निकट आनि राख्यो है, जल-पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढ़ि चंद कौं, जो भावै सो कै। —सूरदास

३४ नन्द-नंदन, इक सुनौ कहानी।
× × × ×
राम चन्द्र दशरथ-सुत, ताकी जनक-सुता गृह-रानी।
कहँ तात के, पंचवटी वन, छाँड़ि चले रजधानी।
जहाँ बसत सीता हरि लीन्ही, रजनीचर अभिमानी।
लछिमन, धनुष देहु कहि उठे हरि, जसुमति सूर डरानी। —सूरदास

सखाओं के साथ क्रीड़ा—बलदाऊ, सुबल और श्रीदामा के साथ कृष्ण खेल खेल रहे हैं हाथ से ताली बजाकर होड़ करके भागते है। अपने जोड़ीदार श्रीदामा के साथ खेल रहे हैं। जब श्रीदामा को पकड़ लिया तो उन्होंने कहा कि मैं तो जानकर खड़ा रह गया था, मुझे क्यों पकड़ते हो।' कृष्ण इस बात पर सखा से खीज गये और मन ही मन क्रोधित हो गये।[३५] माँ से शिकायत की कि बलदाऊ बहुत खिजाता है। कृष्ण बेईमानी करते हैं यह कहकर सब सखा जहाँ-तहाँ बैठ गये। कृष्ण खेलना चाहते हैं इसी से नन्दबाबा की दुहाई देकर खेल प्रारम्भ कर दिया।[३६]

शालिग्राम को मुख में डाल लेना—नन्द बाबा पूजा कर रहे है। घण्टी बजाकर भोग आदि लगाकर ध्यान समाधि में ज्यों ही लीन हुए त्यों ही कृष्ण ने शालिग्राम को मुँह में डाल लिया। खोजने पर शालिग्राम कृष्ण के मुख में पाये गये। माता ने डाँटकर मुँह खोलने को कहा तो मुख में तीनों लोक दिखा दिए।[३७]

माखन-चोरी—माखन-चोरी प्रसंग में अष्टछाप के कवियों का मन खूब रमा है। श्याम ग्वालिनियों के घर जाकर भरी कमोरी में से माखन ले-लेकर खा लेते हैं। ग्वालिनि उनका अनुपम रूप देखकर फूली नहीं समातीं। सबको कामना है कि कृष्ण

---

३५ खेलत स्याम ग्वालनि संग।
सुबल-हलधर अरु श्रीदामा, करत नाना रंग॥
× × × ×
मेरी जोरी है श्रीदामा, हाथ मारे ताल।
× × × ×
आगें हरि पाछें श्रीदामा, धर्‌यो स्याम हंकारि॥
जानिकैं मैं रह्यो ठाढ़ो, छुवत कहा जु मोहि।
सूर हरि खीझत सखा सों, मनहिं कीन्हो कोह॥ —सूरदास

३६ मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो।
तथा
कहति करैं तासों को खेले, रहे बैठि जहं-तहं सब ग्वैयां।
सूरदास प्रभु खेल्योइ चाहत, दाउँ दियो करि नंद-दुहैयां॥ —सूरदास

३७ पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यो, देखौ देव-बड़ाई॥
× × × ×
बदन पसारि सिखा जब दीन्ही, तीनों लोक दिखाये।
सूर निरखि मुख नंद चकित भये [illegible] बचन नाहिं आये॥ —सूरदास

उनके यहां आकर माखन चुराएं। ग्वालिनी के मन की इच्छा पूरी करके वे ब्रज की ओर भाग गये।[३८] चुरा-चुरा कर माखन खाने में जो सुख है वह माँगकर लेने में नहीं। इसी सुख को पाने के लिए कृष्ण छिपते हैं गोपियाँ उन्हें पकड़ने की घात लगाये रहती हैं। हर बार वे साफ बच जाते हैं। पकड़े जाने पर भी बातें बना देते हैं। मैंने समझा कि यह घर मेरा है, इसी धोखे में आ गया। गोरस में चींटी पड़ गई थी उसी को निकालने के लिये अपना हाथ बढ़ाया था।[३९] इस बार छूट गये किन्तु आखिर कब तक बचते। एक दिन पकड़कर यशोदा के सामने कर दिये गये। 'तुम्हारे बेटे ने गाँव के घर-घर का गोरस हरण कर लिया है। ग्वाल-सखा के कन्धे पर पैर रखकर छींके से उतार लेते हैं।' यशोदा भला क्यों मानने लगीं। जिसके घर में इतनी अधिक संख्या में गायें हों वह भला दूसरे का गोरस चुरायेगा? अपने घर धौरी गैया का दूध तो वह पीता ही नहीं है पराया चोरी का दूध पियेगा।[४०] परन्तु वे मानते कहाँ हैं। चोरी तो चोरी बछड़ी की रस्सी भी खोलकर भाग जाते हैं।[४१] कभी दोहनी छिपाकर रख देते हैं।[४२] मार्ग में चलते समय अनीति करते हैं। बरबस छीनकर माखन खा जाते

---

३८ प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज-खोरी॥
मन में यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ।
गोकुल जन्म लियो सुख कारन, सबकें माखन खाऊँ॥ —सूरदास

३९ स्याम कहा चाहत से डोलत?
पूछे तें तुम बदन दुरावत, सूधें बोल न बोलत।
पाए आइ अकेले घर में, दधि-भाजन में हाथ।
अब तुम काको नाउँ लेउगे, नाहिन कोऊ साथ।
मैं जान्यो यह मेरो घर है, ता धोखे मैं आयो।
देखत हौं गोरस में चींटी, काढ़न कों कर नायौ। —सूरदास

४० महरि तुम मानो मेरी बात।
ढूँढ़ि-ढाँढ़ि गोरस सब घर को, हरयो तुम्हारे तात।
कैसे कहत लियो छींके तें, ग्वाल कन्ध दै लात।
घरि नाँहि पियत दूध धौरी कौं, कैसे तेरे खात॥ —सूरदास

४१ तापर सूर बछरुवनि ढोलत, बन-बन फिरति बही। —सूरदास

४२ ढोटा मेरी दोहनी दुराई।
मोपे तें लीनीं देखन कों यह धौं कौन बड़ाई॥
× × × ×
द्वार उघारि खोल दिये बछरा देखट गैया चुरवाई।
हौं पचिहारी कही नाँहि मानत बरजत ताकें आई॥ —परमानन्ददास

है। पीताम्बर सिर से ओढ़कर अंचल देकर मुस्काते हैं।[४३] अपने बच्चे की ढेर सी शिकायतें यशोदा आखिर कहाँ तक सुने। क्रोध के मारे हाथ में साँटी लिये यशोदा का शरीर थरथरा रहा है। 'आज बिना मारे नहीं छोड़ूँगी।' इसी क्षण एक और ग्वालिनी शिकायत लेकर आ गई। क्रोध में क्रोध और बढ़ गया।[४४]

उलूखल बंधन—माता ने कृष्ण को उलूखल से कसकर बाँध दिया। बंधे-बंधे ही उन्होंने यमलार्जुन की ओर देखा। 'इन्हीं के लिए मैं बंधा हूँ। इनको स्पर्श करके वृक्ष गिरा दूँ और मुनीश्वर का शाप मिटा दूँ। ये दोनों कुबेर के पुत्र हैं। बहुत दुःख इन्होंने पाया है।'[४५] उलूखल को भी अपने साथ खींचकर कृष्ण यमलार्जुन के पास पहुँच गये और दोनों वृक्ष महरा कर धरती पर गिर पड़े।[४६]

सखा के लिए सवारी बनना—कृष्ण ने अपने एक सखा को कंधे पर चढ़ा लिया है स्वयं वाहन बन गये हैं। शरीर धूल से भर गया है किन्तु कृष्ण थकते नहीं है। उनके मित्र को इससे आनन्द मिल रहा है यह सोचकर पसीने-पसीने होने पर भी बारी नहीं बदलते।[४७]

---

४३ मारग चलत अनीति करत हैं, हठ करि माखन खात।
पीताम्बर वह सिर तें ओढ़त, अंचल दै मुसकात॥ —सूरदास

४४ साँटिया लिए हाथ नन्दरानी, थरथरात रिस गात।
मारे बिना आजु जो छाँड़ौं, लागै मेरैं तात॥
इहिं अन्तर ग्वारिनि इक औरे, धरे बाँह हरिल्यावति।
भली महरि सूधो सुतह जायौ, चोली-हार बतावति॥
रिस में रिस अति ही उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष॥ —सूरदास

४५ हरि चितए यमलार्जुन के तन।
अबहीं आजु इन्हें उद्धारौ, ये हैं मेरे निजजन॥
इनहीं के हित भुजा बँधाई, अब विलम्ब नहिं लाऊँ।
परस करौं तन तरुहिं गिराऊँ, मुनिवर शाप मिटाऊँ॥ —सूरसागर

४६ तब दोउ धरनि गिरे महराइ। —सूरदास

४७ ब्रज की धूरि में तन सने।
लेत कंध चढ़ाइ काहू स्याम बाहन बने॥
कहत सो चलि बेगि मोहन पग उठाय जु घनें।
पोत मेरो देहु भैया कपट तजि अपने॥
तन प्रस्वेद जु धूरि लपटे तनक श्रम नहिं गनें।
मित्र को आनन्ददायक कर सकत नहिं मनें॥—चाचा हित वृन्दावनदास

दशहरा तथा दिवाली पूजन—परमानन्ददास ने दशहरा तथा दीपावली के पूजन की चर्चा की है। कृष्ण का शृंगार होता है। सुस्वादु भोजन मिलते हैं। दिवाली पर कृष्ण हटरी बनाते हैं। धनतेरस को गर्ग ऋषि को बुलाकर वेद विधि से पूजन करती है और घृत-दीप बालती है। रूप चतुर्दशी (छोटी दिवाली) को भी कृष्ण का शृंगार वर्णन किया गया है। दिवाली पर मंगलाचार का वर्णन है। द्यूत-क्रीड़ा की चर्चा भी हुई है। कृष्ण और बलराम दोनों द्युत-क्रीड़ा करते हैं। सूर ने दीपावली के अवसर पर राधा के शृंगार की चर्चा की है।

पतंग उड़ाने का वर्णन—परमानन्द दास ने पतंग उड़ाने का वर्णन किया है।[४८]

विवाह उत्कंठा—राधा वल्लभ-संप्रदाय के कवियों ने राधा का जन्म तथा उनकी बाल लीलाओं का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण के हृदय में भी विवाह की उत्कंठा दिखाई गई है। सूर तथा नन्ददास ने भी माता के द्वारा कृष्ण का ब्याह कर देने की बात कहलवाई है।

यशोदा का गोचारण के हेतु जाने के लिये जगाना—गोकुल में प्रतिदिन उपद्रव होता है। इसलिए अब वृन्दावन में जाकर बसना चाहिए। इस समय कृष्ण पाँच बरस के थे।[४९] यशोदा प्रातःकाल कृष्ण को जगाती है। 'सखा सब तुमको बुला रहे हैं। दातुन देकर कुल्ला करवाती है। दही मथ कर माखन खिलाती है।[५०] तब वे गोचारण के लिए जाते हैं। तनक तनक सी दोहनी माँग कर कृष्ण बलदाऊ भैया और सखाओं के साथ गायें चराने चल देते हैं। वृन्दावन देखकर उन्हें बड़ा सुख मिला। वहीं भोजन किया। संध्या समय लौटे तो यशोदा ने लाड़ के मारे गोद में उठा

---

४८ गुडी उड़ावत लाग बाल। —परमानन्द सागर

४९ महर-महरि के मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ वृन्दावन मैं जाई॥
सब गोपनि मिलि सकटा साजे, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुन तट डेरा दीन्हे, पाँच बरष के कुँवर कन्हाई॥ —सूरदास

५० जननि जगावति उठो कन्हाई। प्रगट्यो तरनि, किरनि महि छाई।

× × × ×

सखा द्वार सब तुमहिं बुलावत। तुम कारन हम धाए आवत। —सूरदास
दतवनि लै दुहु करी भुखारी। नैननि को आलसनु बिसारयो।
माखन लै दोउनि कर दीन्हो। तुरत मथ्यो मीठो अति भारयो॥ —सूरदास

लिया।[५१] कलेऊ कराया। कलेऊ पर अनेक पद रचे गये है दाऊ उन्हें वनफल तोड़ कर देते हैं इसलिए कृष्ण अपने दाऊ के साथ गोचारण को जायेंगे। अन्य ग्वाल-बाल तो उन्हें रिझाते हैं।

बकासुर-बध—गोचारण के समय ही वृन्दावन में बकासुर आया। वह इतना बड़ा था कि एक चोंच उसकी धरती पर और दूसरी आकाश को छू रही थी। कृष्ण उसके मुख में घुस गये और मार डाला।[५२]

अघासुर बध—एक दिन गोचारण के लिए वृन्दावन मे यमुना-तट पर कृष्ण ग्वालों सहित गये। पर्वत की गुफा के समान मुख में सब ग्वाल-बाल अनजाने हो जाकर बैठ गए। जब सब बैठ गये तब असुर ने पर्वताकार मुख सिकोड़ लिया। सब ओर अन्धकार छा गया, ग्वाल, बछड़े और गायें सब त्राहि-त्राहि कर उठे। तब कृष्ण ने उससे दूना अपना आकार किया। उसे मारा और ब्रह्म-द्वार से सिर फोड़ कर वे निकल आये। अंधकार मिट गया। सब ग्वाल-बाल पूर्ववत हो गए।[५३]

ब्रह्मा-बालक-वत्स-हरण—ब्रह्मा को गोकुल से ईर्ष्या हुई और उन्होंने बालक और बछड़े हरण करके ब्रह्मलोक में पहुंचा दिए। कृष्ण ने उन्हें फिर से बना

---

५१ जसुमति दौरि लिए हरि कनियाँ।
आजु गयौ मेरो गाइ चरावन, हौं बलि जाउं निछनियाँ।
मो कारन कछु आन्यो है बलि, बन-फल तोरि नन्हैया।
तुमहि मिलें मैं अति सुख पायौ, मेरे कुंवर कन्हैया।। —सूरदास

५२ बकासुर रचि रूप माया, रह्यो छल करि आइ।
चोंच इक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ।
× × × ×
पैठि बदन बिदारि डारयौ, अति भए बिस्तार।
भरत असुर चिकार पारयौ, मारयौ नन्द कुमार।। —सूर सागर

५३ गिरि समान धरि अगम तन बैठ्यौ बदन पसारि।
मुख भीतर बन धन नवी, छल माया करि मारि।।
× × × ×
जब मुख गये समाई, असुर तब चाब सकोरयौ।
अंधकार इमि भयो मनहुं, निसि बादर ओरयौ।।
× × × ×
याते दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि।
सबद करयौ आघात, अघासुर टेरि पुकारयौ।। —सूर सागर

लिया।[५४] किसी को भी पता न चला कि वे सब नकली हैं। अन्त में ब्रह्मा ने चारों मुखों से स्तुति की।

धेनुक-बध—सखाओं ने ताल-वन जाने की इच्छा प्रकट की। वहाँ का रखवाला धेनुक असुर था। हलधर ने उसको मारा। उसके परिवार को कृष्ण ने भी मारा।

कालीदह-जल-पान—वृन्दावन में गायें चराते समय गउओं तथा बच्चों को प्यास लगी। कालीदह में जाकर उन्होंने पानी पी लिया। पानी पीकर तट पर सब खड़े हुए तो व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ बैठ गये। मन में ध्यान करते ही जान लिया कि कालिया-नाग वहाँ आकर बस गया है।[५५] कृष्ण ने अपने सखा के लिए गेंद चलाई। श्रीदामा ने मुड़ कर अपने को बचा लिया। इसलिए गेंद कालीदह में जा पड़ी। गेंद लेने के बहाने कृष्ण भी जमुना में कूद गये। और कालिया-नाग नाथ लिया।[५६]

दावानल-पान—ब्रज के लोगों पर दावानल दौड़ पड़ा। ब्रज के लोग व्याकुल हो उठे। ज्वाला आकाश के बराबर गई। वन के पत्ते झरने लगे, वृक्ष गिरने लगे, धरती फटने लगी। जल बरसने पर तो गोवर्धन पर्वत के नीचे सबने शरण पाई थी अब पर्वत कैसे सहायक होगा? बेलें जलकर लटक जाती हैं, बाँस काँस, कुस और ताड़ चटकते हैं। आकाश तक अंगार उचटते हैं।[५७] दावानल-पान करके कृष्ण ने ब्रज-जन की रक्षा करली।[५८]

---

५४ विधि मन हीं मन सोच परयो।
गोकुल की रचना सब देखत, अति जिय माँहि डरयो॥
× × × ×
बालक-बच्छ हरे चतुरानन, ब्रह्म लोक पहुँचाए।
सूरदास प्रभु गर्व बिनासन, नव कृत फेरि बनाए॥ —सूरदास

५५ तृषावंत सुरभी बालक-गन, काली दह अँचयो जल जाइ।
निकसि आइ सब तट ठाड़े भए, बैठि गए जहँ-तहँ अकुलाइ॥
× × × ×
मन में ध्यान करत ही जान्यो, काली उरग रह्यो ह्याँ आइ। —सूरदास
स्याम सखा कों गेंद चलाई।
श्री दामा मुरि अंग बचायो, गेंद परी काली दह जाई॥ —सूरदास

५६ नाथत काल बिलंब न कीन्हो। —सूरदास

५७ ब्रज के लोग उठे अकुलाइ।
ज्वाला देखि अकास बराबरि, दसहूँ दिसा कहूँ पार न पाइ॥
झर हरात बन-पात, गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाइ।
जल बरषत गिरिवर-तर बाँचे, अब कैसे गिरि होत सहाइ॥
लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस ताल।
उचटत झरि अंगार गगन लौं, सूर निरखि ब्रज-जन बेहाल॥ —सूरदास

५८ दावानल अँचै ब्रज-जन बचायो। —सूरदास

प्रलंब-वध—माया रूप से गोप-पुत्र होकर प्रलंबासुर व्रज में आया। आकर ग्वालों के समूह में जा मिला। बलदाऊ समझ गये, उन्होंने संकेत किया। मनमोहन कृष्ण मनमें मुस्कुराने लगे। दो-दो ग्वाल बिठाल कर ब्रज में खेल रचाया। अपने आप प्रलम्ब के साथी बन गए। पीठ पर चढ़ाकर प्रलंब उन्हें ले चला। युद्ध हुआ। दैत्य का संहार कर दिया गया।[५९]

मुरली-वादन—कृष्ण के चरित्र में मुरली का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जब कृष्ण मुरली अधरों पर रखकर बजाते हैं स्थिर चंचल, और चंचल स्थिर हो जाते हैं। पवन का चलना बन्द हो जाता है। जमुना का जल भी बहना बन्द हो जाता है। पक्षी मोहित हो जाते हैं; मृग समूह आत्म विस्मृत हो जाते हैं। पशु मोहित हो जाते हैं; गाएँ दूब दांतों में दबा कर चुप रह जाती हैं।[६०] मुरली बजाने के समय की कृष्ण की शोभा का वर्णन भी सूरदास ने किया है। अधरों का स्पर्श होते ही मुरली सुधा-रस बरसाने लगती है। मुकुट थोड़ा झुक जाता है। भौंहे चालित होकर भटकती हैं। ग्रीवा कुछ झुक जाती है। कपोल से कुन्डल बार-बार टकराते हैं।[६१] मुरली के प्रति गोपियों

---

५९ माया-वपु धरि गोप-पुत्र ह्वै चल्यौ सु ब्रज-समुहाइ।
× × × ×
ग्वाल-रूप ह्वै मिल्यौ निसाचर, हलधर सैन बताई॥
मन मोहन मन में मुसुक्याने, खेलत भलें बनाई।
द्वै बालक बैठारि सयाने, खेल रच्यौ ब्रज-खोरी॥
और सखा सब जुरि-जुरि ठाढ़े, आपु बनुज-सँग जोरी।
तबहि प्रलंब बड़ौ वपु धारयौ, लै गयौ पीठि चढ़ाइ॥
उतरि परे हरि ता ऊपर तैं, कीन्हौ जुद्ध बनाइ।
× × × ×
दैत्य संहारि कृष्ण तहं आए, ब्रज-जन लिए जिवाइ॥ —सूरदास

६० जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत॥
खग मोहैं, मृग जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छवि छरत।
पसु मोहैं, सुर भी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत॥ —सूरदास

६१ परसति अधर सुधारस बरसति, मधुर मधुर सुर बाजति।
लटकत मुकुट, भौंह-छवि मटकति, नैन-सैन अतिराजति॥
× × × ×
लोल कपोल झलक कुंडल की। —सूरदास

के हृदय में सौतिया डाह पैदा होता है। नाना प्रकार से मुरली कृष्ण को नचाती है। एक पैर से खड़ा रखती है; कमर टेढ़ी कर देती है। ग्रीवा झुका देती है, स्वयं अधर की शैया पर लेट कर कृष्ण के कर-कमलों से अपने चरण दबवाती है। भौंहे टेढ़ी, फड़कते नासा-पुट, जैसे कृष्ण गोपियों पर कोप कर रहे हैं।[६२] अतः यह मुरली चुराली जाय।[६३]

भौंरा-चक-डोरी खेलना—माता यशोदा से मांगकर आले से उठाकर भौंरा चकई और डोरी ले जाते हैं। जैसे कृष्ण हैं वैसे ही अन्य सब बालक गए हैं। सबके हाथ में एक-एक भौंरा और एक-एक चकई जोड़ी लगी हुई।[६४]

राधा से मिलन—ऐसे ही हाथ में भौंरा-चक-डोरी लेकर ब्रज की गली में जा रहे थे कि मस्तक पर विशाल रोली का बिन्दु लगाये राधा दृष्टिगोचर हुई। कृष्ण पूछ बैठे तुम कौन हो[६५] किसकी बेटी? कहाँ रहती हो? कभी देखा नहीं। हम अपने घर खेलती रहती हैं। ब्रज में आने की क्या आवश्यकता पड़ती है। हाँ सुनती रहती है कि नंद का पुत्र माखन-दही की चोरी करता फिरता है। 'तुम्हारा हम क्या चुरा

---

६२ मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनरी सखी यद्यपि नंदलालहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा कर राखति, करि टेढ़ौ ह्वै आवति॥
× × × ×
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर, कर-पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल, नैन नासापुट, हम पर कोप करावति॥ —सूरदास

६३ सखी री, मुरली लीजै चोरि। —सूरदास

६४ दै मैया भौंरा चक डोरी।
जाइ लेहु आरे पर राख्यौ, काल्हि मोल लै राखे कोरी॥
तैसेइ हरि, तैसेइ सब बालक, कर भौंरा-चकरिन की जोरी॥ —सूरदास

६५ खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी॥
मोर मुकुट, कुंडल स्रवननिबर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी॥
× × × ×
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
—सूरदास

लेंगे ? चलो साथ-साथ खेलने चलें।' भोली राधिका को कृष्ण ने बातों में भुलावा दे दिया।[६६]

इस प्रकार कृष्ण के साथ राधा की कहानी भी जुड़ जाती है। यहाँ से कृष्ण भक्त कवियों की कल्पना राधा-कृष्ण की संयुक्त जोड़ी के साथ ही आगे बढ़ती है। नये गोपाल हैं, नवेली राधा हैं। दोनों नए प्रेम रस में पगे हुये हैं।[६७] राधा ने अपनी भुजा श्याम की भुजा के ऊपर और श्याम की भुजा अपने वक्ष पर रखली है।[६८] जब विदा हुए तो राधा की साड़ी स्वयं कृष्ण ने पीताम्बर के स्थान पर ओढ़ली और पीताम्बर राधा को उढ़ा दिया। यशोदा ने कृष्ण को सारी पहने देखा तो सोचने लगी कि यह कृष्ण को कहाँ से मिली ?[६९] पूछने पर कृष्ण ने कहा कि कोई उनका पीताम्बर ले गई है अब उससे लेकर आना चाहते हैं। लाल किनारी की साड़ी थी उसको रंग में रंगकर पीताम्बर बना लिया। माँ से कह दिया कि 'ले आया अपना पीताम्बर' यशोदा मन ही मन कहती हैं कि युवती (राधा) इसे छल करना सिखा रही है।[७०]

---

६६ बूझत स्याम कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी ॥
काहे कौं हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पोरी।
सुनत रहत स्रवननि नंद ढोटा, करत रहत माखन-दधि-चोरी ॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ॥ —सूरदास

६७ नवल गुपाल, नवेली राधा- नये प्रेम-रस पागे। —सूरदास

६८ नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उर धरिया ॥ —सूरदास

६९ तुरन्त गये नंद-सदन कन्हाई।
अंकम दै राधा घर पठई, बादर जहँ-तहँ दिए उड़ाई ॥
प्यारी की सारी आपुनि लै, पीताम्बर राधा उर लाई।
जो देखे जसुमति हरि ओढ़े, मन यह कहति कहाँ धौं पाई ॥ —सूरदास

७० मैया री मैं जानत ताकौं।
पीत उढ़नियाँ जो मेरी लै गई, लै आनौ धरि ताकौं ॥

× × × ×

हरि की माया कोउ न जानै, आँखि धूरि सी दीन्ही।
लाल ढिगनी की सारी ताकौं, पीत उढ़नियाँ कीन्हीं ॥
पीताम्बर लै जननि दिखायो, लै आन्यौं तिहिं पास।
सूर मनहिं मन कहति जसोदा, तरुनि पढ़ावति गाँस ॥ —सूरदास

राधा कृष्ण का प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। खेलने के बहाने राधा कृष्ण की खोज में नन्द बाबा के घर आई। संकोच से यशोदा से पूछा 'कृष्ण घर में हैं' कृष्ण, कोकिल समान मधुर वाणी सुनकर झट भीतर से आंगन में निकल आये। उस समय माता से कुछ झगड़ा कर रहे थे, सारा क्रोध भूल गये। 'मां तू इन्हें जानती है? कल मैं यमुना-किनारे राह भूल गया था। यही बांह पकड़ कर लाई थी यहां आने में शरमा रही थी मैंने कसम देकर बुलाई है।।'[७१] यशोदा कुंवरि का रूप देखकर प्रसन्न हुई। उन्होंने पहले राधा का शृंगार किया और तब कृष्ण के साथ खेलने की आज्ञा देदी। साथ खेलते में दोनों झगड़ने लगे।[७२] कृष्ण माता से आकर कहने लगे—'जहां तहां खिलौने पड़े रहते हैं राधा कहीं चुराकर न ले जाय। सांझ-सबेरे आने लगी है। आकर मुरली की ओर ही देखती रहती है।'[७३]

दूध दुहना—गाय दुहते समय राधा उपस्थित है। कृष्ण गाय की जगह रस्सी लेकर बैल के पैरों में बांध देते हैं और दोहनी मांगने लगते हैं। राधा की ओर ही देखे जा रहे हैं। ग्वालबाल यह देखकर ताली देकर हंसने लगते हैं।[७४] दूध की दोहनी मां के

---

७१ खेलन के मिस कुंवरि राधिका, नंद-महरि कैं आई।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर हौं कुंवर कन्हाई॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई।
माता सौं कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई॥
मैया री तू इनको चीन्हति, बारंबार बताई।
जमुना-तीर कालिह मैं भूल्यौ, बांह पकरि लै आई॥
आवति इहां ताहि सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई। —सूरदास
७२ खेलौ जाइ स्याम संग राधा।
× × × ×
संग खेलत दोउ झगरन लागे, सोभा बढ़ी अबाध॥ —सूरदास
७३ जहँ-तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि लै जाइ चुराइ।
सांझ सवेरें आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आइ॥
इनहीं में मेरे प्रान बसत हैं, तेरे भाएँ नेकु न माइ।
× × × ×
राखि छपाइ, कह्यो करि मेरो, बलदाऊ कों जनि पति आइ॥ —सूरदास
७४ दुहत स्याम गैया बिसराई।
नोई लै पग बांधि बृषभ कै, दोहनि मांगत कुंवर कन्हाई॥
× × × ×
कहत सखा हरि सुनत नहीं सो, प्यारी सौं रहे चित अरुझाई। —सूरदास

हाथ में थमाकर 'दाऊ मुझे बुला रहा है। मेरी मुरली, मुकुट और पीताम्बर दे दे।' कहकर सिर पर मुकुट धारण किया, कमर में पीताम्बर तथा मुरली हाथ में मुरली के द्वारा राधा-राधा नाम टेर कर राधा को खरिक में ही बुला लिया।[७५] एक बार गाय दुह रहे थे तो राधा के प्रति इतना अधिक प्रेम उमड़ा कि एक धार दोहनी में और एक दूध की धार राधा की ओर चला दी।[७६]

कृष्ण का गारूड़ी बनना—कृष्ण के प्रति प्रेम की अधिकता से राधा मूर्छित होकर गिर पड़ी। सखियों ने पूछा तो जल्दी में कह दिया। 'साँप ने काट लिया' विष उतारने वाले गारूड़ी की खोज हुई। सभी असफल रहे। अन्त में नन्द-पुत्र गारूड़ी बनाकर बुलाये गये। प्रेम-प्रीति के विष ने राधा के हृदय पर प्रभाव डालकर शरीर को जलाना आरम्भ कर दिया था। कुँवर कन्हाई ने मन्त्र पढ़ा राधा का बार-बार आलिंगन किया तथा मुख-चुम्बन किया। राधा का विष उतर गया। मरी हुई राधिका को कृष्ण ने जिला दिया।[७७]

गोवर्धन धारण—कृष्ण के समय तक ब्रजमंडल में इन्द्र की पूजा होती थी। कृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन की पूजा आरम्भ की। बड़ी धूमधाम से पूजा का आयोजन किया गया। अपना ही एक रूप गिरि के शिखर पर प्रकट कर दिया और व्रजवासियों से कहा—मैंने सपने में यही मूर्ति देखी है इसलिए इसी मूर्ति का ध्यान करो। सबने देखा कि अपनी सहस्र भुजाएँ पसार कर गोवर्धन की मूर्ति प्रकट हो गई है। इधर कृष्ण गोपों से बात कर रहे हैं उधर सहस्र भुजाएँ उठाकर अर्पित किया

---

७५ दूध-दोहनी लै री मैया।
दाऊ टेरत सुनि मैं आऊँ तबलौं करि विधि धैया॥
मुरली-मुकुट पीताम्बर दै मोहि, लै आई महतारी।
मुकुट धरयो सिर, कटि पीताम्बर, मुरली करि लियो धारी॥
राधा-राधा कहि मुरली में खरिकहि लई बुलाइ। —सूरदास

७६ धेनु दुहत अति हीं रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी॥ —सूर सागर

७७ पढ़ो मंत्र कियो कुँवर कन्हाई।
बार बार लै कंठ लगायो, मुख चूम्यो दियो घरहि पठाई॥
× × × ×
ऐसो चरित तुरत ही कीन्हों, कुँवरि हमारी मरी जिवाई॥
—सूरदास

हुआ भोजन पा रहे हैं।[७८] इन्द्र को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने कोप करके ब्रज पर प्रलय के मेघ घहरा दिये। सबने कृष्ण को ही इसका कारण बताया। रक्षा के लिये सब उन्हीं की शरण में गए। ब्रजवासी सब उनकी ओर ऐसे देखने लगे कि जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है। कृष्ण ने उन्हें धीरज दिया। नन्द गोप ग्वालों के सामने देवता ने यह प्रकट हो कहा कि कृष्ण मुझे हाथ उठाकर ले लें तो ब्रज की रक्षा हो जायगी। तत्पश्चात् कृष्ण ने अविलम्ब गोवर्धन पर्वत उठा लिया।[७९] कहीं पर्वत कृष्ण के हाथों से गिर न जाय इस आशंका से लाठी लेकर सभी पर्वत को टेक कर खड़े हो गये। इस घटना के बाद ब्रज में कृष्ण की महिमा का गुणगान होने लगा। कोमल भुजाओं से गोवर्धन कैसे उठा लिया? माता कृष्ण को भुजा को स्नेह से दबाती हैं, बलराम यह देखकर हँसने लगते हैं।

अन्त में इन्द्र का मान भंग होता है और वह ब्रज में आकर कृष्ण के चरणों में आ गिरता है। कृष्ण ने उन्हें अभयदान दिया।[८०]

वरुण से नन्द को छुड़ाना—एक बार नन्द बाबा यमुना में स्नान करने गये। जल देवता के दूतों ने यह जान लिया और वे नन्द को बाँध कर पाताल ले गये। वरुण ने उन्हें कृष्ण का पिता समझकर अन्तःपुर में रानी के महलों में रखा। वरुण ने समझ लिया कि पिता की सूचना पाते ही अब कृष्ण आयेंगे। इस बहाने उन्हें भी कृष्ण का दर्शन होगा। वही हुआ भी। कृष्ण वरुण गृह में आकर उन्हें छुड़ाकर ले आये।[८१]

---

७८ सुपने मैं देख्यौ इहिं मूरति, यहै रूप धरि ध्यान धियावहु।
इकमन, इकचित अरपित करिकै, प्रगट देव-दरसन तुम पावहु॥
तथा
देखहु री हरि भोजन खात।
सहस भुजा धरि उत जेंवत हैं, इतहिं कहत गोपनि सौं बात। —सूरदास

७९ स्याम लियो गिरिराज उठाइ। —सूरदास

८० सुरपति चरन परयौ गहि धाइ।
× × × ×
जो बालक जननी सौं बिरुझैं, माता ताकौं लेइ मनाइ॥ —सूरदास

८१ कहत स्याम जनि रोवहु माता, अबहीं आवत हैं नंद बाबा।
× × × ×
बरुन-लोक तबहीं प्रभु आए। सुनत बचन आतुर ह्वै धाए॥
× × × ×
बरुन धाणि नंदहि लै आये। महर गोप सब देखन धाए। —सूरदास

चीर-हरण—कात्यायिनी व्रत करने वाली कुमारिकाएं जमुना में स्नान करके सूर्य की विनय करने लगीं। वे सब कृष्ण को पति रूप में चाहती थीं। उनका तप देख कर कृष्ण ने उन पर कृपा की। उनके वस्त्राभूषण लेकर कदम पर टाँग दिये। गोपियों को इससे बड़ा सुख प्राप्त हुआ। अन्त में उनके वस्त्राभूषण भी उन्हें प्राप्त हुए।[८२]

यज्ञ पत्नियों पर अनुग्रह—एक दिन गोचारण करने कृष्ण वन में गये। वहाँ उन्हें भूख लगी। कृष्ण ने ग्वालों से कहा कि ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उनसे भोजन माँग लाओ। ग्वालों के माँगने पर ब्राह्मणों ने भोजन नहीं दिया, तब कृष्ण ने उन्हें उनकी पत्नियों के पास भेजा। सब ब्राह्मण पत्नियाँ स्वयं भोजन लेकर कृष्ण के पास आईं। केवल एक ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को नहीं आने दिया। उसने अपने प्राण त्याग दिये।[८३]

पनघट-लीला—इसके अन्तर्गत कृष्ण का घड़ा फोड़ देना तथा मुरली बजाकर गोपियों को मुग्ध बनाना, वर्णित है।

राधा कृष्ण विवाह—राधा कृष्ण का प्रेम दिन पर दिन गहरा होता गया। एक दिन बरसाने में दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है। यह विवाह प्रकृति के कुंज-मंडप

---

८२ सोरह सहस घोष कुमारि।
देखि सबकों स्याम रीझे, रहीं भुजा पसारि॥
बोलि लीन्हो कदम के तर, इहाँ आवहु नारि।
× × × ×
बसन भूषन सबनि पहिरे, हरष भईं सुकुमारि॥ —सूरदास

८३ हरि कह्यो जग्य करत तहँ बाम्हन। जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन।
× × × ×
जग्य-हेत हम करी रसोई। ग्वालनि पहिलें देहि न सोई॥
× × × ×
ग्वाल-बाल तीयनि पैं आए। हाथ जोरि कै सीस नवाए।
हरि भोजन माँग्यो है तुम सों।
तिन धनि भाग आपनो मान्यो। जीवन जन्म सफल करि जान्यो।
भोजन बहु प्रकार तिनि दीन्हो। काहूं अपनें सिर धरि लीन्यो।
काहू पुरुष निवारयो आइ। कहाँ जाति है री अतुराइ।
तिन तो कह्यो न कीन्हो कानी। तन तजि चली विरह अकुलानी॥
—सूरदास

में होता है।[८४] कंगन की गांठ खोलते समय कृष्ण के हाथ काँपने लगते हैं किन्तु फिर सहज भाव से गाँठ खोल देते हैं।[८५] ब्रज की सब रीति होती है और बरसाने में ब्याह।[८६] चन्दन के रथ पर राधा के साथ कृष्ण बैठे हैं। श्यामल शरीर, सिर पर मुकुट, गले में वन माला, कानों में कुंडल चमक रहे हैं। कमर में पीताम्बर तथा कंधों पर उत्तरीय ऐसा लहर रहा है जैसे बादल में बिजली। पखावज नृत्य करती है। देवता पुष्प वर्षा करते हैं।[८७] दोनों परस्पर रीझ रहे हैं। वे एक प्राण दो देह हैं। स्वामी स्वामिनी मिलकर रंग-विलास कर रहे हैं।[८८] कभी कृष्ण राधा की वेणी गूंथते हैं, कभी पैरों में महावर लगाते हैं। कभी परस्पर पान का बीड़ा खिलाते हैं। कभी शतरंज और चौपड़ खेलते हैं। कभी फूल-डोल झूलते हैं तथा बसन्त में रंग और गुलाल से परस्पर होली खेलते हैं।

संभोग प्रसंग—इस प्रसंग में संभोग के चित्र भी कवियों ने खूब खींचे हैं। कृष्ण काव्य में संभोग के खुले चित्र उतारे गये हैं। सूर ने भी संभोग तथा रति क्रीड़ा

---

८४ तब देत भाँवरि कुंज-मंडप, प्रीति ग्रंथि हियें परी।
अति रुचिर परम पवित्र राका, निकट बुंदा सुमखरी॥
गाए जु गीत पुनीत बहु विध, बेद-रुचि-सुन्दर ध्वनी।
श्री नंद-सुत वृषभानु-तनया रास में जोरी बनी॥ —सूरदास

८५ आपुन कौं तुम बड़े कहावत, काँपन लागे हाथ।
× × × ×
सहज सिथिल पल्लव तें हरि जू, लीन्ही छोरि संवारि॥
किलकि उठीं सखी स्याम की, तुम छोरी सुकुमारि। —सूरदास

८६ ब्रज की सब रीति भई, बरसानैं ब्याह। —सूरदास

८७ चंदन के स्यंदन बैठे हरि, संग श्री राधा गोरी।
अति आनंद निरखि जुवती जन, डारत हैं तृन तोरी॥
तनु घनस्याम, मुकुट, बन माला, कुंडल-किरनि अति चमकति।
पीताम्बर कटि-तट, उपरैना, नभ दामिनि मनु दमकत।
बाजत ताल, पखाउज, झालरि, गुन गावत ज्यों हरषत।
नाचति नटी सुलय गति उमंगत, सूर सुमन सुर बरषत॥ —सूरदास

८८ रीझे परस्पर बर-नारि।
कंठ भुज-भुज धरे दोऊ, सकत नहीं निवारि॥
× × × ×
प्रान इक, द्वै देह कीन्हे, भक्ति-प्रीति-प्रकास।
सूर स्वामी स्वामिनी मिलि, करत रंग-बिलास॥ —सूरदास

को चर्चा की है। आलिंगन और चुम्बन की चर्चा तो सहज रूप से की गई है। कुछ कवियों ने रासलीला तथा दानलीला आदि के अन्तर्गत भी इसका समावेश किया है। अधिकांश काव्य माधुर्य-भाव से सम्बन्धित है अतः शृंगार के विभिन्न प्रसंगों के बीच रति वर्णन किया गया है। रति-युद्ध का वर्णन प्रायः समस्त कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के काव्य में प्राप्त होता है।

रास पंचाध्यायी—शरद की रात्रि में कृष्ण ने मुरली बजा-बजाकर घोप-कुमारियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। सब अपना घर पति तथा पुत्र-पुत्रियों को त्याग कर कृष्ण के निकट चलीं आईं। पति-पुत्र का प्रेम छोड़कर सोलह हजार गोपियाँ वहाँ आ उपस्थित हुईं। जिनको उनके पति ने रोक लिया। उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।[८९] गोपियों के आने पर कृष्ण उन्हें समझाने लगे। उस स्त्री को धिक्कार है जो पति को त्याग देती है। उस पति को धिक्कार है जो स्त्री को त्याग देता है। तुम सब जाकर कपट त्याग कर पति-पूजा करो।[९०] वस्तुतः श्याम के हृदय में प्रीति और मुख में कपट-वचन थे।[९१] वे कहने लगीं 'अब हम घर लौट कर नहीं जायेंगी। तुमने वेणु बजाकर बुलाया क्यों?'[९२] तब कृष्ण ने कहा—'तुम्हारा दृढ़ नियम धन्य है। बिना मोल मेरे हाथ बिक गई हो।[९३] तुमने मेरे लिए तप किया है अतः मैं तुम्हारे साथ रास रचाऊँगा। ब्रज-युवतियाँ चारों तरफ थीं; बीच में कृष्ण तथा वाम दिशा में

---

८९ मुरली-धुनि करी बलबीर।
सरद निसि का इंदु पूरन, देखि जमुना-तीर॥
सुनत सो धुनि भईं व्याकुल, सकल घोष-कुमारि।
अंग अभरन उलटि साजे, रही कछु न सम्हारि॥
गईं सोरह सहस हरि पैं, छाँड़ि सुत-पति-नेह।
एक राखी रोकि कै पति, सो गई तजि देह॥

—सूरदास

९० यह जुवतिन को धरम न होइ।
धिक् सो नारि पुरुष जो त्यागै, धिक् सो पति जो त्यागै जोइ॥ —सूरदास
कपट तजि पति करो पूजा, कहा तुम जिय गुनौ। —सूरदास
९१ स्याम-उर प्रीति मुख कपट-बानी। —सूरदास
९२ भवन नहीं अब जाहि कन्हाई।
तथा
सुनहु स्याम अब करहु चतुराई, क्यों तुम बेनु बजाइ बुलाई। —सूरदास
९३ कहत स्याम श्री मुख यह बानी।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारो, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी। —सूरदास

राधा छवि पा रही थीं।[९४] रास प्रारम्भ हुआ। सूर द्वारा प्रस्तुत रास वर्णन में; मध्य में राधा-कृष्ण तथा चारों ओर गोपियां हैं। इसी प्रकार का वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों ने किया है। सूर ने सोलह हजार गोपियों और सोलह हजार ही कृष्ण महारास में वर्णित किये हैं। वे सब मंडलाकार होकर नृत्य करते हैं।[९५] रास का वर्णन राधा-वल्लभ सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में भी मनोयोग से किया गया है। किन्तु वहां गोपियों के स्थान पर सखियाँ हैं।

रास में कभी केवल कृष्ण और राधा हैं, कभी कृष्ण केवल गोपियों के साथ हैं। अधिकांश समय राधा और गोपी दोनों के साथ कृष्ण ने रास रचाया है। रास में घटनाओं की उद्भावना सूर की विशेषता है। राधा को साथ लेकर कृष्ण अचानक अन्तर्धान हो जाते हैं। मोहन-मोहन कह कर गोपी व्याकुल उन्हें खोजती फिरती हैं। संग छोड़कर श्याम कहां गए। राधा, कृष्ण को अपने साथ ही ले गई।[९६] तब राधा को गर्व हुआ। 'मेरे समान कोई अन्य स्त्री नहीं है। मेरे ही लिये प्रिय ने रास रचा है।' कहने लगी 'हे प्रिय मुझे अपने कंधे पर चढ़ालो। नृत्य करते-करते थक गई हूं। मेरी थकान मिटा दो।' कृष्ण सुनकर मुस्कुराने लगे[९७] वे वहां से भी अन्तरधान हो गये।

---

९४ कियौ जिहि काज तप घोष-नारी।

× × × ×

रास रस रचौं, मिलि संग बिल सौं।

ब्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुन्दर स्याम, राधिका बाम, अति छवि बिराजै।

—सूरदास

९५ रास मंडल-मध्य स्याम राधा।

× × × ×

नायिका अष्ट अष्टहु दिसा सोहहीं, बनी चहुँ पास सब गोप कन्या।

मिले सब संग नहिं लखत को उपरसपर, बेन षट-दस-सहस कृष्न सन्या॥

—सूरदास

९६ व्याकुल भई घोष-कुमारि।

स्याम संग तजिकै कहाँ गए, यह कहति ब्रजनारि॥

× × × ×

राधिका नहिं तहाँ देखी, कह्यौ वाके ख्याल। —सूरदास

९७ तब नागरि जिय गर्व बढ़ायौ।

मो समान तिय और नहीं कोउ, गिरधर मैं हौं बस करि पायौ।

तथा

कहै भामिनी कंत सौं, मोहि कंध चढ़ावहु।

नृत्य करत अति श्रम भयो, ता श्रमहिं मिटावहु॥

× × × ×

तिया वचन सुनि गर्व के पिय मन मुसुकाने। —सूरदास

अब राधा विलाप करने लगी। अचानक एक क्षण कृष्ण, राधा और गोपियों के समक्ष प्रकट हो जाते हैं। उसी शरद रजनी में पुनः रास का आयोजन होता है। रजनी सुख में व्यतीत होती है। प्रातःकाल जल विहार होता है।

जल विहार—कृष्ण राधा तथा गोपियों के साथ जल विहार कर रहे हैं। एक गोपी दूसरी गोपी से मिलकर हँसती है। कोई कृष्ण के साथ रहती है, कोई जल के बीच में तथा कोई जमुना-तीर पर खड़ी रहती है। एक जल में छिप जाती है। कोई एक दूसरी को अंक में भर कर चलती है। श्याम और श्यामा के साथ गोपिका अत्यन्त मगन है।[९८]

राधा कृष्ण का क्रीड़ा कौतुक—राधा और कृष्ण भाँति-भाँति के क्रीड़ा कौतुक करते हैं। कुंज में विहार करते हैं। दोनों मिलकर कंदुक-क्रीड़ा कर रहे हैं।[९९] कभी गोपियाँ उन्हें झुलाती हैं तो कभी राधा। कभी होली खेलते हैं तो कभी दोनों मिलकर नृत्य करने लगते है। नित्य रास में कहीं प्रतिक्षण नृत्य करते रहते है तो नित्य विहार में प्रेम क्रीड़ाएँ करते रहते है। ऐसे समय राधा से प्रथक उनका अस्तित्व ही नहीं रहता। वे दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। जो कृष्ण करते हैं वह राधा को अच्छा लगता है और जो राधा करती हैं वही कृष्ण को भाता है।[१००] कभी राधा कृष्ण की सहज जोड़ी ऐसे एक होकर प्रकट होती है जैसे बाद में बिजली।[१०१] गोपी मंडलाकार है। सब मिलकर नई छवि देखते हैं।[१०२] श्याम श्यामा दोनों सजधज कर बैठे हैं परस्पर टीका लगा रहे हैं।[१०३] रस भरे दोनों

---

९८ एक इक मिलति हँसि, एक हरि संग रसि, एक जल मध्य इक-तीर ठाढ़ी।
एक इक दुरति, इक अंक भरि के चलति, एक सुख करति अति नेह बाढ़ी।
× × × ×
सूर प्रभु स्याम-स्यामा संग गोपिका, मिटी तनु-साध भई मगन भारी॥

—सूरदास

९९ कंदुक केलि करत सुकुमारी। —सूरदास

१०० जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै, भावै मोहि जोइ, सोइ करै प्यारो।

—हित हरिवंश

१०१ माई री सहज जोरी प्रगट भई, जु रंग की-गौर स्याम घन-दामिनि जैसे।

—स्वामी हरिदास

१०२ सब मिलि निरखत नवल छवि, गोपी मंडलाकार।
बीच युगल सरसावहीं, अति रुचि सरद बिहार॥ —श्री भट्ट

१०३ बनि-ठनि कै दोऊ बैठे स्यामा स्याम री देति परस्पर टीके।

—सूरदास मदन मोहन

गोपियों के बीच में रास-मंडली में खड़े दिखाई दे रहे हैं।[१०४] राधा कृष्ण को नृत्य सिखाती है।[१०५] कभी राधा कृष्ण की आराधना करती हैं, कभी दोनों समान प्रेम के अधिकारी होते हैं तथा कभी कृष्ण राधा के पैर पलोटते दृष्टिगोचर होते हैं।[१०६] प्रेमी और प्रेम पात्र में कौन बड़ा और कौन छोटा है, इसका हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता। राधा मान करती हैं; कृष्ण मनाते हैं उनका मोर मुकुट राधा के पैरों पर लोटता है। कृष्ण भक्त कवियों ने राधाकृष्ण के प्रेम-प्रसंग को अत्यधिक विस्तार दिया है। जिसको ब्रह्मा और शिव भी शिर झुकाते हैं उससे राधा वन-फूल बिनवा लेती है।[१०७] आगे राधा उसके पीछे ललिता। कृष्ण राधा के मार्ग में फूल बिछाते चलते हैं।[१०८]

शंखचूड़-वध—जिस समय गोपियाँ प्रणय-रस में डूब रही थी, शंखचूड़ बाधा डालने को आ गया। सब गोपियों को लेकर भाग चला। गोपियाँ कृष्ण कृष्ण कहकर चिल्लाईं। कृष्ण तुरन्त पहुँचे तो दानव उन्हें देख कर डर गया। मुक्का मार कर उसे गिरा दिया और वह मर गया।[१०९]

वृषभासुर-वध—कृष्ण के ब्रज में लौटने पर वृषभासुर आया। वह बैल का रूप धारण करता सींगों से धरती खोदता हुआ चला। कृष्ण ने उसे देखा तो युद्ध किया और सब सखाओं को हाँक देकर उसका वध कर दिया।[११०]

---

१०४ रस भरे मध्य राजत खरे देखि दोऊ नंद नन्दन कुँवर वृषभान की लली।

—गदाधर भट्ट

१०५ पिय कों नाचन सिखवति प्यारी। —हरि राम व्यास

१०६ देख्यो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका-पायन। —रसखान

१०७ जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापै तैं बन फूल बिनाये। —हित हरिवंश

१०८ पाछें ललिता, आगे स्याम प्यारी।
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात। —सूरदास मदन मोहन

१०९ संख चूड़ तिहिं अवसर आयो।
× × × ×
मुष्टिक मारि गिराइ दियो तिहिं, गोपिनि हरष बढ़ायो। —सूरदास

११० इहिं अंतर वृषभासुर आयो।
× × × ×
कूदि परयो हरि ऊपर आयो, कियो युद्ध अति भारी।
पाछें पकरि भुज सौं फेरयो, भूतल माँहि पछारयो॥ —सूरदास

केशी-वध—कंस का भेजा हुआ केशी असुर आया और व्रज में अनेक उत्पात मचाने लगा। कृष्ण ने उससे कहा—तू मेरे पास क्यों नहीं आता। तब वह दोनों हाथों को ऊपर उठाये हुये कृष्ण की ओर भागता हुआ आया। एक बार उसको धकेल दिया किन्तु उसका भयंकर रूप देखकर सब डरने लगे। दाँव-घात करने के बाद कृष्ण ने उसे केश पकड़कर पटक दिया।

व्योमासुर-वध—कृष्ण ग्वालों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय व्योमासुर बालक बनकर वहाँ आया। ग्वाल रूप होकर खेलने लगा। ग्वालों को ले जाकर कंदरा में रखता रहा। कृष्ण ने उसका अन्त कर दिया।[111]

दान लीला—गोपियों से दही मक्खन आदि का दान माँगने का प्रसंग कृष्ण-भक्ति काव्य में दानलीला के नाम से प्रसिद्ध है। गोरस का दान माँगते माँगते वस्तुतः कृष्ण 'गोरस' का दान माँग लेते हैं। उनके सखा-गोपगण इसमें उनको सहायता करते हैं। वे कहीं छिप जाते हैं। जब ब्रज युवतियां आती हैं वे दही माखन छीन लेते हैं। पनघट पर भी उनकी राह रोक लेते हैं।[112] दानलीला होती है। ग्वालिनी घड़ा भर कर चली तो अचानक कृष्ण ने उसकी माथे पर लटकती लट पकड़ कर कहा—'कहाँ चलीं ?[113] और वे यौवन का दान माँगने लगते हैं।[114] यह दान लीला कभी केवल राधा के साथ होती है कभी गोपियों के साथ। इस दान लीला का कृष्ण-काव्य में अत्यधिक विस्तार हुआ है। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के अतिरिक्त राधा वल्लभ ध्रुवदास ने भी 'दानलीला' नामक काव्य-ग्रन्थ लिखा है। हरिराय जी ने 'दानलीला' स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है। दान विनोद लीला में दान लीला की सब घटना सखियों की इच्छा से घटित होती है। यमुनातट पर कृष्ण खड़े होते है राधा उधर से आती है। कृष्ण को दान के लिए जो कुछ कहना है, ललिता से कहते हैं। ललिता प्रवीण है। 'वह

---

१११ दाऊँ-घात सब भाँति करत है, तब हरि बुद्धि उपाइ।
एक हाथ मुख-भीतर नायो, पकरि केस घिसियाइ॥ —सूरदास

११२ सब दधि बेंचन जाहिं, मारग रोकि रहे।
ग्वारिनि देखत धाइ, अंचल आइ गहे॥ —सूरदास

११३ ग्वारि घट भरि चली झमकाइ।
स्याम अचानक लट गहि कही प्रति, कहा चली अतुराइ॥ —सूरदास

११४ जोबन-दान लेउँगौ तुम सौं।
जाकैं बल तुम बदति न काहूँहि, कहा दुरावति हम सौं॥

× × × ×

सूर सुनो बिन दिये दानके, जान नहीं तुम पावहु॥ —सूरदास

इहि ठाँ बिन कुंजेश्वरी नहि काहू को मान।' कृष्ण उसके पैरों पर सिर रख देते हैं और राधा रतिदान देकर कृष्ण को प्रसन्न कर देती हैं। गौड़ीय कवि माधवदास की 'दानमाधुरी' में वर्णित दानलीला बहुत कुछ ध्रुवदास के समान है। ललिता यहाँ भी मध्यस्थ है। राधा का प्रभुत्व संप्रदाय की विशेषता के कारण यहाँ भी स्पष्ट है। कृष्ण सखियों को भेजकर एकान्त की व्यवस्था करते हैं।[११५] हरिराय जी की दानलीला में कृष्ण राधा से दान माँगते हैं।

मान लीला—राधा का मान, लघु मान लीला, बड़ी मान लीला, गुरु मानलीला आदि प्रसंगों के अन्तर्गत मानलीला की चर्चा हो चुकी है। छोटी-मोटी बातों पर कृष्ण से रूठ जाना तो नित्य की बात थी किन्तु मानलीला के अन्तर्गत गम्भीर विषय पर भी राधा मान करके बैठती है। सूरदास, ध्रुवदास तथा माधवदास ने राधा के मान का कारण कृष्ण के शरीर में स्वप्रतिबिम्ब दर्शन बताया है।[११६] मान भंग के पश्चात् कृष्ण पीताम्बर ओढ़ लेते हैं जिससे पुनः भ्रम न हो।[११७] माधवदास के कृष्ण भी मान दूर करने के बाद एक झीना वस्त्र ओढ़ लेते हैं। सूर में सखी ललिता है अन्य कवियों ने 'सखी' अथवा 'दूती' का ही प्रयोग किया है।[११८]

राधा के मान का दूसरा गम्भीर कारण कृष्ण का बहुनायकत्व है। ऐसी दशा में राधा खण्डित नायिका होकर मान करती है। कृष्ण के बहुनायकत्व के प्रसंग में ललिता, चन्द्रावली, शीला, वृन्दा, सुषमा, कामा आदि नायिकाओं के नाम आये हैं। यहाँ कृष्ण का बहुनायकत्व उन्मुक्त रूप से प्रगट हुआ है। कृष्ण रात्रि कहीं व्यतीत कर

---

११५ अबलों हौं चुप ह्वै रही, अब तो रह्यो न जाय।
एक एक ते टेक यह, लेहौं दान चुकाय॥ —माधवदास

११६ कियो अति मान वृषभानु बारी। देखि प्रतिबिम्ब पिय हृदय नारी॥
—सूरदास

११७ जहि डर रहत पीतम्बर ओढ़े कहा कहौं चतुराई।
अब जनि कहे हिये में को है बहुरि परी कठिनाई॥ —सूरदास

११८ तब कछु प्यारे लाल कीनो है जतन एक नखसिख लाल
ओढ़ि लीनों पट झीनों है।

× × × ×

तिरछी ह्वै चाही तब संभ्रम सों मिटि गयो हँसि मुसिकाय
पियो सोहे मुख करि कें।
पट में न प्रतिबिम्ब देख्यो निज अंगनि कों,
कछुक लजाय रही नीचे मुख करिकें॥ —माधवदास

जब प्रातःकाल घर आते है तो उनका रूप दर्शनीय होता है। नेत्र उनींदे हो रहे हैं। आँखे नये कमल की तरह लाल हो रही हैं। कपोल पर पान की पीक, माथे पर महावर रोली का तिलक मिटा हुआ। अधर पर अंजन केश मुखपर बिखरे हुए हैं।[११९] राधा इस पर क्रोध करती है तथा मान करके बैठ जाती है। कृष्ण उसके पास जाते में सहम जाते हैं उनका चित कांपने लगता है।[१२०] सखियाँ विविध चेष्टा करती हैं और राधा अपना मान त्याग देती है। पुनः दोनों परस्पर प्रेम में पग जाते है। मान-भंजन के पश्चात् प्रेम में एक नया रंग आ जाता है। झूलना, जल क्रीड़ा करना, बसन्त-क्रीड़ा तथा अन्य विविध क्रीड़ाएँ आरम्भ हो जाती है।

मथुरा लीला

अक्रूर,संग मथुरा-गमन—संगीत, नृत्य आदि चौसठ कलाओं से युक्त प्रेम के मनोहर वातावरण में एकाएक अवरोध आ गया। कंस ने अक्रूर को ब्रज में भेजा। बलराम और कृष्ण दोनों ही मथुरा बुलाए गये थे। अक्रूर के ब्रज में आते आते साँझ हो गई। उन्हें चारों दिशाएँ कृष्ण से परिपूर्ण जान पड़ीं। उसी समय ब्रज-बन-पथ में गाएँ दुहते हुए कृष्ण उन्हें दृष्टिगोचर हुए। अक्रूर ने दौड़ कर चरण छू लिए। अक्रूर को देख कर ब्रज के नर-नारी अत्यन्त व्याकुल हुए। किन्तु कृष्ण को जाना था अतः सबको समझा-बुझाकर वे मथुरा की ओर चल दिए। हे नन्द-बाबा गायों को संभालो। आपने हम दोनों भाइयों को दूध-दही खिलाकर पाला पोषा है। तुम्हारे ये

---

११९ देखियत लाल उनींदे भए।
राजत हैं रतनारे नैना, मानहुँ नलिन नए।।
पीक कपोल, ललाट महावर, बंदन बलित लए।

× × × ×

अंजन अधर, सुमंग लिख्यो रति, दीच्छा लेन गए।
सूर स्याम बिथुरे कच मुख पर, नख नाराच हए।। —सूरदास

१२० राधेहिं स्याम देखी आइ।
महामान हढ़ाइ बैठी, चितै कापै जाइ।।
रिसहिं रिस भई मगन सुन्दरि, स्याम अति अकुलात।
चकित ह्वै थकि रहे ठाढ़े, कहि न आवै बात।। —सूरदास
देखि व्याकुल नंद-नंदन, सखी करति बिचार,
सूर दोऊ मिलैं जैसे, करो सोइ उपचार। —सूरदास

गुण हम कभी नहीं भूलेंगे ।[१२१] राह में अक्रूर ने यमुना तीर पर रथ खड़ा कर दिया तथा स्वयं यमुना-स्नान करने गये । जैसे ही जल में डुबकी लगाई कि कृष्ण-बलराम की छवि जल के भीतर दृष्टि गोचर हुई । जल से मुंह निकाल कर रथ की ओर देखा तो रथ में भी कृष्ण बलराम बैठे हुये कलेवा कर रहे थे ।[१२२] उन्हें कृष्ण के ऐश्वर्य का ज्ञान हुआ । मथुरा में कृष्ण का धूमधाम से स्वागत हुआ । सबने उन्हें आश्चर्य और प्रेम से देखा ।

रजक-वध—धनुषशाला की ओर जाते-जाते कृष्ण ने रजक का वध किया ।[१२३]

सुदामा-गृह-गमन—सुदामा माली अपने घर कृष्ण को ले गया । माला अर्पित की और पैरों में सिर रख दिया ।

कुब्जा प्रसंग—चंदन का अंगराज लेकर आती हुई कुब्जा मिली । श्याम के अंग में लेप किया । उसकी सेवा से रीझ कर कृष्ण ने ग्रीवा का स्पर्श करके उसकी पीठ पर अपना पैर रख दिया । इस प्रकार कुब्जा को उरबसी के रूप के समान रूपवती बना दिया ।[१२४] कुब्जा प्रसंग एक प्रसिद्ध प्रसंग है ।

धनुर्भंग तथा कुवलयापीड़ वध—कुवलयापीड़ हाथी को बलराम ने राह से हट जाने को कहा किन्तु महावत ने बात नहीं मानी । गजराज तथा गजपाल दोनों ही

---

१२१ अब अंब गाइ लेहु संभारि ।
जो तुम्हारें आनि बिलमे, दिन चराई चारि ।।
दूध दही खवाइ कीन्हे, बड़े अति प्रतिपारि ।
ये तुम्हारे गुन हृदय तें, डारि हौं न बिसारि ।। —सूरदास

१२२ गए कटि भोर लौं नित्य संकल्प करि, करत अस्नान इक भाव देख्यौ ।
जैसेइ स्याम बलराम स्यंदन चढ़ें, वहै छबि कुंभ-रस माझ परेख्यौ ।।
चकित भए कबहुँ तीर पुनिजल निरखि, दोष अक्रूर जिय भयौ भारी ।
—सूरदास

१२३ नृपति के रजक सौं भेंट मग में भई कह्यौ दै बसन हम पहिरि जाहीं ।

× × × ×

एक ही मुष्टि का प्रान ताके गए, लए सब बसन कछु सखनि दीन्हें ।।

१२४ पुनि सुदामा कह्यौ गेह मम अति निकट, कृपा करि तहाँ हरिचरन धारे ।
धोइ पद-कमल पुनि हार आगें धरे, भक्ति दै तासु सब काज सारे ।।
लिए चंदन बहुरि आनि कुबिजा मिली, स्याम अंग लेप कीन्हे बनाई ।
रीझि तिहिं रूप दियो, अंग सूधो कियो, बचन सुभ भाषि निज गृह पठाई ।।

क्रोधित हुए। तब कृष्ण ने पूँछ पकड़ कर दाँत उखाड़कर धरती पर पटक दिया।[१२५] फिर कृष्ण जहाँ धनुष था वहाँ गए। वहाँ छूते ही धनुष टूट गया।[१२६]

मुष्टिक-चाणूर-वध—नंद पुत्र कृष्ण चाणूर से कमर में पीला फैंटा बांधकर भिड़ गये। बलवीर मुष्टिक से भिड़े। कृष्ण ने दौड़ कर चाणूर को पकड़ लिया और झटक कर धरती पर गिरा दिया। उसके गिरने पर बड़ा भयानक शब्द हुआ।[१२७]

कंस वध—कृष्ण जहाँ कंस बैठा था वहाँ पहुँच गये। देखते ही कंस का तेज समाप्त हो गया। ढाल-तलवार छोड़ कर महल की ओर भागा किन्तु भागने के लिये व्याकुलता के कारण खोजने पर भी द्वार नहीं पाता। कृष्ण ने एक लात मारी। उसके लगते ही सिर से मुकुट गिर गया। कृष्ण ने उसके केश कस कर पकड़ लिये और खींचकर नीचे ले आये। विष्णु रूप धारण करके उसे दर्शन दिया तथा निर्वाण पद प्रदान किया।[१२८]

---

१२५ कूबरी नारि सुन्दरी कीन्ही।
साध में बास बिनु भाव नहिं पाइयें, जानि हिरदें हेत मानि लीन्ही।
ग्रीव कर परसि पग पीठि तापर दियो, उरबसी रूप पटतरहिं दीन्ही॥
—सूरदास

१२६ सुनिहि महावतं बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नहिं ह्यांतें गज टारी। —सूरदास
तथा
पटक्यो भूमि, फेरि भटक्यो लीन्हो दंत उपारि॥ —सूरदास
पुनि गए तहाँ जहँ धनुष, बोले, सुभट, हौंस जनि मन करो बन-बिहारी।
सूर-प्रभु छुवत धनु टूटि धरनी परयो सोर सुनि कंस भयो भ्रमित भारी॥
—सूरदास

१२७ गह्यो कर-स्याम भुज मल्ल अपने धाइ, झटकि लीन्ही तुरत पटकि धरनी।
भटकि अति सब्द भयो, खटक नृप के हियें, अटकि प्रानति परयो चटक करनी॥
—सूरदास

१२८ जाइ पहुँचे तहां कंस बैठ्यो जहां, गए अवसान प्रभु के निहारें।
ढाल तरवारि आगें धरी रहि गई, महल को पंथ खोजत न पावत॥
लात कें लगत सिर तें गयो मुकुट गिरि, केस गहि लै चले हरि खसावत।
चारि भुज धारि तेंहि चारु दरसन दियो, चारि आयुध चहुँ हाथ लीन्हे॥
असुर तजि प्रान निरवान पद कौं गयो बिमल मति भई प्रभु रूप चीन्हे।
—सूरदास

उग्रसेन को राजगद्दी—कंस के पिता अपने नाना को कृष्ण ने राज्य दे दिया। सिंहासन पर बिठाल कर अपने हाथ से चँवर डुलाया। अपनी माता देवकी और पिता वसुदेव का संकट मेट दिया। कंस की रानियां सती होने से बचालीं।[१२९]

यज्ञोपवीत उत्सव—पिता वसुदेव ने कृष्ण बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार कराया नंद गोकुल को विदा हो गये।

गोपियों का विरह—उधर गोकुल में गोपियाँ और राधा, कृष्ण के विरह में व्याकुल हो रही हैं। सारा ब्रज कृष्ण के विरह में डूब रहा है। जो कुंजें कृष्ण के गोकुल रहने पर शीतल और सुन्दर जान पड़ती थीं वे ही अंगारे की तरह जलाने वाली हो गई हैं। कृष्ण गोपियों की इस दीन-दशा से अपरिचित नहीं थे किन्तु वे स्वयं भी ब्रज को याद करते थे। कर्तव्य का ज्ञान उन्हें ब्रज में वापस जाने से रोकता था। इसीलिए अपने अन्तरंग सखा उद्धो को उन्होंने ब्रज में गोपियों के पास भेजा। यदि गोपियाँ योग धारण कर लें तो कृष्ण के प्रति विरह के विष से मुक्त हो सकती हैं। दूसरी ओर कृष्ण को गोपियों के प्रेम पर अखण्ड विश्वास था। गोपियाँ प्रेममयी हैं। वे आपाद मस्तक उनके प्रेम में पगी हैं अतः ज्ञानो-ऊधो भी देखलें कि उनका प्रेम कितना गहरा है। अन्त में वही होता है। ऊधो की ज्ञान गठरी का वहाँ कोई मूल्य नहीं आंका जाता। सब कृष्ण की ही धुन लगाये रहती हैं। यह प्रसंग 'भ्रमर गीत' के नाम से प्रसिद्ध है। विप्रलंभ शृंगार का इससे बढ़कर कोई दूसरा प्रसंग-हिन्दी काव्य में नहीं है। सूर के अतिरिक्त नंददास ने 'भँवर-गीत' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है। तुलसी की कृष्ण गीतावली में तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के स्फुट पदों में इस विषय के भी पद प्राप्त होते हैं।

जरासंध-विजय, कालयवन और मुचकुंद वध, द्वारका-प्रस्थान—जरासंध के साथ कृष्ण का युद्ध हुआ। जरासंध पर विजय पाली तथा अपने घर लौट आए।[१३०] सत्रह बार जरा संध ने मथुरा पर चढ़ाई की और हर बार हार कर ही लौटा। तब वह कालयवन को साथ लेकर आया। उस समय कृष्ण ने मथुरा छोड़ कर सिन्धु तट पर

---

१२९ मथुरा लो गनि बात सुनो यह, उग्रसेन को राज दियौ।
सिंहासन बैठारि कृपा करि, आपु हाथ सौं चँवर लियौ॥
मातु पिता को संकट मेट्यौ, देवनि कै धुनि शब्द कियौ।
रानी सबै मरत तैं राखी, उनतैं प्रभु नहिं और बियौ॥ —सूरदास

१३० आनंद मधुबन के वासी, गुनी नगर के लोक।
जरा सिंधु कौं जीति सूर-प्रभु, आए अपने ओक॥ —सूरदास

नया नगर बसाया और कालयवन को मुचुकुंद द्वारा भस्म करवा दिया। तत्पश्चात् मुचुकुंद को भी जला डाला।[131]

द्वारिका लीला

द्वारिका प्रवेश—कृष्ण का रथ द्वारिका-पुरी में प्रवेश कर रहा है। उस समय की कृष्ण की शोभा का वर्णन किया गया है।

चौगान खेलना—यादव वीर तथा कृष्ण के दल में चौगान—का खेल हो रहा है।[132]

रुक्मिणी हरण—रुक्मिणी ब्राह्मण को पत्री देकर कृष्ण के पास भेजती है। "पत्री बांचते ही शीघ्र आना। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।"[133] रुक्मिणी जैसे ही देवी-मंदिर में आई। देवी मंदिर अनेक सुभटों से रक्षित था। वहाँ पक्षी भी नहीं जा सकता था। इसी मंदिर में रुक्मिणी ने गौरी-पूजन करके विनती की—'मुझे यादवराज श्री कृष्ण वर प्राप्त हों।' गौरी मुस्कराने लगीं। ज्योंही रुक्मिणी मंदिर से बाहर आईं,

---

१३१ बार सत्तरह जरा संध, मथुरा चढ़ि आयो।
गयो सो सब दिन हारि, जात घर बहुत लजायो॥
तब खिसियाइ कै काल जवन, अपनैं संग ल्यायो।
हरि जू कियो विचार, सिंधु तट नगर बसायो॥

× × × ×

काल जवन मुचुकुन्दहि सौं हरि भसम करायो।
बहुहि आइ सरनाइ प्रबल रिपु ताहि जरायो॥ —सूरदास

१३२ मन मोहन खेलत चौगान।
द्वारावती कोट कंचन मैं, रच्यो रुचिर मैदान॥

× × × ×

जब हीं हरि लै गोइ कुदावत, कंदुक कर सौं लाइ।
तबहीं औचक ही करि धावत, हलधर हरि के पाइ॥
कुंवर सबै घोड़े फेरे पै, छाड़त नहिं गोपाल।
चले प्रद्युत छल-बल करि जीते, सूरदास प्रभु हाल॥ —सूरदास

१३३ पाती बांचो स्याम सुजा नाहिं।

× × × ×

बांचत बेगि आइयौ माधौ, परौ जात मेरे प्राननि॥ —सूरदास

कृष्ण आ गए और तत्काल रथ में बिठा लिया।[१३४] विवाह हुआ द्वारिका में रुक्मिणी का भव्य स्वागत हुआ। कुछ समय बाद रुक्मिणी ने प्रद्युम्न को जन्म दिया।

जांबवती और सत्यभामा का विवाह—कुछ समय पश्चात् कृष्ण ने जांबवत से युद्ध करके जांबवती को प्राप्त किया तथा सत्यभामा से विवाह किया।

पंच पटरानी विवाह—कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा, तथा लक्ष्मणा से विवाह करके इन्हें, पंच पटरानी बनाया।

शतधन्वा-वध—शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि के लिए सतभामा के पिता का वध कर डाला। यह समाचार सतभामा ने कृष्ण को दिया। कृष्ण ने उसका अन्त कर दिया।

भौमासुर-वध तथा कल्प वृक्ष आनयन—सोलह सहस्र कन्याएं भौमासुर के बंदीगृह में पड़ी तड़प रही थीं। वे सब कृष्ण से प्रेम करती थी। अतः कृष्ण उन पर अनुकूल हो गये। सत्यभामा ने एक उपाय विचारा। कृष्ण से बोली 'मुझे कल्पवृक्ष देखने की इच्छा है हे नाथ। कृपा करके लाकर दिखा दो।' कृष्ण ने सतभामा की इच्छा पूर्ण की। गरुड़ पर बैठ कर भौमासुर के नगर को गये। पाषाण का बंदी-गृह एक ही बाण से गिरा दिया। शंखध्वनि को तब भौमासुर जगा। उसने क्रुद्ध होकर कृष्ण से युद्ध किया तथा कृष्ण के हाथों उसने अपने प्राण गवाए। सोलह सहस्र कन्याओं को द्वारिका पुरी भेज कर कृष्ण स्वयं भी पारिजात वृक्ष लेकर वहाँ लौट आये।[१३५]

---

१३४ रुक्मिनी देवी-मंदिर आई।
धूप दीप पूजा-सामग्री अली संग सब ल्याई॥
रखवारी कों बहुत महाभट, दीन्हे रुकम पठाई।
ते सब सावधान भए चहुँ दिसि, पंछी तहाँ न जाई॥
कुँवरि पूजि गौरी विनती करी, वर देउ जादवराई।
मैं पूजा कीन्ही इहिं कारन, गौरी सुनि मुसकाई॥
पाइ प्रसाद अंबिका-मंदिर रुकमिनि बाहर आई।
इहिं अंतर जादो पति आए, रुकमिनी रथ बैठाई॥ —सूरदास

१३५ षष्ठ दस सहस कन्या असुर बंदि में, नींद अरु भूख अहनिसि बिसारी।
प्रीति तिनकी सुमिरि भये अनुकूल हरि, सत्यभामा हृदय यह उपाई॥
कल्पतरू देखिबे की भई साध मोहिं, कृपा करि नाथ ल्यावहु दिखाई।
सत्यभामा सहित बैठि हरि गरुड़ पर, भौमासुर नगर कौं तुरत धाए॥
एक ही बान पाषन को कोट सब, हुतो चहुँ ओर सो दियो ढाए।
× × × ×
करी हरि संख धुनि जग्यो तब असुर सुनि, कोप करि भवन सौं निकसि धायो॥
× × × ×
कियो तब जुद्ध उन क्रुद्ध ह्वै स्याम सौं, हरि कह्यो गरुड़ इहिं हति प्रचारी।
× × × ×
बहुरि गए तहाँ कन्या हुतीं सब जहाँ, निरखि हरि रूप सो सब लुभाई॥
—सूरदास

नृग राजा उद्धार—नृग राजा प्रतिदिन एक हजार गउयें दान करके जल पिया करता था। तनिक सी चूक के कारण वह गिरगिट हो गया। अंध कूप से उसे निकाल कर कृष्ण ने नृग का उद्धार कर दिया।

पौंड्रक-वध—वासुदेव कृष्ण से पौंड्रक वासुदेव कहता था कि मैं ही वासुदेव हूँ। कृष्ण ने उससे युद्ध करके उसका अंत कर दिया।

जरासंध-वध—भीम और जरासंध में युद्ध हो रहा था। जरासंध को मारना कठिन जान पड़ता था। सत्ताईस दिन युद्ध हुआ। कृष्ण ने अंत में एक तिनका चीर कर दिखाया तब भीम ने संकेत समझ कर जरासंध को चीर डाला।[१३६]

शिशुपाल-गति—शिशुपाल ने कृष्ण को वैर भाव से भेजा था। अतः कृष्ण ने राजसूययज्ञ में चक्र सुदर्शन मार कर संहार कर दिया। उसका तेज अपने मुख में धारण कर लिया।[१३७]

शाल्व-वध—शिशुपाल का वैर चुकाने के लिये शाल्व द्वारिकापुरी आया। उसे भी सांगी चला कर कृष्ण ने मारा तथा सिर काट कर समुद्र में फेंक दिया।[१३८]

दंतवक्र-वध—कृष्ण की गदा लगते ही देतवक्र के प्राण निकल गए।[१३९]

सुदामा चरित्र—सुदामा-चरित्र पर अनेक कवियों ने काव्य लिखा। नरोत्तम दास का सुदामा-चरित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। सूर ने भी इस विषय पर अनेक पद लिखे हैं। निर्धनता से घबरा कर सुदामा की पत्नी ने सुदामा को उनके बालपन के मित्र श्री कृष्ण के पास कुछ मांगने को भेजा। सुदामा भेंट के लिए चावल लेकर द्वारिकापुरी आये। कृष्ण ने उनका अत्यन्त आदर किया। विधि पूर्वक अर्घ्य दिया। पांवड़े बिछाये तथा हृदय का प्रेम प्रकट किया। चंदन, अगर, कुमकुम और केसर की सुगन्ध सुदामा के अंगों पर मली गई। एक मुठ्ठी चावल कृष्ण ने फांक लिए और उसके द्वारा

---

१३६ बीस औ सप्त दिन यों गदायुद्ध कियो, दोउ बलवंत कोउ लियो न जाई।
स्याम तृन चीरि बिलराइ दियो भीम कौं, भीम तब हरषि ताको पछारयो।
—सूरदास

१३७ बैर भाव सुमिरयो सिसुपाल, ताहि राजसू में गोपाल।
चक्र सुदरसन करि संहारयो, तेज तासु निज मुख में धारयो॥ —सूरदास

१३८ सीस ताकौं बहुरि काटि करवार सों, नगर सम समुद्र में डारि दीन्हो।
—सूरदास

१३९ हरि गदा लगत गए प्रानता के निकसि, बहुरि हरि निज भवन माहिं धारे।
—सूरदास

सर्वस्व उन्हें प्रदान कर दिया। बड़ी देर तक बचपन की बातें करते रहे।[१४०] इस स्थान पर कृष्ण से चुराकर चने खाने की बात सूरदास ने कृष्ण से नहीं कहलवाई है किन्तु नरोत्तमदास ने कृष्ण सुदामा से विनोद करते हुए कहते हैं—पहले भी गुरु माता ने जब हमें चने खाने को दिये थे तो तुमने अकेले ही खा लिए थे। चोरी की आदत पुरानी है इसीलिए तुम उसमें प्रवीण हो। आज भी हमारी भाभी के दिये हुये भेंट के चावल तुमने अपनी कोख में ही दबा रखे हैं।[१४१] सुदामा अपने घर वापस आकर देखते हैं तो अपनी झोंपड़ी वहाँ न देखकर सोच में पड़ जाते हैं। ऊँचे ऊँचे महल न जाने किसके हैं? इतने में ब्राह्मणी आकर कहती है 'हे पतिदेव यह प्रभु की कृपा है। आप अपने इस महल में पधारिये।'[१४२]

कुरुक्षेत्र लीला

ब्रज की स्मृति—ब्रजवासियों के पास खबर पहुँचती है कि कृष्ण मथुरा से द्वारिका चले गये हैं। वे अब और भी अधिक व्याकुल होते हैं। विरहिणी स्त्रियाँ अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। नन्द और यशोदा भी उतने ही दुःखी हुए। इतनी दूर अब जाना कैसे हो सकेगा? उधर एक दिन रुक्मिणी ने कृष्ण को गोकुल की ब्रज-बालाओं की प्रीति की स्मृति करा दी। 'क्या देख कर राधा से रीझ गये थे?' रुक्मिणि के उक्त वचन सुनकर कृष्ण की आँखें भर आईं और वे प्रेम के वश हो गये। मौन

---

१४० वह सुधि आवत तोहि सुदामा।
जब हम तुम बन गए लकरियनि, पठये गुरु की भामा॥
चपल समीर भयो तिहिं रजनी, भीजे चारो जामा।
काँपत हृदय बचन नहिं आवत, आए सत्वर धामा॥ —सूरदास

१४१ आगे चना गुरु मातु दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यो मुसुकाय सुदामा सों चोरी की बानि में हौ तु प्रवीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस-भीने।
पाछिली बान अजौं न तजो तुम तैसेई भाभी के तंदुल कीने॥
—नरोत्तमदास

१४२ सुदामा मंदिर देखि डरयो।
इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छरयो॥
चितवत चकित चहुँ-दिसि बाम्हन, अद्भुत लीला रीति।
ऊँचे भवन मनोहर छाजे, मनि कंचन की भीति॥
चलो कंत यह सब हरि किरपा, पाँउ धारिए धाम।
तब पहिचानि धँसे मंदिर में, सूर सकल अभिराम॥ —सूरदास

होकर सोचने लगे कि रुक्मिणी कहीं गोकुल की ओर बात न चलादे।[१४३] 'हे रुक्मिणी मुझे व्रजवासी लोग एक क्षण को भी विस्मृत नहीं होते। हमने उनसे बिछुड़ कर अच्छा नहीं किया वे रात दिन हमारे वियोग में मर रहे हैं। यद्यपि द्वारिका कंचन की बनी और मणियों से जटित है तथा संसार के सभी भोग यहाँ हैं किन्तु मन हमारा ललिता के द्वारा राधा के मिलन में वंश वट पर ही हरण हो गया है।[१४४] हे रुक्मिणी हमारी जन्मभूमि चलो यद्यपि वह तुम्हारी द्वारिका और मथुरा के समान नहीं है। वहाँ तो यमुना के तट पर गाय चराना, अमृत जल-पीना; कन्धे पर भुजा रख कर वृक्षों की शीतल छाया में केलि क्रीड़ा करना यह सब सुख जो वृन्दावन में पाया वह तीनों लोकों में मुझे प्राप्त नहीं है।[१४५] सतभामा से भी कृष्ण ने अपने मन की बात प्रकट कर दी थी। जब-जब गोकुल की याद आती है, आँखों से आँसू के पनाले बहने लगते हैं। वह यमुना, वे हमारे सखा, वृन्दावन की गुल्म लताओं में नित्य नव-नव केलि क्रीड़ाएँ। मेरे मन-मधुकर की प्यारी राधिका। इन सबके मिलने पर मैंने अमरपुरी को भी विसरा दिया था।[१४६]

---

१४३ रुक्मिनि बूझति हैं गोपालहिं।
कहौ बात अपने गोकुल की कितिक प्रीति ब्रज बालहिं॥
तब तुम गाइ चरावन जाते, उर धरते बन मालहिं।
कहा देखि रीझे राधा सों, सुन्दर नैन बिसालहिं॥
इतनी सुनत नैन भरि आए, प्रेम विवस नँद लालहिं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहिं॥ —सूरदास

१४४ रुकमिनी मोहिं निमेष न बिसरत, वे ब्रजवासी लोग।
हम उनसों कछु भली न कीन्ही, निशिदिन मरत वियोग॥
जदपि कनक मनि रची द्वारिका, विषय सकल संभोग।
तदपि मन जु हरत बंसी-बट, ललिता कै संयोग॥ —सूरदास

१४५ रुकमिनि चलो जन्म भूमि जाहिं।
जद्यपि तुम्हरो विभव द्वारिका, मथुरा के सम नाहिं॥
जमुना के तट गाइ चरावत, अमृत-जल अँचवाहिं॥
कुंज केलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाँहिं॥
× × × ×
जो क्रीड़ा श्री वृन्दावन में, तिहूँ लोक में नाहिं। —सूरदास

१४६ सुनि सतभामा सौंह तिहारी।
जब जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी॥
वे जमुना वे सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी।
वृन्दावन की गुल्म लता हैं, मन मधुकर की प्यारी॥
× × × ×
सूरदास-प्रभु उनहिं मिले ते, मैं सुरपुरी बिसारी। —सूरदास

कृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन—सूर्य ग्रहण के पर्व पर श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन हुआ। इधर व्रजवासी ग्वाले, गोपियाँ, नन्द, यशोदा तथा राधा आदि सभी पर्व स्नान के निमित्त वहाँ पहुँचे। रुक्मिणी व्रजवासियों को देखकर कृष्ण से पूछती है—'इनमें वृषभानु किशोरी राधा कौन सी है? अपने बालपन की जोड़ी एक बार मुझे भी दिखाओ। जिसके प्रेम में व्रज की गलियों के चक्कर लगाते थे। आतुर होकर गाय दुहते थे और घर-घर चोरी करते थे। अपने हाथ से सुमन-शैया बनाते थे। उन राधा को देखे बिना मन तरस रहा है।' कृष्ण को रुक्मिणी की इस बात को सुनकर सुख प्राप्त। हुआ उनके अन्तर में राधा के लिए अपार प्रेम था। उनकी आँखें भर आईं और शरीर शिथिल हो गया। मुख से बात नहीं आती। ठगे से बैठे रह गये।[१४७]

उन्होंने अपनी अंगुली से संकेत कर दिखाया कि वह गौर वर्ण वाली, नीले वस्त्र पहने हुये युवति-वृन्द में खड़ी राधा है। उसी की बाँकी चितवन ने मेरा 'मन' हरण कर लिया था।[१४८]

रुक्मिणि राधा से ऐसे मिली जैसे बहुत दिन की बिछुड़ी हुई एक बाप की बेटी हों। कृष्ण ऐसे में वहीं आ गये और राधा-माधव की भेंट हुई। राधा माधव, माधव-राधा, भृंगी कीट की सी गति हो गई। माधव राधा के रंग रच गये, राधा माधव के रंग में। माधव-राधा प्रीति नित्य है।[१४९]

---

१४७ हरि सौं बूझति रुकमिनि इनमें को वृषभानु किसोरी।
बारक हमें दिखावहु अपने बालापन की जोरी॥
जाको हेत निरंतर लीन्हे डोलत ब्रज की खोरी।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन, जाते घर-घर चोरी॥
रचते सेज स्वकर सुमननि की, नव-पल्लव पुट तोरी।
बिन देखें ताके मन तरसं, छिनबीते जुग कोरी॥
सूर सोच सुख करि भरि लोचन, अंतर प्रीति न थोरी।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिं, ह्वै जु गई मति भोरी॥ —सूरदास

१४८ वह लखि-जुवति वृंद में ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी।
सूरदास मेरो मन वाकी, चितवनि बंक हरयौरी॥ —सूरदास

१४९ राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रंग रांचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीत निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई॥ —सूरदास

महाभारत के कृष्ण—श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध के सूत्रधार थे। उनका ऐश्वर्य रूप महाभारत की घटनाओं में देखने को मिलता है। भक्त कवियों ने कृष्ण के इस रूप का भी चित्रण किया है। वस्तुतः महाभारत में कृष्ण का पूर्ण विकसित रूप प्राप्त होता है। सूर ने जिन प्रसंगों को लिया है उनमें अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण गृहगमन[१५०] भीष्म प्रतिज्ञा तथा कृष्ण भगवान का चक्र धारण,[१५१] गर्भ में परीक्षित की रक्षा,[१५२] तथा द्रौपदी का चीर बढ़ाना[१५३] आदि घटनाएं प्रमुख हैं। कृष्ण के बदरी वन जाने की चर्चा भी सूर ने अन्त में की है।

---

१५० कमल नैन पौढ़े सुख-सेज्या, बैठे पारथ पाइतरी।
प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ, कब आये तुम, कुसल खरी॥ —सूरदास

१५१ गोविंद कोपि चक्र कर लीन्हौ।
छाँड़ि आपनो प्रन जादव पति, जनको भायौ कीन्हौ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए।
मनु संचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए॥
कछुक अंग तें उड़त पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल।
स्रवत स्रोनकन, तन सोभा, छवि-घन बरसत मनुलाल॥ —सूरदास

१५२ गर्भ परीच्छित जारन गयौ,
तब हरि ताहि जरन नहि दयौ।
रूप चतुर्भुज गर्भ में धारि,
ताकों तासों लियो उबारि॥ —सूरदास

१५३ इत-उत देखि द्रौपदी टेरी।
ऐंचत बसन, हंसत कौरव-सुत, त्रिभुवन नाथ, सरन हौं तेरी।
× × × ×
हो जदुनाथ, द्वारिकाबासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी।
बसन-प्रवाह, बढ़यो सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी॥ —सूरदास

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

उत्तर मध्ययुगीन (रीतिकाल) हिन्दी काव्य में कृष्ण

उत्तर मध्ययुगीन हिन्दी काव्य की पूर्व पीठिका भक्तिकाल में प्रस्तुत हो चुकी थी। कृष्ण के चरित्र गान ने शृंगार के लिए पर्याप्त क्षेत्र-विस्तार कर दिया था। दास्य, सख्य तथा वात्सल्य भाव की भक्ति की अपेक्षा माधुर्य-भाव ने ही हिन्दी भक्ति साहित्य को प्रभावित किया था। सभी रूपों की चरम सीमा माधुर्य में मानी गई। सूरदास तथा नन्ददास आदि वात्सल्य-भाव के प्रवीण चित्रकार भी माधुर्य को ही चरम लक्ष्य मानकर चले थे। प्रस्तुत प्रबंध के चतुर्थ तथा पंचम अध्यायों का अवलोकन करने पर ज्ञात होगा कि मध्ययुग के लगभग सभी कृष्ण-भक्त-संप्रदाय माधुर्य-भक्ति को प्रधानता देते थे। चैतन्य तथा वल्लभ संप्रदाय का गोपी भाव तथा हरिदासी, राधा वल्लभ, निम्बार्क संप्रदाय का सखी भाव माधुर्य-भाव के ही दो रूप हैं। विविधताओं के होते हुए भी उन सबमें माधुर्य भाव की एकता दृष्टिगत होती है। भक्ति के विभोर-भाव ने शृंगार-रस को भी 'उज्ज्वल-रस' बना दिया था। संप्रदायों का प्रवर्तन करने वाले भक्तों एवं आचार्यों ने संपूर्ण शृंगार-रस शास्त्र को कृष्ण शृंगार-रस राज के लिए आरोपित कर दिया था तथा उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म विविधताओं को कृष्ण के जीवन पर आरोपित करके भाव-विभोरता प्राप्त की थी। निर्गुण संप्रदायी जिसे 'हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया' में खोजते थे सगुण भक्तों ने उसे गोपी-कृष्ण अथवा राधा-कृष्ण में खोजने की चेष्टा की। उनकी भावना में कहीं कोई विकार न था। उन्होंने कृष्ण-के चरणों में अपने को अर्पित कर दिया था किन्तु उनके शिष्यों की परम्परा जन-मानस की स्थूल भावना से उस उदात्त भाव की रक्षा न कर सकी अतः कालान्तर में उज्ज्वल रस स्थूलता को प्राप्त होकर पुनः शृंगार के रूप में परिणत हो गया। भक्ति की विभोरता ज्योंही कम हुई कि शृंगारिक भावनाओं ने पुनः कवि हृदय पर अपना आसन जमा लिया। भक्ति से भाव तत्व विलग हो गया केवल स्थूल काय चेष्टाओं की अभिव्यक्ति

म ही भक्ति परक ग्रन्थों की रचना की जाने लगी। कुछ और आगे चल कर कवियों ने 'राधा कन्हाई सुमिरन का बहाना' भी करना छोड़ दिया इस प्रकार भक्ति का आवरण भी कुछ कवियों ने उतार फेंका। जिन कवियों में उसका आग्रह देखा जाता है उनमें भी भक्ति के भाव का पूर्ण अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस काल के महाकवि बिहारी ने सर्व प्रथम सतसई में राधा की स्तुति की है[1] किन्तु संपूर्ण सात सौ सतसई पढ़ने के बाद भक्ति का प्रभाव कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। शृंगार की भारी शिला के नीचे भक्ति सिसकती प्रतीत होती है। पद्माकर तो उनसे भी आगे बढ़ गये। उन्होंने अपने आश्रयदाता जयपुर नरेश जगतसिंह की दान शीलता की प्रशंसा करते करते उन्हें कृष्ण ही बता दिया।[2] केशव, बिहारी, भक्तिराम, देव, तथा भूषण भी किसी न किसी राजा के दरबार से सम्बन्धित थे। इनकी कविता पर इस स्थिति का प्रभाव दो रूपों में दृष्टिगत होता है। प्रथम—आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने के लिए की काव्य का सृजन, द्वितीय—विलास प्रियता। इन दोनों तत्वों ने परवर्ती काव्य में कृष्ण का स्वरूप परिवर्तित कर दिया। कृष्ण के प्रति आस्था (भक्ति भावना तो थी ही नहीं) कम हो गई तथा उनका वर्णन यदि किया भी गया तो विलासिता के वातावरण के बीच ही उन्हें स्थान दिया गया यहाँ तक कि कृष्ण अपना समस्त रूप भूल कर मात्र शृंगार के नायक शेष रह गये। नायक और नायिका-भेद लिखे जाने का प्रचलन भी इसी कारण हुआ।

भक्तकवियों द्वारा कृष्ण का रीतिकालीन प्रभाव से युक्त स्वरूप का वर्णन

रीतिकालीन प्रभाव से युक्त भक्त कवियों द्वारा चित्रित कृष्ण का रूप इस प्रकार है—

डगमगात पग धरत धरनि पर, बोल अटपटे बोलें।
प्यारी ओढ़ि पीत पट लीन्हों, लालन नील निचोलें॥
नीवी बन्धन करत लाड़िली, लाल लंक गति लोलें।
भगवत हँसत देत मुख अंचल नैनन चैन न डोलें॥[3]

भगवत रसिक का यह पद स्थूल शृंगार का सजीव उदाहरण है। भक्त कवियों की रचनाओं में 'केसर की चकियाँ चलें हैं' कहकर मुगल वैभव के प्रभाव का स्पर्शमात्र हुआ था किन्तु रीतिकाल में कृष्ण का बादशाही शान-शौकत के साथ चित्रण हुआ है। नागरीदास ने कृष्ण को निम्नलिखित परिवेश में चित्रित किया है—

---

१ मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परें, स्याम हरित दुति होइ॥ —बिहारी

२ जगद्विनोद, पद—५

३ भगवत रसिक

जड़े स्वर्ण के थाम लाल प्रवाल झरोखनि झाँकी बंधो मुक्त माल।
कहूँ रंध्रवालो अगरु धूप घूमें, पुरे चोक मोतीन सों रत्न भूमें॥
जुरे जोरि गढ़ द्वार गज बाज माते, भरे भूप दरबार नहीं गनाते।
सजें पालको नालको रत्थ बाजो, लिए द्वार ठाड़े दरोगा[४] मिजाजो॥

कृष्ण का यह वर्णन ठीक उस समय के अनुरूप है। द्वापर के कृष्ण का कैसा रूपान्तर है। राधा और कृष्ण के विवाह के अवसर पर मध्यकालोन प्रथाओं का ही निर्वाह किया गया है[५] गोपियाँ कृष्ण को देखने की उत्कंठा से नहीं वरन नजरें लेकर आती हैं।[६]

हठी जी के काव्य में राधा कृष्ण पर दरबारी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है—

जात रूप तख्त पै वखत बिलन्द बैठी,
जाके काज ब्रजराज भाँवरे भरत हैं।
जरीदार द्वार पै वितान तान राख्यो हठी
छरीदार ठाढ़े इतमाम बगरत हैं।
झरीदार झालरें झलकदार झूमै मोती
झुमकन झूमें छवै छवै उपमा धरत हैं।
राधे को बरन दुजराज महाराज जान
नखत समान कोरनिस सी करत हैं। —हठी

रीति बद्ध कवियों द्वारा कृष्ण का स्वरूप वर्णन—

रीति बद्ध कविता में कृष्ण को शृंगार का नायक माना गया है। कहीं वे कृष्ण हैं तो कहीं कृष्ण नाम से साधारण नायक। कहीं मुरलो, पीतपट, बनमाला के द्वारा कृष्ण का बोध होता है तो कहीं इसकी भी आवश्यकता नहीं समझी गई है। ऐसे स्थानों पर कवि का तात्पर्य कृष्ण से होता है अथवा किसी भी नायक से इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। केवल उनकी रसिकता को देखकर उनके कृष्ण होने का अनुमान लगाया जा सकता है। बिहारी के नायक कृष्ण राधिका के विरह में बेहाल पड़े हैं। कृष्ण का पता मुरली, पीतपट, मुकुट और बनमाला आदि उपकरणों से लगाया जा सकता है—

---

४ नागरीदास।

५ गड़े हैं भट्ट ठ्ठु देखते मिसिर सुआसारी मोर मैना उड़ाते हैं फरेंर॥
—नागरीदास

६ ले ले नजर फजर उठ आईं,
बड़ी साहिब गोप जादियाँ। —नागरीदास

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल ।
कहूँ मुरली कहूँ पीत पट, कहूँ मुकुट बनमाल ।।

किन्तु कहीं केवल मुरली ही का परिचय है । मुरली किसी भी नायक के हाथ में हो सकती है । रीतिकाल के विलास प्रिय वातावरण में मुरली बजाकर गलियों में घूमने वाले नायकों की क्या कमी थी । ऐसे स्थान पर कृष्ण का अनुमान मात्र हो सकता है । बिहारी के निम्नांकित पद इसका उदाहरण हैं—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहै नटि जाय ।।

—बिहारी

पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तकाल में कृष्ण के जिन रूपों का निरूपण हुआ वे छायमात्र रह गये थे । खोज करने पर कृष्ण के उन विविध रूपों की छाया इस प्रकार देखी जा सकती है ।

भक्तिकाल में कृष्ण को पुरुष तथा राधा को प्रकृति कहा गया । रीतिकाल में देव कवि ने भी राधा को माया तथा कृष्ण को पुरुष बताया ।[७] कहीं कहीं कृष्ण की ब्रज लीला का संकेत भी प्राप्त होता है । गोवर्धन-धारण,[८] दावानल पान,[९] तथा रासलीला[१०] का संकेत बिहारी की सतसई में प्राप्त होता है । कालिय नाग-

---

७ माया देवी नायिका, नायक पुरुष ।
सबै दंपतिन में प्रबल, देव करै तिहि जाय ।।

—देव

८ प्रलय-करन बरषन लगे, जुरि जलधर इक साथ ।
सुरपति-गरबु हरयो हरषि, गिरधर गिरिधरि हाथ ।।

—बिहारी

९ सखि सोहत गोपाल के, उर गुंजन की माल ।
बाहिर लसति मनो पिए, दावानल की ज्वाल ।।

—बिहारी

१० गोपिनु संग निसि सरद की, रमत रसिकु रस-रास ।
लहाछेह अति गतिनु की, सबनु लखे सब पास ।।

—बिहारी

नायन[11] लीला तथा भ्रमर गीत-प्रसंग[12] की चर्चा देव कवि ने अपने कवित्तों में की है। कहीं कृष्ण का सर्वेश्वर रूप भी इस प्रकार दिया है—

आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यौ,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीत में।
—देव

कृष्ण अवतारी हैं ऐसी चर्चा भक्तिकाल में साम्प्रदायिक प्रसंग में अनेक बार हुई हैं। उसका संकेत भी देव ने एक स्थल पर किया है—

कंस रिपु अंश अवतारी यदुवंस कोइ
—देव

राधा के पैरों को पलोटने वाले राधावल्लभ कृष्ण रीतिकाल के कवियों को भी प्रिय हैं। बिहारी ने कृष्ण को राधा के पलोटने वाले कहकर चित्रित किया है—रसखान ने 'देख्यो दुरयो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायंन' कह कर कृष्ण का राधा के प्रति अतिशय प्रेम भाव प्रदर्शित किया है तो बिहारी ने राधा के मान करने पर कृष्ण का उनके चरणों पर लोटने का संकेत किया है—

---

११ कालिय काल महाविष ब्याल,
जहां जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध के अधके उबरें नहिं,
जाकी बयारि बरै तरु ज्यों तिनु॥
ता फन की फन फाँसिन्ह पै फाँद,
जाइ फंसे उकसे न कहू छिनु।
हा ब्रजनाथ। सनाथ करो,
हम होतीं हैं नाथ अनाथ तुम्हें बिनु॥ —देव

१२ (क) ऊधो आए, ऊधो आए स्याम को सँदेसो लाए,
सुनि गोपी-गोप धाए धीर न धरत हैं।
पौरि लगि बौरी उठि मौरी लौं भ्रमति मति,
गनति न ताऊ गुरु लोगनि डरति हैं॥
ह्वै गई बिकल बाल बालम बियोग भरीं,
जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं॥
भारी भए भूषन संभारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत है॥
(ख) धाये फिरे ब्रज में बधायें नितनंद जू के देव,
गोपिन सधाये, नाचो गोपन की भीर में॥ —देव

मोर चन्द्रिका स्याम सिर चढ़िकत करति गुमानु।
लखिबो पाइनु पर लुठति, सुनियतु राधा-मानु॥ —बिहारी

शरद रास के प्रसंग में गोपियों की चर्चा भी हुई है। कृष्ण के भक्तोद्धारक रूप का प्रसंग भी रीतिकाल के कवि भूले नहीं हैं। बिहारी ने कृष्ण भगवान से मोक्ष तक माँगा है :—

मोहू दीजै मोषु, ज्यों अनेक अधमन दियौ।
जो बाँधै ही तोषु, तो बाँधौ अपनैं गुननु॥ —बिहारी

भक्तार्तनाशक-कृष्ण की चर्चा भक्तिकाल के कवियों ने विनती एवं स्तुति-प्रसंग में की है। कभी द्रोपदी-चीर-हरण के समय वस्त्र बढ़ा देने की चर्चा, कभी प्रह्लाद को नरसिंह बनकर बचा लेने की चर्चा, कभी अजामील, गीध, शबरी आदि भक्तों की पुकार को सुनकर उनकी रक्षा की चर्चा बार-बार हुई है। मतिराम कवि ने भी गज और ग्राह की चर्चा सांकेतिक रूप में की है :—

असरन सरन के चरन सरन तके, ज्यों ही दीनबन्धु निज नाम की सुलाज की।
धाए रतिमान अति आतुर गोपाल मिली, बीच ब्रजराज को गरज गजराज की॥

—मतिराम

रीतिकाल का वर्ण्य विषय वस्तुतः शृंगार था और शृंगार के अनेक चित्र इन कवियों ने उतारे हैं। कृष्ण का रसिक अथवा रसात्मक रूप ही अधिक चित्रित हुआ है। नायक के विविध रूपों की चर्चा कृष्ण के शृंगार-प्रसंग में हुई है। यद्यपि कृष्ण के बाल रूप[13] की चर्चा भी रीतिकाल के कवियों ने यदाकदा की है किन्तु विषय का मुख्य स्वर शृंगार ही है। पौगण्ड लीला के अन्तर्गत इन कवियों ने दधि माखन चोरी के प्रसंग को अधिक महत्व दिया है। कुमार लीला में दान लीला इन कवियों का प्रिय विषय है। हठपूर्वक गुजरी से दूध दही लेना और आलिंगन, चुम्बन आदि व्यापारों में स्वीकृति की प्रतीक्षा न करना आदि ऐसे अनेक चित्र इन कवियों ने प्रस्तुत किये हैं। भले ही ये चित्र सभ्य जगत की दृष्टि में अनुचित कहे जायें किन्तु जीवन के सरल

---

१३ देखु पद्माकर गुविंद की अमित छवि, शंकर समेत विधि आनंद सों बाढ़ो है।
झिझकत, झूमत, मुदित मुसकात, गहि अंचल को छोर दोऊ हाथन सों बाढ़ो है।
पटकत पांव, होत पैंजनी झुनुक रंच नेक नैनन में नीर कन काढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीने काज, तीन लोक ठाकुर सों ठुनकत ठाढ़ो है॥
—पद्माकर

स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त प्रेम[१४] के वातावरण में ये चित्र अत्यन्त मोहक जान पड़ते हैं। आगे चलकर कृष्ण की किशोरावस्था के अगणित चित्र इन कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। रमणीय ब्रजभूमि के एकान्त वातावरण में यमुना पुलिन, प्रफुल्ल मल्लिका के एकान्त कुंज में, चन्द्र ज्योत्सना—स्निग्ध रात्रि, भुवन-मोहन कृष्ण के कोटि कंदर्प कमनीय स्वरूप पर मुग्ध ब्रज कुमारिकायें, अनुनय-विनय, रोष और मनुहार आदि भावों से संवलित होकर जो प्रेम प्रणय की अनन्त केलियां इन कवियों की कमनीय कल्पना में आई हैं वे पाठक के मन को अतीन्द्रिय लोक में ले जाती हैं। किशोर-किशोरी का एकान्त मिलन और एक दूसरे पर निछावर हो जाना बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुआ है।[१५] कृष्ण नारी प्रसाधन पटु है। किन्तु प्रेम के कारण यह प्रसाधन कृष्ण के द्वारा किया हुआ है, यह प्रकट हो जाता है।[१६] नगर में सर्वत्र ही किशोर-किशोरी रस-निमज्जित रहते हैं।[१७] किशोर लीला के अन्तर्गत संयोग-वियोग के अगणित चित्र हैं। इस रसमय अवस्था में हृदय के हार का व्यवधान असह्य है। थोड़े से भी वियोग के कारण नेत्रों में पावस ऋतु समा जाती है। संयोग के अनेक प्रसंगों को प्रस्तुत करते हुए भी इन रीति कवियों को भक्त कवियों की भांति वियोग

---

१४ गुजरी ऊजरे जोबन को कछु,
मोल कहो दधि को तब देहौं।
'देव' इतौ इतराहु नहीं,
इन्हीं मृदु बोलन मोल बिकेहौं॥
मोल कहा, अनमोल बिका हुंगी,
एंचि जबै अधरा रसु लैहौं।
कैसी कही फिरि तो कहो कान्ह,
अबै कछु हौंहु कका की सौं कैहौं॥ —देव

१५ आपुस में रस में रहसें, बहसें बनि राधिका कुंज विहारी॥ —देव

१६ आई हो पांय दिवाय महावर कुंज न सों करिके सुखसेनी;
सांवरे आजु संवारो है अंजन नैननि को लखि लाजत एनी।
बात के बूझत ही 'मतिराम' कहा करिए सहु भौंह तनेनी;
मूंदी न राखति प्रीति अली यह गूंधी गोपाल के हाथ की बेनी॥ —मतिराम

१७ सांकरी खोरि बखोरि हमें, किन खोरि लगाय खिसेबो करो कोइ।
हारेहु हाथ नहीं करिहे हिय, घायन लौन घिसेबो करो कोइ॥
'देवजू' धीर धरो सुधरो किन, ओठनि दंत पिसेबो करो कोइ।
रूप हमें दरसेबो करो, अरसेबो करोकि रिसेबो करो कोइ॥ —देव

की अवस्थायें ही अतिशय प्रिय लगी हैं। अतः भ्रमरगीत प्रसंग की रीति-कवि भी अवहेलना नहीं कर सके हैं। वंशी-रस-भोगी होने के कारण गोपियाँ योग का तिरस्कार कर देती है।[१८]

रीति ग्रंथकार कवियों में कृष्ण की राजलीला अथवा द्वारिका लीला

रीति कालीन कवियों ने भक्त वत्सल और भक्तोद्धारक रूप को चित्रित करते हुए कृष्ण की कतिपय राजलीला अथवा द्वारिका लीलाओं को भी अपना काव्य विषय बनाया है। इन लीलाओं के अन्तर्गत द्वारिका निवास समय की लीलाओं का पुनरावर्तन किया गया है।[१९] महात्मा विदुर के घर साग खाना सुदामा के तीन मुट्ठी चावल चबाना तथा द्रौपदी का चीर बढ़ाना आदि लीलाओं का उल्लेख है।

रीति कालीन कवियों के नायक कृष्ण

डा० सत्येन्द्र के अनुसार भक्तिकाल कृष्ण भगवान को नायक मानता है किन्तु रीतिकाल नायक को कृष्ण मानता है।[२०]

कृष्ण का नायक रूप भक्तिकाल से ही चला आ रहा है। चैतन्य सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी ने उन्हें शृंगार रस सर्वस्व, मयूर पिच्छ विभूषित मानते हुए भुवनाश्रय

---

१८ क—आलम सुकवि कहे तन बीच कान्ह छवि,
जोग देन आए तुम कहा हम जोगी हैं।
जोग तो सिखावे ताहि जोग की जुगुति जाने,
जोग को न काज हम बंसी-रस भोगी हैं॥ —आलम

ख—ऊधो तुम कहत वियोग तजि जोग करो,
जोग तब करें जो वियोग होय स्याम कों॥ —मतिराम

ग—नखते सिख लों सब स्याममई बाम भई,
बाहर लों भीतर न दूजो 'देव' देखिये॥
जोग करि मिलें जो वियोग होय बालम जू,
ह्यां न हरि होंय तब ध्यान धरि देखिये॥ —देव

घ—ऊधों। यह सूधो सो संदेसों कहि दीजो भलो,
हरि सों हमारे ह्यां न फूले बन कुंज हैं।
किंसुक, गुलाब कचनार और अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं। —पद्माकर

१९ बिदुर की भाजी, बेर भीलनी के खाय,
विप्र चाउर चबाय, दुरे द्रोपदी के चीर में॥ —देव

२० दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक पृ० ५९, १२५-१२७।

कृष्ण को नराकार रूप में प्रणाम किया है।[२१] स्पष्ट है कि नायक कृष्ण में नराकारत्व ही प्रमुख हैं, भुवनाकार गौण। शील और आचार के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने नायक के दो प्रकार माने हैं :—

(१) शील के आधार पर धीरोदात, धीर प्रशान्त, धीर ललित और धीरोद्धत।

(२) आचार के आधार पर अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ठ।

किन्तु रूप गोस्वामी ने अनुकूल आदि नायकों के लक्षण देते हुए धीरोदात्त आदि का इन्हीं में अन्तर्भाव कर दिया है।[२२] कृष्ण को पति और उपपति भी माना है।[२३] जहाँ तक कृष्ण के पति रूप अथवा स्वकीया भाव का सम्बन्ध है वह लोक शास्त्र सम्मत है किन्तु कृष्ण के उपपति स्वरूप को गौड़ीय भक्तों ने शास्त्रीय बनाने की पूर्ण चेष्टा की है। अतः कृष्ण के उपपति रूप को अवतार का विशेष रूप माना है।[२४] भक्तों की दृष्टि में कृष्ण में प्राकृत नायकत्व नहीं है किन्तु रीतिकालीन कवियों ने श्री कृष्ण के उपपति रूप को अत्यन्त आग्रह से ग्रहण किया है। उनके कृष्ण पूर्णरूपेण लौकिक नायक हो गये हैं। रीतिकालीन कृष्ण 'लाल' शब्द से अभिहित किये गये हैं। भक्तिकाल में कृष्ण के लिए 'लाल' शब्द का प्रयोग वात्सल्य भाव के अन्तर्गत प्रचुर मात्रा में हुआ है। जब वे ही कृष्ण आगे चलकर लौकिक नायक हो गये तो यह शब्द उनके साथ-साथ रीतिकाल में नायक के लिए प्रयुक्त होने लगा। यही नहीं भगवान् कृष्ण का लौकिक नायक कृष्ण के रूप में अवतरण हुआ तो भक्तिकालीन सम्पूर्ण परिकर और परिग्रह भी नायक सम्बन्ध से लौकिक बन गया। वैभव और विलास के उन्मादक वातावरण तथा अनेक हाव भाव समन्वित रूप गुण सम्पन्न नारियाँ लौकिक रूप में दृष्टिगत होने लगीं।[२५] गगन चुंबी विशाल भवन अनेकानेक अभ्रवेधी खण्ड, इन्द्रलोक का आभास देने लगे। राज प्रासाद सातवें खण्ड चन्द्र मण्डल को

---

२१ शृंगार रस सर्वस्वं शिखि पिच्छविभूषणम्।
अंगीकृत नराकार माश्रये भुवनाश्रयम्॥

—उज्ज्वलनीलमणि

२२ उज्ज्वल नीलमणि पृ० ३१-३२-३३

२३ पतिः पुरवनितानाम् द्वितीयो व्रजवनितानाम्॥

'द्वितीय उपपति उज्ज्वल नीलमणि पृ० ९

२४ द्वितीयत्वं च यदप्यासौ अवतारावसर एव प्रत्याययितुं न तु सर्वथा॥

— उज्ज्वलनीलमणि पृ० ८

२५ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृ० २२९

घूमने लगे। ऐश्वर्य विलास के भवन, चन्द्र ज्योत्सना स्नात एक उद्दीपन का वातावरण उपस्थित कर देते थे।[२६]

इसी प्रकार प्रमोद, वन, वापिका, तड़ाग, सुरम्य निकुंज, वनस्थली आदि भी रस मय जीवन के लिए उद्दीपक सिद्ध होते थे। पुष्पों का बहुत प्रयोग होता था। अंगराग वेष भूषा इत्यादि भी पर्याप्त शृंगारिकता उपस्थित करते थे। चोवा, चन्दन, घनसार, इत्र भी नायक को सुवासित करने के लिए प्रस्तुत किये जाते थे। भक्तिकालीन अष्टयाम सेवा रीतिकाल में ज्यों की त्यों अवतरित हो गई।[२७] भक्तिकालीन रचनाओं में यद्यपि रीति तत्व विद्यमान थे परन्तु उनका दृष्टिकोण देव विषयिक था। वही रीतिकाल में आकर पूर्ण लौकिक हो गये। विस्तृत नायिकाभेद ने कृष्ण को न केवल बहुनायकत्व ही दिया वरन् उन्हें सभी कोटियों का नायक सिद्ध कर दिया। जहाँ भक्त कवि राधा कृष्ण की आराधना में तन्मय थे, वहाँ रीति कवि राधा कृष्ण के बहाने शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति करते थे। बीच-बीच में कृष्ण नाम की सार्थकता के लिए इन कवियों ने भक्ति परक उद्‌गार भी प्रकट किये हैं। परन्तु इन्होंने मुख्य रूप से लौकिक शृंगार भावना को ही महत्व दिया है। इस प्रकार नायक कृष्ण के लिए उन्होंने नायिका भेद, नखशिख प्राकृतिक सौंदर्य चित्रण, रस वर्णन—विशेषकर शृंगार—सभी की विस्तृत सामग्री प्रस्तुत करदी है। शृंगार में हास परिहास, संयोग वियोग, मान, प्रवास आदि भी वर्णन के लिए हैं। तात्पर्य यह कि रूपासक्ति, शारीरिक आकर्षण, इन्द्रियोतेजक सौन्दर्य चित्रण सभी इन कवियों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं।

उज्ज्वलनील मणि कार ने कृष्ण को पति और उपपति दोनों ही रूपों में चित्रित किया है। रीतिकालीन के कवियों में कृष्ण के उन सभी स्वरूपों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है जो उनको रीतिकालीन शृंगार भक्ति संचालित नायक सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे।

नायक की परिभाषा देते हुए उज्ज्वल नीलमणिकार कहता है कि वह रमणीय होता है। मधुर अर्थात् आह्लादकारी और समस्त सल्लक्षणों से युक्त होता है। बलवान और नवयौवन से सम्पन्न, वावदूक अर्थात् अतिवक्ता और प्रियभाषी होता है। वह

---

२६ उज्जवल अखण्ड खंड सातऐं महल महा-
मंडल संवारों चन्द्र मंडल की चोट हो।
भीतर हूँ लालनि के जालनि बिलास ज्योति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोट हो॥ —देव

२७ देखो 'अष्टयाम' देव का।

बुद्धिमान, प्रतिभावान्, धीर, विदग्ध, चतुर, सुखी, कृतज्ञ दक्षिण, प्रेमवश्य, गम्भीरता का सागर होता है।[२८]

उपर्युक्त गुणों में पाँच विशेषण शरीर के लिए दो वाणी के लिए एवं चौदह गुण मानसिक बताये गये हैं। ये गुण साधारण लौकिक नायक में भी हो सकते हैं किन्तु चार गुण ऐसे हैं जो केवल कृष्ण में ही हो सकते हैं। वे हैं, वरीयता अर्थात् सर्वजन मुख्यतत्व, कीर्तिमनु अर्थात् सर्वलोक गीयमानत्व, नारी मोहनत्व नित्य नूतनत्व। ये गुण परसबन्ध से होते हैं अर्थात् दूसरों की दृष्टि से इन गुणों का मूल्यांकन होता है। अन्य गुण व्यक्तिगत होते हैं।[२९]

कृष्ण का धीरोदात्त स्वरूप—धीरोदात्त नायक विनयी क्षमावान् करुण, सुदृढ़-व्रती, अनात्मश्लाघी, सत्ववान्, विदग्ध, नवयौवन सम्पन्न एवं परिहास विशारद होता है। ये गुण रीतिकालीन कवियों के कृष्ण में विद्यमान हैं।[३०]

कृष्ण का रमणीयत्व

रमणीय कृष्ण को कवि अपने हृदय में बिठाना चाहता है।[३१] एक क्षण के लिए भी उसको उनका विरह सह्य नहीं। श्यामल कृष्ण के दर्शन के बिना ये नेत्र

---

२८ उज्ज्वलनीलमणि पृ० ८

२९ वरीयान्कीर्तिमान्नारीमोहनो नित्यनूतनः।
अतुल्य केलि सौन्दर्य प्रेष्ठवंशी स्वनांकितः॥
इत्यादयो स्य शृंगारे गुणाः कृष्णस्य कीर्तिताः।

३० गुच्छनि के अवतंस लसे सिर पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव सों 'मतिराम' सुहायो॥
गुंजनि के उर मंजुल हार, सुकुंजनि तें कढ़ि बाहर आयो।
आज को रूप लखें नंदलाल को आजहि नैनन को फल पायो॥

—मतिराम

३१ क—सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन सदा, बसो बिहारी लाल॥

—बिहारी

ख—मोर पखा 'मतिराम' किरीट में, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुस्कानि मनोहर, कुंडल डोलनि में छवि छाई।
लोचन लोल विशाल विलोकनि, को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अंखियान सुनाई॥

—मतिराम

मानते नहीं तथा कृष्ण में ऐसा रमणीयत्व है जो क्षण क्षण में नवीनता उत्पन्न करता है।[32]

कृष्ण का मधुर रूप

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व माधुर्य से युक्त है। देखने वाला ऐसे तृप्त होता है जैसे पंकज के पराग से मतवाला मधुकर।[33]

समस्त लक्षणों से युक्त नायक कृष्ण

कवि ने सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार कृष्ण को समस्त लक्षणों से युक्त माना है। वे बलवान एवं नव तारुण्य-संयुक्त हैं। यौवन बसन्त की भाँति फूला है अंग प्रत्यंग से सौन्दर्य और माधुर्य मानों बरस रहा है। नायक का यह रूप नायिका के लिए अत्यधिक आकर्षक होता है।

नववय

जोवन मोरयो बसंत फूल्यो सरस गुराई गोभा निकसी।
अंग अंग नवरंग जगमगे मुख सुख सदन चन्द्रिका विकसी।
रसिया मधुप लट्टू भयो डोले वन बोले सो ले सुनि पिकसी॥

धीरोदात्त नायक कृष्ण

मोर की चन्द्रिका मोर लसें दिन दूलह है अलि नन्द को नन्दन।
श्री वृषभानु सुता दुलही लहो जोरी बनी विधिना सुख कन्दन॥
रसखान न आवत मोपै कह्यो कछु दोऊ फंदे छवि प्रेम के फन्दन।
जाहि विलोके सभी सुख पावत ये ब्रज जीवन दुःख निकन्दन॥

—रसखान

धीर ललित नायक कृष्ण

मालिनि ह्वै हरवा गुहि देत, चुरी पहिरावैं बने चुरिहेरी।
नायनि ह्वै कें निखारति केस, हमेस करें बनि जोगिन फेरी॥

---

३२ लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥ —बिहारी

तथा

प्रेम पगे जु रंगे रंग साँवरे, माने मनाये न लालची नैना॥ —रसखान

३३ मोर पखा मतिराम किरीट में कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि में छवि छाई॥
लोचन लोल विसाल विलोकनि को न विलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगे अंखियन न सुनाई॥

—मतिराम

वेनी-प्रवीन बनाइ बिरीई वरईनि, बने रहें राधिका केरी।
नन्द किसोर सदा वृषभानु की पौरि पै ठाढ़े बिकें बने चेरी॥

—बेनी प्रवीन

धीरोद्धत नायक कृष्ण

टूटे टाटि घुनघुने घूम घूम सेन सने,
झींगुर छगोड़ी सां बिच्छिन की घात जू।
कंटक ललित त्रिन वलित बिगंध जल,
तिनके तल पत लता को ललवात जू।
कुलटा कुचील गात अंध तम अधरात,
कहि न सकत बात अति अकुलात जू।
छेड़ी में घुसे कि घर ईंधन के घनश्याम,
घर घर धरनीति जात न घिनात जू।

—केशवदास

धीर प्रशान्त नायक कृष्ण

खारिक खान न दारो उदाखन,
माखन हूँ सह मेटि हठाई।
केशव ऊख मयूखहि दूखत,
आइ हों तोपहँ छाड़ि जिठाई।
तो रद नच्छद को रस रंचक,
चाखि गए करिके हूँ ढिठाई।
ता दिन ते उन राखी उठाय,
समेत सुधा वसुधा की मिठाई।

—केशवदास

अनुकूल नायक कृष्ण

यहाँ वे स्वकीया के नायक हैं। अपनी स्वकीया नायिका के ही चारों ओर मँडराते रहते हैं।[३४] स्वप्न में भी कभी नायिका को मान करते देखते हैं तो जागकर उसके पैर पकड़ कर मनाने की चेष्टा करते हैं।[३५]

आपुस में रस में रहसें, बहसें, बनि राधिका कुंज बिहारी :
स्यामा सराहत स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी।

---

३४ जगद्विनोद—पद २८३
३५ वही — ,, २८७

एकहि आरसी देखि कहे तिय, नीकै लगो पिय, प्यो कहै, प्यारी ॥
'देव' सुवालम वाल को बाद विलोकि भई बलि हौं, बलिहारी ॥ —देव

पीतम-पाग सँवारि रखो, सुघराई जनायो प्रिया अपनी है;
प्यारी कपोल के चित्र बनावत, प्यारे विचित्रता चारु सनो है।
'दास' दुहूँ को दुहूँ को सराहिबो देखि लह्यो सुख लूटि घनो है;
वे कहें-भामते, कैसे बने, वे कहें-मन भामती, कैसी बनी है। —दास

दक्षिण नायक कृष्ण—दक्षिण नायक अनेक नायिकाओं से समान रूप से प्रेम करता है। रीतिकालीन कृष्ण अनेक गोपियों (नायिकाओं) को अपनी पौरि में एक साथ खेलने के लिए[36] तथा अपने साथ झूलने के लिए आमंत्रित करते हैं।[37]

ब्याही अनब्याही ब्रजमाहीं सब चाही तासौं,
दूनी सकुचाहीं दीठ परे जू जुन्हैया की।
नेक मुसकान रसखान को विलोकति ही,
चेरी होत एक बार कुंजन फिरैया की।
कह्यौ मान अन्त या को गुण मान है री,
हौं तो हौं सकात खात जात सौंह मैया की।
माय की अटक तौलों सासु की हटक जौलों,
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की॥ —रसखान

शठ नायक कृष्ण—भाव गोपन—शठ नायक पर स्त्री पर प्रेम करता है, कपटाचारी है तथा वाग्विदग्ध होता है। कृष्ण का यह रूप रीतिकाल में वर्णित हुआ है।

गात ते गिरत फूल पलटे दुकूल अनुराग अनुकूल भाग जागे बड़ भाग के।
अंजन अधर बीच नख रेख लाल-लाल, जावक तिलक भाल सघन सुहाग के।
भौंहें अलसौं हैं पलसौं हैं पगे पीक रस रंग मग नैनि रैनि जागे लगे लाग के।
काहे को लजात जलजात से बदन मोंहि महा सुखदेत आए देव पेंच पाग के।
—देव

धृष्ठ नायक कृष्ण—

आरे हौ भूरि भराई भरे अरु भांतिन भांतिन के मनभाये।
भाग बड़ो वरु भामती को जेहि भामते लै रंग भौन बसाये॥
भेष भलोई भलि विधि सौं करि भूलि परे किधौं काहू भुलाये।
लाल भले हो भली सिख दीन्ही भली भई आजु भले बनि आये॥ —देव

---

३६ मतिराम—रसराज—२४८
३७ रसिक प्रिया—प्रकाश २/१०.

परकीया सखत कृष्ण—

माखन सो मन, दूध सो जोवन है, दधि सो अधिको उरईठो ।
जा छवि आगे सुधाधर छांछि समेत सुधा वसुधा सब सीठो ।।
नैनन नेह चुवै कहि देव बुझावत बैन बियोग अंगीठो ।
ऐसो रसीली अहीरी अहै कहो क्यों न लगै मन मोहने मीठो ।। —देव

मुग्ध नायक कृष्ण—

एरी आज काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ
सीखे हैं सबै विधि सनेह सरसायबो ।
यह रसखान दिन द्वै में बात फैलगो है,
कहां लो सयानी चन्द्र हाथन छिपायबो ।।
आज हों निहारयो वीर निपट कलिंदी तीर,
दोउन सों मुख मुसकायबो ।।
दोउ परैं पैंया दोउ लेत हैं बलैयां उन्हें,
भूल गई गैयां उन्हें गागर उठायबो ।। —रसखान

मानी नायक—

यामें कौन सयानु है, मोहन लाल सुजान ।
आपु करत अपराध हो, आपुहि पुनि अभिमान ।। —मतिराम

वचन-विदग्ध नायक कृष्ण—

चांदनो में चैत की सकल ब्रजवारि वारि,
'दास' मिलि रास रस खेलनि भुलानो है,
राधे मोर मुकुट, लकुट बनमाल धरि,
हरि ह्वै करत तहां अकह कहानी है ।
त्योंकि तिय रूप हरि आय तहां धाय धरि,
कहिकै रिसौंहैं—चली बोल्यों नन्दरानी हैं,
सिगरो भगानी, पहिचानी प्यारी, मुसकानी,
छूटिगो सकुच, सुख लूटि सरसानी है ।। —दास

क्रिया विदग्ध नायक कृष्ण—

(क) आजु गई हुती कुंजन लों बरसै उत बूंद घने घन घोरत ।
'देव' कहै—हरि भीजत देखि अचानक आय गए चित चोरत ।।
पौटि भट्ट तट ओट कुटी के लपेटि परी सौं कटी पट छोरत ।
चौगुनो रंग चढ़यो चित में, चुनरी कै चुचात लला के निचोरत ।। —देव

(ख) नंदलाल गयो तित ही चलि कै, जित खेलति बाल अलीगन में ।
तहां आपु ही मूंदे सलौनी के लोचन, चौर मिहीचनि खेलन में ।।

दुरिबे को गई सिगरी सखियां, मतिराम कहै इतने छिन में।
मुसकाय कै राधिका कंठ लगाय, छिप्यो कहूँ जाय निकुंजन में।।

—मतिराम

कृष्ण धृष्ट नायक रूप में—

मानहुँ पायो है राज कहूं चढ़ि बैठे हो ऐसे पलास के खोढ़े।
गुंज गरै, सिर मोर पखा, मतिराम जू गाय चरावत चोढ़े।।
मोतिन को मेरो तोरयो हरा, गहि हाथन सों रहो चूनरी पोढ़े।
ऐसे ही डोलत छैल भए तुम्हें लाज न आवत कामरी ओढ़े।।

समाहार—

शुद्ध रीति पद्धति पर कृष्ण को नायक रूप में चित्रित करने वाले इन कवियों ने नायिका भेद का ही अत्यन्त विस्तार किया है। नायक कृष्ण पर इनकी दृष्टि कम टिकी है। नायिकाओं के अनेक भेद उपभेदों के कालीन शृंगार भावना में नारी को ही केन्द्र बिन्दु माना है। पुरुष अथवा नायक उस केन्द्र के इर्द गिर्द नायिका की स्वरूप सिद्धि के लिए घूमा है। अतः नायक कृष्ण के जो भी स्वरूप उपलब्ध होते हैं वे नायिका के ही सम्बन्ध से। अतः नायक भेद के रूप में जो भी है वह नायिका भेद के मुकाबले में बहुत स्थूल, स्वल्प और साधारण है। प्रस्तुत प्रबन्ध की परिधि में रीतिकालीन नायक कृष्ण भी आ जाते हैं—भले ही उनमें देवत्व सर्वेश्वरत्व का अभाव हो गया है—अतः कृष्ण का लौकिक नायक रूप प्रस्तुत करना विषयान्तर नहीं है।

इस प्रकार रीतिबद्ध कवियों के काव्य पर संस्कृत के प्राचीन काव्य संप्रदायों का बड़ा गहरा प्रभाव है। अलंकार, रस और ध्वनि तीन संप्रदायों का विशेष प्रभाव रहा है। इस प्रभाव के कारण रीतिबद्ध कवियों की कविता में भावुकता और कला में उच्च कोटि का समन्वय हुआ है। कृष्ण को लेकर शृंगार के वर्णन में संयोग और वियोग जैसे मार्मिक चित्र इन रसिक कवियों ने अंकित किए हैं वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। ये रसिक कवि संयोग शृंगार में अश्लील हैं और वियोग शृंगार में ऊहात्मक। विरहिणी नायिकाओं के चित्रण में विशेष कर प्रवत्स्यत्-पतिका और आगत पतिका नायिकाओं के उदाहरण में ये भावुक हो उठे हैं। ऐसे भावमय स्थलों पर इनकी दृष्टि से कृष्ण ओझल हो गये हैं।

रीतिबद्ध कवियों के कृष्ण अपनी वेश भूषा और शृंगार वर्णन में भी भक्ति कवियों से भिन्न हैं। रसिक नायक कृष्ण की या तो वेश भूषा की चर्चा ही नहीं है, केवल विलास चेष्टाओं की चर्चा है, अथवा यदि वेशभूषा है तो अत्यन्त सीमित। 'कृष्ण' नाम के कारण कभी-कभी भक्ताराध्य कृष्ण के वेश का स्मरण उन्हें इस प्रकार

हो आता है जैसे वे 'हाल' की दशा में हों। इस परिस्थिति में कभी गुंजमाल,[३८] कभी पीताम्बर[३९] अथवा मोरचन्द्रिका मुकुट,[४०] कुण्डल[४१] स्मरण हो आता है। परन्तु इन वस्तुओं के स्मरण से भी पाठक के हृदय में देव बुद्धि जागृत नहीं होती। यही कारण है कि दास की पंक्ति :—'आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।' "रीतिकाव्य के अधिकांश कवियों के लिए खरी उतरती है। कल्पना और सौन्दर्य चित्रण के कारण इन कवियों के कृष्ण काम शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित प्रतीत होते हैं। जहां भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के शृंगार चित्रण पर बहुत अधिक बल दिया है और क्षण-क्षण उनकी नयनाभिराम झांकी की चर्चा की है वहाँ रीतिबद्ध कवियों ने कृष्ण के शृंगार से एक प्रकार से दृष्टि हटा ली है तथा नारी सौन्दर्य के चित्रण में अपनी संपूर्ण काव्य प्रतिभा का अपव्यय कर डाला है। भगवान् श्रीकृष्ण के कमनीय रूप को कामुक रूप चित्रित करते हुये इन कवियों ने विलास प्रियता का परिचय दिया है।

---

३८ सखि सोहत गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल॥ —बिहारी

३९ भृकुटी-मटकनि पीतपट-चटक, लटकती चाल।
चलचल-चितवनि चोरिचितु, लियो बिहारीलाल॥ —बिहारी

४० मोर चंद्रिका स्यामसिर, चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति, सुनियत राधा मानु॥ —बिहारी

४१ मकराकृति गोपाल के, कुंडल सोहैं कान।
... झांकी मसत निसान॥ —बिहारी

अष्टम अध्याय

अष्टम अध्याय

रीतिमुक्त कवियों के कृष्ण

जिस स्वच्छन्द प्रेम धारा का प्रवर्तन रसखान ने किया, वह हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल तक चली। उनकी उद्दाम शृंगार भावना से रीतिकाल के अनेक कवि अत्यधिक प्रभावित हुए। इस स्वच्छन्द धारा में जिन कवियों की गणना की जाती है उनमें अनुभूति की गहनता, प्रेम की तीव्रता और उक्ति की वक्रता तीनों का विचित्र सामंजस्य मिलता है। रसखान तथा आलम, भक्तिकाल के अन्तिम चरण के कवि हैं अतः वे रीतिकाल की परिधि में नहीं आते। रीतिकाल की परिधि में आने वाले ये स्वच्छंद काव्य धारा वाले कवि घनानन्द, बोधा, और ठाकुर हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें रीति मुक्त कवि कहा है।[1] वस्तुतः ये कवि अपनी स्वच्छन्दता के लिए किसी परम्परा में नहीं आते। इसी से इनकी चर्चा प्रथक रूप से की जा रही है। इनमें रसखान और आलम भक्ति काल के हैं तथा शोध से सिद्ध है कि रसखान पुष्टिमार्गीय भक्त थे। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में पुष्टिमार्गीय कृष्ण के स्वरूप पर चर्चा करते हुए पीछे भी संक्षेप में रसखान की चर्चा की जा चुकी है। किन्तु रसखान को अनेक विद्वानों ने हिन्दी की स्वच्छन्द काव्य धारा के अन्तर्गत लिया है। अतः उस दृष्टि से यहाँ उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त बोधा तथा ठाकुर रीति कालीन कवि हैं किन्तु उनका काव्य मार्ग रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता। अतः एक प्रथक काव्य धारा के अन्तर्गत उनकी चर्चा की जाती है।

स्वच्छन्द धारा की विशेषता

स्वच्छंद धारा या रीतिमुक्त धारा नहीं है। रीति निरपेक्ष प्रेम और शृंगार भक्ति काल में भी प्राप्त होते हैं। कवि छीहल की पंच सहेली, पोकर का 'रस रतन' माल चन्द्र का 'पद्मिनी चरित्र' पृथिराज की 'वेलि क्रिसन रुक्मिनी री 'आदि रचनायें भक्ति निरपेक्ष शृंगार रस की रचनाएं हैं। इन ग्रन्थों में चिन्तन प्रवृत्ति, भक्ति तथा रीति के मार्ग से हटकर है। हमारा प्रयोजन रीतिकालीन उन कवियों से है जिन्होंने रीति निरपेक्ष प्रेम की रचनायें की हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य पृ० ३४१

इस धारा के कवियों की विशेषता है कि वे मनोवेगों के प्रवाह में बहे हैं अतः इनके काव्य में प्रेम की जीवनगत तथा काव्यगत स्वच्छन्दता का स्वतः समावेश हो गया है। इनकी अन्तर्दृष्टि प्रेमानुभूति को पहचानने में बड़ी व्यापक और सूक्ष्म थी। इनका प्रेम सूक्ष्म होता हुआ लौकिकता से अलौकिकता की ओर बह चला। वह नारी के स्थूल सौन्दर्य ही तक सीमित न रहकर ईश्वर पर्यवसायी हो गया। शरीर संसर्ग की रमणीयता में इनका मन नहीं अटका। ये मानव-संसर्ग को ही अधिक महत्व देते थे। यही कारण है कि इनमें अश्लील चेष्टायें या रूप सौन्दर्य के खुले वर्णन कम हैं। जहाँ भी प्रिय संयोग की चर्चा की जाती है वहाँ विविध मनोदशाओं के चित्रण में ही इनका मन रमता है। संक्षेप में प्रेम का वाह्य पक्ष इनमें इतना प्रबल नहीं जितना कि आन्तरिक पक्ष। रीति काव्यकार भी प्रेम और शृंगार का वर्णन करते हैं किन्तु उनका वर्णन उनके जीवन की अनुभूति से पृथक सा है। यह बात स्वच्छन्द धारा के कवियों में नहीं पाई जाती। ये अधिकांश भक्त तथा प्रेमी हैं।

इन कवियों की एक और विशेषता है। इनके प्रेम व्यापारों में कृत्रिमता का त्याग है। रीतिमुक्त कवि संयोग और वियोग दोनों में हृदयों के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन करते है कृत्रिमता इनमें नहीं। प्रेम इनके लिए आन्तरिक और गोपनीय वस्तु है, सामाजिक नहीं। प्रेमहीन व्यक्ति इनके लिए निरर्थक और शून्य है। यही कारण है कि इनके प्रेम वर्णन में लुका छिपी वचन—चातुरी, अभिसार एवं संकेत स्थल एवं सखी दूती आदि के प्रेमिका बनने की चर्चा नहीं है। रीतिमार्गी कवियों ने इस प्रकार की चर्चाएं पर्याप्त रूप से की हैं। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में भाव की प्रधानता है। हृदय पक्ष प्रबल है बुद्धि पक्ष गौण। रीतिमार्गी कवियों के काव्य में बुद्धि तत्व अधिकांश में विद्यमान है। स्वच्छन्द धारा के कवियों का प्रेम निवेदन स्वयं उन्हीं के द्वारा होता है क्योंकि उनकी प्रेमानुभूति जीवनगत है। इन कवियों की अधिकांश रचनायें स्वानुभूति निरूपक हैं। सखियों अथवा दूतियों का माध्यम उन्हें पसन्द नहीं है। फारसी और उर्दू के कवियों में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। रसखान, आनन्दघन और आलम प्रेम की गहरी अनुभूति पक्ष के कवि हैं। ठाकुर और बोधा में लौकिक पक्ष भी है। इनमें प्रेम के निर्वाह का अत्यधिक आग्रह है। ये कवि संयोग और वियोग दोनों में अन्तर्मुख रहते हैं। इसीलिए इनमें ऊहात्मक पद्धति का अभाव है। माघ के महीने में ये गीले वसन कर विरह ताप नहीं बुझाया करते। रीतिकालीन कवि केवल वियोग में ही अन्तर्मुख होते हैं, संयोग में वे वहिर्मुख ही रहते हैं। आत्मानुभूति ही इन कवियों के काव्य का विषय है। रीतिमार्गी लोकानुभूति का वर्णन करते हैं। इनके प्रेम का विषय एकान्तिक तथा आत्यान्तिक है। प्रेम की उच्चता और उदात्तता के साथ-साथ विषमता भी दृष्टिगत होती है। स्वच्छन्द प्रेम का उत्कर्ष विषमता में ही निष्पन्न होता है। रीतिमार्गी कवियों में प्रेम का

स्वरूप सम है और पारिवारिक है। इन रीतिमुक्त कवियों में लोक मंगल का पक्ष भी है और पर्व तथा त्यौहारों की भी चर्चा है। भाषा परिमार्जित एवं व्यवस्थित है। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि रीतिकाल के कवि प्रकृत्या प्रेमी नहीं इसके विपरीत स्वच्छन्द धारा के कवि प्रकृत्याप्रेमी हैं। स्वच्छन्द धारा के कवि प्रेमी अधिक हैं, रसिक कम। रीतिकाल के कवियों में रसिकता अधिक है, जिसमें ऐन्द्रिकता का समावेश है। रीतिमार्गी कवियों ने प्रेम को वासना की दृष्टि से देखा है। स्वच्छन्द धारा के कवियों ने प्रेम को अध्यात्म रूप देने की चेष्टा की है। उसमें बाजारी इश्क अथवा दरबारी परकीया विलास नहीं है। इनमें आदर्शवाद और बलिदान की भावना ही प्रधान है।

स्वच्छन्द धारा के कवियों की रचनाओं में कृष्ण का स्वरूप—१—रसखान

रसखान यद्यपि जाति से मुसलमान थे किन्तु अपनी प्रेम पद्धति के कारण इन्हें कृष्ण भक्ति अत्यन्त मोहक जान पड़ी। परिणामस्वरूप ये पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गए और ब्रजधाम में इन्होंने अपना चिर आवास बना लिया। रसखान स्वभाव से स्वच्छन्दताप्रिय हैं। अतः कृष्ण भक्ति के शास्त्रीय पक्ष की इन्होंने चिन्ता नहीं की। रागानुगा भक्ति को अपनाकर इन्होंने स्वच्छन्द प्रेम को ही अपने काव्य का लक्ष्य बनाया। फारस की लैला और व्रज की गोपियों में इन्हें कोई अन्तर नहीं दीखता था। इन्होंने गोपियों के प्रेम को अनन्य माना तथा भक्तवर परमानन्द के 'गोपी प्रेम की धुजा' के अनुसार गोपी भाव को सर्वोच्च भाव।[२] इसी दृष्टि से कृष्ण उनके प्रभु नहीं प्रिय हैं।[3] किन्तु रसखान ने परब्रह्म का स्वरूप भुलाया नहीं। रसखान के कृष्ण गोधन गाने वाले तथा वेणु बजाने वाले होते हुए भी शेष, गनेश, महेस, दिनेश और सुरेश के द्वारा गेय हैं। वही अहीर की छोकरियों के सामने छछिया भर छाछ पर नाचता है। ब्रह्मा दिन रात जिनका स्मरण करते है वे ही खड़े छाछ के लिए ठुनक रहे हैं।[४] मुसलमान होने के नाते रसखान ने परम तत्व अथवा अध्यात्म ज्योति की ओर ही

---

२ जदपि जसोदा नन्द अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की गोपी भईं अनन्य॥

३ दम्पत्ति सुख अरु विषय रस पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखान॥

परब्रह्म कृष्ण—

४ शेष महेश गणेश दिनेश सुरेश हु जाहि निरन्तर गावें।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेह अभेव सु वेद बतावें॥

सर्वेश्वर कृष्ण—

नारद लैं शुक व्यास रटैं पचिहारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें॥

संकेत किया है। पौराणिक देवता वाद रसखान को मान्य नहीं। यहीं रसखान सूर और तुलसी से भिन्न पड़ जाते हैं। रसखान के कृष्ण मानव अधिक हैं, अलौकिक कम। परम ज्योति ही सीधी कृष्ण रूप में अवतरित हुई। उसकी अनुभूति और उसके कार्य सब मानवीय हैं। इसीलिए नन्दनन्दन ब्रजराज कृष्ण अवतारी हैं।[५] मनोहर भावों की सरल अभिव्यक्ति रसखान के काव्य का प्रधान गुण है। आराध्य कृष्ण भक्त की समतल भूमि पर उतर कर मानव बन गया है। रसखान में प्रेम की पूर्णता है। उनके काव्य में मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार का प्रेम माना गया है। इसीलिए उनके काव्य में रसात्मक कृष्ण प्रेम देव के रूप में व्यक्त हुये हैं। यह प्रेम देव[६] गोपियों के परमाराध्य हैं—गोपी वल्लभ[७] तथा राधा वल्लभ[८] हैं। रसखान ने कृष्ण के रसात्मक स्वरूप को बड़े मोहक रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने राधा को स्वकीया[९] और परकीया[१०] दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्मत तथा उद्दाम शृंगार के कवि रसखान ने अपने कवित्तों में अनेक सुरतांत चित्र दिए हैं।

इन स्वच्छन्द कवियों में एक विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रिय को प्रिय लगने वाली समस्त वस्तुयें प्रिय के प्रेम के नाते से प्रीति के समान ही प्रिय लगती हैं। रसखान को भी कृष्ण के नाते ब्रज के बन, बाग, तड़ाग, करील, कुंज कछार इतने

---

५ गुंज गरे सिर मोर पखा अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
सांवरो नन्दकुमार सबै ब्रजमण्डल में ब्रजराज कहावै॥

६ तेरी गलीन में जा दिन तें निकसे मनमोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सों कौन सी बात चलाइ के जो नहीं नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझि हैं नेकु तो रीझि के क्यों बनवारि रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत॥

७ कुंजन में पुरबीथिन में पिय गोहन लागि फिरौं मेरी माई।
बांसुरि टेर सुनाय अरी अपनाय लई ब्रजराज कन्हाई॥

८ देख्यो दुरयो वह कुंज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन॥

९ मोर की चन्द्रिका मोर लसैं दिन दूलह है अलि नन्द को नन्दन।
श्री वृषभानु सुता दुलही लही जोरी बनी बिधिना सुख कन्दन॥
रसखान न आवत मोपै कह्यो कछु दोऊ फन्दे छवि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोके सभी सुख पावत ये ब्रज जीवन दुःख निकन्दन॥

१० रसखान कहें इहि बीच अचानक जाय सिढ़ी चढ़ि सास पुकारो।
सूख गई सुकुमार हियो हनि सैनन सों कह्यो कान्ह सिधारो॥

प्रिय हैं कि अनेक स्वर्ण मन्दिरों को भी वे उन पर न्योछावर करते हैं ।[11] अपने प्रेम देव के प्रसंग में रसखान ने प्रेम का एक अनोखा आदर्श रखा है। आत्म समर्पण की पराकाष्ठा में भी वासना की दुर्गन्ध नहीं। दो अन्तःकरणों के एक होने पर ही नहीं अपितु दो शरीर एक हो जायं तब प्रेम कहलाता है।[12] उनके कृष्ण प्रेम लक्षणा भक्ति के आलम्बन हैं और सम्पूर्ण रूपेण प्रेम स्वरूप हैं।

२—आलम

स्वच्छन्द काव्य धारा के दूसरे कवि आलम की प्रेमानुभूति भी व्यक्तिगत है। इसी कारण वह मार्मिक एवं अत्यन्त यथार्थ बन पड़ा है। उनके प्रेम में अभिलाषा प्रधान है। अतः आलम के कृष्ण भी रस नायक तथा रसात्मक कृष्ण हैं। आलम ने कृष्ण के परब्रह्म अथवा परमेश्वर स्वरूप को कहीं व्यक्त नहीं किया। संयोग और वियोग के ही अनेकानेक चित्र उनकी रचना में मिलते हैं। इस प्रकार उनके लक्ष्य में रसात्मक कृष्ण ही रहे हैं। कृष्ण गोपी वल्लभ भी हैं और अनुकूल नायक भी। साथ ही उनके द्वारा प्रेम पीड़ाओं का चित्रण बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है। कृष्ण को देखकर भी कष्ट और न देखकर भी। देखने पर नेत्र फटे रह जाते हैं और न देखने पर अत्यन्त दुःखी रहते हैं।[13]

संयोग की अपेक्षा आलम ने वियोग शृंगार के कवित्त अधिक लिखे हैं। खेद, अनुताप आदि संचारियों के चित्रों में गोपियों की असीम अनुरक्ति कृष्ण के प्रति प्रतीत होती है।[14] आलम का हृदय भक्त हृदय था। उन्होंने भक्तोद्धारक, सर्वेश्वर कृष्ण के

---

११ या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूं पुर को तजि डारों।
आठहुं सिद्ध नवो निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारों॥
रसखानि कबों इन आंखिन सों, ब्रज को बन बाग तड़ाग निहारों।
कोटिक हों कल धोति के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारों॥

१२ प्रेम वाटिका—२४

१३ देखे टकलागे अनदेखे पलकौन लागे
देखे अनदेखे नैना निमिष रहत हैं।
सखी तुम कान्ह हो यु आन की न चिन्ता
हम देखे हू दुखित अनदेखे हू दुखित हैं॥
—आलमकेलि छन्द १८५

१४ जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कौंकरी बैठि चुन्यो करें।
जा रसना सों करी बहुबातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करें॥
आलम जान से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करें।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें॥

स्वरूपों को लिया है तथा दोनों को एक साथ मिला दिया है। उसी के साथ भगवान् कृष्ण को आर्त त्राण परायणता का परिचय दिया है।[१५]

आलम के कृष्ण निपट निष्ठुर है क्योंकि निकट रहकर भी वे पूर्ण सुख नहीं देते।[१६] ऐसी उक्तियों से आलम के प्रेम में भौतिकता ही अधिक है आधिदैविकता कम। लौकिक प्रेम के मूल में वासना होती है जिसका मुख्य तत्व अभिलाषा है। प्राप्ति से अभिलाषा और भी बढ़ती है इसी से उसका पर्यवसान दुःख में होता है। आलम का प्रेम दुःख पर्यवसायी है। वेदना के सतत रहने से उसका उत्साह भी भंग हो गया है। उसकी स्फूर्ति खो सी गई है।[१७] अतः वह अपनी वेदना में संतुष्ट और संयोग सुख से उदासीन है। प्रिय कृष्ण जिससे रस हो उसके साथ खेलें। उनके देखने से हृदय की तपन दूर होती है, यही बड़ा भारी यश है। कृष्ण अनेकों को प्रिय हैं, परन्तु वे किसी की पीर नहीं पूछते, यह परिहास है। यदि उनके मन में कोई आ बसी है तो इसमें उनका क्या बस ! कृष्ण के इस बहुनायकत्व की ओर कवि ने संकेत दिया है। इस प्रकार वियोग शृंगार के अन्तर्गत आलम ने अनेक संचारियों के मार्मिक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आलम के कृष्ण विषयक शृंगार में लज्जा और अभिलाषा का संघर्ष है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण आलम में अश्लीलता भी आगई है। कृष्ण अनुकूल धीरोदात्त और दक्षिण दोनों ही प्रकार के नायक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।[१८] प्रेम का करुणार्द रूप बहुत स्पष्ट है। द्वारिका लीला में रुक्मिणी परिणय वाले प्रसंग को आलम ने लिया है। सुदामा चरित्र में सौहार्द का चित्रण अत्यन्त हृदयग्राही किया है। इस प्रकार कृष्ण का भक्त कल्याणकारी स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण का लोक मंगलकारी स्वरूप प्रस्तुत करते हुए प्रेम की अत्यन्त मार्मिक अनुभूतियाँ भी प्रस्तुत की हैं।

३—घनानन्द

घनानन्द स्वच्छन्द धारा के प्रमुख कवि हैं। घनानन्द के कृष्ण को प्रस्तुत करने के पूर्व घनानन्द के काव्य की काव्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि घनानंद ने अपने परमाराध्य को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही अपने काव्य

---

१५ पेड़ो सम सूधो बेंडो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नहीं तहाँ सकल भगति हैं।
कोल भनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं सु दीनबन्धु स्वामी सूर पतिन को पति हैं।
बैरी को न बैर बरियाई को न परवेश होने को कटक नाहीं छीने को सकति हैं।
हाथी की हुंकार पल पाछे पहुँचन पावे चींटी की चिंघार पहले ही पहुँचाति है।

१६ आलमकेलि १४०

१७ परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह

१८ आलम केलि—१४८

में प्रस्तुत किया है। घनानंद के उन्मुक्त प्रेम के लिए एक मुक्त वातावरण की अपेक्षा थी। रीतिकाल में मुक्त वातावरण का अभाव था, इसलिए वे स्वच्छन्द धारा के कवि हैं और उन्हें रीति मुक्त कवियों की श्रेणी में रखा जाता है। उस काल में सखी, दूती, वचन वैदग्ध्य आदि बाह्य कृत्रिमताओं की आवश्यकता पड़ती थी। रीतिकाल में समाज और साहित्यिक दोनों प्रकार के बन्धन थे। किन्तु घनानंद ने सामाजिक बन्धनों की क्षणमात्र भी चिन्ता नहीं की। उन्हें स्वयं एक वेश्या से प्रेम था। इसी से उनका प्रेम गार्हस्थिक नहीं है। उसमें समाज की मर्यादा न होकर जीवन की पूर्ण स्वच्छन्दता है। इसीलिए घनानंद नायिका भेदों के चक्कर में नहीं पड़े। उनमें प्रेम की गम्भीर अनुभूति है, अभिव्यक्ति नहीं। इसीलिए मौन होकर विरह व्यथा सहते हैं। प्रेमानुभूति की महत्ता उसके गुप्त रखने में है। अतः घनानंद प्रेम व्यापार में अन्तर्मुख हैं। घनानंद में अभिलाष तत्व भी बड़ा प्रखर है।

घनानंद का यह उन्मुक्त प्रेम, भक्ति में पर्यवसित हो जाता है। उनके भक्ति के आलंबन रसिकेश रसेश कृष्ण हैं। उनके उद्दाम प्रेम के उचित आलंबन कृष्ण ही हो सकते थे। उन्होंने कृष्ण को प्राय सभी रूपों में देखा है। क्योंकि उनमें ज्ञान और भक्ति का अद्भुत सम्मिश्रण था। प्रेम और वैराग्य की वे प्रति मूर्ति थे। वृन्दावन की वीथियों में तथा यमुना के तट पर वे विरक्त वेश और मौन धारण कर घूमा करते थे। उनमें वैराग्य पूर्ण भक्ति तथा शान्त भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है। वे हृदयस्थ भगवान् को बाहर प्रत्यक्ष रूप में भी देखना चाहते हैं।[१९]

घनानंद के कृष्ण शान्त भक्ति के आराध्य कृष्ण है। वे उनके चरणों की वंदना करते हैं। वे चरण परम सुख की सीमा और दुख को दूर करने वाले हैं। शिव ब्रह्मा, नारद आदि इनकी शरण रहते हैं। वे प्यास को दूर करने वाले रस निवास आनंद के घन हैं।[२०] घनानंद वास्तविक शान्त भक्त थे। शान्त भक्ति के साथ उनमें प्रेम का माधुर्य भी झलकता है। इसका कारण उनका मूलतः प्रेमी होना है। श्री कृष्ण उनकी विनय-भावना के आलंबन हैं। कमल लोचन करुणाकर कृष्ण उन्हें अपने चरणों में रखें यही उनकी भावना है। कृष्ण शरणागत वत्सल हैं। वे अवश्य उन्हें शरण देंगे।

घनानंद जी मुख्य रूप से मधुरा भक्ति तथा स्वच्छन्द प्रेम के कवि हैं। वात्सल्य भाव के दर्शन इनकी रचना में अत्यन्त अल्प मात्रा में तथा अ-परिपुष्ट रूप में होते हैं। अपने एक पद में उन्होंने कहा है कि 'वह ब्रज का आंगन धन्य है जहाँ बालक

---

१९ अंतर में बैठे कहा दुखदेन निकसि क्यों न आवत अंखियन आगे।।

२० ये आनंद कंद वंदि मैं हरि चरन।
परम सुख की सीम दुख समूह हरन।।

श्री कृष्ण घुटनों डोलते हैं। यशोदा धन्य है जिनसे कृष्ण तोतली बोली में बोलते हैं। यह ग्रानंदघन प्रसन्न होकर उनकी गोद में सोते हैं।[२१] गोचारण से लौटने पर यशोदा अपने बाल कृष्ण की ग्रारती उतारती हैं, अंचल से मुंह पोंछती है। पुचकारों से उन पर प्रेम की वर्षा करती हैं।[२२] बधाई के पदों में भी वात्सल्य भाव की झलक मिलती है। 'गिरिपूजन' में भी कृष्ण के शैशव का थोड़ा वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में उनका गोद से उतर कर पायनि चलना वर्णित है।[२३]

कृष्ण ने गोकुल में अवतार लिया। गौरस का गोपाल से कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है, इसे कौन नहीं जानता। इस लीला के कारण गोकुल प्रेम की सुहावनी पैंठ हो गया है। गोकुलेश कृष्ण घनानंद के रोम में रम रहे हैं।[२४]

कृष्ण ने गोकुल में अनेक मनोहारी लीलायें करके गोपियों के मन का हरण कर लिया था। जब वन में कृष्ण की मधुर स्वर वाली बांसुरी बजती थी तो गोपिकायें उनके दर्शन और मिलन के लिए व्याकुल हो जाती थीं। सूर की गोपियों की तरह घनानंद की गोपियां भी वेद मर्यादा मार्ग का उलंघन करके निडर होकर कृष्ण की बांसुरी की स्वर डोर से खिंच कर उनके निकट पहुंच जाती थीं।[२५]

---

२१ ग्रानंदघन पदावली ३३५।

२२ ग्रानंदघन पदावली ८७३।

२३ ऐ मेरे मन नैनन रोम रोम मधि कृष्ण रम्यों है।
कहुं बेचत, कहुं लेत गोपाल सो घर घर,
फिरत बिकात जात कहुं नीकैं नेह जम्यो है।
गोकुल प्रेम की पैंठ सुहाई, जहाँ जगजीवन पाइ भम्यों है।
ग्रानंद घन अचरज सनकादिक, संकर गिरजा सीस नम्यो है।

२४ स्याम राम की जोट सुहाई। सबके मन नैननि सुखदाई।
रंगन करत ग्वालगन संग। ब्रज मोहन सबको सब अंग।
रोहिनि जसुमति को समाज जहां। दौर जात है कान्ह कुंवर तहं।
गोद मराय फिरत कुछ बांटत। मधु मंगल लै लै फिर नाटत।
गिरधर पायनि पायनि पायन। उतरि चलत भरि गोधन ग्रावन।।
— गिरिपूजा

२५ एरी वन बाजी बांसुरिया कैसे रहौं घर वैया।
कलमलात जियरा मिलवे कों, है कोऊ धीर धरैया।।
गाज परी या लाज निगोड़ी करि हैं कहा चवैया।
ग्रानंदघन पिय उघरि मिलोंगी, अजब डर करे बलैया।।

गोपी वल्लभ कृष्ण कुछ बड़े होने पर गोरस की लूट में और भी चतुर हो जाते हैं। ब्रज गोपियाँ देवी पूजन के लिए गिरि घाटियों से नित्य निकलती हैं। उनकी पग ध्वनि को सुनकर कृष्ण का संकेत पाकर ग्वाल गिरि घाटियों में लकुटों की बेड़ी लगा कर बैठ जाते हैं। श्रीकृष्ण की आज्ञा से घाटियों को घेर लिया जाता है। कृष्ण एक ओर खड़े होकर ब्रज तरुणियों को चपल नेत्रों से देखते हैं और दान केलि के चाव से मन ही मन प्रसन्न होते हैं। गोरस के बहाने से झटकते झगड़ते हुए हंस हंस कर क्रोध के वचन बोलते हैं। कृष्ण गहन कुंजों तथा पर्वत कंदराओं में विहार करते हैं। दानकेलि में कोलाहल मचता है और सब ग्वाल दधि लूटते हुए मिलकर नाचते हैं।[२६] घनानन्द की अधिकांश रचनाओं में मधुर भाव की व्यंजना है तथा गोपियों के प्रति परकीया सक्ति का परिचय प्राप्त होता है।[२७] कृष्ण की प्रेमिका कहती है—उनका रूप देखकर मेरा मन पारे के कूप के समान उमड़ता है। जितना इसे स्थिर करती हूं, उतना ही चंचल होता है। यह श्रीकृष्ण के गुणों की आड़ में जाकर गिर जाता है। मैं कामदेव के शूल सहती हूं। उनके चेटक के धुंए में मेरे प्राण घुटते हैं। मैं अपनी दशा किससे कहूँ। अब तो हृदय में यही है कि ब्रज के छैल की छाया के समान उन्हीं के साथ सदा रहूँ।[२८] "दानघटा" में ललिता मधु मंगल को सम्बोधित कर कहती है कि दान मांगने में ऐंठकर चलने से काम नहीं चल सकता। यदि राधा के गुन गाकर रिझा दो तो फिर उनकी न्यौछावर करके दही तुम्हें दिया जा सकता है। कहा जाता है कि घनानन्द सखी सम्प्रदाय के थे। इसीलिए उन्होंने प्रधानता गोपी प्रेम को ही दी है। इस भाव से संबंधित एक पद इस प्रकार है :—

प्रेम तो गोपिन ही को भाग।
जिनके नन्द सूनु सों सांच्यो रच्यो राग अनुराग॥
कहिये कहा निकाई मन की जो कछु लागी लाग।

---

२६ ब्रज व्योहार ६८-११२

२७ मोहन प्रीति करी मैं जानी।
दे बिसवास गयो तजि मथुरा, रति कुब्जा सों मानी॥
कपट भरो अति करो तन को, कपट भरी सब बानी।
आनन्दघन हित चित की बातें जानत नांहि बिरानी॥

२८ मन पारद कूप लों रूप चहैं उमहै सुरहै नहिं जेतो गहौं।
गुन गाढ़नि जाय परे अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं॥
घन आनन्द चेटक घूमि में प्रान छुटैं न घुटैं गति कासों कहौं।
उर आवत यौं छबि छाँह ज्यौं हौ ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं॥

आनन्दघन सुजानहित ११

सर्वसु विसरि विसरि सुधि साधी महामोह की जाग ।।
व्रज मोहन को महामोहनी अनुपम अचल सुहाग ।
आनन्द घन रस झेलि झालरी, नव वृन्दावन बाग ।।

आनन्दघन पदावली पद १६२

गोपिन की पदवी अगम निगम निहारत जाहि ।
पद रज विधि से जांच ही कौन लहै फिर ताहि ।।

आनन्दघन पदावली ६६७

राधा वल्लभ कृष्ण—

श्री कृष्ण राधा को अतिशय प्रेम करते हैं और राधा श्री कृष्ण को । सखी संप्रदाय में दीक्षित सखी भाव के उपासक घनानन्द का हृदय राधा कृष्ण की पारस्परिक लीलाओं में अत्यधिक अनुरक्त है । दोनों रंगीले हंस हंस कर बातों की मदिरा में मस्त हैं । गौर वर्ण राधा तथा श्याम वर्ण कृष्ण दोनों के हृदय में गहरी प्रेमी भंग है । वे परस्पर सरस स्पर्श के लिए ललचाते हैं । नई तरुणाई की आभा से पुलकित हो रहे हैं । उनके प्रेम की रीझि अनुपम है ।[29] छैल छबीले राधा कृष्ण परस्पर प्रेम में पगे हैं ।[30] राधा के प्रेमानन्द को या तो श्री कृष्ण जान सकते हैं या स्वयं राधा ।[31] प्रेम में मान का बड़ा महत्व है । अतः घनानन्द ने राधा का मान भी वर्णन किया है । सखी रूप घनानन्द मानवती राधा को इस प्रकार मनाते हैं—'राधे सुजान ! इधर ध्यान दो । प्रेम में मान मरोड़ कहां की जाती है ! तुम्हारा तो मन मक्खन से भी अधिक कोमल है । फिर यह कठोरता की बान कहां से पड़ गई ? श्याम से मिलकर तुम कैसी शोभाय-मान होती हो—यह कहा नहीं जाता । वह आनन्द का घन होकर भी तुम्हारा पपीहा है, व्रज चंद होकर भी तुम्हारा चकोर है ।[32] वस्तुतः कृष्ण राधा के प्रेम के लिए

---

२६ हंसि हंसि करैं बातें रंगीले दोऊ मदमाते ।
गोर स्याम अभिराम अंग अंग हिय उमंग बाढ़ी गाढ़ी अति सरस परस ललचाते ।
नई तरुनई की ओप भई मुख सुख समोह पुलकाते ।
रीझि चोप आनंदघन बरसत मिलत हार करि हाते ।।

३० छैल छबीले राधा मोहन प्रेम पगे जगमगे लाल ।
आनंदघन रस भीजे रीझे बिलसत हुलसत बाढ़ति चोंप बिसाल ।।

३१ राधा के आनंद को मन मोहन मन साखि ।
राधा की अभिलाष जो राधा पिय अभिलाष ।। —प्रिया प्रसाद ७७

३२ राधे सुजान इते चित दे हित में कितकी अति मान मरोर है ।
माखन तें मन कों बरो है यह बान न जानति कैसे कठोर है ।।
सावरे सों मिलि सोहति जैसी कहा कहिये कहिबो को न जोर है ।
तेरो पपीहा जु है घन आनंद है व्रज चन्द सो तेरो चकोर है ।।

निरन्तर अकुलाते हैं। श्री कृष्ण राधा के पति हैं और राधा पत्नी। घनानन्द ने कृष्ण को 'दुलहा' तथा 'बना' बनाया है और राधा को 'बनी' या दुलहिन।[33] अतः कृष्ण राधा के स्वकीय पति हैं किन्तु राधा कृष्ण के परस्पर प्रेम में परकीया की सी उन्मद भाव धारा बहती है। यह घनानन्द का अपना भाव है। उनके प्रेम भाव की विलक्षणता है। उन्मद अवस्था का एक पद इस प्रकार है :—

अंजन दे री राधे न करि गहर है हा हा।
निझनक बार टरी जाति मन भावत ब्रज मोहन मिलन उमाहा॥
चलि राधे वृन्दावन विहरन औसर बन्यो है मनोरथ पुरवा।
आनन्दघन पिय बेनु बजावत अति आरति सों तांहि बुलावत लै रीझनि भीजे सुखा॥

आनन्दघन पदावली ६७१

राधा के भाग्य की कवि ने सराहना की है क्योंकि कृष्ण-प्रेम के नाते उस पर सर्वोपरि अनुराग की वर्षा हुई है। वह कृष्ण के साथ नित्य वृन्दावन विहार करती हैं।[34]

राधा महाभाव की आश्रय हैं तथा श्रीकृष्ण उसके आलंबन। इसमें श्रीकृष्ण की रसात्मकता के दर्शन होते हैं। महाभाव का पद इस प्रकार है :—

भावती बतियन लगि लगि छतियन लाग निपट रस बने रसाल।
जौबन रूप अनंग रंग राते, मदमाते करत रंगीले ख्याल॥
छैल छबीले राधा मोहन, प्रेम पगे जगमगे लाल।
आनन्दघन रस भीजे रीझे विलसत हुलसत बाढ़ति चौंप विसाल॥

—आनन्दघन पदावली २०६

घनानन्द के कृष्ण प्रेमस्वरूप हैं। राधा और कृष्ण का प्रेम मानवीय उच्च

---

३३ नवल बना री नवेली बनी राधा को।
ब्रज मोहन नीको नाव रसीलो भाग भरे दुलहा को॥

३४ देखो राधा को सुहाग याके सरवोपर अनुराग,
कान्ह कंत बसन्त सूरति नित याके बस बड़ भाग विहारन को वृन्दावन बाग।
याकी रूप निकाई विधना याहि बनाई याके गुन।
मुरली में गावत पूरत विविध रागिनी राग
याहि परसि सरसत आनंदघन पगे परम पन पाग।

—आनंदघन पदावली ६७२

स्तर का है। वे प्रेम के अपार सागर में एक रस होकर सदा निमग्न रहा करते हैं।[३५] कृष्ण घनानन्द के प्रेम के आलंबन हैं। उनमें सूर और मीरा की सी तन्मयता, तुलसी की सी उदारता, विद्यापति का सा पद लालित्य तथा बिहारी का सा अर्थ गौरव है। वे प्रेम मार्ग के धीर पथिक थे तथा उनके कृष्ण प्रेम स्वरूप। उनकी विरह की भावना अत्यन्त तीव्र वेदनामयी है।

४—बोधा

कवि बोधा का प्रेम विशुद्ध अधिभौतिक है इसलिए भक्ति काल तथा रीति काल के पारस्परिक प्रेम से भिन्न है। इनके पात्र भी लौकिक और प्रेम भी लौकिक है। ये इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी में कोई अन्तर नहीं मानते। बोधा ने इश्क शब्द का व्यवहार उच्च प्रेम के अर्थ में किया है। उन्होंने कृष्ण को साक्षात् प्रेम स्वरूप माना है। कृष्ण प्रेम स्वरूप हैं इसीलिए बोधा को प्रिय हैं जो प्रिय है वही भगवान है अतः श्रीकृष्ण भगवान् हैं।[३६] तात्पर्य यह कि बोधा के कृष्ण पूर्ण रसात्मक हैं और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। नाद वेद रतिरंग, सौन्दर्य और अद्भुत विभव जिनके शरीर में विद्यमान रहते हैं उनमें ब्रजराज रहते हैं। जो प्रेमी रतिरंग में डूबे रहते हैं और श्रृंगार रस का गान करते रहते हैं वे मेरे मित्र हैं। यह ब्रजराज ने चिल्ला-चिल्ला कर कहा है।[३७]

बोधा ने प्रेम की मस्ती, स्वच्छन्दता और मांसलता का अनुभव किया था। प्रेम में उद्दाम मनोवेगों के होते हुए भी बोधा ने प्रेम की दिव्यता का अनुभव किया था। उन्होंने एक स्थान पर कहा है 'जो प्रेम शरीर से उत्पन्न होता है वह प्रेमी के शरीर तक ही सीमित रहता है। आत्मा या हृदय तक नहीं पहुँचता। ऐसे प्रेम से हाड़ मांस गलता रहता है। यह अधम प्रेमी इश्क पहचानता।[३८] गोपियों को प्रेम में

---

३५ प्रेम को महोदधि अपार हेरिके बिचार,
बापुरो हहरि वार ही सों फिरि आयो है।
ताही एक रस ह्वे बिवस अवगाहैं दोऊ,
ने ही हरि राधा जिन्हें देखे सरसायो है॥

३६ इश्क मजाजी में जहां इश्क हकीकी खूब।
सो सांची ब्रजराज है जो मेरा महबूब॥
—विरह बारीश तरंग १

३७ विरह बारीश तरंग १६

३८ इश्क नामा १, २

केवल कृष्ण की लालसा है। वे कृष्ण प्रेम में आसक्त हैं। वे कृष्ण के आलिंगन के लिए बेचैन हैं भुजा बांधकर वे उनसे मिलने को बेचैन हैं।[३९]

५—ठाकुर

इसी परम्परा में ठाकुर भी रीतिमुक्त कवि हैं। इन्होंने प्रेम शृंगार में अनुराग और वियोग दो का अधिक वर्णन किया है। ठाकुर के अनुराग की परिभाषा यह है कि वह विषमताओं में भी परिवर्तित नहीं होता और स्थिर रहता है।[४०] इस अनुराग की परिभाषा को लेकर ही ठाकुर भक्ति क्षेत्र में आगे बढ़े और उन्होंने कृष्ण की मधुर लीलाओं का, उनके रूप सौन्दर्य का सीधा-सीधा वर्णन किया। चरम प्रेमानुभूति में राधा और कृष्ण के प्रेम की चर्चा की है। उसको हम मानवीय रति कह सकते हैं। राधा कृष्ण का नाम रीति परम्परा के कारण है। भगवान श्रीकृष्ण के सर्वेश्वरत्व, भक्तोद्धारकत्व के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत थोड़ा कहा है। वे किसी सम्प्रदाय के चक्कर में नहीं तथा न वे सगुण के चक्कर में पड़े हैं। भगवान के भक्तोद्धारक स्वरूप पर ठाकुर अत्यन्त मुग्ध हैं। इसीलिये उन्होंने छिपिया के दूध, कर्मा की खिचड़ी, रैदास का नैवेद्य, बिदुर की रोटी, विदुरानी के छिलके की चर्चा की है। भगवान के काम अटपटे हैं। ब्रज में करील लगाया, काबुल में मेवा। राधा सी सुन्दरी छोड़ी और कुब्जा से प्यार किया।[४१] भक्ति के क्षेत्र में ठाकुर ने अन्य रीतिकाल के कवियों की तरह मानवीय शृंगार लीलाओं को राधा कृष्ण के नाम पर लादा नहीं है। संक्षेप में ठाकुर के क्षेत्र में विशुद्ध मानव है तथा भक्ति के क्षेत्र में भक्त। उनके श्रीकृष्ण अपने ऐश्वर्य में भगवान और प्रेम में मानव हैं।

---

३९ करि प्रेम नहीं कि बाहा करिबो पतवारि प्रतीति की ले झिलि है।
पुनि भूरि वितान अरावो अही जल जन्तुन के मुख में छिलि है।
कवि बोधा उसी बिल माहिर को नौका भव सिंधु में ले मिलि है।
हम राम दुहाई न झूँठी कहैं, ब्रजराज सों बाँधि भुजा मिलि हैं॥

४० ठाकुर एक स्वभाव है बोलगि तो लगि देह धरे जग जीवो।
घोर सनेह निभायबे को हम तो अपनी सी कियो अरु कीबो॥

४१ ठाकुर ठसक पद ७-८

नवम अध्याय

नवम अध्याय

काव्य के विभिन्न रूप और कृष्ण

(१) गीत काव्य—पूर्व मध्ययुगीन कृष्ण-भक्त कवियों ने इष्ट के प्रति आत्म-निवेदन तथा गोपी भाव को व्यक्त करने के लिए गीति-काव्य का ही सहारा लिया। गीत का सबसे प्रमुख तत्व आत्माभिव्यंजना है। उसमें जीवन के वाह्य क्रिया कलापों का स्थान गौण और कवि के अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति प्रधान रहती है। प्रथम कोटि की रचनाओं में कवियों का रागात्मक आवेश तथा मनोवेगों की तीव्रता प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई है तथा द्वितीय कोटि में गोपियों तथा गोपी-कृष्ण लीला के माध्यम से। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति-काव्य में गीति-काव्य के दो रूप माने जा सकते हैं—(१) शुद्ध गीत-काव्य, (२) आख्यानक गीतिकाव्य।

शुद्ध गीतकाव्य—इसमें भक्त कवियों का आत्म निवेदन प्रकट हुआ है। सूर के आत्म निवेदन सम्बन्धी पदों में भी आत्माभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष रूप मिलता है। इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण नाम मीराबाई का है। उनकी भावनाओं का स्रोत गीति-काव्य के संगीत और काव्य के माध्यम से फूट पड़ा है। उनके गीतों में राग तत्व प्रधान है। उनमें पहाड़ी झरने की सी गति एवं आकस्मिकता है। उनकी भाषा और शैली भी गीति-काव्य के पूर्णतः अनुकूल है।

आख्यानक गीत काव्य अथवा प्रबन्धगीत अथवा सागर—सूर सागर, परमानंद सागर तथा लाड़सागर, ब्रजप्रेमानन्द सागर जैसी प्रबन्ध रचनाएँ गीत शैली में रचित हैं। इनके द्वारा आख्यान का विकास होता है। इन सागरों के पद स्वतः पूर्ण एवं स्वतन्त्र होते हुये भी एक क्षीण कथा सूत्र में पिरोये हुये हैं।

(२) लीला गीत - इस प्रकार के गीत आत्मानुभूति व्यंजक नहीं होते किन्तु माध्यम के साथ कवि का तादात्म्य हो जाता है। यहाँ आत्माभिव्यंजना शुद्ध न होकर मध्यान्तरित है किन्तु इन गीतों में गीत-काव्य का प्राण तत्व, भावों का तीव्र उद्रेक, भावों का ऐक्य और अन्विति उनमें पूर्ण और आदर्श रूप में है। प्रसंग के अनुकूल कहीं भाव को अधिक महत्व मिलता है और कहीं आख्यान को। अधिकतर कवियों ने भागवत के दशम स्कंध में उल्लिखित कृष्ण लीलाओं का ही गान किया है। अधिकतर

गय भावप्रधान हैं और बाल लीला, गोदोहन, गोचारण, चीरहरण गोवर्धन-धारण, दानलीला आदि सरस प्रसंग कवियों ने लिये हैं। राधा, गोपी और कृष्ण से संबन्धित शृंगार भावना के गीत भी लीला गीत की श्रेणी में आते हैं।

(३) लोक गीत—कृष्ण लोक नायक है। माधुर्य और लालित्य से परिपूर्ण कृष्ण का जीवन लोक मानस को प्रिय है। कृष्ण-काव्य का विकास ब्रज प्रदेश में हुआ। अतः यहाँ के लोकगीत कृष्ण कथा से सम्बन्धित हो गये। इनमें शास्त्रीय संगीत तथा साहित्यिक भाषा का स्पर्श देकर कवियों ने रूप परिष्कृत कर दिया किन्तु लोक गीत की आत्मा और प्रकृति की पूर्ण रक्षा करने का प्रयास करने के कारण वे गीत जनमानस में लोकप्रिय बने रहे। ये गीत स्वानुभूति निरूपक न होकर वर्णनात्मक अधिक रहे। कृष्ण जन्म, पालना, गोचारण, छठी विवाह, ज्योनार आदि के गीतों में तत्कालीन ब्रज की लोक-संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। सूरदास द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने का एक गीत इसका उदाहरण है—

कन्हैया हालरु रे।
गढ़ि गुढ़ि ल्यायो बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे।
इक लख माँगे बाढ़ई, दुइ लख नन्द जु देहि, बलि हालरु रे॥
रतन जटित बर पालनो, रेशम लागी डोर, बलि हालरु रे।
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नन्द की गोद, बलि हालरु रे।
झूलैं सखी झुलावहीं, सूरदास बलिजाय, बलि हालरु रे॥

यद्यपि इस गीत को राग धनाश्री में गाकर परिष्कृत रूप दे दिया गया है किन्तु लोक तत्व की पूर्ण रक्षा हुई है।

(४) मुक्तक—मुक्तक निबन्ध-काव्य का दूसरा रूप है। गीत काव्य भी मुक्तक होता है परन्तु प्रत्येक मुक्तक गीत नहीं हो सकता। ऊपर से समानता दिखाई देने पर भी मौलिक रूप में दोनों भिन्न होते हैं। मुक्तक उस काव्य को कहते हैं जो पूर्वापर सम्बन्ध से रहित होता है। इसमें विभाव, अनुभावादि से पुष्ट रस परिपाक इतना पूर्ण होना चाहिए कि पाठक को पूर्वापर का सहारा न खोजना पड़े। मुक्तक में गीत का सहज उद्रेक नहीं होता। उसका वेग निर्झर की तरह अनायास फूटता-सा दृष्टिगोचर नहीं होता वरन् उसमें कला-चेतना के प्रति एक प्रकार की जागरूकता होती है। गीत काव्य के समान मुक्तक में विषय-वस्तु और अभिव्यंजना की एकतानता नहीं रहती। इसमें रागात्मक आवेश कम और कला प्रधान हो जाती है। मुक्तक के रस-परिपाक में चमत्कार-तत्त्व का भी महत्वपूर्ण योग होता है। वाग्विदग्धता तथा चमत्कार मुक्तक-काव्य की विशेषता मानी जाती है। इसमें बौद्धिक तत्व प्रधान हो जाता है।

पूर्व-मध्यकालीन कृष्ण-भक्त कवियों ने अधिकतर रागबद्ध पदों की ही रचना की है। कभी-कभी कवित्त, सवैया, कुण्डलियाँ आदि छन्दों के नियमों का यथावत पालन करते हुए भी अनेक पदों में राग और ताल का उल्लेख कर तथा टेक की पहली पंक्ति जोड़कर उसे गीत का रूप दिया गया है। ऐसे मुक्तकों को पद ही कहना उचित होगा। ध्रुवदास, रसखान, हितहरि वंश आदि कुछ कवियों की रचनाओं में मुक्तक का विशुद्ध रूप प्राप्त होता है। इनमें रसखान सर्वश्रेष्ठ मुक्तक कार कवि हैं। उनके द्वारा रचित कवित्त तथा सवैये मुक्तक रचना की कसौटी पर खरे उतरते हैं। रीतिकाल में बिहारी, मतिराम, घनानन्द तथा बोधा आदि कवियों ने मुक्तक ही लिखे हैं। खण्ड काव्य तथा प्रबन्ध काव्य रचना का इस युग में अभाव ही मानना चाहिये।

रसखान का एक-एक छन्द अपने आप में पूर्ण है। एक मुक्तक के भीतर ही सम्पूर्ण चित्र का निर्माण बड़ी कुशलता से किया गया है। उनके मुक्तक गीत काव्य के निकट होते हुए भी मुक्तक काव्य की विशुद्धता बनाये हुए हैं। रसखान की भाषा मृदुल, मंजुल और गतिपूर्ण होते हुए भी बोझिल नहीं है तथा उसमें गागर में सागर भरने की शक्ति है। 'ब्यालीस लीला' में सकलित अनेक कृतियाँ ध्रुवदास की मुक्तक-काव्य कुशलता का परिचय देती हैं। दोहा, सोरठा तथा कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग उन्होंने किया है किन्तु इन कवियों में रीति कालीन कवियों की कला-सूक्ष्मता अथवा थोड़े में अधिक बात कह देने की क्षमता नहीं मिलती। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवियों ने भी मुक्तक शैली अपनाई है। कल्याण पुजारी, नेही नागरीदास आदि की वाणी में कवित्त और सवैयों का परिष्कृत और सुघर रूप मिलता है।

रीतिकाल में युग के प्रभाव के कारण मुक्तकों में कला तत्व की अधिकता हो गई। रीति कालीन कवियों को ब्रजभाषा का परिष्कृत और परिमार्जित रूप उत्तराधिकार में मिला। युग के अनुरूप सहज प्रदर्शन-भावना और कला प्रियता से भाषा का रूप और भी मंज गया और उसी की शक्ति से जो शब्द-कौशल उन्होंने अपने मुक्तकों में प्रदर्शित किया वह हिन्दी मुक्तक का महत्वपूर्ण इतिहास है। एक ओर कोमल कान्त पदावली द्वारा इन कवियों ने अपने छन्दों को लय और गति से भर दिया; दूसरी ओर चमत्कार-प्रधान शब्द योजना से भाषा को व्यंजक बनाया। रीतिकाल के ऐसे भक्त कवियों हठी जी, नागरीदास तथा घनानन्द को लिया जा सकता है। विशुद्ध रीति कालीन कवि नायक को कृष्ण मानकर चमत्कार और विदग्धता का आश्रय लेकर काव्य रचना कर रहे थे तो इन भक्त कवियों ने कृष्ण को नायक मानकर कवि-कर्म की पूर्ति की।

रीतिकालीन मुक्तक कारों में घनानन्द को सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना जा सकता है। भावानुरूप शब्दावली तथा शब्द शक्तियों की पहचान और उनके प्रयोग सामर्थ्य के कारण उनका एक-एक मुक्तक उनकी उक्ति-विदग्धता का उदाहरण बन

गया है। उनके मुक्तकों में चमत्कार है पर वह केवल बुद्धि-जन्य नहीं है। उनका सम्बन्ध हृदय से भी है।

(५) संगीत मुक्तक—कृष्ण को विषय बनाकर ऐसे संगीत-मुक्तक मध्ययुग में लाखों की संख्या में लिखे गये। इनका प्रमुख रस शृंगार था। इनमें भाव-व्यंजना कम और संगीत तत्व अधिक था।

(६) प्रबन्ध काव्य—जिस काव्य में शृंखलाबद्ध रूप में किसी वस्तु का वर्णन हो, उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं। प्रबन्ध काव्य के कथानक में सदैव पूर्वापर सम्बन्ध बना रहता है, प्रकृति वर्णन तथा देशकाल-चित्रण का स्थान भी महत्वपूर्ण रहता है। प्रबन्ध काव्य के दो रूप माने गये हैं: महाकाव्य तथा खण्डकाव्य। महाकाव्य में कवि एक उदात्त लक्ष्य की पूर्ति का उद्देश्य अपने सामने रखकर जीवन के सम्पूर्ण अंगों का वर्णन सर्गबद्ध रूप में करता है और द्वितीय में जीवन के किसी एक खण्ड या अंश को लेकर ही उसका क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है। प्रबन्ध के क्षेत्र में कृष्ण-चरित्र की प्रतिष्ठा का श्रेय एकमात्र ब्रजवासी दास को है।[1] सम्पूर्ण कृष्ण काव्य में यद्यपि अनेक कवियों ने कृष्ण के जीवन का सम्पूर्ण चरित्र-चित्रण किया; परन्तु शैली और विषय दोनों ही दृष्टि से यह चित्रण महाकाव्य के अनिवार्य गुणों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। ब्रजविलास में भी दो चार स्थलों पर प्रबन्धत्व का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमें कृष्ण का बालचरित अर्थात् ब्रजलीला ही में वर्णित है। ऊधो के ब्रज मे विदा होते ही यह काव्य भी समाप्त हो जाता है। वस्तुतः कृष्ण और राधा के प्रति इन सब कवियों का दृष्टिकोण रागात्मक था, जिसके कारण हृदय का स्रोत गीतों और मुक्तकों में ही फूट पड़ा। भक्ति में भावजन्य आवेश के कारण अभिव्यक्ति का माध्यम गीत ही हो सकता था। कृष्ण का चरित्र महाकाव्य के लिए पूर्णतः उपयुक्त था। वे धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर-ललित तथा धीर प्रशान्त चारों प्रकार के परम्परागत नायकों के किसी भी रूप में महाकाव्य के नायक सिद्ध हो सकते थे। उनमें अलौकिक गुण भरे हुए थे किन्तु भक्तों की भावुक दृष्टि ने उस अलौकिकता को भी अपनी कोमल भावनाओं के उद्दीपन रूप में ही ग्रहण किया है। महाकाव्य में सर्वांगपूर्ण जीवन का चित्रण होता है, महत् चरित्र तथा महान जीवन की सरस व्याख्या रहती है। किसी महान आदर्श अथवा सत्य की स्थापना भी महाकाव्यकार करता चलता है। उसमें लोक-परलोक, सद्-असद्, प्राचीन-नवीन का समन्वय होता है। इन तत्वों को दृष्टि में रखते हुए स्वीकार करना पड़ता है कि उस काल की एक भी रचना महाकाव्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। सूरदास, वृन्दावनदास और

१ संकठाप्रसाद सिंह—ब्रज विलास (ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ पृ० ३४९)

ब्रजवासीदास जैसे कवियों ने कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया है किन्तु उनकी वे चरित्र विषयिक काव्य रचनाएँ प्रबन्ध काव्य नहीं बन सकीं। उनकी आत्मा गीति काव्य की है।

(७) खण्डकाव्य—कृष्ण काव्य को श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ किन्तु कृष्ण-भक्ति-काव्य में ऐसे प्रबन्ध तत्व अवश्य विद्यमान हैं, जिन्हें खण्ड-काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। खण्डकाव्य में जीवन के एक ही अंग का चित्रण होता है। परन्तु वह खण्ड और उसमें व्यक्त अनुभूति अपने आप में पूर्ण होती है। उसमें पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक पात्रों के जीवन के किसी अंश अथवा घटना को लेकर काव्य रचना की जाती है। उसमें वर्णनात्मकता प्रधान होती है। खण्डकाव्य में एक कथा-सूत्र का होना अनिवार्य होता है परन्तु नियम इतने कड़े और अनिवार्य नहीं होते। इसलिए जीवन के सर्वांग निरूपण के अभाव के कारण कथा का उत्थान-पतन नहीं होता। सर्गों के अभाव में भी खण्डकाव्य की कथा का विकास सफलतापूर्वक किया जा सकता है क्योंकि उसमें कथा विस्तार का क्षेत्र बहुत सीमित होता है।

कृष्ण-भक्त कवियों के खण्डकाव्यों में कथात्मकता के साथ गीतात्मकता का सामंजस्य है। खण्डकाव्य के तत्व मुख्यतः तीन रूपों में मिलते हैं—

(१) कृष्ण की लीलाओं के आधार पर लिखे गये खण्डकाव्य नन्ददास कृत रास पंचाध्यायी सिद्धान्त पंचाध्यायी, गोवर्धन लीला, सुदामा चरित तथा रुक्मिणी मंगल। सभी रचनाएँ वर्णनात्मक और छन्दोबद्ध हैं।

(२) काल्पनिक आख्यानों पर आधारित खण्डकाव्य जैसे नन्ददास की रूप मंजरी और विरह-मंजरी।

(३) पद-शैली में लिखे गये साहित्य में निहित खण्ड-कथानक।

नन्ददास जी का रासपंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, श्याम सगाई, सुदामा चरित्र गोवर्धन लीला और भ्रमर-गीत जैसी कृतियाँ भागवत के आख्यानों पर ही आधारित हैं। खंडकाव्य की दृष्टि से इन सब कृतियों का अलग-अलग स्थान है। इनमें रास पंचाध्यायी अन्योक्तिमूलक खण्डकाव्य है।

रूप मंजरी भी रास पंचाध्यायी के समान अन्योक्तिमूलक खण्डकाव्य है। परन्तु इसका कथानक काल्पनिक है। इसकी नायिका रूपमंजरी संसार का मोह त्यागकर अपार्थिक रस पुरुष कृष्ण के साथ अपनी भावनाओं का सम्बन्ध स्थापित करती है। इसमें कृष्ण का रूप-वर्णन दो स्थलों पर हुआ है—(१) प्रथम स्वप्न दर्शन में, (२) फाग प्रसंग में।

रुक्मिणी मंगल और श्याम सगाई घटना-प्रधान खण्ड-काव्य है। वास्तव में नन्ददास की रचनायें खण्डकाव्य की समस्त कसौटियों पर खरी उतरती हैं। इस प्रकार

प्रबन्धकाव्य के निर्माण के क्षेत्र में नन्ददास सर्वश्रेष्ठ हैं। यद्यपि सूर ने कृष्ण जन्म से लेकर बदरी-वनगमन तक संपूर्ण चरित्र का वर्णन किया है किन्तु सूरसागर को प्रबन्ध काव्य नहीं कहा जा सकता। एक पद का दूसरे पद से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक पद अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र है। प्रबन्ध काव्यों का सा कथा विकास यहाँ नहीं दिखाई पड़ता।

रीतिकालीन कृष्ण-भक्ति काव्य में प्रबन्ध तत्वों का समावेश मुख्यतः दो रूपों में हुआ है—मुक्तक काव्य में निहित आख्यानक तत्वों के रूप में तथा प्रबन्धात्मक शैली में लिखे गये लीलाकाव्य के रूप में।

(८) **पत्रिका काव्य**—कृष्ण भक्त कवियों ने ये पत्रिका काव्य दो प्रकार के लिखे। प्रथम राधा की श्री कृष्ण को पाती अथवा किसी विरहिणी को अपने प्रिय को पाती। द्वितीय स्वयं कवि का श्रीकृष्ण के चरणों में आत्म निवेदन तुलसीदास ने भी विनय पत्रिका लिखकर श्री राम के पास सही होने के लिये भेजी थी। इस प्रकार पत्रिका काव्य भी मध्य युग का एक काव्य-रूप बन गया। 'आरति पत्रिका' 'दास पत्रिका', 'विवेक पत्रिका', 'युगल स्नेह पत्रिका' आदि अनेक रचनायें पत्रिका काव्य के अन्तर्गत लिखी गईं।

(९) **वेलि काव्य**—वेलि का अर्थ लता या वल्लरी होता है। पृथ्वी राज राठौर के प्रसिद्ध काव्य 'क्रिसन-रुक्मणी-री वेलि' के अन्त में कवि ने उक्त काव्य पर वेलि या लता सांग रूपक घटित किया है। विद्यापति ने भी कीर्तिलता की रचना की थी। वेलि काव्य की परिपाटी मध्य युग के आरम्भ से ही थी। 'वेलि' क्रिसन रुक्मिनी री 'काव्य लिखे जाने के समय से ही वेलियाँ हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य में लिखी जाने लगी थीं। वेलि काव्य के क्षेत्र में चाचा हित वृन्दावन दास प्रमुख कवि हैं। स्वयं उनकी रचनाओं में भी वेलियों की संख्या सर्वाधिक है। ये वेलियाँ कथात्मक भी हैं और एक ही विषय पर लिखे गये मुक्तक संग्रह भी। कृष्ण काव्य में प्रयुक्त कुछ वेलियाँ इस प्रकार हैं:—श्री कृष्ण गिरि पूजन वेलि, हरि प्रताप वेलि, दान वेलि, वृन्दावन महिमा वेलि, राधा जन्म उत्सव वेलि, विवाह मंगल वेलि। चाचा हित वृन्दावन दास का योग दान इस विषय में सर्वाधिक है।

(१०) **अष्टयाम या समय प्रबन्ध** - अष्टयाम सेवा के आधार पर 'अष्टयाम' लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन है। रूप गोस्वामी ने अष्टयाम सेवा का वर्णन किया है। कृष्ण काव्य के विविध सम्प्रदायों में 'अष्टयाम' सेवा का विधान है। वस्तुतः इसमें राधा कृष्ण की आठ पहर की दिन चर्या का वर्णन होता है मन्दिरों में उन्हीं पदों में से चुने हुये पद आठों पहर की देव-सेवा में गाये जाते हैं। इस प्रकार के अनेक अष्टयाम कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा लिखे गये। देव का अष्टयाम प्रसिद्ध है।

(११) **बारहमासा**—लोक गीतों की एक प्रणाली बारहमासा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें किसी विरहिणी द्वारा बारह महिनों में उसके ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन होता है। ऋतु वर्णन की भाँति बारहमासा लिखने की परिपाटी हिन्दी में वीर गाथा काल से ही प्रारम्भ हो गई थी। विद्यापति ने कृष्ण काव्य के सम्बन्ध में उसका वर्णन किया है। भक्तिकाल मे भी जायसी आदि सूफी कवियों ने बारहमासा लिखा है। कृष्ण काव्यकारों ने भी बारहमासा लिखे हैं। इनका बारहमासा राधा कृष्ण के विहार से सम्बन्धित ऋतुओं की शोभा का वर्णन करता है तथा विहार के लिए उद्दीपन की सामग्री प्रस्तुत करता है।

(१२) **बारह खड़ी काव्य**—वर्णमाला के अक्षरों के आधार पर मातृ का और कक्क संज्ञक काव्य लिखने की प्रथा अपभ्रंश काल से ही चली आई है। हिन्दी में ककहरा, अखरावट, और बारह खड़ी आदि नाम से उक्त काव्य रूप मिलता है। मध्यकाल के कवियों ने इस काव्य रूप का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

(१३) **संख्याश्रित काव्य**—मुक्तक पदों को संख्यापरक नाम देने की प्रथा भारतीय साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति रही है। हजार पद्यों के संग्रह को हजारा, सात सौ पद्यों के संग्रह को सप्तशती अथवा सतसई, सौ पद्यों के संग्रह को शतक, पचास पद्यों के संग्रह को पंचाशिका, बत्तीस पद्यों का संग्रह बत्तीसी, पच्चीस पद्यों के संग्रह को पच्चीसी, बाईस पदों को बाईसी, आठ पद्यों के संग्रह को अष्टक कहते हैं। इसके अतिरिक्त, बावनी, चौबनी, चौंतीसी, बतीसी, षोडषी, पंचक आदि भी उपलब्ध होते हैं। मध्ययुग के कृष्ण भक्ति साहित्य में इस प्रकार के संख्याश्रित काव्य भारी संख्या में उपलब्ध होते हैं। शृंगार अष्टक, प्रियालाड़ अष्टक, लाड़िली जी की मेंहदी छवि उत्कर्ष षोडशी, प्रेम प्रकाश षोडशी, राधा बालविनोद पच्चीसी, कुंज सुहाग पच्चीसी, श्री कृष्ण सुहाग पच्चीसी, अभिलाष बत्तीसी, आदि कृष्ण काव्य में उपलब्ध हैं।

(१४) **श्री मद्भागवत का अनुवाद**—मध्यकालीन कृष्ण भक्ति कवियों को श्री मद्भागवत का पद्यानुवाद करना प्रिय रहा है। लालचदास का 'हरिचरित्र' इस प्रकार की सर्व प्रथम प्रौढ़ रचना है। इसकी परम्परा पूरे मध्यकाल में चलती रही। सूर ने भी सूरसागर मे एक प्रकार से भागवत का अनुवाद ही प्रस्तुत किया है। बाद में किसी ने सम्पूर्ण भागवत का, किसी ने केवल एकादश स्कंध का तो अनेक ने दशम स्कंध का पद्यात्मक प्रस्तुत किया है।

(१५) **महाभारत तथा गीता का अनुवाद**—महाभारत में वर्णित कृष्ण चरित्र के अनुवाद की ओर भी अनेक कवि प्रवृत्त हुए। सबलसिंह चौहान ने सम्पूर्ण महाभारत का अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह परम्परा १५०० ई० से पूर्व ही कवि थेघनाथ से प्रारम्भ हो गई थी।

(१६) **रास पंचाध्यायी**—रास पंचाध्यायी भागवत से लिया हुआ प्रसंग है किन्तु अपनी मौलिकता के कारण कृष्ण भक्ति काव्य का एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। सूरदास तथा नन्ददास ने रास पंचाध्यायी पर मौलिक काव्य प्रस्तुत किया है।

(१७) **भ्रमर गीत**—भ्रमर गीत का प्रसंग भागवत का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग है। कृष्ण के सखा ऊधो गोपियों के लिये योग का संदेश लेकर ब्रज जाते हैं। श्री कृष्ण के प्रेम में तन्मय गोपियाँ उनका संदेश मानने के स्थान पर ऊधो को ही भक्ति-भावना की गहराई का दर्शन करा देती हैं। इस प्रसंग के द्वारा निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दिखाई गई है। अनेक भक्त कवियों ने इस प्रसंग को अपनी लेखनी का विषय बनाया है 'भवर गीत' तथा भ्रमर गीत दोनों ही नाम इसके लिये प्रयुक्त हुए हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के अतिरिक्त चाचा हित वृन्दावन दास ने भी 'भ्रमर गीत' की रचना की। इसमें वियोग वात्सल्य का बड़ा मार्मिक परिपाक हुआ है।

(१८) **बधाई काव्य**—प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय में सम्प्रदाचार्य एवं उनके वंशजों के जन्म दिवस पर बधाइयाँ गाने की परम्परा है। कृष्ण जी की बधाई, उनके जन्मकी बधाई, राधा जू की बधाई, गोंसाई विट्ठल नाथ जी के जन्म की बधाई, हित हरिवंश जी की बधाई आदि बधाइयाँ लिखी गईं। जन्मोत्सव की बधाइयों में छठी, छोछक, साथियाँ, मालिन, सवासिन तथा जगा आदि का नेगों के हेतु झगड़ने का काम। इनकी शैली लोक गीतों की है।

(१९) **मंगल काव्य**—यह विवाह काव्य का पर्याय है। मंगल काव्य का उद्भव विवाह सम्बन्धी लोक गीतों से माना जाता है। हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि में मंगल काव्य की परम्परा बहुत पुरानी है। विष्णुदास कृत 'रुक्मिनी मंगल' हिन्दी में मंगल काव्य का पहला रूप है। के समान मध्यकाल के अनेक कवियों ने 'रुक्मिणी मंगल' लिखा है। मंगल काव्यों में वृषभानु नन्दिनी राधा के साथ कृष्ण के विवाह का भी वर्णन हुआ है।

(२०) **नायिका भेद**—नायिका भेद की यह परम्परा गाथा सप्तशती, 'आर्या-शप्तशती' भास के नाटकों और कालिदास के 'कुमार सम्भव' में भी मिलती है। कृष्ण भक्ति काव्य की रीति शास्त्रीय परम्परा पर पौराणिक प्रभाव स्पष्ट है। जयदेव ने राधा को अष्टनायिका के रूप में चित्रित किया है। विद्यापति उतना आगे नहीं बढ़े किन्तु उनकी पदावली पर रीति शास्त्र की मान्यताओं की स्पष्ट छाप है। यह रीति शास्त्रीय परम्परा सूर के काव्य काल से लेकर १८०० तक निरन्तर चलती हुई दृष्टिगोचर होती है। नायिका भेद के रचयिता प्रमुख रूप से देव, मतिराम, ठाकुर तथा पद्माकर हैं।

(२१) **नखशिख वर्णन**—नखशिख वर्णन की परम्परा काव्य के क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन है। रामायण काल से प्रारम्भ होकर यह आज तक देश काल की सीमाओं का स्पर्श करती हुई चलती आ रही है। पुराणों ने नखशिख वर्णन का विशेष सौंदर्य प्रदान किया तथा उसके प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी काव्यकारों ने राधा कृष्ण के नखशिख वर्णन को अपने काव्य में विशेष स्थान दिया। सीताराम के नखशिख वर्णन भी हिन्दी काव्य में प्रचुरता से हुए किन्तु नखशिख के क्षेत्र में राधा कृष्ण सर्वोपरि हैं। ऐसी काव्य रचनायें केवल नखशिख के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यह मध्यकालीन काव्य की सर्वमान्य और सर्व गृहीत परिपाटी है।

(२२) **छद्म लीलायें अथवा लघु नाटिकायें**—मध्ययुगीन कृष्ण साहित्य में छद्म लीलाओं का विशेष स्थान है। महाकवि सूर के काव्य से लेकर १८०० ईसवी तक छद्म लीलाओं की रचना होती रही। सूर ने कोई छद्म लीला नहीं लिखी। कुछ पदों में छद्म लीला वर्णन है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के चाचा हित वृन्दावन दास की छद्म लीलायें अधिक प्रसिद्ध हैं। रास धारी इन रचनाओं का अभिनय कुशलता से करते हैं। इनमें चितेरिन लीला, सुनारिन लीला, मनिहारिन लीला, बिसातिन लीला, पटविन लीला, रंगरेजिन लीला तमोलिन लीला, नाइन लीला, जोगिन लीला, सांवरी-सहेली, गंधिन लीला, बनजारी लीला, गुड़िया लीला तथा दुलरी लीला आदि लीलाओं की रचना की है। सूर सागर में अनेक पद नाटकीय हैं अर्थात् वार्तालाप तथा घटना परिवर्तन का कौशल सूर में दृष्टिगोचर होता है। उनकी गारुड़ी-लीला-प्रसंग छद्म लीलाओं का श्री गणेश है तथा चाचा हित वृन्दावन दास की छद्म लीलायें उसी का पूर्ण विस्तार।

रस और कृष्ण

स्थायी भाव नौ हैं—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य तथा निर्वेद। प्रत्येक स्थायीभाव के आधार पर एक-एक रस की कल्पना की गई है। यथा—शृंगार रस, हास्य रस, करुण रस, रौद्र रस, वीररस, भयानक रस, वीभत्स रस, अद्भुत रस तथा शांत रस। किन्हीं आचार्यों ने दसवां रस 'वात्सल्य' को माना है। किन्तु वात्सल्य को रति का ही एक भेद मान कर उसे शृंगार रस के अन्तर्गत रखा गया है। इस प्रकार रसों की संख्या नौ ही ठहरती है।

कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत नवों रसों से सम्बन्धित सुन्दर रचनाएं हुई हैं।

(१) **शृंगार रस**—शृंगार-रस को रसराज कहा जाता है।' रसो वै सः' ब्रह्म कृष्ण की रस रूप व्याख्या के लिए उनका शृंगारिक वर्णन आवश्यक माना गया। कृष्ण काव्य में शृंगार-रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। उसका विस्तार भी अन्य रसों की अपेक्षा अधिक है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल दोनों कालों की सीमा छूने वाला शृंगार

रस अपने विविध रूप और रंग में प्रकट हुआ है। कृष्ण ही शृंगार रस के आलम्बन हैं। कभी लौकिक और कभी पारलौकिक।

शृंगार रस के दो पक्ष होते हैं—संयोग तथा वियोग। कृष्ण काव्य में दोनों ही पक्षों का सम्यक उद्घाटन हुआ है। दरश, स्पर्श, संलापादि जनित अश्रु पुलकादि से व्यंजित परस्पर आनन्द का वर्णन 'संयोग शृंगार' का विषय बनता है। उदाहरण स्वरूप रसखान का एक कवित्त देखिये—

"एरी ! आज काल्हि कुल कानि सब त्यागि दोऊ,
सीखे है सबै विधि सनेह सरसाइबो।
कहै 'रसखान' दिना द्वै में बात फैलि जै है,
कहाँ लों सयानी चन्द हाथन्ह दुराइबो॥
कालि हों निहार्‍यो बीर निपट कालिन्दी तीर,
दोउन को दोउन सों मुरि मुसकाइबो।
दोऊ परै पइयाँ दोऊ लेत बलैया, उन्हें भूलि गई गैयाँ,
इन्हें गागरि उठाइबो॥

'सनेह' शब्द से रति स्थायी व्यंजित है। कृष्ण तथा राधिका आलम्बन हैं। एकान्त कालिन्दी कूल उद्दीपन विभाव है। बात फैल जाने का डर, शंका एवं चिन्ता संचारी भाव हैं। दोनों की पारस्परिक चेष्टाएं—मुसकाना, पैयाँ पड़ना तथा बलैयाँ लेना—कायिक अनुभाव एवं हावभाव है। गैयाँ भूल जाना तथा गागर का ध्यान न रहना 'स्तम्भ' सात्विक अनुभाव है।

मुघर साँवरे पिय-संग, निरतत यों ब्रजबाला।
ज्यों घन मंडल मंजुल खेलति दामिनि माला॥

—नन्ददास

रास नृत्यादि शृंगार के उद्दीपन माने गये हैं।

रीतिकालीन शृंगार का एक उदाहरण बिहारी की सतसई से दिया जा रहा है—

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, मौंहन हँसै, दैन कहै नटि जाइ॥

—बिहारी

यहाँ 'सौंह करै, दैन कहै नटि जाइ' में 'अनुभाव' तथा हाव दोनों का सुखद सम्मिश्रण है। 'चपलता' संचारी भाव है।

वियोग अथवा विप्रलम्भ शृंगार—में नायक-नायिका के पारस्परिक क्षणिक या चिरकालीन सान्निध्य, विच्छेद अथवा मानसिक साम्य न रहने के कारण जो मिलन के सुख का अभाव रहता है, वही 'वियोग शृंगार' का विषय होता है। यथा—

बिन गुपाल बैरिन भई कुंजें।
जो बेलता लगत तन सीतल, अब भई विषम अनल की पुंजें॥
वृथा बहत जमुना तट सगरो, वृथा कमल-फूलें, अलि गुंजें।
पवन, पानि, घनसार, सुमन हूँ, दधिसुत किरन भानुभइ भुंजें॥
ए ऊधो, कहियो माधो सों, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजें।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कों, मग जोवत अंखियन भइ धुंजें॥ —सूरदास

गोपाल आलम्बन है। लताएँ शीतल वायु, यमुना-तट आदि उद्दीपन विभाव है। दरस कों मग जोवत से उत्कंठा और उत्सुकता तथा 'मदन मारि कीन्हीं हम लुंजें' से जड़ता संचारी भाव व्यंजित है। प्राचीन सुखों की याद 'स्मृति संचारी' है। मग जोहते आँखों में धुंधलापन आ जाना कायिक अनुभाव है तथा इनके द्वारा अश्रु सात्विक व्यंजित है। ये सब उद्दीपन विभाव हैं। एक ही उद्दीपन दृश्य स्थिति-भेद से संयोग में सुख की अनुभूति को तीव्रता प्रदान करता है और वियोग में पूर्वानुभूति की स्मृति दिलाकर वियोग के ताप को बढ़ा देता है। इस पद का सानुस्वार शब्द-विन्यास माधुर्य गुण का सूचक है।

केवल प्रिय दर्शन की लालसा शेष है, संयोग जन्य सुख प्राप्ति की इच्छा तक नहीं।

शृंगार रस वर्णन के अन्तर्गत वियोग शृंगार के अन्तर्गत विरह की एकादश अवस्थाओं का वर्णन भी हुआ है। उद्दीपन विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव का स्वतन्त्र वर्णन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। नायिका भेद, नख-शिख वर्णन तथा ऋतु वर्णन इन्हीं के उपांग हैं। ऋतु काव्य में सभी प्रकार का वर्णन किया गया है।

वात्सल्य रस में 'स्नेह' भाव की पुष्टि होती है। पुत्र, शिष्य, शिशु आदि बालक रूप इसके 'आलम्बन विभाव' माने गये हैं। सूर तथा परमानन्ददास आदि अष्ट छाप के भक्त कवियों के प्रभु वात्सल्य रस के आलम्बन बाल रूप कृष्ण हैं। उनकी विविध लीलाओं को देखकर माता का हृदय पाने वाले भक्त बलिहारी जाते हैं—

किलकत कान्ह घुटरवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आगन, बिम्ब पकरिबैं धावत॥
कबहुं निरखि हरि आपु छांह कों, करसौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि पुनि तेहि अवगाहत॥
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इकराजति।
प्रति कर, प्रति पद, प्रति मनि बसुधा, कमल बैठकी साजति॥
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावति।
अंचरा तट लै ढांकि, सूर के प्रभु को दूध पियावत॥ —सूरदास

यहाँ बालक कृष्ण आलम्बन है। यशोदा आश्रय। मणिमय कनक-आँगन में क्रीड़ा करना उद्दीपन और दो नन्हें दाँतों से हँसकर किलकारी मारना अनुभाव है। हर्ष संचारी भाव है। कृष्ण काव्य में वात्सल्य रस की सरिता अबाध गति से बहाई गई है। अकेले सूरदास ने ही इसका कोई कोना अछूता नहीं छोड़ा। वियोग-जन्य वात्सल्य रस का परिपाक सूर के निम्नलिखित पद में हुआ है—

संदेसो, देव की सों कहियो।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातो जल, देखत ही भजि जाते।
जोई-जोई माँगत सोई-सोई देती, क्रम-क्रम करिके न्हाते॥
तुम तो टेव जानति ही ह्वै हौ, तऊ मोहिं कहि आवै॥
प्रात उठत मेरे लाड़-लड़ैतेहि, माखन रोटी भावै॥ —सूरदास

(२) हास्य-रस—इसका स्थायी भाव 'हास' है। 'कौतुकार्य' अनुपयुक्त वचन अथवा विकृत-रूप रचना से आह्लादयुक्त मनोविकार को हास कहते हैं।

चन्द कला चुति चूनरी चारु दई पहिराइ लगाइ सु रोरी।
बेंदी बिसाखा रची 'पदमाकर', अंजन आँजि सँभारि कै गोरी॥
लागी जबै ललिता पहिरावन, कान्ह कों कंचुकी केसर-बोरी।
हेरि हरैं मुसकाइ रही, अँचरा मुख-दै वृषभान किसोरी॥ —पदमाकर

कृष्ण को कंचुकी पहनाते समय सखियों को हंसी आ जाती है। यह 'स्मित' हास है।[२] कृष्ण आलंबन, राधा आश्रय, तथा राधा का अंचल मुख में देकर हंसना अनुभय है।

(३) करुण रस—करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय-पदार्थ के वियोग-इष्ट के वियोग से उत्पन्न हुए रति रहित मनोविकार को 'शोक' कहते हैं। कृष्ण साहित्य में शोक के लिए स्थान नहीं है। कृष्ण का मथुरा-गमन ब्रज के लिए शोक प्रसंग है करुणा में डुबा देने वाला है किन्तु वहाँ कृष्ण से मिलने की आशा समाप्त नहीं हो गई है। गोप सखाओं का वियोग भाव-करुण रस के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मीरा का वियोग करुणा की सीमा का स्पर्श कर लेता है—

---

२ हास्य के प्रथम—उत्तम, मध्यम और अधम भेद होते हैं। इनके भी दो-दो भेद होते हैं—उत्तम के स्मित और हसित, मध्यम के विहसित और उपहसित तथा अधम का अप हसित और अतिहसित। कृष्ण काल में सभी के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

चंदन की मैं चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपने अंग लगा जा॥
सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोणा होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय॥

शृंगार तथा करुणा दोनों भावनाओं के संयोग के कारण कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य विशेष मर्म स्पर्शी और भी है।

(४) रौद्र रस—रौद्र रस का स्थायी भाव 'क्रोध' है। अपमानादि से उत्पन्न हुए, हर्ष के प्रतिकूल मनोविकार को क्रोध कहते हैं। मन की चंचलता और आवेग रस की विशेषता है। कालिया नाग के अत्याचार से क्रोधित होकर कृष्ण गेंद का बहाना लेकर जमुना में कूद पड़ते हैं, और :—

(१) झिरकि कै नारि, दै गारि गिरिधर तब,
पूँछ पर लात दै अहि जगायो।
उठ्यो अकुलाइ, डरपाइ खगराइ कौं,
देखि बालक गरब अति बढ़ायौ॥
पूँछि राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि,
देखि सब साँप-अवसान भूले॥
करत फन-घात, विषजात उतरात अति,
नीर जरि जात, नहिं गात परसै।
'सूर' के स्याम, प्रभु, लोक-अभिराम,
बिनु जान अहिराज विष ज्वाल बरसै। —सूरदास
पूँछ लीन्ही झटकि धरनि सौं,
गहि पटकि फुँकरयो लटकि करि क्रोध फूले।

अथवा

(२) सबै ब्रज है जमुना के तीर।
काली नाग के फन पर निरतत, संकर्षन को बीर॥
नाग भान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग, गंभीर।
प्रेम मगन गावत गंध्रव गन व्योम विमान निभीर॥ —सूरदास

कालिय नाग नाथन के मिस रौद्र मुद्रा में कृष्ण का, ताण्डव नृत्य होता है, इस रस के आलंबन भी कृष्ण हैं।

(५) वीररस—वीर का स्थायी भाव उत्साह है।

कृष्ण बालकपन से ही साहसी थे। वीरता उनको रग-रग में भरी हुई थी। जब कभी अवसर आया वे एक सच्चे वीर की तरह मैदान में आ डटे। ब्रज लीलाओं के अन्तर्गत वीर रस का परिपाक हुआ है। छल से प्रसंब ग्वाल-बालों के साथ खेलने

लगता है। खेलते-खेलते विशाल रूप धारण करके कृष्ण को पीठ पर चढ़ाकर ले जाता है। कृष्ण उसके ऊपर से नीचे उतर पड़ते हैं और उससे डट कर युद्ध करते हैं :—

तबहिं प्रलंब बड़ो बपु धारयो, लै गयो पीठि चढ़ाइ।
उतरि परे हरिता ऊपर तैं, कीन्हो जुद्ध बनाइ॥

'भौमासुर-वध' तथा पौड्रक 'वासुदेव-वध' प्रसंग में भी वीर रस का परिपाक हुआ है। यहाँ आलंबन प्रलंब है तथा आश्रय हैं कृष्ण क्योंकि वीर रस का संचार कृष्ण में होता है।

(६) भयानक रस—भयानक का स्थायी भाव 'भय' है। अपराध, विकृत शब्द, चेष्टा का विकृत-जीवादि से उत्पन्न हुये मनोविकार को भय कहते हैं और इन्द्रिय-विक्षोभ-सहित भय की परिपुष्टता को भयानक रस कहते हैं। निम्न पद के दावानल वर्णन में भयानक रस पूर्ण परिपुष्ट है :—

महरात, झहरात, दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर, अंधर बन, धरनि-अकास चहुँ पास छायो॥
बरत बनवांस, थर हरत कुस-कांस, जरि उड़त है बास अति प्रबल धायो।
झपटि झपटत लपट, पटकि फूल, फूटत द्रुम फटि चटकि लट लटकि नवायो॥

(७) बीभत्सरस—"कवि केशव ने बरबस ही कृष्ण का सम्बन्ध बीभत्स रस से जोड़ दिया है तथा निम्नलिखित कवित्त उसके उदाहरण में उद्धृत किया है—

टूटे टाटि घुनघुने घूम घूम सेन सने,
झींगुर छगोड़ो साँप बिच्छिन की घात जू।
कंटक कलित चन बलित बिथंग जल,
तिनके तल पत लता को ललात जू।
कुलटा कुचील गात अंधतम अधरात,
कहि न सकत बात अति अकुलात जू।
छेड़ी में घुसे कि घर ईंधन के घनश्याम,
घर घर घरनीति जात न घिनात जू।

केशव का यह प्रयास अशास्त्रीय तथा हास्यास्पद भी बन गया है।"

(८) अद्भुत रस—अनिवार्य विस्मय के परिपाक को 'अद्भुत रस' कहते हैं। इसका स्थायी भाव आश्चर्य है। सहज स्वभाव के कारण बालक कृष्ण ने एक बार मिट्टी खाली। यशोदा हाथ में सांटी लिये उन्हें धमकाने लगी। बस उन्होंने मुँह खोल कर दिखा दिया। यशोदा विस्फारित नेत्रों से देखती ही रह गई :—

बदन उघारि दिखायो अपनो, नाटक की परिपाटी।
बड़ी बार भई, लोचन उघरे, भरम जवनिका फाटी॥
सूर निरखि नंदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी। —सूरदास

(९) शांत रस—जहां न सुख है न दुख है, न द्वेष है, न मत्सर और जहां सब भूतों में समान भाव रहता है वहां 'शांत रस' कहा जाता है। शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। देव कवि का एक कवित्त शान्त रस सम्बन्धी इस प्रकार है :—

ऐसी जो हों जानतो कि जै है तू विषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ-पांइ तेरे तोर तो।
आजुलों हों कतनर-नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सों निहारि हारि बदन निहारे तो।
चंचल न दे तो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चिता उनी निभारि मुख मोर तो।
भारी प्रेम-पाथर नगारो दै चरे तें बांधि,
राधावर-बिरद के बारिधि में बारे तो। —देव

भोग की प्रतिक्रिया निर्वेद की जननी है। शांत रस के पद कृष्ण काव्य में भी पड़े हैं। प्रायः सभी संप्रदाय के कवियों ने 'विनय' के पदों में निर्वेद की भावना भरदी है। अनेक रीतिकालीन कवि भी देव की तरह अन्त समय में शान्त रस की रचना और कर गये हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार वे भी किसी न किसी संप्रदाय से सम्बन्धित भक्त कवि थे।

मध्ययुगीन चित्र योजना और कृष्ण

कृष्ण-काव्य भक्ति काव्य है। आराध्य कृष्ण का रूप भक्तों के हृदय में समाया रहता था। उसी को विविध प्रकार से व्यक्त करके वे अपने को धन्य मानते थे। भक्त कवियों के आलम्बन कृष्ण हैं, अथवा राधा-कृष्ण अथवा, गोपी-कृष्ण इन तीन रूपों को आधार लेकर उनकी अनुभूति काव्य में अभिव्यक्त हुई है। शिशु कृष्ण पालने में झूल रहे हैं। माता यशोदा पालने को धीरे-धीरे हिलाती हैं। स्नेह से भरकर कुछ गा रही हैं। 'मेरे लाल को निंदिया आ जा, तू आकर मेरे बेटे को क्यों नहीं सुलाती।' शिशु कृष्ण सोने की मुद्रा में पलक मूंद लेते है और अधर फड़काने लगते हैं। उनको सोता हुआ समझकर मौन होकर यशोदा संकेत से सबको मौन रहने का आग्रह करती है।[3] समस्त दृश्य मानों एक चलचित्र है। कभी माता के लोरी गाने का दृश्य सामने

---

१ जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै॥
कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि-करि सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाय उठे हरि जसुमति मधुरै गावै। —सूरदास

जाता है तो कभी शिशु कृष्ण को भूंठमूंठ सोने की चेष्टा। कैमरे का फोकस कृष्ण पर पड़ता है और शिशु कृष्ण का चित्र आंखों में सदा के लिये बस जाता है। मक्खन हाथ में लिये हुए कृष्ण का चित्र है। घुटनों के बल चल रहे हैं, धूल में शरीर सना हुआ है, मुंह पर दही लपेट लिया है। सुन्दर कपोल और नेत्र है, माथे पर रोली का तिलक लगा हुआ है। घुंघराली लटें मस्तक पर झूल रही हैं। कण्ठ में कठुला पहने हैं बीच में हीरा और सिंह का नख पिरोया हुआ है। सूर के लिये तो एक पल का यह सुख भी सौ कल्प के सुख से बढ़कर है।[४] रंगों की प्रधानता कृष्ण के रूप-चित्रण तथा वातावरण-निर्माण दोनों में दिखाई पड़ती है—

भूलत सुरंग हिंडोरे मुकुट धरि बैठे हैं नन्दलाल।
लाल काछिनी कटि पर बांधे उर सोभित बनमाल ॥ —कृष्णदास

कृष्ण जब ब्रज की गलियों में खेलने जाते हैं और औचक ही राधा उन्हें दृष्टि-गोचर होती है उस समय का दृश्य गतिमयता में अपूर्व है। कमर में कछनी, पीताम्बर बांधे हुये, हाथ में चकई और भौंरा लिए हुए सम्पूर्ण रूप सज्जा के साथ कृष्ण यमुना तट पर पहुंच जाते हैं। अचानक ही मस्तक पर रोली लगाये हुए विशाल नेत्रवाली राधा नीली ओढ़नी और लहंगा पहने हुये पीठ पर वेणी झुलाती हुई उन्हें दृष्टिगोचर होती है।[५] फूल डोल झूलने के ऐसे कितने ही चित्र कृष्ण भक्त कवियों द्वारा उतारे गये हैं। कृष्ण-राधा हिंडोले में झूल रहे हैं। श्याम-गौर शरीर, पीला पीताम्बर और कुसुम्भी ओढ़नी पहने हुये हैं।[६] गोपी-कृष्ण का रास हो रहा है। शरद रजनी में

---

४ सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुनि चलत रेनु-तन-मण्डित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए ॥
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहि पिए।
कठुला कण्ठ वज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए ॥ —सूरदास

५ खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लये भौंरा चक डोरी ॥
मोर मुकुट, कुण्डल स्रवननि वर, दसन दमक दामिनि छवि छोरी।
गये स्याम रवि तनया के तट अंग लसत चन्दन की खोरी ॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुलति झकझोरी ॥ —सूरदास

६ हिंडोरे झूलत स्यामा स्याम।
गौर स्याम तन, पीत कसुंभी पहिरे, आनन्द-मूरति काम ॥ —कुम्भनदास

महारास का आयोजन है। एक गोपी और एक कृष्ण की जोड़ी बनी हुई है। ऐसे ही सोलह-हजार कृष्ण गोपी एक साथ नृत्य कर रहे हैं। मण्डलाकार होकर द्रुतगति से नृत्य करने में जिस प्रकार की शोभा होती है वह गतिशीलता सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ सूर के पद में व्यक्त हुई है। मानों एक-एक मेघखण्ड अपने अन्तर में विद्युत समाये हुये हो। गति के कारण बिजली में बादल है अथवा बादल में बिजली है, इसका पता लगाना कठिन हो रहा है।[७] राधा कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं के रति रंगो के तथा मान-मनौअल के अनेक चित्र कृष्ण-काव्य में प्राप्त होते हैं। राधा की वेणी गूँथने का एक दुर्लभ चित्र स्वामी हरिदास के केलिमाल में प्राप्त होता है। श्वेत, पीले और लाल फूल गूँथकर कृष्ण अपने हाथ से ही केश संवार रहे हैं।[८] सूर ने दावानल के भयानक तथा उग्र रूप के विस्तार का दृश्य अंकित किया है। वन में दावाग्नि लग रही है। उसकी लपटें दूर-दूर तक लहरा-लहरा कर फैल रही हैं। एक भयानक शब्द हो रहा है। वन में बाँस और कुशकाँस जलकर वायु के वेग के कारण उड़ रहे हैं।[९] कृष्ण काव्य में यह चित्र अपने ढंग का अनोखा है। कृष्ण के साथ कोमल दृश्यों का ही सम्बन्ध नहीं ऐसे भयानक दृश्य भी सम्बन्धित हैं तथा कृष्ण कथा के रचयिता ऐसे चित्रों को साकार करने में भी कुशल हैं।

गति और रूप का आभास देने के लिए कवि गदाधर भट्ट ने कृष्ण के कालीदह में कूदने तथा नाग नाथने का जो दृश्य अंकित किया है वह भी चित्र योजना का एक सुन्दर उदाहरण है—

नचत गोपाल फणि फणा रंगे।
मनहु मनिनील के खम्भ ऊपर सिखी नृत्य प्रारम्भ किय प्रति उतंगे॥
प्रथम तरु तुंग चढ़ि झम्प यमुना लई, सुभग पट पीत कटि तट लपेटे।
एक घन ते निकसि और घन को चल्यो स्याम घन मनहुँ चपलाहि भेंटे॥

---

७ मानौ माई घन-घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि॥ —सूरदास

८ बेनी गूँथि कहा कोउ जाने मेरी सी तेरी सौं।
बिच-बिच फूल सेत पीत राते को करि सकै एगी सौं॥
बैठे रसिक संवारन बारन कोमल कर ककहीं सौं। —हरिदास

९ भहरात झहरात दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर करि शोर अंदोर बन धरणि आकाश चहुँ पास छायो॥
बरन बन बाँस, थरहरत कुसकाँस, जरि उड़त हैं बाँस अति प्रबल धायो।
झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत फटि चटकि लट लटकि द्रुम नवायो॥
—सूरदास—सूरसागर

बहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस-तंडव रच्यो परसि पदललनि मनि रंग सोहायो।
चरण पट तार विष झार झरहत जनु तलतप ते कहूँ नीर नायो॥
दुसह हरि भार ते ते कण्ठ आयो लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा।
मनहुं नखचन्द्र की चन्द्रिका त्रास ते डरपि नीचो धंसो तिमिर धारा॥[10]

राधा कृष्ण आपस में चौपड़ और शतरंज खेलते हैं। रीतिकाल के विलास भरे वातावरण में कृष्ण और राधा की केलि-क्रीड़ाओं के चित्र कुछ और ही सामन्ती ढंग से उतारे गये हैं—छत्र, चंवर, पंखा, वस्त्राभूषण आदि शृंगार की छवि, भोजन, पानी, पान, मुख देखने का दर्पण, वीणा, वेणु और रबाब यन्त्रों का बजना, पीकदानी, शतरंज और चौपड़ का खेल।[11] सब कुछ एक साथ जैसे हरम का कोई चित्र हो।

हठी जी के चित्रों में असन्तुलन, अतिशयता तथा दरबारी प्रभाव दिखाई देता है—

जात रूप तखत पै बखत बिलन्द बैठी,
जाके काज ब्रजराज भाँवरे भरत हैं।
जरीदार द्वार पै बितान तान राख्यो हठी,
छरीदार ठाढ़े हलमाम बगरत हैं।
जरीदार झालरै झलकदार झूमै मोती,
झुमकन झूमैं छब छवै उपमा धरत हैं।
गद्दे की धरन दुजराज महाराजे जान,
नखत समान कोरनिस सी करत हैं।[12]

वर्ण योजना अथवा शब्दालंकार और कृष्ण

शब्द तथा उसके अर्थ का पूर्ण ज्ञान प्रत्येक कवि के लिये अपेक्षित है। कृष्ण भक्त कवियों में यह शब्द ज्ञान उच्च कोटि का था। आचार्य कुन्तक के अनुसार वर्ण-योजना सदा प्रस्तुत विषय के अनुकूल होनी चाहिये। उसका प्रयोग केवल वर्ण-साम्य के व्यसन-मात्र के कारण नहीं होना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से प्रतिपाद्य का रूप विकृत हो जाता है। वर्ण योजना में आग्रह की अति नहीं होनी चाहिये और न उसमें

---

१० गदाधर भट्ट—वाणी

११ छत्र चवर विजनादि वसन भूषन शृंगार छवि,
भोजन पानी पान आरसी मुख देखत अवि॥
वीना, वेनु, रवाब पीकदानी सुखसज्जा।
शतरंज चोपड़ खेल खिलावे विलसित सज्जा॥
—भगवत रसिक

१२ हठी जी।

असुन्दर वर्णों का प्रयोग होना चाहिये। प्रसाद गुण की रक्षा वर्ण-योजना का प्रथम उद्देश्य होना चाहिये।

कृष्ण भक्त कवियों की वर्ण योजना आचार्यों द्वारा निर्धारित सभी प्रतिबन्धों की दृष्टि से खरी उतरती है। इन कवियों की भाषा के माधुर्य का तथा उसकी संगीत-मयता का रहस्य उनकी वर्ण योजना ही है। भाव में भक्ति लेकर इन कवियों के नेत्र अपने इष्ट देव कृष्ण-राधा के स्वरूप पर टिके रहते थे तथा कान संगीत के स्वर से गूंजते रहते थे। कृष्ण की लीलाओं में चित्रात्मकता तथा संगीतमयता इसी कारण अत्यन्त स्वाभाविक रूप में अवतरित हो सकी है। लीलाएं एक समान होते हुये भी प्रत्येक कवि ने उन्हें अपने झरोखे से देखा है। इसी से प्रत्येक की वर्ण योजना बहुत कुछ समान होते हुये भी भिन्न रूप रंग मयी है।

कृष्ण भक्त कवियों की वर्ण-योजना तीन प्रधान लक्ष्यों को सामने रख कर की गई है :—

(१) भाव-व्यंजना के उपयुक्त भाषा-निर्माण के लिये।

(२) भाषा में लय और संगीत तत्व के समावेश के लिये।

(३) भाषा के अलंकरण के लिये।

प्राय: सभी कवियों की वर्ण योजना भाषा में संगीत और लय के समावेश तथा भाषा को भावों के अनुकूल बनाने के लिये हुई है।

सूर की वर्ण योजना सहज है। उन्होंने यह योजना भाषा में संगीत और लय के समावेश तथा भाषा को भावों के अनुकूल बनाने के उद्देश्य से की। निम्नलिखित पंक्तियों में नृत्य की मुद्राओं के चित्र, घुंघरू की छमछम तथा वाद्य यंत्रों की झनकारें वर्ण योजना के माध्यम से व्यक्त हुई हैं।

नृत्यत स्याम स्यामा हेत।
मुकुट लटकनि भृकुटि-मटकनि, नारि मन सुख देत।।
कबहुं चलत सुघंग गति सौं, कबहुं उघटत बैन।
लोल कुण्डल गंडमण्डल, चपल नैननि सैन।।
स्याम की छवि देखि नागरि, रही इकटक जोहि।
सूर प्रभु उर लाइ लीन्हीं, प्रेम-गुन कर पोहि।।

सूर ने वर्ण योजना को सर्वत्र साधन रूप में ही ग्रहण किया है। कहीं कहीं अनुप्रास योजना में चमत्कार-प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ जाती है। इस प्रकार का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

नवल निकुंज नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाये।
बिलसत बिपिन बिलास बिविध बर, बारिज बदन बिकल सचु पाये।।[12]

---

१२ सूरदास

परमानन्द ने भी कृष्ण के प्रति अपनी अनुभूतियों को प्रवाह पूर्ण भाषा में व्यक्त किया अतः उनकी वर्ण योजना भी सहज है :—

कालिन्दी तीर कलोल लोल।
मधुर तू माधो मधुर बोल ॥[१४]

कुंभनदास की वर्ण योजना में संगीत तत्व अधिक है :—

रास में गोपाल लाल नाचत मिलि भामिनी।
अंस अंस भुजनि मेलि मंडल मधि करत केलि ॥
कनक बेलि मनु तमाल स्याम संग स्वामिनी।[१५]

पहली पंक्ति में विलम्बित लय की उठान है तथा शेष दो पंक्तियों में द्रुत लय अनोखा सौन्दर्य ला देती है। वर्ण-संगति गुंभनदास की पदावली में सर्वत्र विद्यमान है।

नन्ददास की रास पंचाध्यायी में शास्त्रीय-संगीत का तत्व भी पाया जाता है तथा आन्तरिक-संगीत का भी। प्रथम प्रसंग में वर्ण योजना साजों और धुनों से स्वर मिलाती है तथा द्वितीय प्रसंग में भाषा ही स्वरों में मुखर हो उठती है। नन्ददास की समस्त रचनाओं में वर्ण मैत्री के उदाहरण प्रचुर संख्या में प्राप्त होते हैं :—

फनी फनन पर अरपे डरपे ताहि नेकु तब।
छबिली छातिन धरत डरत कत कुंअर कान्ह अब ॥[१६]

गोविन्द स्वामी द्वारा विरचित निम्नलिखित पद में कान से ध्वनि सुनने का और आंख से देखने का आनन्द प्राप्त होता है :—

मदन मोहन कमल-नैन नृतत रास रंगे।
तत थेई तत थेई गति अनेक लेत मान गान ॥
करत रूप सहित सरस अति सुधंगे,
विलुलित बनमाल उरसि मोर मुकुट रुचिर सरसि।
जुवतिन मन हरत फिरत अरून-दृग-कुरंगे,
कानन कुंडल झलमलात, पीत बसन फर हरात,
झुनझुन धरत चरन, भृकुटी भाव भंगे।[१७],

हित हरिवंश की 'हित चोरासी' का कोई भी पद वर्ण-संगीत तथा वर्ण मैत्री की दृष्टि से आदर्श वर्ण योजना के उदाहरण रूप में लिया जा सकता है। एक उदाहरण इस प्रकार है :—

---

१४ परमानन्ददास
१५ कुंभनदास
१६ नन्ददास
१७ गोविन्द स्वामी

मंजुल कलकुंज देश, राधाहरि विशद वेश,
शकानम कुमुद-बंधु, शरद यामिनी।
श्यामल दुति कनक अंग, बिहरत मिलि एक संग,
नीरद मणि नील मध्य लसत दामिनी।
अरुण पीत नव दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ युत शीत अनिल मंद गामिनी।
किसलय दल रचित शैन बोलन पिय चाटु बैन
मान सहित प्रतिपद प्रतिकूल कामिनी।[१८]

ध्रुवदास के काव्य में पुनरुकित प्रकाश की छटा इस प्रकार मिलती है :—

प्यार ही को कुंज और की सेज रची।
प्यार ही सौं प्यारे लाल प्यारी बात करहीं॥
प्यार ही की चितवन मुसकनि प्यार ही की,
प्यार हू सौं प्यारी जी को प्यारो अंक भर ही,
प्यार सों लटक रहे प्यार ही सों मुख चाहे,
प्यार ही सों प्यारो प्रिया अंक भुज भर हीं,
हित ध्रुव प्यार भरी प्यारी सखी देखें खरी,
प्यारे प्यार रह्यो छाइ प्यार रस ढरहीं।[१९]

यहीं से रीतिकालीन कला का आरम्भ होता दृष्टिगोचर होता है। वर्ण योजना की दृष्टि से रसखान की कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता एक-एक वर्ण कवि का अनुशासन मानता है। उनकी हृदय के आन्तरिक उल्लास से स्वतः स्फुटित कविता निर्झर की तरह सहज प्रवाहमयी बन गई है। वर्ण संगीत का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सेस गनेस महेश दिनेश सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥[२०]
× × × ×
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाँच नचावैं।

आन्तरिक संगीत जिसमें प्रस्फुटित होता है रसखान के कविता का ऐसा एक उदाहरण—

गाइगो तान जगाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराई जो गइया।

---

१८ हित हरिवंश
१९ ध्रुवदास
२० रसखान

रीतिकालीन कवियों ने भी वर्ण योजना में अपना सहयोग दिया है। इन कवियों की रचना पद्धति का यह एक प्रमुख अंग था। इस युग की भाषा में चमत्कार युक्त संगीतात्मकता प्रधान हो गई थी। कवि का अनुशासन मानकर भाषा का एक-एक वर्ण कवि के संकेत पर थिरकता-सा जान पड़ता है। वर्ण संगीत, वर्ण मैत्री और वर्ण संगति तीनों ही प्रकार के कौशल एक ही पद में सुगुम्फित रहते हैं। वर्ण योजना अधिकतर भाषा की सजावट के लिए की गई।

बिहारी ने—

तो पर वारौं उरबसी सुन राधि के सुजान।
तू मोहन के उरबसी ह्वै उरबसी समान॥[२१]

पुहकर की कवित्त में वर्ण योजना का सौन्दर्य इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

जल जोर महाघन घोर घटा ब्रज ऊपर कोप पुरंदर को।
कवि पुहकर गोकुल गोप सबै निरखैं मुख श्री मुरलीधर को।
धर तैं धरिबो धरणीधर को धरयो न हियो धरणीधर को।
कर लै जनु कौंकर कोकर को करुणाकर को करुणाकर को।[२२]

घनानन्द की वर्ण योजना में अतिशयता का दोष नहीं आने पाया है। उन्होंने भाषा को रसानुकूल कोमल और मसृण बनाया है। उनके काव्य से एक श्लेष का उदाहरण इस प्रकार है—

घन आनन्द प्यारे सुजान सुनी यहाँ एक तैं दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।[२३]

अप्रस्तुत योजना (अर्थालंकार) और कृष्ण

अलंकारों का प्रयोग उक्ति के अलंकरण के लिए होता है। अलंकारों के मनोवैज्ञानिक आधार स्पष्टता, विस्तार, अन्वित, जिज्ञासा और कौतूहल हैं। इनके मूर्त रूप साधर्म्य, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार हैं। इसी आधार पर अलंकारों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१—साम्य-मूलक अलंकार (उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि)
२—अतिशय-मूलक अलंकार (अतिशयोक्ति)
३—वैषम्य-मूलक अलंकार (विरोध, विभावना आदि)
४—औचित्य-मूलक अलंकार (स्वाभावोक्ति आदि)

---

२१ बिहारी
२२ पुहकर कवि
२३ घनानन्द

५—वक्रता-मूलक अलंकार (अप्रस्तुत-प्रशंसा, व्याज स्तुति)

६—चमत्कार मूलक अलंकार (यमक, चित्र, मुद्रा आदि के विभिन्न भेद)

साम्य मूलक अप्रस्तुत योजना—

समस्त अलंकार रसानुभूति में योग देने वाले तत्व हैं। कवि अलंकारों की सहायता अपनी उक्ति को प्रभावोत्पादक बनाता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने अलंकारों को साधन बना कर अपनी उक्ति को भावोत्पादक बनाया है। राधा-कृष्ण के माधुर्य के प्रति अपनी आसक्ति एवं समर्पण प्रकट किया है। प्रायः सभी कृष्ण-भक्ति कवियों की अप्रस्तुत योजना को प्रधान रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) सादृश्य मूलक, (२) विरोध मूलक, (३) अतिशय मूलक। इनमें से सादृश्य मूलक योजनायें ही सबसे अधिक प्रयुक्त हुई हैं। सादृश्य योजना के आधार अधिकतर चार प्रकार के हैं—रूप-साम्य, धर्म साम्य, प्रभाव-साम्य तथा काल्पनिक साम्य।

रूप-सादृश्य—

अधिकतर कृष्ण के रूप-चित्रण के लिए किया गया है। कृष्ण के बाल-रूप, किशोर रूप तथा राधिका के सौन्दर्य वर्णन में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सम्बन्ध रूप-सादृश्य के आधार पर ही निर्धारित किया गया है। इसमें सौन्दर्य-बोध प्रधान है। अनन्त सुन्दर कृष्ण के रूप को चित्रण करने की चेष्टा में ये कवि संलग्न रहे हैं। यद्यपि सभी कृष्ण भक्तों के अलंकरण के उपादान अत्यन्त सीमित हैं परन्तु सीमित अलंकरण सामग्री के ही विविध प्रयोगों के द्वारा इन्होंने नये-नये चित्र प्रस्तुत किये हैं।

> कनक-भूमि पर कर-पग-छाया यह शोभा अति राजति।
> प्रति मनि, प्रति कर, प्रति पग मनहुँ वसुधा कमल बैठक साजति।

सूर के काव्य में केवल अलंकारों का ही सौन्दर्य नहीं है।

धर्म साम्य के द्वारा प्रस्तुत विषय के आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का अवसर अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इसमें रूप साम्य की अपेक्षा सूक्ष्मतर कल्पनाओं और अभिव्यंजनाओं का अवकाश होता है। नेत्रों के द्वारा विभिन्न मानसिक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के उपमानों के संयोजन द्वारा सूरदास ने नेत्रों को हृदय का दर्पण सिद्ध कर दिया है। उदाहरण स्वरूप—

> देखि री हरि के चंचल नैन।
> खंजन, मीन, मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन॥
> राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति।
> निसि मुद्रित प्रातहि वे विकसत, ये विकसति दिन राति॥

प्रेम की विवशता और एक निष्ठता की अभिव्यक्ति के लिए हृदय और नेत्र

दोनों को ही अनेक स्थलों पर सूर ने बोहित-खग के अप्रस्तुत द्वारा अभिव्यक्त किया है—

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पर आवै।

प्रभाव साम्य के प्रसंगों में साम्य का आधार अधिकतर लक्षणा शक्ति होती है। विरह की अनुभूतियां प्रभाव साम्य के आधार पर मार्मिक हो उठी हैं—

पिया बिनु नागिन कारी रात।
कबहुंक जामिनि उवत जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात॥

यहाँ काली रात और नागिन का साम्य भयंकरता है

काल्पनिक साम्य के आधार पर सूर ने अनेक कल्पनायें की हैं। प्रस्तुत गुणों के आधार पर अप्रस्तुत का भी ढाल लिया गया है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उढ़ाये।
नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव जनु तड़ित छपाये॥

अतिशयोक्ति—मूलक-अप्रस्तुत-विधान—

अतिशयोक्ति का प्रयोग चमत्कार सृजन के लिये होता है। कृष्ण-भक्त कवियों की ऐसी अप्रस्तुत योजनाएं प्रायः सर्वत्र ही भाव उद्दीप्त करने के लिये की गई हैं। उनके वर्णन हास्यापद नहीं हो पाते। जैसे निम्नलिखित पद में—

सूरदास ब्रज डूबन चहत हैं।
काहे न लेत उबारे॥

विरह की उत्कट और तीव्र वेदना के तन्तु इसमें इतने अधिक हैं कि हंसी नहीं आ सकती। आंसुओं में ब्रज डूबना चाहता है इसमें विरह की व्यंजना ही सर्वोपरि है।

विरोध मूलक अप्रस्तुत-योजना—

इस योजना में अधिकतर वैषम्य द्वारा वर्ण्य को रमणीय बनाया जाता है। इसका आधार कल्पना नहीं होती बल्कि उसमें उक्ति का चमत्कार प्रधान होता है। उक्तिवैचित्र्य और वक्र अभिव्यंजना में इस प्रकार की वैषम्य—स्थापना बड़ी सहायक होती है—

कहं अबला कहं दसा दिगम्बर मष्ट करो पहिचानो।
कहं रसरीति कहाँ तन सोधन सुनि सुनिलाज मरौं।
चंदन छाँड़ि विभूति बनावत, यह दुख कौन जरौं॥

रीतिकालीन कृष्ण-भक्त कवियों की अप्रस्तुत-योजना में भी पूर्वकालीन विशेषताएं चलती रहीं। अन्तर केवल इतना ही आ गया कि इस काल के कवियों के अप्रस्तुत विधान में चमत्कार तत्व का प्राधान्य हो गया।

कृष्ण भक्त कवियों ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग ही अधिकतर किया है। उनकी रचनाओं में सबसे अधिक संख्या प्रकृति से गृहीत उपमानों की है। अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र में पुनरावृत्ति का दोष विभिन्न कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के कवियों में मिलता है। इसका विशेष कारण माधुर्य भक्ति है जिसका स्वरूप समस्त कृष्ण-सम्प्रदायों में प्रायः एक-सा ही दृष्टिगोचर हुआ। वे ही आलंबन, वही उद्दीपन (प्रकृति) तथा उन्हीं उपकरणों के साथ कवि नवीनता लाते भी तो कहाँ से। इसका एक लाभ भी हुआ कि राधा कृष्ण (इष्टदेव) का एक परम्परागत रूप हमें प्राप्त हुआ इतना कि उनका रूप हृदय में सदा के लिये अंकित हो जाता है। ये राधा कृष्ण भिन्न होते हुये भी एक है। एक होते हुए भी अनेक हैं अतः काव्य-रसिक के लिये इनका रूप अविस्मरणीय है।

प्रकृति और कृष्ण

भक्तिकाल तथा रीतिकाल में प्रकृति चित्रण का प्रायः अभाव है। कृष्ण-काव्य में तो वह और भी न्यून है। भाव की पृष्ठ-भूमि के रूप में प्रकृति का वर्णन, उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन तथा अलंकारों के रूप में प्रकृति का वर्णन कृष्ण काव्य में हुआ है। कृष्ण काव्य में प्रकृति का प्रयोग पूर्णरूपेण भावाधीन है। कृष्ण चरित्र लिखने वाले तथा कृष्ण का वर्णन करने वाले सभी कवि यमुना पुलिन, कदम्ब की छांह, चाँदनी रात, मल्लिका के पुष्प तथा प्रकृति की निर्मित केलिकुंजों से पूर्णतः परिचित थे। जहाँ कहीं इनकी चर्चा हुई है कवि-हृदय की पुलकन का स्पष्ट आभास होता है। किन्तु इनकी सार्थकता कृष्ण के लिए है। कृष्ण की क्रीड़ा है तो केलिकुंज मुखरित है अन्यथा बिना गोपाल के तो वे वैरिन बन जाती हैं।[२४] प्रफुल्लित पुष्प कृष्ण के बिना अंगार बन जाते हैं।[२५] अलंकार रूप में भी प्रकृति का वर्णन केवल कृष्ण के निमित्त है। उन्हीं के रूप का उपमान बन कर प्रकृति के उपकरण सार्थक हैं। कभी ये उपमान कृष्ण के रूप से होड़ करते और कभी होड़ में हारकर छिप जाने का उपाय करने लगते हैं। कहीं कृष्ण नृत्य में मोरों के साथ नाचकर राधा को रिझाते हैं।[२६] जब प्रकृति में बंसत आता है। नये पल्लव, नये पुष्प, नई कुंज में नई नवेली राधा और किशोर कृष्ण होली खेलते हैं। वर्षा में कदंब की डाल पर झूला डाल कर दोनों झूलते हैं। ऐसे में कोयल भी बोलती है और पपीहा भी बोलकर उद्दीपन करता

---

२४ बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें। —सूर

२५ तब वे देखियत राते-राते फूलन फूली डार।
हरि बिनु फूल झरी से लागें, झरि झरि परत अंगार॥ —सूर

२६ नाचत मोरनि संग स्याम, मुदित स्यामहिं रिझावत। —हरिदास

है। प्रकृति के समस्त मनोरम और अनुकूल तथा कुछ भयानक और प्रतिकूल दृश्यों के अंकन में कृष्ण भक्त कवियों ने सूक्ष्म पर्यवेक्षण और कुशल चित्रांकन की प्रतिभा का परिचय दिया है। दृश्यमान जगत का कोई भी सौन्दर्य उनकी दृष्टि से नहीं छूटा। पृथ्वी, आकाश, जल, वन-प्रान्त, यमुना-कूल तथा कुंज-भवन की शोभा इन कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में निःशेष कर दी है। सारांश में कृष्ण-काव्यकारों का प्रकृति प्रेम कृष्ण के आलंबन से है अर्थात् प्रकृति का प्रयोग पूर्ण रूपेण भावाधीन है।

छन्द योजना और कृष्ण

कविता का सम्बन्ध संगीत से है। प्रत्येक कविता में एक छन्द और एक लय होती है। कृष्ण जैसे संगीत रस रसिक को आलंबन बनाकर जो कविता लिखी गई भला उसमें संगीत क्यों न समाविष्ट होता। काव्य और संगीत का यह सामंजस्य अपूर्व और अनुपमेय है।

पद—कृष्ण-भक्ति काव्य प्रधानतया गीतिकाव्य है। स्वानुभूति मूलक पदों में भक्तिभावना की गहराई प्रकट हुई है। इस क्षेत्र में मीरा के पद सबसे अधिक भावात्मक तल्लीनता में डुबाने वाले हैं। मीरा के बाद यह तल्लीनता सूरदास में पाई जाती है। भाव-संकलन और उसकी संहिति, जो सफल गीतिकाव्य के अनिवार्य लक्षण है—कृष्ण भक्ति के पदों में आवश्यक रूप से पाये जाते हैं। प्रायः प्रत्येक सफल गीतिपद या तो कृष्ण, राधा अथवा राधा कृष्ण की युगल छवि के किसी विशेष पक्ष या उसकी लीला के किसी विशेष अंग को लेकर जिस प्रधान भाव को उद्दीप्त करता है वह अन्य सहायक भावों की सहायता से क्रमशः विकसित होता हुआ अन्त में चरम परिणति पर पहुँच कर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है।

अधिकांश कृष्ण भक्ति काव्य गेय है। उसकी रचना का उद्देश्य विशेष अवसरों तथा उत्सवों पर राग-रागिनियों में गाने योग्य पदों की रचना है। कृष्ण काव्य के गीति पदों में गीति काव्य की सहज स्फूर्ति और निश्छलता अद्भुत रूप में मिलती है। पदों में गीतितत्व प्रायः अक्षुण्ण रहा है। 'कृष्ण काव्य की यह अतुलनीय विशेषता है कि उसमें प्रबन्ध और गीति के परस्पर विरोधी लक्षण एकाकार हो गये हैं।'[२७]

दोहा-चौपाई—इन छंदों में सूर-सागर लाड़ सागर तथा ब्रज विलास लिखा गया है। ब्रज विलास एक प्रबन्ध काव्य है। सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त एक यही प्रबंध काव्य कृष्ण-काव्य-काल में लिखा गया। इसका रचना काल १७३८ ई० है। कवि की अनेक उक्तियों में सूर, नन्ददास, तथा तुलसी के स्वर झंकृत हैं। सूर से भाव, नन्ददास से[२८] युक्ति और तुलसी से काव्य का रूप कवि ने ग्रहण किया है। आख्यान काव्यों में अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है।

---

२७ डा० व्रजेश्वर वर्मा—हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड)
२८ श्री संकठाप्रसाद सिंह—ब्रज विलास (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ)

कहीं-कहीं संपूर्ण काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। नंददास का गोवर्धन लीला तथा सुदामाचरित और सूर द्वारा वर्णनात्मक लीलाओं में चौपाई छन्द प्रयुक्त हुआ है। ध्रुवदास की दान विनोद लीला, सुख मंजरी, आनंदलता तथा रस-रत्नावली जैसे ग्रन्थों में दोहे का ही व्यवहार हुआ है। संपूर्ण युगल शतक दोहे में ही रचा गया है। हरिराम व्यास और पीताम्बर देव ने दोहे (साखी) का प्रयोग किया है। यह दोहा छंद कृष्ण काव्य में भी सर्वप्रिय रहा है। मुक्तक रचना के लिये यह छन्द विशेष रूप से उपयुक्त है। हित हरिवंश जी की स्फुट वाणी में चार दोहे भी पाये जाते हैं। नन्ददास ने 'मान मंजरी नाम माला' तथा 'अनेकार्थ मंजरी' नामक संपूर्ण रचनाएं केवल दोहा छन्द में ही लिखी हैं। नागरीदास (महाराज जसवन्तसिंह ने भी इस छन्द का प्रचुर प्रयोग किया है। नन्ददास ने सोरठ छन्द का प्रयोग भी किया है।

रोला—नन्ददास की 'रुक्मिणी मंगल' रास पंचाध्यायी तथा सिद्धान्त पंचाध्यायी केवल रोला छन्द में लिखी गई है। नागरीदास ने भी रोला छन्द का प्रयोग किया है।

कवित्त, सवैया और गीतिका के कुछ उदाहरण सूरसागर में भी मिलते हैं। कृष्ण काव्य के रीतिकालीन कवियों ने भी कवित्त और सवैया का अधिक प्रयोग किया है। घनानन्द जैसे कवि ने भी कवित्त सवैये ही अधिक लिखे हैं, पद न्यून संख्या में ही लिखे हैं। सवैया का प्रयोग ध्रुपद शैली के पदों में मिलता है। रीतिकालीन कवियों ने इसके सब प्रमुख भेदों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। दुर्मिल, मत्तगयन्द, किरीट, मुक्तहरा इत्यादि इसके प्रमुख भेद हैं। ये सभी इन कवियों द्वारा प्रयुक्त हुये हैं। कवित्त के विभिन्न रूपों का प्रयोग भी घनानन्द के काव्य में प्राप्त होता है।

छप्पय—दामोदर दास (सेवकजी) ने अपनी वाणी में करखा, छप्पय गाथा, तोटक सवैया, सोरठा, दुर्मिल, रोला, दण्डक आदि अनेक छोटे बड़े छन्द का प्रयोग हुआ है। सूर ने विनय के पदों में जैत श्री राग में बँधे हुये छप्पय का प्रयोग किया है।

कुण्डलियां—हित हरिवंश जी ने कुण्डलिया छन्द में 'भजन कुण्डलियां' लिखीं।[२९]

अरिल्ल—नागरीदास जी ने कवित्त, सवैया और रोला छन्दों के साथ अरिल्ल छन्दों का प्रयोग भी किया है।

बरवै—रहीम के काव्य में पद, दोहा तथा कवित्त के अतिरिक्त बरवै नायिका भेद में बरवै छन्द भी प्राप्त होता है।

अन्य छन्द—घनाक्षरी, झूलना, चंचरी, दंडकों, सार छन्द, सरसी, लावनी उपमान, हीर, कुण्डल, राधिका, तोमर, हरिगीतिका, वीर छन्द हंसाल, समान सवैया,

---

२९ डा० सावित्री सिन्हा।

मत्त सवैया, हरि प्रिया, सार छन्द, रूपमाला, ताटंक, रजनी छन्द तथा चंचरी दण्डक आदि छन्दों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है।

मिश्रित छन्द—कृष्ण-काव्य में परम्परा प्रयुक्त छन्दों का ही प्रयोग होकर अनेक प्रकार के नये प्रयोग भी किये गये हैं। कवि परम्पराओं में कभी नहीं बंधता। छन्द की परम्परा भी सच्चे कवि को अपने पाश में बांध रखने में समर्थ नहीं होती। मिश्रित छन्द का प्रयोग कृष्ण काव्य कारों की प्रतिभा का पूर्ण परिचायक है। अनेक स्थानों पर गीतिमयता के आग्रह से मिश्रित तथा नव-निर्मित्त छन्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसे छन्दों में रोला-दोहा का मिश्रित प्रयोग हुआ है। सूर ने 'दान लीला' में इसमें और अधिक मनोहारिता लाने के लिये वर्णन के छदान्त में दस मात्राओं की एक पंक्ति और जोड़ दी है। सूरदास के अनुकरण पर नन्ददास ने भी 'भंवर गीत' और 'स्याम सगाई' में इस मिश्रित छन्द का सफल प्रयोग किया है। दोहा और चौपाई छन्दों को बीच बीच में तोड़कर तथा निश्चित मात्राओं की पंक्तियों को जोड़कर इन छन्दों में भी सूरदास में अभिनव संगीतात्मकता पैदा कर दी है। फाग और होली के वर्णन में इस छन्द का प्रयोग हुआ है। चौपाई की दो अर्धालियों के बाद १२ मात्राओं की एक पंक्ति जोड़कर एक त्रिपदी छन्द का प्रयोग हुआ है। सेवक जी, हरिराम व्यास, चतुर्भुजदास आदि कवियों ने इसका प्रयोग किया है।

लोकगीत—लोकगीत की धुन में लिखे हुये काफी राग में बंधे एक छन्द में १४ मात्रा में छन्द का प्रयोग भी मिलता है। आलम्बन के अनुकूल इसकी गति है।

मध्ययुगीन ब्रज भाषा और कृष्ण

ब्रज भाषा के विकास तथा रूप निर्माण में मध्यकालीन कवियों का विशेष योगदान है। भाषा को समृद्ध बनाने के लिए इन कवियों ने संस्कृत के शब्दों का सहारा लिया। तत्सम तथा तद्भव शब्दों को वर्णन के उपयुक्त तथा कोमल बनाया तथा भाषा को व्यापकता प्रदान करने के लिए विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया।

ब्रज भाषा के अनेक कवि संस्कृत के ज्ञाता थे। उनमें से कुछ ने संस्कृत में काव्य रचना भी की है। हित हरिवंशजी ने 'हित चोरासी' के साथ राधा 'सुधानिधि' की रचना भी की है। चैतन्य सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट की वाणी में संस्कृत के कई पद मिलते हैं। 'वन्दे नन्द-व्रजनन-वृन्द, कृष्ण प्रेमलता मृदुकन्द।' तथा 'गोकुलानंद गोपीजनानंद श्री नन्दानन्द नयनानन्द प्यारे।' आदि उनके सुन्दर संस्कृत पद हैं। कहीं कहीं ब्रजभाषा के पदों में संस्कृत का आभास मिलने लगता है।

तत्सम शब्द—ब्रजभाषा में रचना करने वाले प्रायः सभी कवियों ने भाषा को गरिमा प्रदान करने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे चरण, पंगु, रंक, अविगत, निरालम्ब, क्रीड़ा, तरणि, विभावरी, कंचन, प्रभु, इन्दीवर, रोमावलि, रमण, रसलंपट, शिथिल, सुपेशल, रतिरण, वृन्दा विपिन विलास, पुष्पधन्वन,

मन्मथ, पदारविन्दु, पुलिन, मुरलिका, घंटिका, कंचुकी, कंचन, नित्य, किशोर, लोचन, विरह, स्वेद, तथा रोमांच आदि। सामान्य ध्वनि परिवर्तन करके तत्सम शब्दों का बड़ी संख्या में व्यवहार किया है। सूर की भाषा में प्रयुक्त ऐसे शब्द कंटभारे, तटनी, वैराग आदि हैं। अन्य कवियों ने भी स्वेच्छा से तथा छन्द-निर्वाह के लिए तत्सम शब्दों में पर्याप्त हेरफेर कर दिया है। अनेक शब्दों को इतना नया रूप दिया गया है कि उनका मूल अंश कुछ ही मात्रा में शेष रह सका है। ऐसे शब्दों को अर्ध तत्सम कहा जा सकता है। रतन, कीरति, प्रनत, सोभित, स्याम, जोति, रासि तथा परिपूरन ऐसे ही शब्द हैं।

तद्भव शब्द—ब्रजभाषा का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अतः तद्भव शब्दों का प्राचुर्य स्वाभाविक है। ढिठाई, पठाई, गवन, जाति, गोत, खंभ, बरजि, निठुर, बिगरी, बच्छ, पुत, नैन, बेनी, मथनियां, कोखि, आंसू, चोंच, अंगुरी, मुकुता, अंकवारि, बिजुरी, दुति, साँझ, गोंड, मूरत, जढ़, अन्तरजामी, सुमिरन, अटारी, ठौर, जुबती, बृंदन, पिया, तीरथ, धीरज, जूथ, बरखा, पुत, सीस, सनेह, कुंअरि, नीठि, दीठि आदि अनेक शब्द मध्ययुगीन कवियों की भाषा में प्राप्त होते हैं।

कृष्ण काव्य में विदेशी शब्दों का सामान्यतः बहुत कम व्यवहार हुआ है। कुछ कवियों में इनका प्रयोग नहीं मिलता किन्तु कुछ कवियों के काव्य में इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। सूर के काव्य में अरबी-फारसी शब्दों का व्यवहार हुआ है। 'साचो सो लिखवार कहावै' पंक्ति से प्रारम्भ होने वाले उनके एक ही पद में मसाहृत, कैद, कसूर, जहतिया, फरद, असल, अवारजा, मुजमिल, कुल्ल, बारिज, जमाखर्च, गुजरान, मुसाहिब और जवाब इत्यादि अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त रकसम, मुजरा, मुसाहिब, मेहमान, ताज, दाग आदि शब्दों का भी सूर की भाषा में प्रयोग हुआ है। चैतन्य सम्प्रदाय के कवि बल्लभरसिक की वाणी में स्याह, जुलफ, इश्क, शहर, परदा, महबूब तथा आशिक जैसे अनेक शब्दों का व्यवहार हुआ है। स्वामी हरिदास के पदों में दर, पिदर आदि शब्द प्राप्त होते हैं। बिहारी ने भी अनेक अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। इजाफा, हवाल, ताफता, बिहारी की भाषा के प्रसिद्ध शब्द है।

अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द—मीरा के काव्य में राजस्थानी तथा गुजराती भाषा का प्रयोग ब्रजभाषा के साथ घुलमिल गया है। अन्य किसी कवि की रचना में प्रान्तीय भाषा के शब्द नहीं है। अवधी भाषा के प्रयोग ब्रजभाषा के साथ इतने घुलमिल गये हैं कि उनको प्रथक करना सहज नहीं हैं। अष्ट छाप के कवियों में ऐसे शब्द अधिक मिलते हैं। अन्य कवियों में अवधी के शब्द नहीं मिलते।

पर्याय शब्द— सूर्य, चन्द्र, कमल, दिन, रात, नयन, मुख आदि शब्दों के अनेक पर्यायवाची शब्द पाये जाते हैं। छन्द के अनुरूप शब्दों का प्रयोग प्रायः समस्त कृष्ण-काव्य में प्राप्त होता है। सबसे अधिक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग 'कृष्ण' नाम के

साथ हुआ है। एक सूर के ही सूरसागर में लगभग पचास नामों का प्रयोग हुआ है। समस्त कवियों के काव्य में कुल मिलाकर सख्या सैकड़ों तक पहुंचेगी। मीरा ने भी कृष्ण को अनेक पर्यायवाची नामों से पुकारा है।

कृष्ण काव्यकारों की भाषा अत्यन्त समर्थ है। वह मन के सूक्ष्म एवं गहन भावों की वाहिका सिद्ध हुई है। भक्ति और शृंगार जैसे भाव को एक में मिलाकर भी दोनों को पृथक रख देने की सामर्थ्य इन कवियों की भाषा में ही थी।

लोकोक्तियाँ—का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। एक पंथ द्वै काज, कहा कहत मामी के आगे जानत नानी नानन, दाई आगे पेट दुरावति, स्वान पूंछ कोउ कोटिक लागो, सूधी कोउ न करै, घर आये नाग न पूजै बाबी पूजन जाहिं, नैनन के रसना नहीं रसना के नहिं नैन; आदि प्रसिद्ध लोकोक्तियाँ कृष्ण काव्य में प्रयुक्त हुई हैं।

मुहावरे—मन वाही के हाथ बिकानो, नैननि माँझ समानो, भूली चकबक, मुसकि ठगोरा लाई एक डार के तोरे, कोहे को द्वै नाव चढ़ावत, घर बैठे निधि पाई, प्रेम ठगौरी लाई आदि मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद गुण, कोमला वृत्ति और पांचाली रीति

राधा-कृष्ण की रूप-माधुरी और मधुरा-भक्ति से सम्बन्ध पदों में माधुर्य गुण तथा मधुरा भक्ति की प्रधानता रही है। प्रसाद गुण तथा कोमला वृत्ति का प्राधान्य है। इनमें न तो मधुरावृत्ति की मस्तणता है और न परुषावृत्ति की कटुता। कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं में कोमलावृत्ति तथा प्रसाद-गुण मिलता है।

सरल तथा ऋजु वर्ण-योजना का सम्बन्ध पांचाली रीति से होता है। वर्णनात्मक तथा अनुभूत्यात्मक स्थलों पर विशेष रूप से बाललीला, किशोर लीला और विनय सम्बन्धी पदों में कोमलावृत्ति, प्रसाद गुण और पांचाली रीति के उदाहरण मिलते हैं।

शब्द शक्तियाँ—अधिकांश स्थलों पर अभिधा का प्रयोग हुआ है। जहाँ मुहावरे हैं वहाँ लक्षण शक्ति का प्रयोग हुआ है पर इनकी भरमार नहीं है। व्यंजना का चमत्कार केवल विशिष्ट स्थलों पर ही दिखाई देता है।

पूर्व मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने लक्षणों के अत्यन्त साधारण प्रयोग किए हैं। बहुत कम स्थलों पर नवीन अप्रस्तुतों और प्रतीकों के प्रयोग में सूक्ष्म तथा नवीन कल्पना के दर्शन होते हैं। जहाँ लक्षणा का प्रयोग हुआ भी है वहाँ दुरूहता नहीं आने पाई है। व्यंजना का चमत्कार विशिष्ट स्थलों पर ही देखा जा सकता है। रागात्मक वृत्तियों का चित्रण कृष्ण काव्य में अधिक हुआ है। लीला-वर्णन के प्रसंग में व्यंजना के अनेक स्थल छांटे जा सकते हैं। बाललीला का माखन चोरी प्रसंग, राधा-कृष्ण का प्रणय प्रसंग, मुरली प्रसंग, मानलीला, खंडिता प्रसंग और भ्रमर गीत इत्यादि स्थल व्यंजना के चमत्कार द्वारा ही मार्मिक हुए हैं। भ्रमर गीत प्रसंग की उद्भावना ही व्यंजना के द्वारा की गई है।

दशम् अध्याय

दशम् अध्याय

मध्ययुगीन कलाओं में कृष्ण

मध्ययुगीन वास्तुकला और मूर्तिकला में कृष्ण

मुगल सम्राट अकबर मुसलमान होते हुये भी हिन्दू धर्म के प्रति उदार था। उसके समय में कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने दोनों गुरु रूप तथा सनातन के आदेश से वृन्दावन में गोविन्ददेव के मन्दिर का निर्माण कराया। वृन्दावन के प्राचीन मन्दिरों में यह सर्वश्रेष्ठ है। औरंगजेब ने इस विशाल और आकर्षक मन्दिर को ऊपरी बुर्जें तुड़वा दीं। मानसिंह द्वारा निर्मित मन्दिर में श्री रूप गोस्वामी ने गोविन्द देव जी की जिस बड़ी प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की थी वह इस समय जयपुर में है। मथुरा में जन्म स्थान पर वीरसिंह देव द्वारा बनवाया हुआ केशवराय का मन्दिर भी इस मन्दिर की स्थापत्य कला का ही एक नमूना होगा।[1] ग्वालियर में सास-बहू का मन्दिर भी इसी ढंग का है। उसमें कृष्ण की लीला से सम्बन्धित उभरी हुई मूर्तियां चारों ओर की दीवारों पर अंकित हैं।

वृन्दावन में मदन मोहन जी का मन्दिर निर्मित हुआ। यह वृन्दावन में कालीदह घाट के पास है। गोपीनाथ मन्दिर की स्थापत्य कला भी उक्त मन्दिर से मिलती जुलती है। इन दोनों मन्दिरों की मूर्तियां भी औरंगजेब के भय से ब्रज से बाहर ले जाकर सुरक्षित स्थानों में पहुंचा दी गई थीं।

राधा वल्लभ सम्प्रदाय के ठाकुर राधा वल्लभ जहाँ विराजमान हैं, इस मन्दिर का निर्माण दिल्ली के सुन्दरदास कायस्थ द्वारा किया गया था। इस मन्दिर की प्रतिमा काष्ठ की बनी हुई है।

जुगल किशोर का मन्दिर केशीघाट के पास है तथा इसका शीर्ष अभी तक सुरक्षित है। इस मन्दिर का निर्माण १६२७ ई० में हुआ। गोवर्धन का हरदेव मन्दिर भी सोलहवीं शताब्दी की स्थापत्य कला का एक सुन्दर नमूना है। लाल पत्थर से बने इस मन्दिर की रचना शैली हिन्दू और मुगल स्थापत्य के सामंजस्य का सुन्दर

१ कृष्णदत्त वाजपेयी—ब्रज का इतिहास।

उदाहरण है । १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औरंगजेब के भय से जब कृष्ण मूर्तियाँ राजपूत नरेशों के आश्रय में लाई गईं तो उनकी स्थापना साधारण किन्तु सुदृढ़ एवं सुरक्षित मन्दिरों में की गई । वल्लभाचार्य जी के इष्ट श्रीनाथ जी की मूर्ति श्रीनाथ द्वारा कांकरौली नरेश के संरक्षण में पहुँच गई और वहाँ एक साधारण मन्दिर बनवा दिया गया क्योंकि मन्दिर की भव्यता ध्वंसकारियों को आकर्षित करने लगी थी । इसी प्रकार जब सातों घरों के ठाकुर राजस्थान ले जाये गये तो उनकी सुरक्षा के हेतु सात स्थानों पर ऐसे ही मन्दिरों का निर्माण हुआ । यदि मन्दिरों को तोड़े जाने का भय न होता तो उनकी स्थापत्यकला ताजमहल से होड़ ले रही होती, इसमें कोई सन्देह नहीं । मूर्तियों की स्थापना हुई किन्तु वे सजीव बोलती मूर्तियाँ न होकर प्रायः काले पत्थर की अनगढ़ मूर्तियाँ थीं । सम्भव है वे मूर्तियाँ प्राचीन युग की हों और वल्लभाचार्य तथा स्वामी हरिदास जी जैसे महानुभावों ने उनका प्राकट्य कराया हो, अथवा टूटने के डर से अनगढ़ मूर्तियों का निर्माण ही कराया गया हो । आज इसका उत्तर कौन दे सकता है ।

मध्ययुगीन चित्रकला में कृष्ण

मुगल सम्राटों के राज्यकाल में ललित कलाओं ने राजाश्रय पाया और वे उत्कर्ष को प्राप्त होने लगीं । अकबर ने फतहपुर सीकरी को जब से राजधानी बनाया —चित्रकला को एक नया जीवन मिल गया । सम्राट् अकबर को चित्रकला से अत्यधिक प्रेम था उनकी व्यक्तिगत देखरेख में राजपूत शैली तथा फारसी शैली के सम्मिश्रण से उत्पन्न मुगल-शैली का पूर्ण विकास हुआ । १५८८ ई० में महाभारत का अनुवाद 'रज़मनामा' के नाम से फारसी में हुआ । उसका चित्रांकन भी पुस्तक के साथ मुगल शैली में हुआ । हरिवंश पुराण के ऊपर आधारित चित्रों का अंकन भी इसी प्रकार अकबर काल में ही हुआ ।[2] इन दोनों ग्रन्थों का सम्बन्ध कृष्ण चरित्र से है अतः कृष्ण का महाभारत कालीन रूप मध्ययुग में चित्रकला-जगत को पहली देन है ।

सम्राट जहाँगीर के समय में ललित कलाओं को आदर एवं सम्मान प्राप्त था । जहाँगीर रसिक था । अकबर की तरह सर्वधर्म समन्वयकारी नहीं था अतः उसके राज्यकाल में रामायण तथा महाभारत की चर्चा नहीं हुई । उसके स्थान पर केशव की 'रसिक प्रिया'[3] नागरी लिपि में लिखी गई तथा मुगल शैली में उसका चित्रांकन भी हुआ । पुहकर कवि की 'रसवेलि'[4] रचना भी चित्रांकित की गई ।

---

२ मेट्रोपोलिटन म्यूजियम, न्यूयार्क ।

३ बोस्टन म्यूजियम—अमरीका ।

४ राष्ट्रीय संग्रहालय—नई दिल्ली ।

औरंगजेब के समय में अन्य ललित कलाओं के साथ चित्रकला का भी ह्रास हो गया। मुगल शैली में अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ गई और हिन्दू धर्म से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया। चित्रकार दिल्ली छोड़कर भारत के अन्य भूभागों में जा बसे। मुगल कला से स्थानीय कलाओं का सम्बन्ध हुआ तथा परिणामस्वरूप अनेक चित्र-शैलियों का जन्म हुआ। इनमें कांगड़ा, जम्मू, बसोली, कुलू, गढ़वाल तथा जयपुर शैलियाँ प्रमुख हैं।

जयपुर या राजपूत शैली में कृष्ण चरित्र का अंकन बराबर होता रहा। कृष्ण एक चित्र में अपनी माँ से चन्द्रमा लेने का हठ कर रहे हैं।[५] वत्सासुर तथा बकासुर-वध, मुष्टिक चाणूर तथा कुवलयापीड़ हाथी को मारने का दृश्य अंकित किया गया है। एक चित्र में कृष्ण अर्जुन का रथ हाँक रहे हैं। एक दूसरे चित्र में राधा और गोपियों का जल विहार दिखाया गया है। कृष्ण राधा को प्रेम-दृष्टि से देख रहे हैं।[६] मोलाराम का 'गोवर्धन-धारण' और 'रास मण्डल' उच्चकोटि के चित्रों में हैं। 'रास मण्डल' राजधानी कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। केन्द्र में स्थित प्रकृति और पुरुष के प्रतीक राधा और कृष्ण नृत्य का नेतृत्व कर रहे हैं। उनके चारों ओर गोपियों का समूह तीन सकेन्द्रिक वृत्तों में विभाजित है। राजपूत शैलियों में किशनगढ़ शैली की अपनी एक विशेषता है। मुखाकृति तथा तन की सुकुमारता दर्शनीय है। १७५७ ई० में किशनगढ़ राजा सावन्तसिंह की प्रेरणा से निहालचन्द्र चित्रकार ने कृष्ण सम्बन्धी दो चार अमर चित्रों की रचना की। इनमें बनी-ठनी राधा और कृष्ण-राधा की युगल मूर्ति अंकित करने वाले चित्र विशेष सुन्दर हैं।

मेवाड़ शैली का एक चित्र १८ वीं शताब्दी का है इसमें राधा कृष्ण को विदा दे रही हैं। कृष्ण जा रहे हैं वे उन्हें मानो पकड़ने को दोनों हाथ आगे बढ़ा रही हैं। एक ओर गउयें पानी पीना छोड़कर उधर ही ताकती हुई दिखाई गई हैं। राधा की व्याकुलता का सुन्दर चित्र उतारा गया है।

जयपुर शैली के एक चित्र में कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए चित्रित किया गया है। एक गाय भोलेपन से मुँह उठाकर उन्हें देख रही है।

महाकवि जयदेव का 'गीत गोविन्द' चित्र की दृष्टि से सर्वाधिक प्रिय रहा है। इसका अंकन अंतिम मुगल शैली से आरम्भ हो गया था इसीलिये गढ़वाल शैली में गीत गोविन्द अत्यधिक प्रिय रहा। महाराज टिहरी के यहाँ इस शैली में एक अति भव्य सचित्र प्रति गीत गोविन्द की सुरक्षित है। चैत चित्रकार द्वारा चित्रित दानलीला का चित्र अपने में अति सुन्दर बन पड़ा है। इसी शैली का एक चित्र वर्षा में राधा

---

५ पोथीखाना जयपुर।

६ पटना संग्रहालय।

कृष्ण के कुंज-निवास का भी है। गीत गोविन्द की विलक्षण प्रति बसोली चित्र-शैली में लिखी गई है और इसके चित्रकार माणक ने इसे १७३० ई० में लिखा है। गढ़वाल शैली में सुदामा और कृष्ण से सम्बन्धित दो चित्र देखे गये। एक चित्र सद्यः स्नाता राधा का है। दूसरे चित्र में मानिनी राधा चित्रित की गई है। अनेक गोपियों के प्रति कृष्ण का प्रेम देखकर राधा रूठकर बैठ जाती है।[७] एक चित्र में होलिकोत्सव का दृश्य अंकित है। एक ओर राधा अनेक गोपियों को लेकर खड़ी है दूसरी ओर एकाकी कृष्ण प्रस्तुत खड़े हैं। यह चित्र १७८५ ई० का है। इसी समय के एक कांगड़ा शैली चित्र में राधा कृष्ण एक कुंज में केले के पत्तों की शैया पर बैठे प्रेमालिंगन में मग्न दिखाये गये हैं।[८] कांगड़ा शैली में भागवत-पुराण तथा महाभारत चित्रित किया गया। १७ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कृष्ण की बाल लीला पूर्ण रूप से चित्र-जगत का महान् विषय बन गई थी। १८ वीं शताब्दी में चित्रित 'चीर-हरण' का एक चित्र कांगड़ा शैली का सौन्दर्य प्रदर्शित कर रहा है। कविताओं पर चित्र रचना कांगड़ा शैली की अनोखी विशेषता है। गीत गोविन्द, बिहारी सतसई, केशव का नायक-नायिका-भेद तथा बारहमासा इसके प्रिय विषय थे। चित्र रचना का यह रीति काल था। एक शैया पर सोते हुये, कक्ष में बैठे हुए, कुंज में प्रेमालाप करते हुए तथा बैठकर परस्पर दर्पण अवलोकन करते हुए राधा कृष्ण अत्यन्त कुशलता से चित्रित किये गये हैं। कांगड़ा-शैली चित्रकला ने राजा संसार चन्द के राज्यकाल में विशेष उन्नति की। इनके राज्य काल में चित्रकला ने भक्ति काल और रीतिकाल के दोनों युग ला दिये। एक ओर कृष्ण को परमात्मा मानने के परिचायक चित्र हैं तो दूसरी ओर नायक नायिका भेद जैसे मांसल चित्र भी। संसार चन्द्र के राज्य काल में मध्य-युगीन चित्रकला पूर्ण उत्कर्ष को पहुंच कर समाप्त प्रायः हो गई। १८ वीं शताब्दी के अंतिम चरण में चुनिहारिन लीला, श्यामसखी लीला तथा गावड़ी लीला का रूप देखने में आया।

मध्ययुगीन चित्रकला में कृष्ण अत्यन्त लोकप्रिय विषय बने। जितना कृष्ण का विविध रूपों में अंकन हुआ है उतना किसी अन्य देवता, अवतार अथवा मनुष्य का नहीं हुआ।

सांझी—साम्प्रदायिक भक्त कवियों में चित्रकला का एक अन्य रूप भी प्राप्त

---

७ गढ़वाल पेन्टिंग्स—इन्ट्रोडक्शन बाई डबल्यू जी० आर्चर।

८ कांगड़ा पेन्टिंग्स— " " " "

होता है । इसे 'साँझी' कहा जाता है । इसमें कृष्ण की विविध लीलाओं का बेलबूटों द्वारा नाना वर्णों में अंकन किया जाता है । मध्ययुग में भी 'साँझी' का प्रचार था ।[९]

मध्ययुगीन संगीत-कला में कृष्ण

मध्ययुगीन संगीत-कला के आलंबन प्रमुख रूप से कृष्ण हैं । कृष्ण भक्तों के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के साथ संगीत का सुखद समन्वय हुआ है । 'कृष्ण-भक्तों ने अपनी विनय, अपनी अकिंचनता अपने आराध्य कृष्ण का महात्म्य, अपनी शरणा गति की भावनायें तथा उनके चरित्र, संगीत की सरसता के सहारे व्यक्त किये हैं ।'[१०] वार्ता साहित्य से विदित होता है कि अकबर जैसे कला प्रेमी इन भक्तों के पदगायन सुनने के इच्छुक रहते थे । मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के विकास में संगीत का अभूत-पूर्व योगदान है । कृष्ण की विविध ललित लीलाओं ने काव्य को प्रेरणा दी तथा संगीत ने उसके सौन्दर्य बर्द्धन में महान योग दिया ।

भगवान कृष्ण सोलह कलाओं के अवतार तथा चौंसठ ललित कलाओं के ज्ञाता थे । इनमें भी संगीत उनके जीवन का विशेष अंग था । उनकी मुरली का माधुर्य अनुपम था । नृत्य और नाट्य में वे पारंगत थे । ऐसे कृष्ण की चरित्र-लीलाएं भी संगीतमय हो गईं । गायक कवियों के काव्य में संगीत प्रेरणा के प्रधान उपादान हैं उनके आराध्य कृष्ण तथा उनकी रसवती लीलायें । उनकी समस्त क्रियायें संगीत से ओत-प्रोत हैं । प्रत्येक लय में संगीत की ध्वनि है । दिव्य लीला का आनन्द भक्तों ने अपने दिव्य चक्षु एवं कर्णेन्द्रिय से प्राप्त किया उसी को पदों में गाकर साकार रूप प्रदान किया है ।

भगवान कृष्ण के लोक रंजक तथा लोक रक्षक दोनों ही रूप भक्तों को प्रिय

---

९ स्वामी हरिदास ने 'सांझी' सम्बन्धी एक पद लिखा है[११]

'सखी-वृन्द सब आई जुरीं, वृषभान-नृपति के द्वार ।
बीनन फूल चलो अब राधे, नवसत साजि सिंगारि ।।

× × × ×

चलति चाल मराल-बाल सी राधा सखियन-माँझ ।
बीनति फूलनि जमुना-कूलनि, खेलति 'साँझी' साँझ ।।

ब्रज के मन्दिरों में अब भी सुन्दर रंग तथा पुष्पों द्वारा ऐसी चित्रपटी निर्मित की जाती है । ब्रज प्रदेश की यह एक विशेष कला है ।

१० डॉ० दीनदयाल गुप्त—उपोद्घात
—हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत लेखिका—डॉ० उषागुप्त

११ श्री ज्योतिषी राधे श्याम द्विवेदी ।

रहे हैं। प्रायः सभी रसों का उनके चरित्र में समावेश हो गया है। अतः उनके चरित्र-गीतों में भी प्रत्येक रस का आस्वादन किया जा सकता है। प्रत्येक रस से सम्बन्धित संगीत की राग-रागिनियों को कृष्ण साहित्य में स्थान मिला है। कृष्ण-जन्म की बधाई मांगलिक गीतों में गूंज उठती है, शरद पूर्णिमा की विहंसती ज्योतना में गोपी तथा कृष्ण के पैरों के घुंघरुओं की झंकार समस्त वातावरण में झंकृत हो जाती है। पावस ऋतु में राधा-कृष्ण का हिंडोला झूलना और मल्हार गाना। बसंत ऋतु में बसन्तोत्सव की धूम-गुलाल और रंग से सराबोर। इन सभी लीलाओं तथा उत्सवों में गान, वादन तथा नृत्य का विशेष रूप से आयोजन होता है। राधा-कृष्ण के शृंगार-रस वर्णन में भी संगीत ने अभूतपूर्व योग दिया है तथा संगीत को शृंगार से आश्रय प्राप्त हुआ। संयोग तथा वियोग में शृंगार के दोनों पक्ष विशेष रूप से वियोग में जब करुणा का समावेश हो जाता है संगीत का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। शृंगार तथा करुणा दोनों भावनाओं के संयोग के कारण मध्ययुगीन कृष्ण साहित्य में संगीत के लिए विशेष आग्रह है।

पुष्टिमार्ग (वल्लभ संप्रदाय) में अष्ट प्रहर की नित्य सेवा विधि तथा वर्षोत्सव सेवा विधि का विधान स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन प्रातःकाल से सायं तक विविध राग-रागनियों में बद्ध विशिष्ट वाद्ययन्त्रों की संगत में उस समय से सम्बन्धित भावानुकूल पदों के गायन की सम्यक् आयोजना की जाती थी। मंगला की सेवा में अनुराग, खंडिताभाव जगाने तथा दधिमंथन के, शृंगार में बाल रूप की सुन्दरता, वेषभूषा, बाल क्रीड़ा के, ग्वाल में सख्यभाव तथा कृष्ण के खेल चौगान, चकडोरी, गोचारण, गोदोहन, माखन चोरी, पालना, घैया, अरोगन के, राजभोग में छाक के, उत्थापन में गोटेरन तथा बन्यलीला के, भोग में कृष्ण रूप, गोपी दशा, मुरली, रूप माधुरी, गाय, गोप आदि के, संध्याति में गोग्वाल सहित वन से आगमन, गोदोहन, घैया, वात्सल्यभाव से यशोदा का बुलाना आदि के और शयन समय अनुराग, गोपीभाव से निकुंजलीला तथा संयोग शृंगार के पदों का तथा बसंत, हिंडोल, रास-लीला आदि उत्सवों में इन क्रीड़ाओं से सम्बन्धित पदों का गायन कुशल संगीतज्ञों, कीर्तनकारों तथा गायनाचार्यों द्वारा किया जाता था। कुछ विद्वानों के मत से तो यह कीर्तन प्रणाली ही कृष्ण साहित्य सृष्टि की प्रेरणा बनी।

कृष्ण-काव्य में संगीत का बराबर उल्लेख हुआ है। जिन राग रागनियों का प्रयोग हुआ है उनके नाम भी पदों के साथ प्राप्त होते हैं। वस्तुतः समस्त कृष्ण काव्य संगीत-छन्द मय है। रागों में कान्हरा, गौरी, सारंग, गूजरी, बिलावल, धना श्री, राम-गिरि, आसावटी, केदारा, सोरठी, भैरभ, विभास, गन्धार, देव गन्धार, मल्हार, कल्याण, टोड़ी, नायिकी, विलास, विहाग, मालकोश, रामकली, जंगला, पीलू, झिझोटी, सिन्धुरा, बसन्त, यमन, नट, काफी, मारू, जैत श्री, परज, सोरठ, कल्याण सम्बावती, मुलतानी

तथा गुनकली आदि रागनियों का प्रयोग कृष्ण-भक्ति-संगीत में हुआ। इनमें से अनेक रागनियों को अब कोई गाना भी नहीं जानता। हरिदास जी की वाणी में ध्रुपद की आचार्या ललिता सखी विचित्र वाणी में गायन कर सिद्ध राग-रागनियों के यूथ से यूथ साकार उपस्थित कर देती हैं।

वाद्यों में रुद्र वीणा, महती वीणा, किन्नरी वीणा सरस्वती वीणा, पिनाकी वीणा, स्वर मंडल, सारंगी अमृत, रावण हत्ता, अमृत कुंडली रबाब, बांसुरी, अल-गोजा, शहनाई, मुखबीणा मुखचंग, शंख, महुअरि, विसान, सिंगी, मृदंग, मादिलरा, नगाड़ा, भेरी, डिमडिमी, डमरू, खंजरी, झांझ, जलतरंग तथा उपंग आदि वाद्यों का संगीत में प्रयोग होता था।[१२] त्रिताल, रूपक, इकताल और चौताल मात्राओं की ताल का अधिक प्रयोग होता था।

स्वामी हरिदास के अनेक पदों में वाद्यों का उल्लेख है। राग-केदारी में बँधे हुये पद में[१३] मृदंग और चन्द्रागति पर तालों का बंधान बंध रहा है। स्वामी हरिदास ने राग रागनियों का रूप और अधिक निखार दिया। ध्रुव पद और धमार की प्रसिद्ध गायकी के आविष्कर्ता स्वामी हरिदास ही थे।

अष्टछाप के काव्य में साहित्य और संगीत का समान योग था। केवल कुछ पद संगीत के उद्देश्य में लिखे गये जान पड़ते हैं।

ऐसा अनुमान होता है कि इन पदों की रचना ही मृदंग अथवा पखावज की ध्वनि, घुंघरुओं की झनकार और संगीत-लहरी के साथ सामंजस्य के उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गई है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पद में—

लाल-संग, रास-रंग लेत मान रसिक गनि,
अप्रता, अप्रता, तत तत तत थेई थेई गति लीने
सरिगम पधनी, गम पधनी धुनि सुनि, ब्रजराज कुंवरि गावत री
प्रति गति जाति भेद सहितताननि न न न न न न न न न न गनि गति लीन
—छीत स्वामी

---

१२ श्री कुन्नीलाल 'शेष'—अष्टछाप के वाद्ययंत्र पुस्तक से
१३ अद्भुत गति, उपजत अति नृतत दोऊ मंडल कुंवरि-किसोरी।
सकल सुघंग अंग-अंग भरि भोरी पीय नृतत मुसकन मुख मोरी,
परिरंभन रस रोरी॥
ताल धरें बनिता मृदंग चन्द्रागति घात बजे थोरी-थोरी।
सभै पाय माया विचित्र ललिता गायन चित-चोरी॥
—हरिदास

गोविन्द स्वामी के पदों में संगीत और नृत्य से सम्बद्ध पदावली वाक्यों का अंश बनकर प्रगट हुई है। रास-प्रसंग के अनेक पदों में थिरकते हुये पैरों की गति वाद्य-यन्त्रों के स्वर तथा शब्दावलियों के साथ साकार हो उठते हैं। उदाहरण—

गिड़ि गिड़ तत थुंग थुंग तत्त त्थेई,
गावत मिलि राग रास रस तान लीने।
धिधिकट गुधिकट मृदु मृदंग बाजै,
वृषभानु कुंवरि गान तान सुर बंधान मान
गोविन्द गिरधर प्रससि अद्भुत छवि छाजै॥

स्वामी हरिदास जी के काव्य में संगीत प्रधान और साहित्य गौण हो गया। आगे के संगीतज्ञों में भाव का योग केवल संगीत के नाते ही रह गया। राधा-कृष्ण उनके संगीत प्रधान के भी आलम्बन थे अतः अठारहवीं शताब्दी तक राधा-कृष्ण सम्बन्धी संगीत भारत के वातावरण को मुखरित करता रहा। हजारों संगीतज्ञ कृष्ण-काव्य के रचयिता थे तथा वे अपने ही पदों को राग-रागनियों में बांधकर गाया करते हैं यदि कहा जाय कि संगीत के लिये वे साहित्य-रचना करते थे तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। इन कवियों में मुसलमान भी अधिक संख्या में हैं।[१४] राग कल्पद्रुम तथा संगीत रत्नाकर में इनकी रचनाएँ देखी जा सकती हैं।

मन्दिरों की 'समाज' प्रणाली ने संगीत का अत्यधिक विकास किया। 'मंदिरों में होने वाले 'समाज' भी अपने ढंग के विलक्षण वातावरण की सृष्टि करते हैं। ये पद जब सुकण्ठ समाजियों के समवेत स्वर में गुंजायमान होकर कोमल वितान की रचना करते हैं, तब स्वरों के आरोह-अवरोहों की व्यंजना विभोर कर देती है।' हित हरिवंश जी ने अपने चौरासी पदों को चौदह रागों में बांधा था। उसके बाद व्यास जी, ध्रुवदासजी, अनन्य अली, चतुर्भुजदास, रसिकदास आदि ने भी रागों के अनुसार रचना की। महान योगराधा वल्लभ संप्रदाय ने भी संगीत में अपना महान योगदान दिया। इस संप्रदाय ने रागों के लिये प्रचलित स्वरों से भिन्न स्वर-ताल का विधान है। उदाहरणार्थ बेती, गौरी, रायसौ, काफी, कल्यान, कान्हरो केदारो आदि राग यहां भिन्न स्वर ताल में गाये जाते हैं।[१५] होरी और धमार यहां भी चलता है।

---

१४ श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने मुसलमान गेय पद—गायक और रचयिताओं के नामों की एक लम्बी सूची 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ (ब्रज साहित्य मण्डल) में दी है।

१५ बाबा तुलसीदास—भूमिका, शृंगार-रस-सागर

१६ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ संप्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य पृ० ५८९।

चैतन्य संप्रदाय में जयदेव और विद्यापति के पद विशेष प्रिय हैं। संकीर्तन में नाम-स्मरण तथा पदों का गायन होता है।

मध्ययुग में संगीत का व्यापक प्रचार हुआ। जहाँ कृष्ण थे वहां संगीत अनिवार्य रूप से था किन्तु जहाँ संगीत था वहाँ कृष्ण को भी किसी न किसी वेश में जाना ही पड़ा। वे संगीत रस रसिक हैं। जहाँ संगीत है वहाँ कृष्ण हैं, भक्त कवियों ने इसे सिद्ध कर दिखाया।

मध्ययुगीन मुसलमान कवियों के कृष्ण

इस्लाम एक कट्टर धर्म है। भारत में मुसलमानों का आगमन लूट-खसोट और मन्दिरों की तोड़फोड़ का प्रारम्भिक इतिहास है। इस्लाम में सूफी मत उदार विचारों वाला है। उन्होंने हृदय धर्म का पाठ मुसलमान जनता को सिखाया था। प्रेम ही ईश्वर है। कबीर ने हिन्दू मुसलमानों के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया किन्तु उनका राम मुसलमानों के हृदय में घर न कर सका। राम के प्रति इनके हृदय में कोई उमंग नहीं उठ सकती थी किन्तु कृष्ण के माधुर्य भाव के प्रति इनके हृदय में एक सहज भावना थी जो किसी किसी में मस्ती एवं उन्माद के रूप में भी प्रकट हुई। फारस के उन्मद प्रेम का चिर अभिलाषी मुसलमान-हृदय बरसाती नदी की तरह उमड़ कर कृष्ण रूपी सागर की ओर बह चला। कृष्ण का अनुपम रूप, मनोरम शृंगार एवं माधुर्य सभी कुछ मुसलमानों को अपना हृदय न्योछावर कर देने की प्रेरणा था। वे उनके चरणों में लुट गये। कृष्ण तथा राधा-कृष्ण के मधुर प्रेम का मदिरा पीकर वे मस्त हो गये। इन्होंने जब प्यार किया तो अपने पास कुछ भी नहीं छोड़ा उसकी उष्णता का विस्फोट इनके भावोद्गार के रूप में हुआ।

अकबर—महान् सम्राट अकबर को भारतीय संस्कृति, संगीत और साहित्य से अत्यधिक प्रेम था। कृष्ण की रूप माधुरी ने उन्हें भी काव्य के बन्धन में ले लिया और उन्होंने ब्रजभाषा में लिखा :—

'शाह अकबर' एक समय चले कान्ह विनोद विलोकन बालहि।
आहते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहि॥
त्यों बलिबेनी सुधोर धरी सुभई छवियों ललना अरु लालहि।
चम्पक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहि॥

जहाँगीर—जहाँगीर ने भी अपने पिता की परम्परा का पालन किया और गोप रूप कृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया—

अदभुत गोप रूप बरनो न जाय कोटिक
काम द्युति सुध-बुध बिसारे।
शाह जहाँगीर जान-बूझ कर सकुचावत इन
इन नैनन में रैन बिहारे॥

शाहजहाँ—बादशाह शाहजहाँ काव्य-रसिक प्रसिद्ध थे। संस्कृत और हिन्दी के विद्वानों का वे आदर करते थे तथा स्वयं भी ब्रजभाषा में रचना करते थे। कृष्ण के बहुनायकत्व रूप पर उनका एक पद इस प्रकार है :—

भादों कैसे दिनन आई श्याम काहे को आवेंगे।
कोकिला की कुहुक सुनि छाती माती राती भई,
बिरही आगे ऊधो फूंक-फूंक के जरावेंगे॥
'शाहजहाँ' पिया तुम बहु नायक।
बिरहिन के अंसुअन की तपत बुझावेंगे॥

तानसेन—तानसेन संगीत प्रेमी कवि थे। उनके पदों में संगीत के स्वर प्रमुख एवं विषय गौण है। मल्हार रागिनी में बंधा एक पद इस प्रकार है—

रसिक झूलत हैं री लाल बाल रहरि रहसि संग।
ज्यों ज्यों डरपति प्यारी त्यों त्यों कर गहत मोहन आली मोहि,
अति रस बढ्यों तातें भेटत भुज भरि अंग।
सावन तीज सुहावनी लागति झुलवति सहचरि करत रंग,
तानसेन पिय प्यारी की छवि पर वारौं कोटि अनंग॥

रहीम—अब्दुलरहीम खानखान मुगल-दरबार के श्रेष्ठ कवि थे। कृष्ण पर उनका असीम अनुराग था। उन्होंने अपना मन कृष्ण रूपी चन्द्रमा के लिये चकोर कर लिया था। कमलदल नैन कृष्ण उनके मनमें बस गये थे :—

कमलदल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं नेकु मो मनते मन्द मन्द मुसकानि॥
ये दसनैन-दुति-चपला हूते, महा चपल चमकानि।
बसुधा की बस करी मधुरता, सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की, मुकत-माल पेहरानि।
नृत्त-समें पीतांबर हू की, फँहरि-फँहरि फँहरानि॥
अनुदिन श्री वृन्दावन में ते, आवन-जावन जानि।
अब 'रहीम' चित ते न टरति है, सकल स्याम की बानि॥

ताज—ताज कुँवर कृष्ण भक्त मुसलमान स्त्री थीं। वे कृष्ण पर दिलोजान से न्योछावर थीं। उनका एक प्रसिद्ध कवित्त इस प्रकार है :—

एरे दिलजानी, मीड़े दिल दी कहानी, तब दस्त हूं बिकानी, बदनामी हूं सहूंगी मैं।
देव-पूजा ठांनी औ निवाज हूं भुलांनी, तजे कलमा-कुरान ताज गुनना गहूंगी मैं।
सांवला सलोंना सिर 'ताज' सिर कुल्ले दियें, तेरे नेह-दाग में निदाग ह्वै रहूंगी मैं।
नन्द के फरजंद कुरबांन तांड़ी सूरत पर हों तो मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं॥

रसखान—रसखान की चर्चा वल्लभ सम्प्रदाय में हो चुकी है। प्रत्येक कृष्ण भक्त उनकी कविता से परिचित है। पठान होकर भी वे कृष्ण भक्ति में मग्न रहते थे। उनकी भावना में ब्रज की महिमा इतनी अधिक है कि वे मात्र करील के कुंजों पर करोड़ों स्वर्ण-प्रसाद न्योछावर करने को प्रस्तुत हैं। अपने प्रिय कृष्ण की जन्म भूमि से उन्हें ऐसा ही प्रेम था। कृष्ण की लकुटी और कामरी पर तीनों लोकों का राज्य त्यागने को प्रस्तुत हैं:—

या लकुटी अरु कामरिया पर राजतिहुं पुर को तजि डारों।
आठहुं सिद्ध नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारों॥
रसखानि कबहुं इन आँखिन सों ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारों।
कोटिन हुं कलधौति के धाम करिल की कुंजन ऊपर वारों॥

तान तरंग—'तान तरंग' किसी मुगल सम्राट का उपनाम है। पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ में 'मुगल सम्राटों की ब्रजभाषा-गेय-पद रचनाओं' में टोड़ी-राग में बांधा हुआ एक कवित्त इस प्रकार है—

अब ही डारि दै रे इंडुरिया कन्हाई, मेरी पँच-रँग पट की।
हा-हा खात तेरे पैयाँ परति हों, लालच मोहि मथुरा-नगर-हाट की॥
मेरे संग को दूरि निकसि गई, हों नर ही किहुं घाट की।
तान-तरंग प्रभु झगरो ठांन्यों, हंसत लुगाई बाट की॥

आलम—इनकी रची दो रचनाओं में कृष्ण का वर्णन है। श्याम-सनेही और सुदामा चरित्र। श्याम सनेही में 'रुक्मिणी' मंगल की कथा है। कुलपति मिश्र ने 'आलम' के लिए एक दोहा कहा है:—

नव रस मय मूरति सदा, जिन बरने नंदलाल।
आलम आलम बस कियो, दै निज कविता जाल॥[17]

दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

'नंद सों कहत नंदरानी हो महर
सुत चन्द की सी कलन बढ़तु मेरे जान है।'

शेख—श्री भवानी शंकर याज्ञिक के अनुसार 'शेख' छापके कवित्त भी आलम के ही लिखे हुये हैं। उन्होंने कभी आलम और कभी शेख छाप रखी हैं।

इनके अतिरिक्त मुबारक, अहमद और महबूब कवियों के नाम गिनाये गये हैं।[18] श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने 'ब्रजभाषा और मुसलमान कवि-गण' लेख में ब्रजभाषा के लगभग सात सौ कवियों के नाम गिनाये हैं। अलीखान, अलीदीन के नाम

---

१७ आलम के कवित्त रीतिकाल के विवेचन में दिए गए हैं।
१८ सूर्यकान्त शास्त्री—हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

वल्लभ से सम्प्रदाय की सूची में गिनाये गये हैं।[१९] इनमें अनेक विषयों पर कविता करने वाले मुसलमान हैं। रीतिकाल की शृंगारिक रचनाओं ने इनका ध्यान अधिक आकर्षित किया है। किसी कवि की शृंगारिक रचना में कृष्ण का नाम नहीं है उन्हें कृष्ण अनुमानित किया जा सकता है। किसी कवि ने नायक के स्थान पर कृष्ण के पर्यायवाची नामों में से एक का प्रयोग किया है तो किसी ने दोनों ओर संकेत देने वाले शब्द का प्रयोग कृष्ण के नाम से किया है। यदि इनमें से सौ कवियों ने भी कृष्ण को अपनी कविता तथा संगीत का आलंबन बनाया तो इसका श्रेय कृष्ण भक्ति को तथा कृष्ण की लोकप्रियता को ही दिया जा सकता है। भक्ति की बाढ़ में ये अपने को न रोक सके और बह गए। कुछ ने पिष्टपेषण भी किया।

मध्ययुगीन हिन्दी निगुर्ण साहित्य में कृष्ण

कृष्ण चरित्र भारतवर्ष में अत्यधिक लोकप्रिय था। भक्ति साहित्य में तो विशेष रूप से कृष्ण सर्वत्र पिरोये हुए थे। राम के अनन्य भक्त तुलसी ने भी अपने राम को केशव और माधव कह कर पुकारा है। खोज करने पर ऐसे प्रयोग निगुर्ण संप्रदायों में भी पाये जा सकते हैं।

संतमत—कबीर ने नामदेव से विट्ठल भगवान का नाम (कृष्ण) अपनी वाणी में लिया :—

किउ छूटत कैसे तरउ भव जल निधि भारी।
राखु राखु मेरे 'बीठुला', जनु सरनि तुम्हारी॥[२०]

इसके अतिरिक्त सारिंगपानी[१], माध[२], हरि[३], बनवारी[४], मधुसूदन[५], मुकुन्द[६], गोपाल[७] आदि अनेक नाम पदों में प्रयुक्त किये गये हैं।[२१]

विष्णु सोई जाको विस्तारा।
सोई कृष्ण जिनि कियो संसारा॥[२२]

माधव तथा मुरारी के प्रति उनकी सच्ची पुकार प्रकट हुई है :—

कहत कबीर हमको दुख भारी।
बिन दासन क्यों जीवहिं मुरारी॥[२३]

रैदास, पीपा, धन्ना आदि निर्गुणोपासना का समर्थन करते हुये भी कभी-कभी

---

१९ श्री प्रभुदयाल मीतल—पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ
२० संत कबीर, पृष्ठ १५४
२१ संत कबीर, क्रमशः रागुगउड़ी ३३, २, ३, १८, २८, ५८, ५८
२२ कबीर ग्रंथावली पृ० १९९ पद ३२७
२३ „ पृ० १८५ पद २८७

मूर्ति पूजा, छापा, तिलक-चन्दन आदि में विश्वास करते थे। रैदास अपना मन सबसे तोड़ कर केवल हरि से जोड़ते हैं :—

मैं अपनो मन हरि सूं जोरयो, हरि सूं जोरि सबन सूं तोरयो।[२४]

चरणदास ने एक पद में 'मोहन' नाम का प्रयोग किया है :—

अब घर पाया हो मोहन प्यारा।[२५]

मलूकदास कहते हैं :—

ये हो मुरारि पुकारि कहैं मैं,
अब मेरी हंसी नहिं तेरी हंसो है।

संतमत की शाखा के गुरु गोविन्दसिंह[२६] ने 'कृष्णावतार' नामक काव्य लिखा। इसके चार भाग हैं—बाल लीला, रास मंडल, गोपी विरह, युद्ध प्रबन्ध कृष्ण के परंपरागत मधुर रूप की अपेक्षा गुरु गोविन्दसिंह ने कृष्ण के वीर रूप का चित्रण अधिक तन्मयता से किया है।[२७]

शत्रुसेना का संहार कृष्ण किस प्रकार कर रहे हैं इसका वर्णन इस प्रकार है—

पानि कृपानि गही घनस्याम बड़े रिपुते बिन प्रान किए।
गज बाजिन के असवार हजार मुरारि संघार बिदारि दिए॥
अह एकन के सिर काट दए, इक बीरन के दल फारि हिए।
मनो काल सरूप कराल लख्यो, हरि शत्रु इक मार लिए॥

—गुरु गोविन्दसिंह[२८]

सूफीमत—संतमत मूल रूप में भारतीय था अतः उस पर कृष्ण का प्रभाव होना हो सकता है किन्तु सूफीमत में कृष्ण की चर्चा देखकर तो उनकी लोकप्रियता में सन्देह ही नहीं रह जाता। मलिक मुहम्मद जायसी ने भारत के हिन्दू जीवन की कतिपय गौर व शालिनी कथाओं का स्मरण किया है। वे उन कथाओं की चर्चा करते करते कृष्ण की जीवन-गाथा का स्मरण करने लगते हैं :—

नेहगा कृष्नहि गरुड़ आलोपी।
कठिन बिछोह जियहिं किमि गोपी॥[२९]

---

२४ रैदास की बाणी
२५ हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० २२०
२६ सिक्खों के गुरु
२७ महीपसिंह—धर्मयुग, जनवरी १९६२
२८ कृष्णावतार—युद्ध प्रबन्ध
२९ जायसी ग्रन्थावली नागमती वियोग खंड—दोहा १

अक्रूर के द्वारा कृष्ण को मथुरा ले जाना और गोपियों का उनके कठिन वियोग में तड़पना, नागमती की विरह-कथा को वियोग का गहरा रंग देने के लिये कवि यह साम्य चित्र प्रस्तुत करता है।

अछरी छपी छपीं गोपीता[30]

गोपियों का चित्र यहाँ भी जायसी के सामने है।

चरणदास जी को साहित्यकारों ने निर्गुण उपासना वाला बताया है। किन्तु यह निर्गुणियों का नहीं सगुण-निर्गुण दोनों के मध्य का सम्प्रदाय है। एक ओर इन कवियों (दयाबाई, सहजोबाई) की रचनाऐं कबीर आदि की बानियों जैसी हैं तो दूसरी ओर सगुण कृष्ण भक्त की सी।[31]

मध्ययुगीन रास और रसेश कृष्ण

श्री कृष्ण 'रसो वैसः' की साकार मूर्ति है। 'रसस्याम् इतिरसः' अर्थात् रस (परमात्मा) से जो सम्बद्ध है वह रास कहलाता है तथा 'रसाना समूह रासः' अर्थात् रस समूह को रास कहते हैं।

भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र और पुराण-ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय से ही हमारे देश में रास नृत्यों का प्रचलन था। 'रासक' के तीन भेद भरत मुनि ने बताये हैं—ताल रासक, दण्ड रासक तथा मण्डल रासक। ताल रासक में लय प्रधान थी। दण्ड रासक लकुट लेकर किया जाता था। वर्तमान रास में तीनों का सुन्दर समन्वय है। मण्डल रासक में स्त्री और पुरुष गोलाकार वृत्त बनाकर समूह नृत्य करते थे। भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में रासक के अतिरिक्त मण्डल रासक से मिलते जुलते 'हल्लीश' नृत्य का भी उल्लेख किया है। विद्वानों के मत से 'हल्लीश' ही मध्य युग के रास का पूर्व रूप है।[32] किन्तु कुछ विद्वान इस मत को नहीं मानते।[33] हल्लीश नृत्य भी मण्डलाकार नृत्य है जिसमें स्त्री समूह में केवल एक पुरुष के नृत्य करने का विधान है। सम्भव है कृष्ण चरित्र के साथ दोनों ही प्रकार के नृत्यों का प्रचलन रहा हो और नौवीं शताब्दी तक दोनों प्रकार परस्पर घुलमिल गये हों। रास में सामान्यतः कृष्ण तथा गोपियों के समूह मिलकर नृत्य करते थे किन्तु महारास में

---

३० वही-नखशिख खंड—दोहा ४

३१ इनकी चर्चा हमने चरणदासी संप्रदाय के अन्तर्गत की है।

३२ हरिवंश पुराण, नीलकण्ठ टीका, पृ० १९८-२१
तथा पं० श्री कृष्ण दत्त पालीवाल

३३ श्री रामनारायण अग्रवाल—रास।

अनेक कृष्ण और अनेक गोपियों ने युगल बनाकर नृत्य किया था। मण्डल में युगल बनाकर रास रचाने की परिपाटी का यह सजीव प्रमाण है।[३४]

मध्ययुग में नव्य-भव्य रूप में रास का पुनर्गठन हुआ। व्रज की एक अनुश्रुति के अनुसार रास के रंगमंच की स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास जी ने मथुरा के विश्रान्त घाट पर की थी। 'मथुरा मेमोयर' में नारायण भट्ट जी को रास का आरम्भ कर्ता कहा गया है।[३५] स्वामी हरिदास जी और नारायण भट्ट का रास लीला के विकास में महत्वपूर्ण योग अवश्य रहा होगा किन्तु रास लीला का आरम्भ वल्लभाचार्य ने घमंडदेव (करहला वाले) के सहयोग से किया। बाल लीलाओं का रास में प्राधान्य होना और अब तक ब्रज की श्रेष्ठ रास मण्डली को श्री नाथजी का मुकुट प्रदान किया जाना यह प्रकट करते हैं कि वल्लभाचार्य जी का रास की स्थापना में सहयोग था।[३६] अष्टछाप के कवियों ने रास के जो सजीव चित्र उतारे हैं उससे भी उनके प्रत्यक्ष रास लीला ज्ञान का पता चलता है।

श्री नारायण भट्ट जी ने स्थान स्थान पर रास के विलास (रास-स्थल) स्थापित कराये। रास-सर्वस्व से प्रतीत होता है कि भट्ट जी ने रास का सारा ढांचा ही बदल दिया था और उसे केवल नृत्य और संगीत-मात्र ही न रखकर अभिनय का रूप भी दिया था। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में रास लीला अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त हो, गई थी : ब्रज के कलाकारों ने भागवत से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन, अनुभवी कलाकारों से अभिनय और रसिक शिरोमणि भगवान श्री कृष्ण के जीवन से रस लेकर ब्रज-संस्कृति का अमर सन्देश घर-घर वितरित करने के लिए 'रासलीला' को अवतीर्ण किया। कृष्ण को आलंबन बनाकर रास में रस की निष्पत्ति होती रही। अनेक भक्तों ने रासलीला के द्वारा कृष्ण-भक्ति प्राप्त की। स्वामी हरिदास जी के शिष्य विट्ठलविपुल जी रास के रस में ऐसे डूबे कि प्रभुमय हो गये।

एक छोटे से मंच पर पीछे एक पिछवाई और आगे एक यवनि का डालकर रास का मंच तैयार हो जाता है। उस पर राधा कृष्ण के स्वरूपों को बैठने के लिये एक छोटा सिंहासन होता है। छोट-छोटी चौकियाँ पार्श्व में गोपिकाओं के लिए होती हैं। आगे का मंडलाकार स्थान खाली छोड़ दिया जाता है। उसके बाद मंच की ओर

---

३४ यद्यपि श्री कृष्ण ने अपने ही रूप धारण किये थे किन्तु नृत्य का विधान तोड़ कर वे ऐसा न करते।

३५ It was deciple Narain Bhatt, who first established Van yatra and Ras-Leela—ग्राउस।

३६ श्री रामनारायण अग्रवाल—रासलीला का उदय और विकास पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८८१

मुँह करके रास मण्डली का संगीत समाज बैठता है। सर्व प्रथम राधा कृष्ण की मनोरम झांकी होती है। वस्त्रादि इस प्रकार पहनाये जाते हैं कि ये राधा-कृष्ण मंदिर की मूर्ति जैसे जान पड़ते हैं। उन्हें भोग समर्पित किया जाता है तथा पान का बीड़ा खिलाया जाता है। तब कृष्ण, राधा से कहते हैं—"हे राधिका जू, आपके नित्य रास को समय है गयो है, सो आप कृपा करके रास मण्डल में पधारो" सब मिलकर तब मण्डलाकार नृत्य करते हैं। संगीत-समाज विविध पद गाकर नृत्य में रस की सृष्टि करते हैं। एक बार विराम होता है। झांकी होती है तत्पश्चात् कृष्ण भगवान की किसी जीवन घटना का अभिनय होता है। नृत्य के अनेक रूपों का रास में समावेश हो गया है।

हिन्दी साहित्य में रास-रसेश कृष्ण

वल्लभ संप्रदाय के सूर ने महारास का वर्णन इस प्रकार किया है—

मानो माई घन-घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर सोभित हरि ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई-जामिनि॥
सुन्दर ससि गुन रूप-राग निधि, अंग अंग अभिरामिनि।
रच्यो रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई गुन ग्रामिनि॥

—सूरदास

परमानन्ददास ने भी महारास का वर्णन किया है—

ब्रज बनिता मधि रसिक राधिका, बनी सरद की राति हो।
ततथेई ततथेई गिरिधर नागर, गौर-स्याम अंग कांति हो॥
इक-एक गोपी, बिचबिच माधो, बने अनूपम भांति हो।
जै-जै शब्द उचारत नभ सुर, नरमुनि कुसुम बरषत न समात हो॥
निरखि थक्यो ससि माइ सीस पर, क्यों नहिं होत प्रभात हो।
'परमानन्द' मिले यहि औसर, बनी है आज की बात हो॥

—परमानन्ददास

कुंभनदास ने रास के संगीत का इस प्रकार वर्णन किया है—

रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी।
अंस-अंस भुजनिमेलि, मंडल-मधि करत केलि,
कनक-बेलि मनु तमाल स्याम-संग स्वामिनी।
उरप, तिरप, लाग, दाट आग-ताता थेई-थेई थाट,
सुघर सरस राग तैसी-ए-सरद जामिनी।
कुंभनदास, प्रभु गिरिधर रटवर-वपु-भेष धरें,
निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम-कामिनी।

कृष्णदास ने राधा के साथ गोपाल के नृत्य का वर्णन इन शब्दों में किया है—

निरतत गोपाल संग राधिका बनी।
बाहु दंड भुजन मेलि, मंडल मधि करत केलि,
सरस गान स्याम करें संग भामिनी ॥
मोर मुकुट कुंडल छवि, काछिनी बनी विचित्र,
झलकत उर हार विमल, थकित चाँदनी।
परम मुदित सुर नर मुनि, बरषत सब कुसुम माल,
वारति तन मन प्रान, 'कृष्णदास' स्वामिनी ॥

नन्ददास ने कालिन्दी-तट पर गोपियों के मध्य कृष्ण राधा के रास का वर्णन इस प्रकार किया है।

देखो री नागर नट निरतत कालिन्दी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट की लटक।
काछनी किंकिनी कटि पीताम्बर की चटक-मटक,
कुंडल किरन रवि रथ की अटक।
ततथेई थेई सबद सकल घट,
उरप तिरप मानों पद की पटक।
रास मध्य राधे, राधे मुरली में येई रट,
नन्ददास गावै तहाँ निपट निकट।

चतुर्भुजदास के निम्नलिखित पद में राधा-कृष्ण का नृत्य हो रहा है—

प्यारी कुजग्रीवा मेलि नृत्यत पीय सुजान।
मुदित परस्पर लेत गति में सुगति,
रूप-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥
सरल मुरली-धुनि सों मिले सप्त सुर,
रास-रंग भीने गावैं और तान बंधान।
'चतुर्भुज' प्रभु स्याम-स्यामा की नटनि देखि,
मोहे खगमृग अरु थकित व्योम विमान ॥

गोविन्द स्वामी का रास वर्णन इस प्रकार है—

नाचत गोपाल संग गोप कुँवरि अति सुघंग,
तथेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे।
संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बंधान,
धिधिकटि धिधिकटि मृदंग मधुर मधुर बाजे ॥

छीत स्वामी के रास वर्णन में राधा और कृष्ण नृत्य कर रहे हैं—

नागरी नवरंग कुँवरि मोहन संग नाचै।
कटि-तट पट किंकिनी कल नूपुर-रव रुनझुन करें।

चैतन्य संप्रदाय के भक्त सूरदास मदनमोहन की वाणी में रास वर्णन—

अंक भरे तताथै तत्ताथै करत कहत मगन मन
सूरदास मदन मोहन रास मंडल में प्यारी के अंचल लै पोंछत हैं स्याम घन।

राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंश जी के काव्य में रास वर्णन—

आजु वन नीको रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायौ॥
कल कंकन किंकिणी नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ।
युवतिनि मंडल मध्य श्यामघन सारंग रागु जमायौ॥
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ।
विविध विशद वृषभान नंदिनी अंग सुघंग दिखायौ॥
अभिनिय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायौ।
तात्ता थेई ता थेई धरति नौतन गति पति ब्रजराज रिझायौ॥

इसी संप्रदाय के व्यास जी का एक पद :—

स्याम-नटवा नटत राधिका संगे।
पुलिन अद्भुत रच्यौ, रूप-गुन-सुख रच्यौ,
निरखि मनमथ-बधू मान भंगे॥

स्वामी हरिदास जी का रास वर्णन—

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मण्डल कुँवर किसोरी।
सकल सुघंग अंग भरि भोरी पिय नृतत मुसकनि मुख मोरी,
परिरंभन रस रोरी॥
ताल धरे वनिता मृदंग-चंद्रागति घात बजे थोरी-थोरी।
सप्त भाइ भाषा विचित्र ललिता गाइनि चित चोरी॥
श्री वृन्दावन फूलनि फूल्यो पूर्न ससि त्रिविध पवन बहे थोरी।
गति विलास रसहासि परस्पर भूतल अद्भुत जोरी॥
श्री जमुना जल विथकित पहुपनि बरिखा रति पति डारत तृनतोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कुंज बिहारी जू को रस रसना कहे कोरी॥

निम्बार्क संप्रदाय के परशुराम जी का रास वर्णन—

हरि रास रच्यो केलि करण कौं।
वृन्दावन जमुना तट मोहन प्रगट करण ब्रज सरण कौं॥
लीनी कर मुरली हरि हित करि हित सों श्रोसर अधर निजु धरण कूँ।
सुनि सुनि धुनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाप परण कौं॥

ब्रज में रास अब भी होता है। कृष्ण-भक्तों के अनुसार श्री कृष्ण और राधा नित्य रासलीला में संलग्न रहते हैं। रीतकाल के आते आते कृष्ण के साथ शास्त्रीय संगीत का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो गया। भक्तों ने उसके रूप को अक्षुण्ण रखने की पूर्ण चेष्टा की है फिर भी रास का विशुद्ध रूप प्राप्त नहीं होता। इसके पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न हो रहे हैं आशा है विशुद्ध रूप प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण की लीलाएँ भूतल पर साक्षात अवतरित हो सकेंगी।

राम भक्त कवियों के कृष्ण

तुलसीदास—राम भक्ति शाखा के प्रमुख प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली की रचना करके कृष्ण-काव्य प्रणेताओं में अपना स्थान निश्चित कर लिया है।

राम-भक्त तुलसीदास कृष्ण-गीतावली में रसोपासना-प्रिय दृष्टिगोचर होते हैं। कृष्ण चरित्र के माधुर्य की ओर आकृष्ट होकर उन्होंने श्रीकृष्ण गीतावली का निर्माण किया। तुलसी भावुक कवि थे। कृष्ण के लोक-रंजक रूप ने उनको कृष्ण की ओर भी आकर्षित किया।

गोस्वामी जी ने माधुर्य भाव के पोषक बाल-कृष्ण के रूप-वर्णन, माखन चोरी तथा गोपी-विरह पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। साहस तथा शौर्य को प्रकट करने वाले दैत्य-विनाशक कार्यों को जो उनकी ऐश्वर्य लीला के अन्तर्गत हैं—छोड़ दिया है। तुलसी मर्यादावादी कवि थे अतः नायिका भेद वाले कवियों का सा या रासलीला के रसिकों जैसा लोक मर्यादा का उल्लंघन उन्होंने प्रेम वर्णन के अन्तर्गत कहीं नहीं किया है। गोपी-कृष्ण की प्रेम लीलाओं को अपने पदों में स्थान नहीं दिया। एक ओर गोपी-कृष्ण-प्रेम के अभाव में यदि कृष्ण का गोपी वल्लभ रूप संकुचित हो गया है तो दूसरी ओर उनके मानवीय गौरव की रक्षा भी हो गई है।

भगवान भक्तों के प्रेम से वशीभूत होकर ही भूतल पर अवतरित होते हैं।[३७] कृष्ण ने भी भक्तों के प्रेम के कारण मनुज रूप धारण किया है।[३८] उनका त्रैलोक्य विमोहन नर-रूप तीनों तापों को नष्ट करने वाला है।[३९] ऊखल-बंधन से मुक्त होने के बाद देवता और सिद्ध हर्षित होकर पुष्प वर्षा करते हैं। देवता और संत उनकी बाल लीलाओं को सर्वस्व मानते हैं। गोपियाँ उद्धव के साथ संवाद में उनका सगुण ब्रह्म

---

३७ 'सो प्रभु भगति प्रेम बस कौशिल्या की गोद'—रामचरित मानस

३८ तुलसी प्रभु प्रेम बिबस मनुज रूपधारी।
बालकेलि लीलारस ब्रजजन हितकारी॥ —कृष्ण गीतावली पद-२

३९ तुलसीदास त्रैलोक्य बिमोहन
रूप कपट नर त्रिविध सूल हर॥ —कृष्ण गीतावली पद-२१

के रूप में वर्णन करती हैं। वे इन्द्रकोप के समय गोवर्धन धारण करते हैं। द्रौपदी-चीर-हरण प्रसंगों में भक्तों के प्रतिपालक, अशरण-शरण भगवान के रूप में उपस्थित किये गये हैं।

गोस्वामी जी ने कृष्ण का नन्द-नन्दन तथा गोपाल रूप भी चित्रित किया है। प्रारम्भिक पदों में शिशु-कृष्ण की चपलता की ओर संकेत किया गया है। वे माता से तुतलाकर बोलते हैं।[४०] माँ से रोटी मांगते हैं। माँ देती है तो कहते हैं सब मैं ही खाऊँगा बलदाऊ को नहीं दूँगा। और तब नूपुर की ध्वनि सुनकर कूद-कूद और किलकि-किलकि कर रोटी खाते हैं।[४१] गोपी-उपालम्भ से सम्बन्धित पदों में कृष्ण की धृष्टता, निरंकुशता, वाकचातुरी, क्रिया-चातुरी, छल आदि विशिष्टताओं की ओर संकेत किया गया है। गोपी आकर उपालम्भ देती है—'हे यशोदा तुम्हें श्याम की शपथ है। मेरे घर में आकर देख जैसा हाल किया है वह कहा नहीं जाता। प्रतिदिन बर्तन मोल कोई कैसे लेगा ? क्या किसी के घर में खजाना गढ़ा है ? तुम्हारा कृष्ण अनुनय विनय करने पर हँसता है, क्रुद्ध होने पर उल्टा डाँटता है। तेरे पुत्र ने अभी से ऐसे 'ललित' चरित्र करना आरम्भ कर दिया है।'[४२] कृष्ण वाक् पटु हैं। कहते हैं कि 'गोपियाँ स्वतः बरतन फोड़कर दूध-दही में हाथ डालकर यहाँ उपालम्भ देने को आती हैं।' दूसरी बार उलाहना लाने पर कहते हैं—'अभी तो उलाहना दे गई थी, फिर आ गई। माता ! मैं तेरी शपथ खाकर कहता हूँ इसे तो लड़ने की आदत पड़ गई है। इसने संकोच तो बेचकर खा लिया है।'

---

४० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई। —कृष्ण गीतावली, पद—१

४१ दै री मैया ! लै कन्हैया ! 'सो कब ? 'अबहिं तात।
सिगरियै हौंहीं खैहौं, बलदाऊ को न देहौं।
× × × ×
नूपुर की धुनि किंकनि को कलरव सुनि।
कूदि कूदि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात ॥
—कृष्ण गीतावली पद—२

४२ तोहि स्याम की सपथ जसोदा ! आइ देख गृह मेरे।
जैसी हाल करी यह ढोटा छोटे निपट अनेरे ॥
गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यह ब्रजवास बसेरें।
दिन प्रति भाजन कौन बेसा है ? घर निधि काहू केरे।
किएं निहोरे हँसत, खिझे तें डाँटत नयन तरेरे।
अब ही तें ये सिखे कहां धौं चरित ललित सुत तेरे।
—कृष्ण गीतावली पद—३

कृष्ण के गोपाल रूप का चित्रण तुलसी ने केवल एक पद में किया है। इस पद में मथ-मथ कर घैया पीने, मुरली बजाकर गायों को बुलाने, कपि तथा कुरंग की भांति कूदने, किलकने तथा छीनकर छाक खाने आदि का उल्लेख हुआ है। इसके अन्तर्गत वे गायों के प्रेमी तथा वन-विहार करके स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने वाले सखा के रूप में प्रकट हुए हैं।[४३]

गोपी-कृष्ण प्रेम का समावेश 'माखन चोरी' प्रसंग में ही किया है। वे गोपियों के प्रिय हैं। तुलसी ने गोपियों को परकीया तथा कृष्ण को बहुनायक एवं जार के रूप अंकित किया है। गोपियां अपने पति तथा पुत्रों को त्यागकर कृष्णोन्मुख होती हैं।[४४]

विरह के क्षणों में गोपियां उन्हें कपटाचारी, निष्ठुर, और विश्वासघाती भी कह देती हैं। वे कहती हैं—'कृष्ण ने इन्द्र प्रकोप से हमारी रक्षा करके अब हमें तृण के तुल्य त्याग दिया है। हे मधुप कृष्ण ने जो सन्देश भेजा है, उसे कहो, संकोच क्यों

---

४३ टेरी (कान्ह) गोवर्धन चढ़ि गैया।
मथि-मथि पियो बारि चाटिक में,
भूख न जाति अघाति न घैया॥
सैल सिखर चढ़ि चितै चकित चित,
अति हित बचन कह्यो बल भैया।
बाँधि लकुट पर फेरि बोलाई
सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया॥
बलदाऊ! देखियत दूरि तें
आवति छाक पठाई मेरी मैया।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों,
कूदत कपि कुरंग की नैया॥
खेलत खात परसपर डहकत
छीनत कहत करत रोग दैया॥

—कृष्ण गीतावली पद—१९

४४ आजु उनीदे आए मुरारी
× × × ×
जसुमति सुख छवि कमल कोटि लगि
कहि न जाय जाके सुख भारी
तुलसीदास जेहि निरखि ग्वालिनी
भर्जी तात पति तनय बिसारी

—कृष्ण गीतावली पद—२२

करते हो ? उन्होंने हमारे साथ निपट शठता की है। हम उन्हें भली भाँति जानती हैं। उनका प्रेम सच्चा नहीं था। अब हमें इसका विश्वास हो गया है। उन्होंने तो सन्देश में भी हमारे साथ परिहास किया है।' कुछ पदों में कृष्ण को कूबरी-रवन की पदवी देकर विश्वासघाती के रूप में भी अंकित किया है। तुलसी का दास्य-भाव यहाँ भी बना हुआ है तथा मर्यादा का उलंघन भी नहीं हुआ है। वे उद्धव और कृष्ण की खिल्ली नहीं उड़ाती वरन् आत्म दोष-दर्शन करके उनकी मर्यादा बनी रहने देती हैं। उनका विश्वास है कि प्रिय के दोष-दर्शन से प्रेम की हानि होती है।[४५]

लोक-गीतों में कृष्ण

लोक साहित्य मौखिक होता है। इसकी धारा अबाध गति से बहती है। विशुद्ध साहित्यिक धारा से इसका समन्वय होता है और दोनों ही परस्पर प्रभावित होते हैं। लोक जीवन में सहजता और सरलता होती है' गीतों में निर्झर का सा निश्छल और अबाध प्रवाह होता है। जब विशुद्ध साहित्य लोक जीवन के निकट आता है तो वह सहज, सरल तथा अधिक रसमय होकर प्राण वान बनता है और जब विशुद्ध साहित्य लोक जीवन को प्रभावित करता है तो लोक साहित्य अधिक समृद्ध तथा सार्थक बनता है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। ब्रजलोक साहित्य ने हिन्दी ब्रजभाषा को जीवन दिया तो ब्रजभाषा ने लोक भाषा को सार्थकता प्रदान की।

कृष्ण लोक नायक हैं। उनका जीवन चरित्र हमारे आलोच्यकाल से पहले भी गीतों में बिखरा हुआ था। कृष्ण-भक्त कवियों पर उनका प्रभाव पड़ा और लोक धुन पर, लोक भाषा में इनके अनेक पद रचे गये। इसका संकेत पीछे के अध्यायों में किया जा चुका है। बधाई के, पालने के तथा विवाह के गीतों में विशेष रूप से लोक तत्व पाया जाता है। यहाँ कृष्ण चरित्र सम्बन्धी कुछ गीतों का उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सर्वप्रथम कृष्ण जन्म की बधाई के गीत लेते हैं। इन बधाइयों का प्रचलन पुत्र-जन्म के अवसर पर होता है—

आई, आई नन्द जू की पौरि, बधाई लाई मालिनियाँ।
कहा लाई लल्ला की बधाई, सुघड़-पटु मालिनियाँ ॥

---

४५ आली ! अति अनुचित, उतरु न दीजै।
सेवक सखा सनेही हरि के, जो कछु कहैं सो कीजै ॥

× × × ×

सखि सरोष प्रिय दोष विचारत प्रेम पीन पन छीजै ॥ —कृष्ण गीतावली—४५

फूल लाई मालिनि तो पान तमोलिनियाँ ।
गदका लाई लल्ला की बधाई, सुघड़-पट्ट मालिनियाँ ॥

पालने में कृष्ण झूल रहे हैं—

कन्हैया झूले पलना, नेक हौले झोटा दीजो ।

प्रातः कृष्ण को जगाने की प्रभाती इस प्रकार है—

जागो रे गोपाल लाल, भोर भयौ अंगना । टेक
बाट के बटोही चाले, पंछी चाले चुगना ॥
कुंआ की पनिहारि चाली, मोहि जानो जमुना ॥

बड़े होकर राधा कृष्ण का परस्पर परिचय होता है। राधा, कृष्ण की पौरी में खेलने को आती है और एक दिन कृष्ण को बरसाने में आने का निमन्त्रण दे जाती है। गीत को रसिया की धुन पर गाया गया है—

कान्हा बरसाने में आइ जइयो, बुलाय गई राधा प्यारी ।
जो कान्हा तोहि गैल न पावै, खोरि पै है कें आइजइयो ॥
बुलाय गई राधाप्यारी ॥

दोनों मिलकर झूला झूलते हैं। राधा झूले पर बैठती है, कृष्ण पटुली पकड़ कर झोटा देते हैं। मल्हार रागिनी में झूले का गीत इस प्रकार है—

झूला पै झूलें रानी राधिका जी, एजी कोई गावत गीत-मल्हार,
नेन्हीं-नेन्हीं बुंदियाँ देखो झर लग्यो जी,
एजी कोई बरसत मूसलधार
पटुली-पकरि करि झोंटा देखो दे रहे जी,
एजी कोई झुकि-झुकि कृष्णमुरारि ।

गोपियों के साथ पनघट लीला होती है। कृष्ण जमुना तट पर डंडे से मार-मार कर गोपियों के मटके तोड़ रहे हैं और बरजोरी भी कर बैठते हैं। रसिया की धुन पर गीत इस प्रकार है—

पनघट जमुना तट पै लकुट मारि घट पटकै गिरधारी
झटपट नटखट गयो झटकि मोरी बाँह मरोरी मुकुटधारी
मोर को मुकुट, घुंघरारी कारी लट, ठाड़ो ओढ़े पीत-पट नटवर-न्यारो
कटि पट को संवारि, खड़ो ऐसो दस ग्वालि, झट रोके री मुरारि बंसीवट री
बंसीवट मटुकी पकरि झटकि लर मोतिन तो डारी ॥

ग्वालिनि दही बेचते बेचते बन में भटक गई। झट एक ओर से कृष्ण आ गये

ग्रौर उस बेचारी को पकड़ कर झटका दे दिया। बाँह पकड़ कर ठिठोली करने लगे ग्रौर लोंग के हार की ग्रनमोल लड़ी टूट गई।

माई मेरी दधि बेचन के काज ग्राज बन भटकी।
बंसीवट मदन गुपाल पकरि करि झटकी ॥
माई मेरो झटपट बइयां पकरि करी ठठोली।
टूटो लोंगनु को हार लड़ी ग्रनमोली ॥

होली पर सब बसन्त खेलते हैं। गोपियों के साथ कृष्ण भी होली खेल रहे हैं। उन्होंने ग्रनेक रंगों को पिचकारी से गोपियों पर डाल दिया है। विशाखा सखी की चुनरी भी फाड़ डाली है। जब गोपियाँ उन्हें ऐसा करने से बरजने को पकड़ने जाती हैं तो उनकी बाँह मरोड़ देते हैं ग्रौर उस खींचतान में गले का हार टूट जाता है—

मोपै जबरन रंग दियो डारि जसोदा तेरे लाला ने,
गुलाबी, पिस्तई ग्रौर गुलनार, हरो रंग मोपै दीन्हो डारि
विसाखा की दई चूँनरि फारि।
चुनरी दीन्हीं फारि कै नटवर नन्द किसोर,
जो मैं पकरन को गई, मेरी दीन्ही बाँह मरोर,
दीन्ही बाँह मरोर सखी मेरो टूट गरे को हार ॥ मोपै

एक गोपी की इस शिकायत पर कृष्ण रूठ जाते हैं गोपी उन्हें मना लाने का ग्राग्रह करती है—

बहुत दिनन से बिछुड़े स्याम सखी होरी पै मनाय लावें री।
उड़त गुलाल लाल भये बादर, रंग की परत फुहार सखीरी,
वृन्दावन की कुंज गलिन में, राधा के छूटे हैं केस कृष्ण जी की छूटी पिचकारी।
राधा गई हैं रिसाय ढीट, तोसे को खेले होरी,

इसी के साथ 'चन्द्रावलि गूजर का एक गीत भी है—

धरि दधि की मटुकिया, गूजरि बेचे दही दही।
बिच मिलि गये कान्हा, माँगत दान दही दही ॥
'तोरि लाग्रो पत्ता तो चखि लेहु छैल दही-दही।
'पत्ता नहिं तोरूँ, ऊँचरा पै चाखूँ दही-दही ॥

गूजरी उन्हें धोखा देकर भाग जाती है—

चन्द्रावलि ग्रपने घर में बैठी छाछ बिलो रही थी कि कृष्ण बहन बनकर ग्रा खड़े हुए—

दही परों दे छाछ बिलोवे, बहन दुकानी में ठाड़ी जी।
'माय नहि जनमी, गोद न खिलाई, बहन कहाँ तें आई जी ॥'
'हम मामा की तुम रे फफू की आस्रो दोऊ बहना मिलिलें जो।'
मिलत मिटत करिहा पहिचानों 'कमरि तुम्हारी भैना मरदानी॥'
'बारह बरस तें लहंगा न पहनों कमरि जू है गई मरदानी'
बोलत करत उत्तर पहिचानों, 'बोल तुम्हारा भैना मरदानों'
'बारह बरस तें गउयें चराई बोल जु हूँ गयो मरदानो,
'उड़द की दाल गेहूँ के फुलका आओ दोउ भैना जेंवें जी'
'जिमत करत मैंने छवि पहचानी, कौर उठाओ भैना मरदाने'
'सरम लगे भैना कह नहि सकती, कौर उठाय गई मरदाने'
'तीन दिना फाके फक बीते, कौर उठाय गई मरदाने'
सांझ भयी दिन अस्तन लागो चलो दोउ भैना सोवें जी।
जीजा की खाट दुकानी में बिछाये देहु हम तुम दोउ भैना सोवेंजी॥
चीर उतारि अरंगनी धरि दियो, 'हम कान्हा तुम गूजरि जो'
'तेरो बुरो है जइयो रे कान्हा, तैने मोसे छल कीन्हों जी'
'काहे को गूजरि कोसो मोकूँ, काहे देतीं गारी जी'
तुमने हमसे बन में कियो, हम महलन में कीयो जी'

चन्द्रावलि ने कहा कि उसके कोई बहन नहीं तो मामा-फुफू की बहन बता दिया। जब जब चन्द्रावलि ने उस बहन के मरदाने स्वभाव पर शंका की कृष्ण ने सन्तोषजनक उत्तर दे दिया। चन्द्रावलि बहकाने में आ गई। एकांत पाकर कृष्ण ने अपना छद्‌म वेश उतार दिया। गूजरी ने इस पर उन्हें गाली दी तब कृष्ण ने कहा कि गाली क्यों देती हो? तुमने मुझसे बन में छल किया था और मैंने तुम्हारे घर में छल किया है। इस गीत कथा पर मध्ययुग की छद्‌म लीलाओं का प्रभाव है। लिलहारी लीला भी इसी प्रकार की एक छद्‌म लीला है।

संयोग के दिन बीत गये। एक दिन अक्रूर आकर कृष्ण को मथुरा लिवा ले गये। गोपियाँ बेहाल हो गईं। कृष्ण ने योग का संदेश उनके लिये भेजा। ऊधो लेकर आये। योग के लिये गोपियों ने नकारात्मक उत्तर दे दिया—

ऊधो जी, हम नहि जोग रमै हैं।
जिन अंगन हरि मलो है अरगजा, सो नहि भस्म रमै हैं॥
जे माँगें हरि आपु सम्हारी, सो न बिगारी जैहैं।
जिन कुंजन में हरि रास रचायो, तहाँ नहि अलख जगइ हैं॥

कुबजा की बात आते ही गोपियाँ एक दम भड़क उठती हैं—

ऊधौं जी तुम कपटी मिठ बोला।
कब कुबजा की भई है सगाई, कब बाजे रस ढोला॥

कृष्ण काले हैं गोपियाँ सब 'कालों' को जानती हैं उनसे भली प्रकार परिचित हैं—

ऊधो मैंने सब कारे अजमाये।
कारे ही नाग रहत बाबी में, पचिपचि दूध पियाये॥
बड़े भये तब काटन लागे, अंगुरी में डसि खाये।

कृष्ण और रुक्मिणी के सम्बन्धों पर भी अनेक गीत मिलते हैं—'दातुन' का एक गीत रुक्मिणी से सम्बन्ध रखता है परन्तु इस गीत में कृष्ण की कोई विशेष कथा नहीं है अर्थात् कृष्ण, यशोदा, और रुक्मिणी नाम हटा दें तो यह किसी भी परिवार की झाँकी हो सकती है। जिस प्रकार रीतिकाल में 'राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है' का सिद्धान्त था उसी प्रकार इन लोक गीतों में भी दूर तक चलता आया है।

लोक गीतों में कृष्ण का चरित्र स्वयं एक शोध का विषय है। आशा है इस क्षेत्र में व्रज के विद्वान कुछ कार्य करेंगे।

एकादश अध्याय

एकादश अध्याय

आधुनिक कवियों के कृष्ण

आधुनिक युग में परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। विज्ञान ने भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। देववाद के स्थान पर मानववाद तथा आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रतिष्ठा की। १६वीं शती के सांस्कृतिक आन्दोलनों ने नवजागरण की सूचना देदी। १८२८ ई० में ब्रह्म समाज की स्थापना हुई जिसने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को नवीन आध्यात्मिक भूमिका में ढालने का प्रयत्न किया। १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। इसने उत्तर भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान किया। १८३४ ई० में राधाकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने १८६३ में वेदान्त-नव-दर्शन की नव प्रतिष्ठा की। 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना से दार्शनिक धार्मिक भित्ति पर मानव-सेवा के कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ।[1] श्रीमती एनीबेसेंट तथा उनकी थियोसोफिकल सोसाइटी' ने भी भारत के सांस्कृतिक जागरण में योग दिया।

राजनीतिक आन्दोलन ने भारत के जीवन पर अपना प्रभाव पर्याप्त रूप में डाला। १८५७ ई० तक अंग्रेजों ने भारत पर अविरोधी राज्य किया किन्तु १८५७ की राजनीतिक क्रान्ति ने भारत में नव-जागरण का युग ला दिया। १८५७ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारम्भ में इस संस्था का उद्देश्य देश-वासियों की कठिनाइयों को तथा शासन के दोषों को शासकों के सम्मुख रखकर उनका निराकरण कराना था किन्तु कालान्तर में उक्त संस्था ने देश को अंग्रेजी राज्य के बन्धन से मुक्ति दिलाने का सराहनीय कार्य किया। इस युग के नेताओं ने अपने आचरण द्वारा शक्ति और साहस से सम्पन्न होकर देश के लिए महान से महान कष्ट सहने और बड़े से बड़ा त्याग करने की प्रेरणा दी। हमारा आधुनिक साहित्य इन्हीं सब आन्दोलनों का प्रतिबिम्ब बनकर प्रकट हुआ तथा इसमें कृष्ण का रूप भी परिवर्तित होकर एक नये रूप में सामने आया।

---

१ सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० १६

साहित्य में कृष्ण की लोकप्रियता अब भी कम नहीं हुई थी। मध्ययुगीन साहित्य का विशाल भण्डार सामने था उसमें से चुन-चुन कर मोती नये युग की कविता में भी जड़ लिये गये। नई परिपाटी में कृष्ण का चरित्र कुछ इस प्रकार उभरा कि आधुनिक प्रवृत्तियों को अपने में समेट चला। बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जनवाद, मानव-वाद, राष्ट्रवाद तथा क्रान्तिवाद इस युग की प्रधान प्रवृत्तियाँ थीं। उनके प्रकाश में कृष्ण को एक नवीन रूप में देखा गया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा अन्य आधुनिक व्रजभाषा—कवियों के कृष्ण

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र यद्यपि नई धारा के कवि थे किन्तु कृष्ण-काव्य के सम्बन्ध में उन्हें मध्यकालीन कवियों की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। 'उनकी अधिकांश कविता कृष्ण भक्त कवियों के अनुकरण पर गेय पदों के रूप में है जिनमें राधाकृष्ण की प्रेमलीला और विहार का वर्णन है।'[2] उनके पदों में दो प्रकार के पद विशेष हैं—विनय सम्बन्धी तथा प्रेम-सम्बन्धी। विनय के पदों में विष्णु और कृष्ण की अभिन्नता स्थापित करके कवि उनसे 'महापतित' को तार देने की प्रार्थना करता है। प्रेम सम्बन्धी पदों में राधा-कृष्ण का प्रेम व्यंजित हुआ है। कवि स्वयं भी राधा कृष्ण की प्रेम मदिरा के आनन्द से छकना चाहता है। कृष्ण और गोपियों की रासलीला पर देव-देवियाँ तथा शिव-ब्रह्मा भी मोहित हो जाते हैं। भारतेन्दु जी ने 'दानलीला', 'रानीछद्मलीला' 'मानलीला' तथा फूल-बुझौअल' आदि स्फुट प्रबन्ध लिखे हैं तथा उनके अन्त में राधाकृष्ण के विलास की दिव्यता का प्रतिपादन किया है। स्वकीया-परकीया भाव के पदों में भी यही वृत्ति लक्षित होती है। उनके अनुसार कृष्ण का जन्म ही रसिकोपासकों के माधुर्य-भाव की तृप्ति के लिये हुआ है। 'चन्द्रावली नाटिका' में परकीया-भाव की मधुर व्यंजना हुई है।[3] राधा कृष्ण के प्रेम के अनेक दृश्य सामने आते हैं। 'राग-संग्रह' के एक पद में नौका विहार का अत्यन्त सुन्दर चित्र मिलता है। कृष्ण और राधा सखियों के साथ नौका विहार करते हैं। नाव के डगमगाने पर राधा कृष्ण की भुजाओं में आबद्ध हो जाती हैं। सखियाँ परिहासवश जिस ओर नौका झुकाती हैं, युगल दम्पत्ति उसी ओर सिमट जाते हैं। वे परस्पर

---

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, ५६१

३ पेहलें मुसकाइ, लजाइ कछू, क्यों चिते मुरि मो तन छाय कियो।
पुनि नैन लगाइ, बढ़ाइ कें प्रीति, निबाहन को क्यों कलाम कियो॥
'हरिचन्द' भए निरमोही इतै निज नेह कों यों परनाम कियो।
मन-मांहि जो तोरन-ही की हुती, अपनाइ कें क्यों बदनाम कियो॥
—श्री चन्द्रावली नाटिका

हँसते-हँसाते छींटे उड़ाते हुए विहार करते हैं।[४] 'प्रेम माधुरी' में कृष्ण के रूप तथा मुद्राओं का वर्णन किया गया है। 'प्रेम-तरंग' में कृष्ण शठ-नायक के रूप में प्रकट होते हैं। 'प्रेम-मालिका' में कृष्ण के परकीया-प्रेम के अन्तर्गत उनकी विदग्धता, धृष्टता और लम्पटता की अभिव्यक्ति हुई है। 'फूलों का गुच्छा' नामक काव्य में राधा-कृष्ण के माधुर्य-भाव की अभिव्यक्ति उर्दू-फारसी की प्रेम-वर्णन शैली पर हुई है।

भारतेन्दु की 'प्रबोधिनी' नामक रचना का स्वर सर्वथा नवीन है। इसमें कृष्ण का सुदर्शन-चक्रधारी वीर-रूप अपनाकर देश की मूर्खता, दीनता आदि शत्रुओं का विनाश करने की प्रार्थना की है। अन्तिम पद में कृष्ण से देश की उन्नति के लिए प्रार्थना की है। यहाँ कृष्ण देश प्रेम जगाते हैं, अतः वे राष्ट्रोद्धारक अथवा राष्ट्रवत्सल भगवान है। कृष्ण का यह रूप आधुनिक युग का एक नवीन रूप है तथा इस पर आधुनिकता की पूरी छाप है।

ब्रज भाषा के दूसरे आधुनिक-कवि श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' हैं। इनका कविता काल १९वीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर बीसवीं शती के तृतीय दशक तक पहुँचता है। इस काल में कविता के अन्तरंग तथा बहिरंग में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। भारतेन्दु जी की 'प्रबोधिनी' में देश-प्रेम का स्वर ऊँचा उठने लगा था किन्तु रत्नाकर जी अडग रूप से अन्त तक भाव तथा अभिव्यक्ति दोनों ही क्षेत्रों में प्राचीन परिपाटी के ही उपासक बने रहे। कृष्ण काव्य के अन्तर्गत आपकी 'हिंडोला', 'उद्धव शतक,' 'शृंगार लहरी', 'श्री कृष्णाष्टक', 'श्री सुदामाष्टक', 'श्री द्रौपदी अष्टक', 'श्रीकृष्ण दूतत्व', 'श्री राधा विनय', 'श्री ब्रज महिमा' और स्फुट काव्य-संग्रह प्रमुख रचनायें हैं जिनका सृजन भक्ति, शृंगार तथा वीर भावों की प्रेरणा से हुआ है। 'रत्नाकर की कविता में कृष्ण का राधा वल्लभ तथा गोपी-वल्लभ रूप खूब उभरा है। उद्धव शतक में राधा विषयक आसक्ति की गहनता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। यमुना में स्नान करते हुए कृष्ण का उसकी जल धार में बहते हुए मुरझाये हुए कमल को देखकर राधा का स्मरण करके मूर्छित होना, सचेत होने पर उद्धव के कंधे का सहारा लेकर डगमग चलना, चित्त की बेचैनी के कारण नेत्रों को न खोलना उनके राधा-प्रेम का परिचायक है। गोपी-प्रेम उद्धव के सन्दर्भ में प्रकट हुआ है।

सत्यनारायन 'कविरत्न' बीसवीं शती के कवि हैं। भक्ति एवं राष्ट्रीयता आपके काव्य की मूल प्रेरणा हैं। भक्ति के क्षेत्र में वे भक्त कवियों की तरह कृष्ण के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हैं—वे दानशील, दयालु, अशरण शरण, करुणा सिन्धु तथा शरणागत वत्सल कहे गये है। कृष्ण का यह रूप रूढ़िगत है। कृष्ण

---

४ राग-संग्रह, पद ६९

गोपी वल्लभ हैं। माखन चोरी प्रसंग में मथनियों में हाथ डालते समय पकड़े जाने पर चींटी निकालने का बहाना बनाकर अपनी बाल सुलभ धृष्टता एवं वाक्चातुरी दिखाते हैं। 'भ्रमर-दूत' में यशोदा अपने गोपाल के पास ब्रज की दुर्दशा का संदेश भेजती है। इस रचना में यशोदा भारतमाता का, ब्रज के ग्वाल-बाल दीन-दुखी भारत वासियों का तथा कृष्ण राष्ट्रोद्धारक नेता का रूप प्राप्त कर लेते हैं। 'भ्रमर दूत' के बहाने कवि ने तत्कालीन भारत की दीन दशा का वर्णन किया है। वस्तुतः इस काल के ब्रजभाषा कवियों में आधुनिक काल की विशेषतायें नाम मात्र को ही पाई जाती हैं। इनके साथ आज तक के ब्रजभाषा-कृष्ण-काव्य प्रणेताओं ने भी भक्ति तथा रीतियुगीन परम्परा पर ही चलने का मानो दृढ़ संकल्प किया है। नवीन युग के परिवर्तनों से बेखबर ये कवि मानों मध्ययुग में ही जीवित रह रहे हैं। अभी तक इनमें नवीन उद्भावना के दर्शन नहीं हो सके हैं।

आधुनिक खड़ी बोली काव्य में कृष्ण

प्रिय प्रवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औध' द्वारा विरचित प्रिय प्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसमें कृष्ण को केवल लौकिक नर रूप में ही चित्रित किया गया है। बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जातीयता तथा राष्ट्रीयता आदि प्रवृत्तियों से प्रेरणा लेकर हरिऔध जी ने कृष्ण को एक महामानव का रूप प्रदान किया है। भागवत के गोपाल कृष्ण को नर रूप में उपस्थित करने का श्रेय हरिऔध जी को ही है। समस्त अलौकिक तत्वों का निवारण करके कृष्ण को लौकिक रूप प्रदान किया गया है। पूतना के द्वारा कृष्ण को पिलाया हुआ विष किसी चिर संचित पुण्य से अमृत बन जाता है और पूतना काल-कवलित हो जाती है।[१] तृणावर्त की आंधी स्वतः शान्त हो जाती है और कृष्ण घर के निकट ही खेलते हुये मिल जाते हैं। इसी प्रकार वे

---

१ परम-पातक की प्रतिमूर्ति सी।
　　　अति अपावनतामय-पूतना॥
पय-अपेय पिलाकर श्याम को।
　　　कर चुकी ब्रज-भूमि विनाश की॥
पर किसी चिर-संचित-पुण्य से।
　　　गरल अमृत अर्भक को हुआ॥
विषमयी वह होकर आप ही।
　　　कवल काल-भुजंगम का हुई॥

—प्रिय प्रवास द्वि० सर्ग-३४-३५

अन्य[६] आपत्तियों से भी बच जाते हैं। शकटासुर, यमलार्जुन, बकासुर, वत्सासुर, अघासुर, घोटक, अरिष्ट, प्रलम्बासुर तथा व्योमासुर लौकिक स्तर पर ही उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाते। मथुरा में कृष्ण द्वारा कंस के निपात का वृतान्त सुनकर यशोदा को विस्मय होता है। वह इस घटना को परमपिता की कृपा का परिणाम मानती हैं।[७] कृष्ण यमुना में डूबते हुये नन्द को बचा लेते हैं तथा कालिय नाग, दावाग्नि, वर्षा-प्रकोप, आदि निवारण में अपने मानव सुलभ शौर्य, साहस, निर्भयता एवं कौशल का प्रयोग करते हैं। कालियानाग के प्रसंग में कृष्ण कहते हैं—"मैं स्वजाति और जन्मभूमि के निमित्त काल-सर्प के विष से, सुरेन्द्र के वज्र तथा मृत्यु से भी न डरूंगा तथा सर्वदा परोपकार में संलग्न रहूंगा। श्वास के शेष रहने तक, तथा जब तक शिराहों में रक्त प्रवहमान रहेगा तथा जब तक शरीर में एक भी रोआं शेष रहेगा, मैं सर्व भूत—हित में निरत रहूँगा।[८]" दावानल के प्रसंग में भी वे स्वजाति उद्धार-कार्य की महानता का प्रतिपादन करते हैं। सतत उद्योग में उनका विश्वास है। कर्म करते हुये मरना निश्चेष्ट जीवन की अपेक्षा श्रेष्ठ है। हिंसा निन्दनीय है किन्तु नर-

---

६ शकट-पात व्रजाधिप पास ही।
　　　　पतन अर्जुन से तरुराज का॥
　पकड़ना कुलिशोपम चञ्चु से।
　　　　खल बकासुर का बलवीर को॥
　　　　　　　　　—प्रिय प्रवास द्वि० सर्ग—४९

७ मम उर कँपता था कंस-आतंक ही से।
　　　　पलपल डरती थी क्या न जाने करेगा॥
　पर परमपिता ने की बड़ी ही कृपा है।
　　　　वह निज कृत पापों से पिसा आप ही जो॥
　　　　　　　　　—प्रिय प्रवास-७ सर्ग, २९

८ सदा करूंगा अपमृत्यु सामना।
　स-भीत हूंगा न सुरेन्द्र वज्र से॥
　कभी करूंगा अवहेलना न मैं।
　प्रधान-धर्माङ्ग-परोपकार की॥
　　　　प्रवाह होते तक शेष-श्वास के।
　　　　स-रक्त होते तक एक भी शिरा॥
　　　　स-शक्त होते तक एक लोम के।
　　　　किया करूंगा हित सर्वभूत का॥
　　　　　　　　　—प्रिय प्रवास सर्ग ११, पद २६-२७

पिशाचों को मारना धर्म है। वे निष्काम भाव से लोक सेवा में रत हैं। उनके मतानुसार भोग लालसाओं की अपेक्षा जगत-हित की इच्छा श्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा आत्म उत्सर्ग की प्रेरणा मिलती है। गोवर्धन पर्वत अपनी अंगुली पर उठा लेने के प्रसग को कवि ने एक मुहावरे के रूप मे लिया है।[९]

कृष्ण के रूप की भव्यता तथा मुरली-माधुर्य के कारण ब्रज वासियों की आसक्ति उनमें अत्यधिक थी फिर भी उनके अंग सौन्दर्य की अपेक्षा वे अपने गुणों से ही अधिक लोकप्रिय हुये हैं।

प्रिय प्रवास के कृष्ण आदर्श मानव हैं। विभिन्न पात्रों द्वारा कृष्ण के गुणों का गान किया गया है। यशोदा उनकी अनुरंजनकारी प्रवृत्ति, सौम्यता, शील-सौजन्य, पर दुख-कातरता सरलता, सहज-स्नेह शीलता, सहृदयता, शिष्टता, विनम्रता, शांति-प्रियता मृदुता आदि का बार बार स्मरण करती हैं। वे निस्वार्थ भाव से लोक सेवा में निरत हैं इसलिये 'महात्मा' कहे जाते हैं।[१०] उद्धव ने भी ब्रज में आकर गोपियों के सम्मुख उनकी निष्काम वृत्ति, कर्तव्य निष्ठा, न्याय प्रियता, अनासक्ति तथा लोकोपकारी प्रवृत्तियों की प्रशंसा की है।

बाल सुलभ लीलाओं का भी उल्लेख प्रिय प्रवास में हुआ है किन्तु उसमें कोई नवीनता नहीं है। बड़े होकर वे गोपीवल्लभ तथा राधा वल्लभ हो जाते हैं। कृष्ण राधा के प्रिय एवं प्रेमी दोनों रूपों में चित्रित किये गये हैं तथा उनके चारित्रिक गौरव की पूर्ण रक्षा की गई है।

जयद्रथ-वध—मैथिली शरण गुप्त ने प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ में परम्परा से परे महाभारत के कृष्ण को लिया है। जयद्रथ-वध एक खण्ड काव्य है। इसमें गीता के उपदेष्टा कृष्ण के आदर्श को जनता के सम्मुख रखने की चेष्टा की गई है। राष्ट्रीय

---

९ लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में।
ब्रज धराधिप के प्रिय पुत्र का।।
सकल लोग लगे कहने उसे।
रख लिया उँगली पर श्याम ने।।

—प्रिय प्रवास सर्ग १२, पद ६७

१० थोड़ी अभी यदपि है उनकी अवस्था।
तो भी नितान्त-रत वे शुभ कर्म में हैं।।
ऐसा विलोक वर-बोध स्वभाव से ही।
होता सु-सिद्ध यह है, यह हैं महात्मा।।

—प्रिय प्रवास सर्ग १२, पद ६१

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये महाभारत के विस्मृत कृष्ण पर सर्वप्रथम दृष्टि डालने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ही हैं।

गुप्त जी आस्तिक कवि हैं। यद्यपि वे राम के भक्त हैं किन्तु राम और कृष्ण में तात्विक दृष्टि से वे कोई भेद नहीं मानते, अनेक स्थलों पर कृष्ण को भगवान, हरि, विष्णु, अच्युत तथा रमापति आदि अध्यात्म परक नामों से सम्बोधित किया है जो उनकी दिव्यता के द्योतक हैं। उनके मानवेतर गुणों की ओर भी संकेत किया गया है।[११] वे योग माया के स्वामी हैं तथा अपनी इसी अलौकिक शक्ति द्वारा अर्जुन को शिवलोक में लेजाकर उन्हें शिव से दिव्य वस्त्र दिलवाते हैं।[१२] वे पाण्डवों के सुहृद हैं। वे गीता के कृष्ण के तुल्य अत्यन्त बुद्धिमान, स्थिर, धीर-गम्भीर, विवेक शील तथा कर्तव्य निष्ठ व्यक्ति के रूप में प्रकट हुए हैं।

द्वापर—द्वापर के कृष्ण गतानुगतिकता का विरोध करते हैं तथा युग धर्म के अनुकूल उसका परिष्कार करने पर बल देते हैं। द्वापर में कृष्ण के चरित्र-निर्माण में इसी सिद्धान्त पर अधिक बल दिया गया है। राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल गोपाल कृष्ण की नवीन रूप में प्रतिष्ठा की गई है।

'द्वापर' में कृष्ण गीता के कृष्ण हैं। सब धर्मों को त्यागकर जो उनकी शरण में आयेगा उसे वे सब पापों से मुक्त कर देंगे।[१३] यशोदा उन्हें अत्यधिक स्नेह करके भी अवतारी समझती हैं।[१४] उनका 'श्याम सलोना रूप' है तथा 'मधु से मीठी बोली' है। कुटिल अलकों वाले की आकृति भोली है 'मृग से नेत्र' और 'अनी सी तीक्ष्ण दृष्टि' है।[१५] सूक्ष्म बुद्धि पर प्रत्येक बात को तोल लेते हैं। बाल वर्णन में स्वाभाविकता

---

११ गुरु पुत्र सम लाडूँ उसे मैं स्वस्थ जिसमें तुम रहो। —जयद्रथ-वध

१२ वही, सर्ग ४, पृ० ५१-६०

१३ कोई हो सब धर्म छोड़ तू,
    आ, बस मेरा शरण धरें।
डर मत, कौन पाप वह जिससे,
    मेरे हाथों तू न तरे॥ —द्वापर-श्रीकृष्ण सर्ग

१४ जिये बाल गोपाल हमारा,
    वह कोई अवतारी। —द्वापर-यशोदा सर्ग

१५ मेरे श्याम सलोने की है,
    मधु से मीठी बोली।
कुटिल अलक वाले की आकृति,
    है क्या भोली भोली। —द्वापर-यशोदा सर्ग

है। कृष्ण बड़े बातून हैं, चंचल हैं' भिड़-भरा मिठौला छींके पर रखा था, ज्यों ही बर्रें उसमें से उड़ी कि वे झट जमुना में कूद गये। कालीदह में कूदने का कारण कैसा उक्ति-वैचित्र्य से है। सखा उनके अघासुर, बकासुर, कालियदमन तथा इन्द्र पराजय आदि प्रसंगों का स्मरण करके उन्हें ग्वालों का 'सिर मौर' मानते हैं।

द्वापर में कंस वध को क्रांति का रूप दिया गया है। 'अनय राज' तथा 'निर्दय समाज' के विरुद्ध क्रांति रची जाती है। क्रांति को 'नूतन-मख' कहा जाता है। 'मानव वाद' से प्रतिपादन द्वापर में हुआ है। वे वेदों की हिंसामूलक यज्ञ का विरोध करते दिखाये गये हैं।

द्वापर के कृष्ण राधावल्लभ तथा गोपी वल्लभ हैं। बचपन में राधा उनके साथ खेलती थी। वे मुरली बजाते थे और राधा उसका अर्थ बताती थी।

मथुरा जाने पर जब कृष्ण कुब्जा पर कृपा करते हैं तो वह राधा को ब्रजेश्वरी कहकर पुकारती है। कृष्ण राधा के प्रिय तथा प्रेमी दोनों ही हैं। गोपियों के द्वारा वर्णित मान-प्रसंग में कृष्ण के प्रेमी रूप की व्यंजना हुई है। इसमें वे अत्यन्त आसक्त एवं अधीन नायक के रूप में दिखाये गये हैं। यह रूप परम्परित है। राधा एक समर्पित भक्त के रूप में चित्रित की गई है। राधा कृष्ण मयी हो जाती है और भावावेष की अवस्था में कृष्ण रूप हो जाती है। उद्धव एक मूर्ति के अर्धांग में राधा का तथा आधे में कृष्ण का दर्शन करते हैं। यह रूप परंपरित होते हुए भी नीवन रूप में चित्रित हुआ है। गोपियों को इसमें विरह-विह्वला चित्रित किया गया है।

जयभारत—'जयद्रथ-वध' की तरह इस काव्य की रचना भी मैथिली शरण गुप्त ने महाभारत के आधार पर की है। पाण्डवों के साथ कृष्ण की कथा भी 'जयभारत' में यथास्थान कही गई है। द्रोपदी-चीर-हरण तथा कृष्ण दूतत्व प्रसंगों में से अलौकिकता का निवारण करके मनोवैज्ञानिकता की प्रतिष्ठा की गई है। जयभारत के पात्र अधिक मानवीय हैं। यह काव्य-ग्रंथ मानवतावाद से अधिक प्रभावित हैं। इसी प्रवृत्ति के अनुकूल कृष्ण का अंकन करने की चेष्टा की गई है। गुप्त जी के धार्मिक हृदय ने बौद्धिकता, एवं श्रद्धा तथा विश्वास का समन्वय करने का ही प्रयत्न किया है। आध्यात्मिकता की दृष्टि से उनका रूप परंपरित है। केवल मानव रूप की अभिव्यक्ति अधिक होने के कारण वह काव्य आधुनिक श्रेष्ठ कृष्ण की परम्परा में गिने जाने योग्य है।

कृष्णायन—कृष्णायन अवधी भाषा में तुलसी के रामचरितमानस की परम्परा पर लिखा हुआ श्रेष्ठ काव्य है। इसके कवि श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र हैं जिन्होंने कृष्ण की सम्पूर्ण कथा को संकलित करके उसे महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। मध्ययुगीन कवियों की कृष्ण सम्बन्धी उक्तियाँ कहीं-कहीं भाषान्तर करके ज्यों की त्यों

उद्घृत कर दी गई हैं। आधुनिक युग में कृष्ण में राष्ट्रीयता का समावेश तथा नवचेतना के प्रकाश में उनके चरित्र का परिष्कार करके उन्हें उत्तम मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। गुण तथा परिमाण दोनों में यह ग्रंथ श्रेष्ठ है तथा कृष्ण का सम्यक चरित्र सम्मुख लाता है।

मिश्र जी ने भारतीय जनता के सम्मुख इस देश की सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक परम्परा को विशुद्ध रूप में उपस्थित करने का अवसर पाते ही इस कार्य की सिद्धि के लिये 'कृष्णायन' का प्रणयन किया है। कारावास में लिखे जाने के कारण कवि की गहरी निष्ठा इसमें प्रकट हुई है। इस पर आदर्शवाद, मानवतावाद, क्रांतिवाद, जनवाद तथा बुद्धिवाद आदि का प्रभाव स्पष्ट है। कवि ने अपनी व्यक्तिगत आस्थाओं के साथ इनकी संगति बैठाकर कृष्ण के परंपरागत कथानक में ऐसे परिवर्तन किये हैं जो इस युग की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इस ग्रंथ की उपयोगिता के सम्बन्ध में लिखा है—"पर सर्वोपरि कृष्णायन कृष्ण चरित्र को आज के जीवन और आज की समस्याओं को सामने रखकर चित्रित करता है। इसमें हमें पीड़ित प्रजा द्वारा विप्लव का चित्र मिलता है। युद्ध से बचने के असफल प्रयत्न और बाध्य होकर धर्म के संस्थापन के लिए उसमें प्रवत्त होने की मजबूरी और अन्त में जीवन की समस्याओं के हल करने में युद्ध की असफलता और असमर्थता का प्रमाण मिलता है भगवद्भक्तों को भी कृष्णचन्द्र की अनेक झांकियाँ मिलती हैं, देश भक्तों के अखण्ड भारत का दर्शन मिलता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखने वालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता प्रेमियों को रसास्वादन।[१६]

कृष्णायन में गोपीजन वल्लभ, भक्तवत्सल और असुर-संहारक कृष्ण आज के युग की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते हुये एक धर्म संस्थापक, समाज सुधारक, राष्ट्र नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं।[१७] इस ग्रन्थ के रचयिता ने कृष्ण के परम्परागत रूपों को ग्रहण करके भी देश काल की आवश्यकता के अनुसार उसमें संशोधन, परिमार्जन, परिष्करण तथा विकास की अवतारणा की है।

कृष्णायन के कृष्ण देवकी के पुत्र हैं तथा विष्णु के अवतार हैं। वे कारावास में वसुदेव देवकी को तथा सरोवर में अक्रूर को विष्णु के रूप में दर्शन देते हैं। वे मायापति हैं। इसीकी सहायता से इन्द्र के प्रकोप को प्रभावहीन बनाते हैं तथा अक्रूर की बुद्धि को भ्रम में डालते हैं। उनके असुर-विनाशक कार्य अलौकिक शक्ति

---

१६ कृष्णायन का प्राक्कथन पृ० २-३।

१७ डॉ० गोविन्द राम शर्मा, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, कृष्णायन पृ० २१८

सम्पन्न होने के परिचायक हैं। कवि ने उनके कृत्यों को लीला तथा उन्हें लीला पति कहा है।

बालरूप का वर्णन परम्परा के अनुसार हुआ है। वे थोड़ा खाते किन्तु बहुत लिपटाते हैं। स्वयं खाकर नन्द को खिलाते तथा मिर्च लगने पर रोते हैं।[18] चन्द्र प्रस्ताव, दाऊ का खिजाना आदि सभी कथायें भक्त कवियों जैसी हैं।

कंधे पर 'कमरी' और लकुटी रखे तथा वेणु बजाते हुए कृष्ण को गोचारण के लिये प्रस्थान करते दिखाया है।

गोपीवल्लभ तथा राधा वल्लभ रूप परम्परित है। गोपीवल्लभ कृष्ण में माधुर्य के स्थान कर दास्य तथा वात्सल्य भाव का समावेश करके कृष्ण चरित्र को देश काल की माँग के अनुरूप उज्जवल बना दिया है।

राधा-वल्लभ कृष्ण का चित्रण आध्यात्मिक स्तर पर हुआ है। उनके पारस्परिक अनुराग को विष्णु-लक्ष्मी के प्रेम का रूप प्रदान किया है।[19] रासलीला के अन्त में परमानन्द स्वरूप कृष्ण राधा से अपनी अभिन्नता का प्रतिपादन करके उससे माधुर्य भाव-रागमूला भक्ति—का पोषण करने को कहते हैं। कुंज लीला के उपरान्त उन दोनों के मिलन को भक्ति और भगवान की तथा कुरुक्षेत्र के स्नान काल में मुक्त जीव और भगवान की भेंट कहा है। राधा अपनी प्रेम-भक्ति की दिव्य शक्ति के द्वारा देवकी के आग्रह पर उसे यशोदा की गोद में खेलते हुए कृष्ण का दर्शन तक करा देती है।[20] उभय पक्ष में तुल्य अनुराग है अतः कृष्ण का चरित्र अत्यन्त मानवीय हो गया है। आधुनिक युग में कृष्ण का यह नवीन रूप अपने में महान् है।

---

१८ विहंसत पितु कछु कौर खवाये।
लागि मिरिच लोचन भरि आये॥ —कृष्णायन अवतरण कांड पृ० ४०

१९ जनु कछु क्षीर-सिंधु सुधि आई। —कृष्णायन अवतरण कांड पृ० ५४

२० आजीवन मानस, वच, कर्मन।
कीन्हेउँ जो मैं हरि-आराधन॥
केवल हरिमय जो मम प्राण।
प्रकटहिं इष्टदेव भगवाना॥
चकित लखेउ जन मंच पै, इत शोभित यदुराज।
प्रकटे यशुमति-अंकउत, शिशु स्वरूप ब्रजराज॥

—कृष्णायन गीताकांड पृ० ५२६

निष्कर्ष

कृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। अनुमानतः ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व उनका जन्म हुआ था। वे विशिष्ट गुण कर्म वाले योगी महापुरुष थे। अपने जीवन-काल में ही उन्होंने भागवत-धर्म का महान प्रवर्तन किया था। पहले वे इसी धर्म के गुरु के रूप में पूजे गये तत्पश्चात उन्हें ही भगवान मान लिया गया और विष्णु के अवतारों में स्थान दे दिया गया। महाभारत में उनकी जीवन-कथा दी है। उसमें वे आदर्श एवं लोकप्रिय नायक के रूप में उपस्थित किये गये हैं। उनमें सत्य, प्रेम, दया, क्षमा, सेवा, न्यायप्रियता, कर्तव्यनिष्ठा, शौर्य, साहस आदि उदात्त वृत्तियों वाला कहा गया है। तत्पश्चात भारतीय वाङ्मय में यत्र तत्र उनकी चर्चा होती रही। कहीं उन्हें देवकी-पुत्र तथा घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य कहा गया तो कहीं सात्वत कुल का चन्द्रवंशी बताया गया। हरिवंश पुराण में कृष्ण के जीवन का पूर्वांश अधिक विस्तार से वर्णित है तो महाभारत में उनके जीवन का उत्तरांश। उनके गोपी-वल्लभ रूप को भागवत में अधिक अवकाश एवं विस्तार मिला है। भागवत में राधा नहीं है। ब्रह्मवैवर्त-पुराण में राधा का अवतरण होता है एवं कृष्ण स्पष्ट रूप से राधा-वल्लभ भी हो जाते हैं।

धीरे-धीरे राधा कृष्ण के समन्वित स्वरूप का विकास होता रहा। ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक वैष्णव-धर्म को नये ढाँचे में ढालने वाले चार आचार्यों का आविर्भाव हुआ। इनके सिद्धान्तों में कृष्ण साक्षात परब्रह्म हो गये। रसोवैसः ब्रह्म का कृष्ण के रूप में भूतल पर आविर्भाव हुआ। उनकी नित्य-लीलाएँ भक्तों का मन मोहने लगीं। उधर हाल के संग्रह ग्रन्थ 'गाथा सतसई' से कृष्ण के लोक नायक होने का आभास भी मिल चुका था। संस्कृत में आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक राधा-कृष्ण के प्रेम-चित्रण की एक क्रमबद्ध परम्परा प्राप्त होती है। इस प्रकार एक ओर कृष्ण की कथा मानवीय स्तर पर काव्य-रूप लेती रही तो दूसरी ओर धर्म के आचार्यों ने उन्हें साक्षात परब्रह्म का रूप प्रदान कर दिया। १५०० ई० से पूर्व धर्म और लोकजीवन की धारायें 'गीत गोविन्द' और 'विद्यापति पदावली' में समन्वित हो गईं। इस प्रकार हमारे आलोच्यकाल के हिन्दी साहित्य को कृष्ण के

दोनों रूप परम्परा में प्राप्त हुये। यह परम्परा संस्कृत वाङ्मय से प्राकृत, प्राकृत से पाली, तथा पाली से अपभ्रंश में होती हुई हिन्दी को प्राप्त हुई। विद्यापति के कृष्ण सम्बन्धी पद मानवीय स्तर पर वर्णित होते हुये भी उनके दिव्य रूप की ओर संकेत कर जाते हैं। १५०० ई० तक हिन्दी में भी कुछ कृष्ण-काव्य लिखा गया जो काव्य-गत विशेषताओं के न होने पर भी परम्परा की एक कड़ी के रूप में प्राप्त होता है।

मध्यकालीन-युग में कृष्ण-सम्बन्धी धार्मिक सम्प्रदायों का विशेष स्थान है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने एक कृष्ण को अनेक सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया है। तत्सम्बन्धी हिन्दी साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। कतिपय सम्प्रदायों में भक्त कवियों की काव्य-वाणी ही प्रमाण मानी गई है। मध्ययुगीन सम्प्रदायों ने कृष्ण के विविध रूपों को अपने-अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखा है। उनका सम्पूर्ण चरित्र प्रमुखतः तीन भागों में विभाजित करके वर्णन किया गया है—ब्रजलीला, मथुरा लीला तथा द्वारिका लीला। ब्रजलीला में कृष्ण के नन्दनन्दन तथा गोपाल रूप की मधुर अभिव्यक्ति हुई है तथा इसका प्रधान रस वात्सल्य है। मथुरा लीला में कंस-वध आदि की चर्चा हुई है। द्वारिका-लीला में कृष्ण के ऐश्वर्य रूप का वर्णन है। कुरुक्षेत्र लीला द्वारिका-लीला में समाविष्ट हो जाती है। कृष्ण के इन सभी रूपों का वर्णन यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय में पाया है किन्तु वह समस्त साहित्य संस्कृत भाषा में है। इस दृष्टि से वल्लभ सम्प्रदाय का लीला-वर्णन अधिक विस्तृत है। उक्त सम्प्रदाय में सूर जैसे महान कवि उत्पन्न हुये। उन्होने कृष्ण चरित्र को काव्य के विशाल-पट पर अंकित किया। मध्ययुग के अन्य किसी कवि में यह लीला विस्तार नहीं देखा गया। सूर के साथ अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी कृष्ण-लीला का वर्णन किया है। इस प्रकार कुल मिलाकर अष्टछाप का साहित्य सबसे अधिक प्रचुर है। निम्बार्क-सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत में है किन्तु वाणियों में श्री भट्ट जी का 'युगल-शतक' अथवा 'आदिवाणी' सर्वाधिक प्रमाण मानी जाती है। वस्तुतः उपर्युक्त तीनों सम्प्रदाय भागवत-सम्मत हैं तथा इनकी उपासना गोपी-भाव की है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय प्रमुख रूप से सखी-सम्प्रदाय हैं।

भाव की दृष्टि से मध्ययुग के समस्त सम्प्रदाय दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं—(१) गोपीभाव तथा सखी भाव। गोपी भाव में कृष्ण और गोपी का प्रेम-वर्णन है। यहाँ राधा भी एक गोपी है। सखी-भाव में राधा-कृष्ण अद्वय हैं। उनकी नित्य बिहार लीला में सखियाँ इन 'अद्वय' की सेवा करती हैं। सखी भाव के भक्त भी अपने को सखी-रूप में अनुभव करते हैं तथा राधा कृष्ण की प्रेम लीला का अपने-अपने झरोखे से करते हैं।

सम्पूर्ण कृष्ण लीला में भक्ति के पाँचों भावों का समावेश हो गया है। प्रीति के पाँच भावों को लोक से उठाकर भक्तों ने ईश्वर में लगाया है। इनमें सबसे अधिक

विस्तार वात्सल्य तथा माधुर्य भक्ति का हुआ है। लोक पक्ष में जिसे श्रृंगार-रस कहा जाता है भक्ति-शास्त्र में उसी को मधुर रस कहा गया। कृष्ण-साहित्य में सर्वाधिक अभिव्यक्ति इसी रस की हुई है। उनका गोपी-वल्लभ तथा राधा-रूप चरम उत्कर्ष को पहुँचा है। कभी वे गोपी-वल्लभ कभी राधा-वल्लभ हैं तथा कभी दोनों एक साथ हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा अपने प्रियतम कृष्ण की वामांगिनी है, वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदाय में एक विशिष्ट गोपी है। हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण के अनुषंग से राधा की उपासना होती है तो राधा वल्लभ सम्प्रदाय में राधा के अनुषंग से कृष्ण की। शुक-तथा ललित सम्प्रदाय में भी राधा कृष्ण का माधुर्य रूप प्राप्त होता है। मीरा संप्रदाय-मुक्त थीं। उन्होंने अपने को राधा कल्पित करके माधुर्य का एक नया ही रूप हिन्दी-साहित्य को प्रदान किया। उनमें विरह-भावना की तड़प सर्वोपरि है। संप्रदायेतर कवियों ने कृष्ण-चरित्र के कथा-कणों को प्रमुख रूप से लेखनीबद्ध किया। किन्तु राधा-कृष्ण के माधुर्य को ये कवि भी विस्मृत नहीं कर सके। रीति-बद्ध साहित्य में राधा-कृष्ण तथा गोपी-कृष्ण का माधुर्य लौकिक रूप लेकर आया।

इन कवियों की भक्ति भावना श्रृंगार संवलित रूप में दृष्टिगोचर हुई। राधा-कृष्ण के युगल रूप का साम्राज्य इन कवियों के हृदय पर विशेष था। इन्होंने राधा-कृष्ण के स्मरण का बहाना किया है। रीति-ग्रन्थों में कृष्ण-राधा के प्रेम को अमर कर दिया है। रीति मुक्त कवियों ने स्वच्छन्द रूप से गोपी कृष्ण तथा राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है। इस वर्ग के कवि घनानन्द ठाकुर बोधा और आलम ने मानवीय स्तर पर कृष्ण के प्रेम के अत्यन्त मधुर चित्र उतारे हैं। उत्तर मध्यकाल के इन कवियों ने प्रेमतत्व को दिव्य धरातल से उतार कर शरीर में अनुरक्त कर दिया। कृष्ण में से ईश्वरतत्व निकाल कर उन्हें मानव नायक की भूमिका में उपस्थित किया।

मध्ययुग में कृष्ण की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि ललित कलाओं में अंकित किये जाने लगे। मूर्तिकला चित्रकला, संगीतकला में उनके विविध रूपों की झांकी मिलने लगी। राधा-कृष्ण के रस में उत्तर भारत इस प्रकार डूबा कि अन्य सम्प्रदायों पर भी वे चित्रित किये जाने लगे। मुसलमानों ने भी भेद-भाव त्याग कर कृष्ण को अपने काव्य का सरस विषय बनाया। राम काव्य धारा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली लिख कर अपने कृष्ण प्रेम का परिचय दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में, अठाहरवीं शताब्दी में रचित काव्य का पिष्टपेषण ही अधिक हुआ तथा कृष्ण काव्य में विरलता भी आ गई।

बीसवीं शताब्दी में नये युग ने नई करवट ली। कुछ कवियों पर इस आधुनिक प्रवृत्ति का अधिक प्रभाव पड़ा तथा कुछ इन प्रभावों को थोड़ा बहुत ग्रहण कर पुरानी परिपाटी की रचना में संलग्न रहे।

कृष्ण आज भी हिन्दी काव्य के प्रेरक हैं। "डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में—कृष्ण भारतवर्ष के लिये एक अमूल्य निधि हैं। उनका हर एक स्वरूप यहां के जीवन को अनुप्राणित करता है। जिस युग में इन्द्रप्रस्थ और द्वारका के बीच उनका किंकणीक रथ बलाहक, मेघपुरुष, शैव्य और सुग्रीव नामक अश्वों के साथ झनझनाता था, न केवल उस समय कृष्ण भारतवर्ष के शिरोमणि महापुरुष थे बल्कि आज तक वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि बने हुये हैं।"

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

सांप्रदायिक कवि तथा उनकी रचनाओं की सूची

निम्बार्क संप्रदाय के कृष्ण भक्त कवि तथा उनकी रचनाएँ

(१) श्री श्री भट्ट (१५००ई० से पूर्व आविर्भाव)	युगल शतक (आदिवाणी)
(२) श्री हरिव्यासदेव (१५०० ई० के लगभग)	महावाणी।
(३) श्री रूपरसिक जी	बृहदोतत्व मणिमाल, हरिव्यास यशामृत, नित्य विहार पदावली
(४) श्री तत्ववेत्ताजी (१६१३ ई० में उपस्थिति)	लीला विंशति, तत्ववेत्ता जी की वाणी।
(५) श्रीपरशुराम देव (१६२३ ई० के लगभग)	परशुराम सागर।
(६) श्री वृन्दावनदेव (मृत्यु १७४० ई०)	गीता मृतगंङ्गा, दीक्षा मंगल, युगल परिवार चन्द्रिका।
(७) श्री गोविन्ददेवाचार्य (१७५७ ई० आविर्भाव)	नित्य विहार के पद।
(८) महारानी बांकावती (१७३३ ई०)	ब्रजवासी भागवत, फुटकर छंद।
(९) बाई सुन्दर कुंवरिजी (१७३४ ई०)	मित्र शिक्षा, नेहनिधि, वृन्दावन गोपी माहात्म्य, भावना प्रकाश, राम रहस्य, संकेत युगल, रसपुंज, प्रेम संपुट, सार संग्रह, रंगझर, गोपी माहात्म्य युगल ध्यान, पद तथा कवित्त।

(१०) बनी ठनी जी (रसिक बिहारी)

(११) नागरीदास महाराजा सावंतसिंह (१७०० ई०)

(१) सिंगारसारखा ब्रजलीला पद प्रसंग (२) गोपी प्रेम प्रकाश (३) पद प्रसंग माला (४) ब्रजबैकुंठ तुला (५) ब्रजसार (६) भोरलीला (७) प्रातरस मंजरी (८) बिहारी चन्द्रिका (९) भोजनानन्दाष्टक (१०) जुगल रस मंजरी (११) फूल विलास (१२) गोधन आगमन (१३) दोहन आनन्द (१४) लग्नाष्टक (१५) फाग विलास

(१६) ग्रीष्म विहार (१७) पावस पच्चीसी (१८) गोपी बैन विलास (१९) रास रस लता (२०) रैन रूपरस (२१) शीतसार (२२) इश्क चमन (२३) मजलिस मण्डन (२४) अरिल्लाष्टक (२५) सदा की मांझ (२६) वर्षा ऋतु की मांझ (२७) होरी की मांझ (२८) कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त (३०) सांझी के कवित्त (३१) रास के कवित्त (३२) चांदनी के कवित्त (३३) दिवारी के कवित्त (३४) गोवर्धन धारण के कवित्त (३५) होरी के कवित्त (३६) फाग गोकुलाष्टक (३७) हिंडोरी के कवित्त (३८) वर्षा के कवित्त, (३९) भक्ति मगद्दीपिका (४०) तीर्थानन्द (४१) फाग बिहार (४२) बालविनोद (४३) सुजनानन्द (४४) वन विनोद (४५) भक्तिसार (४६) देहदसा (४७) वैराग वल्ली (४८) रसिक रत्नावली (४९) कलि वैराग वल्लरी (५०) अरिल पच्चीसी (५१) छूटक विधि (५२) पारायण विधि प्रकाश (५३) सिखनख (५४) नखसिख (५५) छूटक कवित्त (५६) चरचरियाँ (५७) रेखता (५८) मनोरथ मंजरी (५९) राम चरित्र माला (६०) पद प्रबोध माला (६१) जुगल भक्ति विनोद (६२) रसानुक्रम के दोहा (६३) शरद की मांझ (६४) साझी फूल बीनन समेत सम्वाद (६५) वसन्त वर्णन (६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त (६७) रासानुक्रम के कवित्त (६८) निकुंज विलास (६९) गोविन्द परचई (७०) वनजन प्रशंसा (७१) छूटक दोहा (७२) उत्सव माला (७३) पद मुक्तावली (७४) वैन विलास (७५) गुप्त रस विलास (७६) धन्य-धन्य (७७) व्रज सम्बन्धी नाम माला

(१२) श्री छत्र कुंवरि जी (विवाह १७७४ ई०)—प्रेम विनोद।

(१३) बनी ठनी जी (रसिक बिहारी) (नागरीदास की समकालीन)—स्फुट पद

वल्लभ संप्रदाय और कृष्ण

कवि अष्ट छाप	रचना
(१) सूरदास	सूर सागर, सूर सारावली, साहित्य-लहरी,
(२) परमानन्ददास	परमानन्द सागर, दानलीला
(३) नन्ददास	रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रूप मंजरी, रस मंजरी, विरह मंजरी, भ्रमर गीत, गोवर्धनलीला, श्याम सगाई, रुक्मिणी मंगल, सुदामाचरित्र, भाषा दशम स्कंध, पदावली।

(४) कुंभनदास	कुंभनदास पदावली
(५) गोविन्द स्वामी	गोविन्द स्वामी पदावली
(६) कृष्णदास	जुगलमान चरित्र, भ्रमर गीत, प्रेम सत्व-निरूपण, भागवत भाषा, अनुवाद, प्रेमरस-रास स्फुट पद
(७) चतुर्भुजदास	पदावली
(८) छीत स्वामी	पदावली

अन्य कवि

(१) अग्रिमराम	रास के पद, रस मंजरी, साँझी, व शरद के पद
अमर सिंह	सुदामा चरित्र
(२) आसकरण	स्फुट पद तथा बधाइयाँ
अजब कुंवरि (१६६६ ई०)	पद
(३) आनन्द कवि	बारहमासा, दानलीला, रासपंचाध्यायी
(४) इच्छाराम	स्फुट रचना
(५) हृषीकेश	स्फुट पद
(६) कटहरिया	स्फुट पद
(७) कल्याण	स्फुट रचनाएं
(८) कृष्ण जीवन लच्छीराम	स्फुट पद
(९) कृष्णदास बाबा	रुक्मणि विवाह
(१०) कृष्णा	शरद निशा, रुक्मणि मंगल
(११) कृष्णलाल भट्ट	कवित्त
(१२) केशव किशोर	स्फुट रचनाएं
(१३) गंग	कवित्त, छप्पय
(१४) गदाधर मिश्र	स्फुट कीर्तन
(१५) गिरधारी (१७८६ ई०)	श्री कृष्ण लीला, सुदामा चरित्र, रसमसाल, शृंगार गीता, नखशिख
(१६) गिरिधरलाल	स्फुट पद
(१७) गोकुल	स्फुट कीर्तन, पद, नखसिख, दानलीला
(१८) गोकुलनाथ	दोहे
(१९) गोकुलाधीश जी	रासलीलाकृत
(२०) गोपाल (१७२९ ई०)	स्फुट कीर्तन, सुदामा चरित्र
(२१) श्री गोपाल लाल	स्फुट पद

(२२) गोपिका संकार	स्फुट पद
(२३) गोवर्धनलाल	स्फुट पद
(२४) गोवर्धनदास	कवित्त
(२५) गोविन्द दास	कवित्त
चन्दन (१७५३ ई०)	कृष्ण काव्य
(२६) चतुर दास (१७६० ई०)	कीर्तन, भागवत एकादश
(२७) जगतानन्द	स्वरूप वर्णन तथा बधाई के पद
(२८) जगन्नाथ प्रभु	कवित्त तथा स्फुट पद, होली संग्रह
(२९) जन कल्याण	भोजन के पद
जनमोहन (१७३७ ई०)	सनेह लीला
(३०) जन भगवान	पद
जन गोपाल	रास पंचाध्यायी
(३१) ताज	स्फुट पद, कवित्त
(३२) तानसेन	स्फुट पद
(३३) द्वारिकेश	स्फुट पद, अष्टसखान के दोहे, नित्यलीला, भाव-संग्रह, उत्सव भावना, भाव-भावना ब्रजलीला
(३४) धोंधी	स्फुट पद
(३५) नागरीदास (१७२५ ई०)	नागर समुच्चय में संग्रहीत कविताएँ
(३६) नाथ	कवित्त तथा पद
(३७) नागजी	कवित्त
(३८) पद्मनाभदास	४५ पद
(३९) पीताम्बर (१६४५ ई०)	बधाई, साखी, ब्रजलीला, रस विलास
(४०) पर्वत सेन	कवित्त तथा पद
(४१) पुरुषोत्तम	पद
(४२) पुरुषोत्तम दास (लघु)	पद
(४३) पुरुषोत्तम सेठ	पद
(४४) प्रभुदास (भाट)	पद
(४५) बहादुरसिंह (कृष्ण गढ़)	पद
(४६) बाल कृष्ण (गोस्वामी)	दृष्टिकूट पदों की टीका, स्फुट रचना
(४७) बेनी माधव	विचित्र विलास, सुदामा चरित्र
(४८) ब्रह्मदास (बीरबल)	पद
(४९) भीम	नरसिंह मेहता चरित्र, रस गीता, पद

(५०) मानदास	स्फुट पद
भूपति	भागवत पुराण
(५१) मोहन दास	मोहन हुलास, सनेह लीला
(५२) महावदास	रससिंधु, रसालय
(५३) माधोदास (१७८० ई०)	पद, अवतार लीला, दधि लीला
(५४) मानिकचंद	पद
(५५) मुकुंद प्रभु (माधो)	स्फुट रचना, प्रेम रस मंजरी, भंवरगीत
(५६) मुरलीधरदास	रास बारहमासी
(५७) मुरारीदास	पद
(५८) मेहा	पद
(५९) रघुनाथ	स्फुट रचनाएं
(६०) रसखान	कवित्त
(६१) रसिक राय (१७८० ई०)	पद सनेह लीला, भंवर गीत
(६२) रसिक बिहारी	पद
(६३) राजाराम	स्फुट काव्य
(६४) रामदास	कीर्तन, रुक्मणि विवाह
(६५) रामराय	पद
(६६) लघु गोपाल	कवित्त
(६७) वल्लभ	पद
(६८) वल्लभजी (काका)	सात स्वरूप आदि के पद, चरणचिन्ह के पद
(६९) विट्ठलनाथ जी	दोहे तथा धमार
(७०) विट्ठल गिरिधरन (गंगाबाई)	पद
(७१) विष्णुदास (१७६४ ई०)	पद नव नागरी, रुक्मिणी मंगल, बारहखड़ी
(७२) वैष्णवदास	रास पंचाध्यायी
(७३) व्रज जीवन	कवित्त, पद, बारहमासा
(७४) व्रज पति	स्फुट रचनाएं
(७५) व्रजराय	स्फुट कीर्तन
(७६) व्रज भूषण	स्फुट रचनाएं, श्याम श्यामा लीला, दानलीला, सांझी, कीर्तन प्रणाली
(७७) व्रजाधीश	स्फुट रचनाएं
(७८) श्याम घन	कवित्त
सनेही (१७ वीं शताब्दी)	कवित्त
(७९) सगुणदास	स्फुट पद

सोमनाथ (१८०० ई०)	भागवत दशम स्कंध, कृष्ण लीलावली पंचाध्यायी
(८०) हरिराय जी	नित्यलीला, सनेहलीला, गोवर्धनलीला दामोदर लीला, दान लीला
(८१) त्रिकमदास	स्फुट रचना

चैतन्य संप्रदाय के कृष्णभक्त कवि तथा उनकी हिन्दी रचनायें

(१) माधवदास जगन्नाथी (जन्म १५२३ ई०)	नारायण लीला, जगन्नाथ, महात्म्य, ग्वालिन झगरो, परतीत परीच्छा, बाललीला तथा ध्यान लीला।
(२) आनन्दघन (१५०० ई० से १५५३ ई०)	कुछ पद।
(३) रामराय (जन्म १५१७ से १५२३ ई०)	आदि वाणी, गीत गोविन्द भाषा।
(४) सूरदास मदनमोहन (जन्म १५१३ ई०)	पदावली।
(५) गदाधर भट्ट (जन्म १५२३ ई०)	पदावली।
(६) चंद्रगोपाल (जन्म १५१५ई०)	चन्द्र चौरासी, अष्टयाम सेवा-सुधा, गौरांग अष्टयाम, ऋतुबिहार, श्री राधा विरह।
(७) भगवानदास (जन्म १५३३ ई०)	एक सौ पद।
(८) गरीबदास (रचनाकाल १५२३ ई०)	शृंगार शतक, आनन्द शतक, वृन्दावन शतक।
(९) विष्णुदास	वैराग्य विज्ञान।
(१०) जुगलदास	भक्तियोग।
(११) राधिकानाथ (जन्म १५४३ ई०)	महावाणी, प्रेम संपुट, राधा रस सुधानिधि, रसविन्दु।
(१२) किशोरदास	काम-कलेवर।
(१३) केशवदास	गुरु पूर्णिमा, वैष्णव भेद, भक्ति वर्धिनी, लोक दीपिका।
(१४) मनोहरदास	दोहे।
(१५) लालदास	श्री वृन्दावन कल्पद्रुम्।
(१६) मधुसूदनदास	सत्संग पच्चीसी, प्रेम दर्शन।
(१७) तीर्थराम	श्री हरिलीला, रसिकाचार्य चर्चा,

(१८) रसिक मोहनराय (१७वीं शताब्दी)	रसिक सेवक वाणी (१५५ कुंडलियाँ छन्द) ।
(१९) नारायणदास श्रोत्रिय (जन्म १५४३ ई०)	एक पद प्राप्त ।
(२०) नाथ भट्ट (१६०० ई० के लगभग)	एक सवैया छन्द प्राप्त ।
(२१) हरिदास (जन्म १५५३ ई०)	युगल प्रेम रसिक बाधिका (एक रचना) ।
(२२) माधव मुदित (जन्म १५६८ ई०)	एक पद प्राप्त ।
(२३) माधुरी (जन्म १५९३ ई०)	उत्कंठा-माधुरी, वंशीवट माधुरी, केलि माधुरी, वृन्दावन माधुरी, दान-माधुरी, मान-माधुरी ।
(२४) कृष्णदास (१५८१ से १६४७ ई०)	श्री गौर नाम रस चम्पू, श्री लघुगोपाल चम्पू भाषा ।
(२५) भगवत मुदित (१५९३ से १६६७ ई०)	वृन्दावन शतक की टीका, रसिक अनन्यमाल, स्फुट पद ।
(२६) किशोरीदास गोस्वामी (जन्म १६२३ ई०)	राग बसन्त में बद्ध एक पद ।
(२७) किशोरीदास	पदावली ।
(२८) वल्लभ रसिक (जन्म १६४७ ई०)	हिंडोरा, पवित्रा, वर्षगाँठ, साँझी, दशहरा, दीवाली, वर्षा आदि साँझ, नित्यगान के पद, बारह बाट अठारह पैंड़े ।
(२९) गोपाल भट्ट (जन्म १६४७ ई०)	पद-कल्पद्रुम में ब्रजभाषा के तीन पद ।
(३०) तुलसीदास (रचनाकाल १७०३ ई०)	गीता भाषा ।
(३१) मनोहर राय (जन्म १६५३ ई०)	श्री राधारमण-रस-सागर, सम्प्रदाय बोधिनी ।
(३२) प्रियादास (जन्म १६७३ ई०)	भक्ति रस बोधिनी, अनन्य मोदिनी, चाह-बेली, रसिक मोहिनी ।
(३३) वृन्दावन चन्द्र (१६८१ के लगभग)	अष्टयाम ।
(३४) सुबल श्याम (जन्म १६८३ ई०)	श्री चैतन्य चरितामृत ।
(३५) साधु चरण (जन्म १६९३ ई०)	स्फुट छन्द ।
(३६) वैष्णवदास 'रसजानि' (जन्म १७०३ ई०)	भागवत भाषा, गीतगोविन्द भाषा भक्ति रत्नावली भाषा, स्फुट पद ।
(३७) राधिकादास (जन्म १७१३ ई०)	भावसिंधु ।
(३८) गुण मंजरी (जन्म १७५७ ई०)	स्मरण मंगल भाषा ।

(३९) वृन्दावन दास (जन्म १७१८ ई०) — भक्त नामावली, प्रेम भक्ति चन्द्रिका, विलाप कुसुमांजलि ।

(४०) नीलसखी (जन्म १७४७ ई०) — बानी (११० पदों की) ।

(४१) रामहरि (जन्म १७३३ ई०) — ध्यान रहसि, सतहंसी, लघु नामावली, प्रेमपत्री, रस पचीसी ।

(४२) रसखी (जन्म १७४३ ई०) — मंगल आरती, व्यंजनावली, बनविहार लीला, अष्टकाल लीला ।

(४३) ललितसखी (जन्म १७४३ ई०) — कहानी-रहसि, कुंवरि-केलि ।

(४४) गोकुलदास (जन्म १७४३ ई०) — भजन पद्धति ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवि तथा उनकी रचनायें

(१) श्री हितहरि वंश (जन्म १५०२ ई०) — हित चौरासी, स्फुट वाणी ।

(२) श्री दामोदरदास (सेवक जी) (जन्म १५२७ ई०) — सेवक वाणी ।

(३) श्री हरिराम व्यास (१५३४ ई० आविर्भावकाल) — व्यास वाणी, रागमाला ।

(४) श्री चतुर्भुजदास (जन्म १५२८ ई०) — द्वादश यश (द्वादश ग्रंथ) ।

(५) श्री ध्रुवदास (जन्म लगभग १५७३ ई०) — ब्यालीस लीला (ब्यालीस ग्रंथ) ।

(६) श्री नेही नागरीदास (जन्म लगभग १५३३ ई०) — राधाष्टक, सिद्धान्त दोहावली, पदावली, रस पदावली ।

(७) श्री कल्याण पुजारी (जन्म १५४३ ई०) — वाणी ।

(८) श्री अनन्य अली (रचना काल १७०२ ई०) — अनन्य अली की वाणी, लीला स्वप्न प्रकाश सूधीबात (गद्य रचना) ।

(९) श्री रसिकदास (रचना काल १६९६ ई०) — रसिकदास की वाणी (२२ ग्रंथ) ।

(१०) श्री वृन्दावनदास (चाचा जी) (जन्म १७०० ई० के लगभग) — लाड़सागर, ब्रज प्रेमानन्द सागर, वृन्दावन जस प्रकास वेली, विवेक-पत्रिकावेली, कलिचरित वेली, कृपा अभिलाष वेली, रसिकपथ चन्द्रिका, जुगल सनेह पत्रिका, श्री हित हरिवंश सहस्रनाम, छद्मलीला (रासछद्म विनोद में संकलित) आर्त्त पत्रिका, स्फुट पद ।

अन्य कवि (बिन्दुपरिवार)	रचना
(१) श्री वनचन्द्र जी गोस्वामी	स्फुट पदावली ।
(२) श्री कृष्ण चन्द्र जी	पदावली ।
(३) श्री दामोदर वर जी	पदावली ।
(४) श्री रसिकलाल जी	टीका चतुरासी, टीका गीतगोविन्द, पदावली ।
(५) श्री सुखलाल जी	टीका श्री मद्भागवत, टीका चतुरासी, रास पंचाध्यायी, पदावली ।
(६) श्री गुलाबलाल जी	अनन्य सभा मण्डल, गुरु प्रताप, श्री गुरु प्रणाली, वृन्दावन प्रताप, जुगल वर्णन, वर्षोत्सव, लाड़िली वर्णन, सनेह सिद्धान्त, सिद्धान्त सुख, आनन्द सेवक चेतावनी, भक्त दुख मोचन, इतिहास वेदना को । (इनके लिखे चालीस ग्रन्थ बताये जाते हैं)
(७) श्री रतनलाल जी	रसिक अनन्यसार (भक्तमाल) समय प्रबन्ध, वृन्दावन दर्पण, पदावली । इनके बनाये हुए ८३ ग्रन्थ कहे जाते हैं ।
(८) श्री हित रूपलाल जी	अष्टयाम ।
(९) श्री व्रजलाल जी	अष्टयाम, वर्षोत्सव, पदावली ।
(१०) श्री कमलनयन जी	श्री हित कृपापात्र नामावलि, अभिलाषा बत्तीसी, समय पच्चीसी, भावना पच्चीसी, टीका चतुरासी, वृन्दावन प्रकाश माला, टीका वृन्दावन शतक, टीका कर्णामृत, अष्टयाम, स्फुट पद ।
(११) श्री चन्द्रलाल जी	
(१२) श्री चतुर शिरोमणि लाल जी	हितताष्टक, राधाष्टक, सुरताष्टक ।
(१३) श्री रंगीलालजी जी	टीका राधा सुधानिधि, सटीक मनः प्रबोध, सटीक उत्सव बोध ।
(१४) श्री मनोहर वल्लभ जी	टीका चतुरासी जी, टीका राधा सुधानिधि, अलंकार मयूर छन्द पयोनिधि, छन्द सुधाकर ।

अन्य कवि (नाद परिवार)	
(१) श्री नरवाहन जी	दानवेली पदावली

(२) ,, दामोदर स्वामी	नेम बत्तीसी, गुरु प्रताप, साखी, भक्तिभेद सिद्धान्त, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पदावली, रहस्यलता, रासलीला, वर्षोत्सव
(३) ,, रामकृष्ण जी (कालिंजर निवासी)	प्रतीति परीक्षा, विनय पच्चीसी, रास पंचाध्यायी, रुक्मणी मंगल, वृषभान की कथा, कृष्ण विलास, ग्वाल पहेली,
(४) ,, भतिवल्लभ जी	वृन्दावनाष्टक, वार्ता, हित पद्धति, मंत्र ध्यान पद्धति भाषा, हित वंशावली, गुरु प्रणाली,
(५) ,, सहचरि सुख जी	माँझ तथा कवित्त सवैया, वर्षोत्सव पदावली,
(६) ,, उत्तमदास जी	राधा नाम प्रताप लीला, अनन्यमाल (भक्त माल)
(७) ,, रूपसखी	ज्ञान चौवनी, स्फुट पदावली
(८) ,, लोकनाथ जी	टीका चतुरासी, टीका राधा सुधा निधि, रस तरंग, वृन्दावन स्वरूप वर्णन, अनन्य लक्षण,
(९) ,, सेवासखी जी	वाणी,
(१०) ,, कृष्णदास जी (भावुक)	वृन्दावनाष्टक, हरिवंशाष्टक, गुरु प्रणाली, पदावली,
(११) ,, परमानन्द जी	हित बधाई, जमुना मंगल, राधाष्टक, गुरु भक्ति विलास, सेवक मंगल, रेखता
(१२) ,, हठी जी	श्री राधा सुधा शतक,
(१३) ,, लालदास जी (लाल स्वामी)	सिद्धान्त पतिपादन, स्फुट पदावली,
(१४) ,, ब्रजगोपाल जी	टीका स्फुट वाणी, राधा सहस्त्र नाम, टीका सेवक वाणी, स्फुट पदावली,
(१५) ,, प्रेमदास जी	टीका चतुरासी, स्फुट पदावली, व्याहुलो, हितजन्म बधाई, रससार संग्रह,
(१६) ,, ब्रजजीवन जी	श्री हित बधाई, पदावली साँझी, छदम चौवनी लीला, चतुरासी महात्म्य, सेवक वाणी माहात्म्य, श्री हितवंशावली, श्री हित रसिक माल, हृदयाभरण, स्फुट वाणी,

(१७) ,, सर्व सुखदास जी	टीका सेवक वाणी, सिद्धान्त पच्चीसी, भावनाषोडशी, मांझ बत्तीसी, वृत्तिविवेचन, फुटकर दोहावली हितशत नाम,
(१८) ,, प्रियादास जी (वनकौर)	श्री सेवक चरित्र, सेवक श्री हितनामा शक्ति, वाणी, प्रियाचरण चिन्ह भाव,
(१९) ,, रतनलाल जी	टीका चतुरासी, टीका सेवक वाणी, टीका हरिवंशाष्टक, सिद्धान्त सार, स्फुट वाणी, समय प्रबन्ध,
(२०) ,, प्रियादास जी	पद रत्नावली,
(२१) ,, भोलानाथ जी	टीका राधा सुधानिधि, टीका सुधर्म-बोधिनी, टीका स्फुट वाणी, टीका सेवा विचार, पदावली,

हरिदासी संप्रदाय के भक्त कवि तथा उनकी रचनाएँ

(१) स्वामी हरिदास	अष्टादश सिद्धान्त के पद, श्री केलिमाल,
(२) श्री विट्ठल विपुल	विट्ठल विपुल जी की वाणी (चालीस पद)
(३) बिहारिणि दास	बिहारिनदास जी की वाणी,
(४) सरसदेव	पद
(५) रसिकदास, रसिकदेव (१६८७ ई०)	पद, भक्त सिद्धान्त मणि, पूजा विलास, रस के पद, कुंज कौतुक, रस सागर, माधुर्यलता, रतिरंग, लता, आनन्दलता, विलासलता, तरंगलता अष्टक ।
(६) पीताम्बरदास	सिद्धान्त और साखी, सिद्धान्त और रस के पद, पीताम्बर देव की मांझ, पीताम्बर देव की वाणी, रस के पद, सिंगार के पद, केलिमाल की टीका,
(७) ललित किशोरीदास	पद, अष्टाचार्यों की वाणी में इनकी ३२८ साखियाँ, ४ कवित्त सवैये, १०७ सिद्धान्त के पद, १०८ रस के पद तथा २४ बधाइयाँ हैं,
(८) ललित मोहनदास	११ साखियाँ ४ पद,
(९) किशोरदास	निजमत सिद्धान्त के पद, सवैया पच्चीसी,

(१०) श्री भगवत रसिक (१७७३ ई०)	नित्यविहार युगल ध्याय, अनन्य रसि का मरण, निश्चयात्मक ग्रन्थ, निर्विरोध मन रंजन,
(११) बख्त कुंवरि (प्रियासखी) १७३३	बानी
(१२) बख्शी हंसराज (१७४७ ई०) (प्रेम सखी)	सनेह सागर, विरह विलास, बारहमासा।

शुक अथवा चरणदासी संप्रदाय के कवि तथा उनकी रचनाएँ

(१) श्री श्यामचरणदास	भक्ति सागर,
(२) सहजो बाई	वाणी,
(३) दया बाई	दया बोध,
(४) राम सखी	भक्ति रस मंजरी,

प्राणनाथी सम्प्रदाय के कवि तथा उनकी रचनाएँ

(१) प्राणनाथ जी	
(२) देवचन्द्र जी सुन्दर बाई	श्री धाम वर्णन

ललित सम्प्रदाय के कवि तथा उनकी रचनाएँ

(१) वंशीअलि जी	रास पंचाध्यायी, वात्सल्य के पद, बसंत के पद, मांझी के पद, शृंगार के पद, हिंडोरा के पद, होरीधमार, लालजी की बधाई, ललिताजू की बधाई, अष्ट सखा की बधाई हृदय सर्वस्व, लीला के सहस्त्र पद,
(२) किशोरीअलि जी	ललिता जू को मंगल, वृन्दावन मंगल, बीन के पद, अष्टयाम के पद, गुंसाईं जी की बधाई, सांझी भागवत स्तुति, शुकदेव स्तुति, रसिक महिमा, वृन्दावन महिमा, रस केलि कहानी, पहेली, द्वितीय अष्टयाम, ब्याहलो, पूर्वानुराग, वर्षोत्सव के पद, शरद रास के पद, संकेत बिहार लीला तथा भ्रमर गीत।
(३) ,, अलबेली अलि (१७५० ई०)	समय प्रबन्ध पदावली।

सम्प्रदाय मुक्त भक्त कवि

मीरा बाई	पदावली,

सम्प्रदायेतर कृष्ण काव्यकार तथा उनकी रचनाएँ

(१) नरहरि (बन्दीजन) (१६१० ई०)	रुक्मणी-मंगल, छप्पय-नीति, कवित्त-संग्रह

(२) नरोत्तमदास (१६०० ई०)	सुदामा चरित्र
(३) महाराजा टोडरमल (१५७० ई०)	स्फुट रचना
(४) गंग कवि (१५६५ ई०)	स्फुट रचना
(५) पुहकर कवि (१६१६ ई०)	रस रतन
(६) सुन्दर कवि (१६३१ ई०)	सुन्दर शृंगार, बारहमासा
(७) ब्रजवासीदास (१७५२ ई०)	ब्रज विलास
(८) ठाकुरदास (१७८० ई०)	रुक्मिणी मंगल
(९) कुंजनदास (१७७४ ई०)	उषा चरित्र
(१०) मंसाराम (१७८६ ई०)	वियोग-अष्टक
(११) मिहिरचन्द (१६४३ ई०)	रुक्मिणी-मंगल
(१२) परशुराम (१६३० ई०)	उषा चरित्र
(१३) गुरु गोविन्दसिंह (१६७६ ई०)	कृष्णावतार
(१४) गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव (१७७३ ई०)	महाभारत का पद्य में अनुवाद, गोविन्द-सुखद विहार, राधाकृष्ण-विलास।
(१५) मंचित (१७७१ ई०)	सुरभिदान लीला, कृष्णायन
(१६) कृष्णदास (१७९० ई०)	माधुर्य लहरी
(१७) अब्दुर्रहीम खानखाना (१६३० ई०)	शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी

कृष्ण काव्यकार तथा उनकी रीतिकालीन रचनाएँ

(१) कृपाराम (१५४१ ई०)	हित तरंगिणी
(२) सूरदास (१५५० ई०)	साहित्य लहरी
(३) नंददास (१५५४ ई० के लगभग)	रस मंजरी
(४) मोहनलाल (१५५९ ई०)	शृंगार सागर
(५) बलभद्र मिश्र (१५८३ ई०)	नखशिख
(६) रहीम (१५६३ ई०)	बरवै नायिका भेद
(७) केशवदास (१६०२ ई०)	कविप्रिया, रसिकप्रिया
(८) कुलपति (१६६७ ई०)	द्रोण पर्व, रस रहस्य
(९) पदुमनदास (१६८४ ई०)	काव्य मंजरी
(१०) देव (१६८९ ई०)	भाव विलास, प्रेम चन्द्रिका, रस विलास प्रेम तरंग
(११) सूरति मिश्र (१७०३ ई०)	रसमाला, नखशिख, रस रत्नाकर
(१२) कुमारमणि शास्त्री (१७१९ ई०)	रसिक रसाल

(१३) भिखारीदास (१७४२ ई०)	रस सारांश
(१४) जनराज (१७७६ ई०)	कविता-रस-विनोद
(१५) रसिक गोविंद (१७६२ ई०)	समय प्रबन्ध, युगल रस माधुरी
(१६) तोष (१६३४ ई०)	सुधानिधि
(१७) श्री निवास (१६६३ ई०)	रस सागर
(१८) लोकनाथ चौबे (१७०३ ई०)	रस तरंग
(१९) बेनीप्रसाद (१७०८ ई०)	रस श्रृंगार-समुद्र
(२०) श्रीपति (१७१३ ई०)	रस सागर
(२१) सैयद गुलामनबी (रसलीन) (१७३१ ई०)	अंग दर्पण और रस प्रबोध
(२२) भूपति (१७३४ ई०)	रस रत्नाकर, रसदीप, भागवत भाषा
(२३) शिवनाथ (१७७१ ई०)	रस वृष्टि
(२४) महाराजा रामसिंह (१७७२ ई०)	रस निवास
(२५) सेवादास (१७८३ ई०)	रस दर्पण
(२६) पद्माकर (१७५३ ई०)	जगत विनोद
(२७) बेनीप्रवीन (१७१७ ई०)	नव रस तरंग
(२८) मतिराम (१६८८ ई०)	रसराज, ललित ललाम
(२९) उदयनाथ (१७४७ ई०)	रस चन्द्रोदय
(३०) चन्द्रदास (१७५४ ई०)	श्रृंगार सागर
(३१) कालिदास त्रिवेदी (१६६२ ई०)	वधू विनोद, राधा माधव मिलन, जंजीरा बंद
(३२) रघुनाथ (१७३९ ई०)	जगत मोहन, रसिक मोहन
(३३) चंदन (१७८८ ई०)	कृष्ण काव्य, काव्याभरण

रीति मुक्त कृष्ण काव्यकार तथा उनकी रचनाएँ

(१) ठाकुर (१७६३ ई०)	ठाकुर-ठसक
(२) बोधा (१७७३ ई०)	कवित्त, इश्कनामा, विरहवारीश
(३) आलम (१७०० ई०)	आलमकेलि
(४) घनानन्द (१७०० ई०)	इश्कलता, कृष्णकौमुदी, गिरिपूजन, सुजान सागर, रसकेलिवल्ली, विरहलीला, कवित्त।

परिशिष्ट—२

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत

अथर्ववेद संहिता	सायण भाष्य
अणुभाष्य	वल्लभाचार्य
उज्ज्वलनीलमणि	श्री रूप गोस्वामी
उद्धव संदेश	,, रूप गोस्वामी
ऐतरेय ब्राह्मण	सायण भाष्य
ऋग्वेदानुक्रमणी	माधव भट्ट
कुमार संभव	कालिदास
कृष्ण यजुर्वेद संहिता	सायण भाष्य सहित
कृष्णाश्रय	वल्लभाचार्य
गर्ग संहिता	वेंकटेश्वर प्रेस
गरुड़ पुराण	,,
गायत्री भाष्यम्	वल्लभाचार्य
गीत गोविन्द काव्यम्	जयदेव
गोपाल सहस्र नाम	माधव पुस्तकालय
चतुःश्लोकी	वल्लभाचार्य
तत्वदीप निबंध	वल्लभाचार्य
तत्वार्थदीप निबंध	वल्लभाचार्य
निकुंज रहस्यस्तव:	श्री रूपगोस्वामी
नारदपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
पद्म पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस

परिवृढाष्टकम्	वल्लभाचार्य
पुराण विषय समनुक्रमणिका	यशपाल टंडन
पुरुषोत्तमनाम सहस्त्रम्	वल्लभाचार्य
पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद	वल्लभाचार्य
पंच श्लोकी	वल्लभाचार्य
ब्रह्म पुराण	वेंकेटेश्वर प्रेस
ब्रह्म वैवर्त पुराण	,,
ब्रह्माण्ड पुराण	,,
भक्ति रस तरंगिणी	प्रकाशक कृष्णदास
भक्ति वर्धिनी	वल्लभाचार्य
भविष्य पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
मत्स्य पुराण	,,
महाभारत	सं० हनुमान प्रसाद पोद्दार
मार्कण्डेय पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
मेघदूत	कालिदास
यजुर्वेद संहिता	जयदेव शर्मा कृत आलोक भाष्य सहित
राधा सुधानिधि	हितहरिवंश
लघु भागवतामृत	श्री रूप गोस्वामी
वामन पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
वाराह पुराण	,,
विष्णु पुराण	,,
वेणी संहार	भट्ट नारायण
बृहद्भागवतामृत	श्री सनातन गोस्वामी
शतपथ ब्राह्मण	सायण भाष्य
शिवपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
शिशुपाल वध	माघ
शिक्षाष्टक	चैतन्य महाप्रभु
श्री कृष्ण प्रेमामृतम्	वल्लभाचार्य
श्री कृष्णाष्टकम्	वल्लभाचार्य
श्री गोपी जनवल्लभाष्टकम्	वल्लभाचार्य
श्री मद्भागवत महापुराणम्	गीता प्रेस गोरखपुर
श्री मधुराष्टकम्	वल्लभाचार्य
श्री राधा रस मंजरी	चैतन्य महाप्रभु

षोडश ग्रन्थ	वल्लभाचार्य
स्कंद पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
स्वामिनी स्तोत्र	गो० विट्ठलनाथ

प्राकृत अपभ्रंश

गाहा सतसई	हालकृत
धम्मपद	सम्पादक
प्राकृत पैंगलम्	,,
महापुराण	पुष्पदन्त
अभिलाष माधुरी	माधुरीदास जी
अष्टछाप	सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा
अष्टछाप	सं० कण्ठमणि शास्त्री
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १-२	डा० दीनदयाल गुप्त
अष्टछाप परिचय	प्रभुदयाल मीतल एवं द्वारकादास परीख
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डा० सरयूप्रसाद
अष्टादश सिद्धान्त के पद	स्वामी हरिदास
आदिवाणी	श्री भट्ट जी
आदिवाणी	राम राय जी
कृष्ण भक्ति काव्य में संगीत	डा० उषा गुप्त
कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा
केलिमाधुरी	माधुरीदास जी
केलिमाल	स्वामी हरिदास जी
कबीर ग्रन्थावली	सं० श्यामसुन्दर दास
कला और संस्कृति	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
कला, कल्पना और साहित्य	डा० सत्येन्द्र
कविता कौमुदी प्रथम भाग	सं० रामनरेश त्रिपाठी
कविवर परमानन्ददास और उनका साहित्य	डा० गोवर्धनदास शुक्ल
कुम्भनदास	विद्या विभाग कांकरोली
कृपा अभिलाष वेली	चाचा हित वृन्दावन दास
कृष्ण गीतावली	तुलसीदास
कृष्णायन	द्वारकाप्रसाद मिश्र
कृष्ण काव्य की परम्परा	सत्यनारायण पांडे
कीर्तन संग्रह ३ भाग	लल्लूभाई छगनलाल देसाई अहमदाबाद

कुंज बिहारी अष्टक	गो० रामनाथ जी शास्त्री
गदाधर भट्ट की वाणी	गदाधर भट्ट
गीत गोविन्द	हिन्दी रूपान्तर श्री विनय मोहन शर्मा
गीता रहस्य	लोकमान्य तिलक
गोविन्द स्वामी	प्र० विद्या विभाग कांकरोली
गीत गोविन्द ब्रजभाषा पद्यानुवाद	राम राय जी
गीत गोविन्द	रसजानि वैष्णवदास
गोपी प्रेम	हनुमान प्रसाद पोद्दार
गोपी माहात्म्य	सुन्दरि कुंवरि
गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० जगदीश गुप्त
गुड़िया लीला	चाचा हित वृन्दावन दास
घनानन्द ग्रंथावली	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
घनानन्द रत्नावली	संकलन कवि किंकर
घनानन्द और स्वच्छंद काव्य धारा	डॉ० मनोहर लाल गौड़
चाहवेलि	प्रियादास जी
चैतन्य चरितामृत-ब्रजभाषा पद्यानुवाद	श्री सुबल श्याम
चौरासी वैष्णवन की वार्ता	सं० द्वारकादास परीख
जायसी ग्रंथावली	मलिक मुहम्मद जायसी
दान माधुरी	माधुरीदास जी
द्वापर	मैथिलीशरण गुप्त
धुलरी लीला	चाचा हित वृन्दावन दास
देवरत्नावली	
नागर समुच्चय	नागरीदास जी
निकुंज केलि माधुरी	माधवदास जी माधुरी अलि
निकुंज प्रेम माधुरी	माधवदास जी माधुरी अलि
निंबार्क माधुरी	सं० बिहारी शरण
नेह निधि	सुन्दरि कुंवरि
प्रियादास जी ग्रंथावली	प्र० बाबा कृष्णदास
प्रकट वाणी	प्राणनाथ
प्रसाद लता	रसिक दास
प्रेम वाटिका	रसखान
प्रेम विनोद	छत्र कुंवरि जी

प्रेम पाठ	प्राणनाथ जी
प्रेम भक्ति चंद्रिका	वृन्दावनदास जी
प्रेम सम्पुट	सुन्दरि कुंवरि जी
प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय
बयालीस लीला	हित ध्रुवदास
बल्लभ रसिक जी की वाणी	सं० बाबा कृष्णदास जी
बलदेव उपाध्याय	भागवत सम्प्रदाय
भक्त कवि व्यास जी	वासुदेव गोस्वामी
भागवत सम्प्रदाय	बलदेव उपाध्याय
भारतीय साधना और सूर साहित्य	डॉ० मुंशीराम शर्मा
भारतीय संस्कृति	गौरी शंकर हीराचन्द ओझा
भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
भारतेंदु ग्रंथावली	प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा
भक्त नामावली	वृन्दावनदास जी
मंगला के पद	तुलसीदास
मंगल जुगल विनोद वेलि	चाचा हित वृन्दावनदास
मध्यकालीन संस्कृत	गौरी शंकर हीराचन्द ओझा
मध्यकालीन हिन्दी कवियत्रियाँ	—डा० सावित्री सिन्हा
मीरा पदावली	पद्मावती शबनम
मीराबाई की शब्दावली	प्र० बेलवेडिंग प्रेस
मीराबाई की पदावली	परशुराम चतुर्वेदी
मध्यकालीन धर्म साधना	परशुराम चतुर्वेदी
मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी
महाकवि सूरदास	नन्द दुलारे वाजपेयी
महावाणी	श्री हरिव्यास देव
मान माधुरी	माधुरीदास जी
मिश्रबन्धु विनोद ३ भाग	
रसिकअनन्य परिचयावली	चाचा वृन्दावन दास
रसिक अनन्य माल	भगवत मुदित जी
रस पुंज	सुन्दरकुंवर जी
रसिक पथ चन्द्रिका	चाचा वृन्दावन दास जी
राजस्थानी भाषा और साहित्य	मोतीलाल मेवारिया

राधा वल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक
राधा का क्रमिक विकास	डा० शशिभूषणदास गुप्त
रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस विवेचन	डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
वैष्णव धर्म	परशुराम चतुर्वेदी
ब्रजमाधुरी सार	वियोगी हरि जी
श्रीकृष्ण विवाह उत्कण्ठा	हित वृन्दावन दास
श्री लाल ग्रन्थ माला	सं० गोस्वामी वांकेलाल जी
श्री नागरीदास जी की वाणी	नागरीदास
राधा वल्लभ अष्टयाम	प्र० बाबा राधिकादास
राग रत्नाकर	खेमराज श्रीकृष्णदास
रागकल्पद्रुम	कृष्णानन्द व्यास
रामभक्ति में रसिक संप्रदाय	डा० भगवती प्रसाद सिंह
रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना	श्री भुवनेश्वर प्रसाद माधव
रास छद्म विनोद	चाचा हित वृन्दावनदास
रास पंचाध्यायी	नन्ददास जी
रूप मन्जरी	नन्ददास जी
ललित प्रकाश	सहचरिशरण जी
लाड़ सागर	चाचा वृन्दावन दास जी
लीला विंशति	रूप रसिक जी
विवेक पत्रिका वेली	चाचा हित वृन्दावनदास
विद्यापति पदावली	कुमुद विद्यालंकार
विलाप कुसुमांजलि	वृन्दावन दास जी
विहारी रत्नाकर	जगन्नाथ दास रत्नाकर
वृन्दावन गोपी महात्मय	सुन्दरि कुंवरि जी
वंशी माधुरी	माधुरीदास जी
व्यास वाणी	गो० लालिलकिशोर जी
ब्रज का इतिहास भाग २	कृष्णदत्त वाजपेयी
ब्रज प्रेमानन्द सागर	चाचा वृन्दावन दास जी
शृंगार रस सागर ३ भाग	बाबा तुलसीदास जी
शुक सम्प्रदाय प्रकाश—	रूप माधुरी शरण जी
सहज प्रकाश	सहजोबाई जी

सार संग्रह	सुन्दरि कुंवरि
साहित्य रत्नावली	सं० किशोरीशरण 'अली'
सिद्धान्त रत्नाकर	वृन्दावनदास
सुधर्म बोधिनी	लाड़िलीदास जी
सूरदास मदनमोहन जीवनी और पदावली	प्रभुदयाल मीतल
सूर की झांकी	डा० सत्येन्द्र
सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य	डा० शिवप्रसाद सिंह
सूर सागर २ भाग	नागरी प्रचारिणी सभा
सूर सारावली	प्रभुदयाल मीतल
सूर संगीत	प्र० श्री प्रभुदयाल गर्ग
सूर साहित्य	हजारीप्रसाद द्विवेदी
सूर के सौ कूट	चुन्नीलाल शेष
सोलहवीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि	डा० रत्नकुमारी
स्वामी हरिदास अभिनन्दन ग्रंथ	वृन्दावन, छबीले वल्लभ गोस्वामी
हरि चरित	लालचदास
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण	नागरी प्रचारिणी सभा
हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य	ललिताचरण गोस्वामी
हित चौरासी	हित हरिवंश जी
हिन्दी साहित्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी के मुसलमान कवि	गंगाप्रसाद सिंह
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० राम कुमार वर्मा
हिन्दुत्व	रामदास गौड़
हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	गा० सा० दतासी
हिन्दी पुस्तक साहित्य	माताप्रसाद गुप्त
हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (द्वितीय खंड)	धीरेन्द्र वर्मा तथा बृजेश्वर वर्मा
हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास	षष्ठ भाग—सं० डॉ० नगेन्द्र

गुजराती

वैष्णवनो इतिहास—द्वारकादास परीख

गुजराती साहित्य ना मार्गसूचक स्तम्भ

मराठी

मराठी वाङ्गमया च इतिहास

पत्रिकायें

१—वल्लभीय सुधा

२—कल्याण

३—ब्रज भारती

४—नागरी प्रचारिणी पत्रिका

५—रिसर्च जनरल्स

६—इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली

७—श्री सर्वेश्वर

८—श्री भागवत पत्रिका

९—हिन्दुस्तानी १९३२, ३३, ३४, ३७

१०—हिन्दी अनुशीलन

११—सम्मेलन पत्रिका

१२—जर्नल आव द रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०८

१३—कलानिधि अंक २

हस्तलिखित शोध प्रबन्ध

ENGLISH BOOKS

A Study in the theory of Avataras -- Bhagwan Das
A History of Sanskrit Literature. — A. A. Macdonell
An outline of the Religious Literature of India. — J. N. Farquhar
An introduction to the popular Religion and Folklore of Northern India. — W. Crooke
Archeological Survey report 1912, 13, 14, 21 and 22
Archeological Survey of Western India.
A short History of Muslim Rule in India.
A sketch of the religious Sects of the Hindus. — H. H. Wilson
A constructed survey of Upanishadic Philosophy. — R. D. Nanada
Archeology and Vaisnava Tradition. — R. Chanda
Bengali Language and Literature. — Dinesh Chandra Sen
Bhakti Cult in Ancient India. — Dr. Bhagwat Kumar Goswami
Corpus Inscription Indicorum.
Chaitanya and his age. — R. B. D. Sen
Collections of R. G. Bhandarkar.
Cronology of ancient India.
Coins of the Gupta Empire —Altekar
Doctrine of Nimbark and his followers. — Rama Bose
Dynasties of Kali Age.
Early History of the Vaishnava faith and Movement in Bengal — D. S. K. De
Early History of Vaishnava Sect. — H. C. Ray Chaudhary
Encyclopedia of Religion and Ethics. — James Hastings
Evolution of Vaishnavism. — R. B. R. N. Mitra
Early History of Vaishnavism in South India. — Krishna Swami Aiyanger
Epigraphica Indica.

Fastscrift Thomas. — Ruben
Fastscrift — Kane
Glory that was Gujarat Das — K. M. Munshi
Gujrat and its Literature — K. M. Munshi
Heritage of India — Max Muller
History of Indian Literature — M. Winternitz
History of Indian and Indonesian Art.
History of Indian Literature. — Veber
Indian Antiquery 1908 — Grierson
Indian Philosophy — S. Radha-Krishnan
Indra Cult Versus Krishna Cult — O. C. Gangoly
Influence of Islam on Indian Culture. — Dr. Tara Chand
Indian Myth and Legend — Donal A. Mackenzie
Journals of the Royal Asiatic Society of Bengal — Calcutta
Journals of Bihar and Orissa — Research Society 1942
Krsna and Krsnaism — B. R. Malik
Krsna — Dr. Bhagwan Das
Krsna and Solar Myths — Collins
Krsna and Puranas — S. Datta
Krsna and Cowherd — M. M. Dhar
Krshna and his teachings — Abhedanand
Krsn — W. Ruben
Krsn Problems — S. N. Tadpatrikar
Krsn and the Gita — S. Tattvabhushan
Lord Krishna — Tara Chand
Love in Hindu Literature — Dr. Yinaya Kumar Sarkar
Medieval Mysticism of India — K. Mohansen.
Medieval Religions — Carpenter
Mahabharat—A Criticism
Philosophy of Ancient India — Carve
Panini as Known to India — Vasudev Sharma Agrawal
Proceedings of 4th Indian History Congress
Post Chaitanya Cult — Mohindra Mohan Bose
Political History of Ancient India (4th and 5th Edition.)
Religious sects of the Hindus — H. H. Wilson

Religion in Literature and religion in life. — S. A. Brooke

Selections from Hindi Literature, Krishna cult of Vraja — Lala Sita Ram

Sufism — A. J. Arberry

Shri Vallabhacharya's life and teachings. M. C.Parikh

Shri Krisma, the Darling of Humanity. — A. S. P. Ayyar

Studies in the Puranic records — R. C. Hazra

South Indian influences in the Far East. — K. A. N. Shastri

Sacred Book of the East — A. M. Wilson

Studies in Epics and Puranas of INDIA. — A. D. Pusalkar

The religions of the Hindus — Menneth W. Morgan

The Post-Chaitanya Cult of Bengal — M. M. Bose

The religions of India. — A. Barth

The religions of India — E. W. Hopkins

Vedic Index.

Vaishnavism, Shavism and Minor Religious systems. — R. C. Bhandarkar